महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

(A Center University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)

ज्ञान शांति मैत्री

एम.ए. राजनीति विज्ञान

पाठ्यक्रम कोड : एम.ए.पी.एस. – 016

द्वितीय सेमेस्टर

पाठ्यचर्या कोड : - 08

पाठ्यचर्या का शीर्षक : पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन (भाग-2)

दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र)

दूर शिक्षा निदेशालय महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

एम.ए.राजनीति विज्ञान प्रथम सेमेस्टर-पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन (भाग-1)

मार्गदर्शन समिति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. कृष्ण कुमार सिंह
प्रभारी निदेशक (दूर शिक्षा निदेशालय)
म.गां.अं.हिं.वि.,वर्धा

पाठ्यचर्या निर्माण समिति

प्रो. अरविंद कुमार झा
पूर्व निदेशक,
दूर शिक्षा निदेशालय
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. पवन कुमार शर्मा
विभागाध्यक्ष एवं संकायाध्यक्ष
राजनीति विज्ञान विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय
अटल बिहारी बाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. जे.वी. गवई
विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग
राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय
नागपुर, महाराष्ट्र

डॉ. सुशील कुमार त्रिपाठी
पाठ्यक्रम संयोजक : एम.ए.राजनीति विज्ञान पाठ्यक्रम
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

संपादक मंडल

प्रो. आर. आर. झा
पूर्व विभागाध्यक्ष एवं संकायाध्यक्ष
राजनीति विज्ञान विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय
बी.एच.यू. वाराणसी

प्रो. नृपेन्द्र प्रसाद मोदी
विभागाध्यक्ष एवं संकायाध्यक्ष
गांधी एवं शांति अध्ययन, संस्कृति विद्यापीठ,
म.गां.अं.हिं.वि.वर्धा

डॉ. सुशील कुमार त्रिपाठी
पाठ्यक्रम संयोजक : एम.ए.राजनीति विज्ञान पाठ्यक्रम
दूर शिक्षा निदेशालय,
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

इकाई लेखन

खंड -1
इकाई 1 – डॉ. भावना सिन्हा
इकाई 2 - डॉ. भावना सिन्हा
इकाई 3 - डॉ. भावना सिन्हा
इकाई 4 - डॉ. भावना सिन्हा

खंड - 2
इकाई 1- डॉ. ममता मणि त्रिपाठी
इकाई 2- डॉ. ममता मणि त्रिपाठी
इकाई 3- डॉ. ममता मणि त्रिपाठी
इकाई 4- डॉ. ममता मणि त्रिपाठी

खंड - 3
इकाई 1 – डॉ. आनंद तिवारी
इकाई 2 - डॉ. आनंद तिवारी
इकाई 3 - डॉ. भावना सिन्हा
इकाई 4- डॉ. भावना सिन्हा

खंड - 4
इकाई 1- डॉ. सुचिता पाण्डेय
इकाई 2 - डॉ. सुचिता पाण्डेय
इकाई 3 - डॉ. शैलजा अस्थाना
इकाई 4 - डॉ. शैलजा अस्थाना

कार्यालयीन एवं संपादकीय सहयोग

श्री विनोद वैद्य
सहायक कुलसचिव
दू.शि. निदेशालय म.गां.अं.हिं.वि.वर्धा

श्री अरविन्द कुमार
टेक्निकल असिस्टेंट
दू.शि. निदेशालय म.गां.अं.हिं.वि.वर्धा

सुश्री राधा ठाकरे
टंकक/फार्मेटिंग/एडिटिंग
दू.शि.निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वर्धा

श्री सचिन सोनी
सॉफ्टवेयर स्पेशलिस्ट
दू.शि.निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वर्धा

श्री गुड्डू यादव
कंप्यूटर ऑपरेटर
दू.शि.निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वर्धा

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)
Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya
(A Central University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)

पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन (भाग-1)

क्रेडिट्स 04 :क्रेडिट

मूल्यांकन के मानदंड :

1. सत्रांत परीक्षा : 70 %
2. सतत आंतरिक मूल्यांकन : 30 %

खंड 1 उपयोगितावाद व वैज्ञानिक उदारवाद

इकाई-1. उपयोगितावाद का उदय : जेरेमी बेन्थम के राजनीतिक विचार

इकाई-2. जेम्स मिल के राजनीतिक विचार

इकाई-3. जॉन स्टुअर्ट मिल के राजनीतिक विचार

इकाई-4. हरबर्ट स्पेंसर के राजनीतिक विचार

खंड 2 आदर्शवादी चिन्तन

इकाई-1. आदर्शवाद का उदय : इमैनुएल कांट के राजनीति विचार

इकाई-2. फ्रेडरिक हीगेल के राजनीतिक विचार

इकाई-3. बर्नार्ड बोसांके के राजनीतिक विचार

इकाई-4. टी.एच. ग्रीन के राजनीतिक विचार

खंड 3 मार्क्सवादी चिन्तन

इकाई-1. मार्क्सवाद का उदय : कार्ल मार्क्स के राजनीतिक विचार

इकाई-2. लेनिन के राजनीतिक विचार

इकाई-3. लियो ट्राट्स्की एवं जोसेफ स्टालिन के राजनीतिक विचार

इकाई-4. माओ-त्से-तुंग के राजनीतिक विचार

खंड 4 समाजवादी चिन्तन

इकाई-1. समाजवाद का अर्थ परिभाषा एवं वर्गीकरण

इकाई-2. सेन्ट साइमन के राजनीतिक विचार

इकाई-3. राबर्ट ओवेन के राजनीतिक विचार

इकाई-4. एडवर्ट बर्नस्टीन के राजनीतिक विचार

अनुक्रम

क्र.सं.	इकाई के नाम	पृष्ठ संख्या
1.	**खंड-1 उपयोगितावाद व वैज्ञानिक उदारवाद**	
	इकाई-1. उपयोगितावाद का उदय : जेरेमी बेन्थम के राजनीतिक विचार	3-23
	इकाई-2. जेम्स मिल के राजनीतिक विचार	24-37
	इकाई-3. जॉन स्टुअर्ट मिल के राजनीतिक विचार	38-55
	इकाई-4. हरबर्ट स्पेंसर के राजनीतिक विचार	56-72
2.	**खंड 2 आदर्शवादी चिन्तन**	
	इकाई-1. आदर्शवाद का उदय : इमैनुएल कांट के राजनीति विचार	73-90
	इकाई-2. फ्रेडरिक हीगेल के राजनीतिक विचार	91-115
	इकाई-3. बर्नार्ड बोसांके के राजनीतिक विचार	116-118
	इकाई-4. हरबर्ट स्पेंसर के राजनीतिक विचार	119-138
3.	**खंड 3 मार्क्सवादी चिन्तन**	
	इकाई-1. मार्क्सवाद का उदय : कार्ल मार्क्स के राजनीतिक विचार	139-185
	इकाई-2. लेनिन के राजनीतिक विचार	186-209
	इकाई-3. लियो ट्राट्स्की एवं जोसेफ स्टालिन के राजनीतिक विचार	210-226
	इकाई-4. माओ-त्से-तुंग के राजनीतिक विचार	227-244
4.	**खंड 4 समाजवादी चिन्तन**	
	इकाई-1. समाजवाद का अर्थ परिभाषा एवं वर्गीकरण	245-259
	इकाई-2. सेन्ट साइमन के राजनीतिक विचार	260-269
	इकाई-3. राबर्ट ओवेन के राजनीतिक विचार	270-266
	इकाई-4. एडवर्ट बर्नस्टीन के राजनीतिक विचार	267-275

खंड-1 उपयोगितावाद व वैज्ञानिक उदारवाद

इकाई-1 उपयोगितावाद का उदय : जेरेमी बेन्थम के राजनीतिक विचार

इकाई की रूपरेखा

1.1.1. उद्देश्य कथन
1.1.2. प्रस्तावना
1.1.3. उपयोगितावाद के प्रवर्तक और प्रेरणास्रोत
1.1.4. उपयोगितावाद क्या है ?
1.1.5. उपयोगितावाद की विशेषताएं
1.1.6. जेरेमी बेन्थम : जीवन परिचय
1.1.7. बेन्थम की कृतियाँ
1.1.8. बेंथम का उपयोगितावाद
1.1.8.1. उपयोगिता का अर्थ
1.1.8.2. नैतिकता की परम्परागत धारणाओं का खंडन
1.1.8.3. प्रकृति ने मनुष्य को दो सत्ताधारी स्वामियों के अधीन रखा है
1.1.8.4. उपयोगिता का सिद्धांत सुख की प्राप्ति और दुःख के निवारण का का सिद्धांत है
1.1.8.5. सुख-दुःख का वर्गीकरण
1.1.8.6. सुख-दुःख के निर्धारक तत्व
1.1.8.7. सुख-दुःख के स्रोत
1.1.8.8. सुख की गणना -सुखवादी मापक यंत्र
1.1.8.9. सुख की मात्रा समान हो तो बच्चो का खेल हो या कविता ,एक ही बात
1.1.8.10. राज्य का उद्देश्य अधिकतम लोगो का अधिकतम सुख
1.1.8.11. कानून का ध्येय अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख

1.1.9. उपयोगिता वाद की आलोचना
1.1.10. राज्य की उत्पत्ति संबंधी बेन्थम का विचार
1.1.11. राज्य के कार्य
1.1.12. कानून संबंधी विचार
1.1.13. बेंथम एक महान सुधारक
1.1.13.1. शासन प्रणाली में सुधार
1.1.13.2. विधि निर्माण के क्षेत्र में सुधार
1.1.13.3. दण्ड व्यस्था एवं जेल सुधार
1.1.13.4. शिक्षा योजना में सुधार
1.1.13.5. आर्थिक विचार

1.1.14. सारांश
1.1.15. अभ्यास / बोधात्मक प्रश्न
1.1.15.1. दीर्घ उतरीय प्रश्न
1.1.15.2. लघु उत्तरीय प्रश्न
1.1.15.3. बहु विकल्पीय प्रश्न
1.1.15.4. बहु विकल्पीय प्रश्नों के उत्तर
1.1.16. कठिन शब्द
1.1.17. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.1.1. उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप-

- उपयोगितावाद की विचारधारा समझ जायेंगेi
- उपयोगितावाद के प्रवर्तकों को भी जान जायेंगेi
- उपयोगितावादी विचारक बेन्थम के जीवन और कृतियों से परिचित हो जायेंगेi
- बेन्थम की उपयोगिता सम्बन्धी विचारधारा को समझ सकेंगेi
- बेन्थम के राजनीतिक योगदान को जान जायेंगेi

1.1.2. प्रस्तावना

उपयोगितावाद सारतः एक अंग्रेजी विचारधारा हैiउपयोगितावाद औद्योगिक क्रांति के उपरांत विकसित होने वाले ब्रिटिश राजनीतिक चिंतन की देन हैiइस के जन्म का मुख्य कारण यह प्रश्न था कि औद्योगिक क्रांति से उत्पन्न विभिन्न सामाजिक विषमताओं का अंत किस तरह से किया जाएiइस प्रश्न के समाधान के लिए एक तरफ बर्क जैसे विचारको का अनुदारवादी दर्शन था जो प्राचीन रूढ़ियों और परंपराओं का समर्थक और हर तरह के सुधार का विरोधी था तो दूसरी तरफ थॉमस पेन और गॉडविन जैसे उग्र -क्रांतिवादी विचारको का दर्शन था जो पूर्णसमानता और स्वतंत्रता पर आधारित सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने का पक्षपाती थाi औद्योगिक क्रांति से उत्पन्न होने वाले उद्योगपतियों और व्यापारियों का वर्ग इन दोनों प्रकार की विचारधाराओं को नापसंद करता था,क्योंकि ना तो वह उद्योग एवं व्यापार पर कठोर नियंत्रण करके पुरानी अनुदारवादी सामंती व्यवस्था को बनाए रखना चाहता था और ना फ्रांसीसी क्रांति से प्रभावित व्यक्ति की समानता, स्वतंत्रता और प्राकृतिक अधिकारों का समर्थन करने वाली नई व्यवस्था का समर्थक था क्योंकि यह दोनों व्यवस्थाएं उसके हितों के अनुकूल नहीं थीiवह एक ऐसी व्यवस्था चाहता था जो उसके हितों का संवर्धन करती हुई समाज सुधार के कार्यक्रम को आगे बढ़ा सकेiउसकी इस आवश्यकता की पूर्ति उपयोगितावाद नेकीi उसने एक ओर मुक्त व्यापार और अहस्तक्षेप की नीति का समर्थन कर पूंजीपति वर्ग के हितों का पूर्ण समर्थन किया और दूसरी ओर सामाजिक विषमताओं का अंत करने और मजदूरों की दयनीय स्थिति को सुधारने हेतु सुधारवादी आंदोलन का संचालन कियाiफलतः उपयोगितावाद का अपने समय की सबसे लोकप्रिय विचारधारा के रूप में उदय हुआi इस इकाई में हम उपयोगितावाद क्या है ?इसके प्रेरणा का स्रोत क्या है ?तथा बेन्थम के विचारधाराओ का अध्ययन करेंगेi

1.1.3. उपयोगितावाद के प्रवर्तक और प्रेरणास्रोत

उपयोगितावाद अपने वर्तमान स्वरूप में आधुनिक युग की उपज है फिर भी इसके बीज काफी प्राचीन हैiआचारशास्त्र के एक सिद्धांत के रूप में इसका संबंध प्राचीन यूनानी एपिक्युरियन विचारधारा से जोड़ा जा सकता हैiइस विचारधारा के अनुसार मनुष्य एक सुखवादी प्राणी है जो अपना हर कार्य सुख प्राप्त करने और दुःख से बचने के उद्देश्य करता हैiकिंतु आधुनिक युग में इसका प्रारंभकर्ता रिचर्ड **कम्बरलैंड** को माना जाता है , जिसने अपने लेखन द्वारा सामान्य कल्याण को उच्चतम भलाई मानने का प्रचार किया था और सुखया उपयोगितावाद को ही सभ्यता का आधार बताया थाi

डेविड ह्यूम भी सिद्धांत के प्रवर्तको में से एक थाiउसके अनुसार ह्यूमने उपयोगितावाद के सिद्धांतों को ऐसे स्पष्ट और विधिवत रूप में व्यक्त किया है जैसा कि उन्नीसवीं शताब्दी के किसी भी अन्य लेखक ने नहीं कियाi**ह्यूम** से **जॉन स्टुअर्ट मिल** तक इस सिद्धांत में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं हुआi

ह्यूम के अतिरिक्त इंग्लैंड में **प्रिस्टले** , **हचेसन** तथा **पैले**और फ्रांस में**हैल्वेटीयस** आदि ने भी इस सिद्धांत के प्रतिपादन में अपना महत्वपूर्ण योगदान दियाiहचेसन ने सन 1755 में प्रकाशित अपनी पुस्तक **नैतिक दर्शन पद्धति** में उपयोगितावादियों के मूल मंत्र **अधिकतम संख्या के अधिकतम सुख** नामक सुप्रसिद्ध वाक्य का सर्वप्रथम प्रयोग किया, लेकिन इसका एक विचारधारा के रूप में विधिवत विशुद्ध और प्रबल प्रतिपादन मुख्य था अंग्रेज दार्शनिक **जेरेमी बेंथम** के द्वारा किया गयाiउसे**प्रीस्टले** की लिखी एक पुस्तक**शासन पर निबंध** में व्यक्त विचारों से इस विषय में प्रथम प्रेरणा प्राप्त हुईiफिर उसके अनुयायियो द्वारा इसका विकास किया गयाiयद्यपि उपयोगितावादी विचारधारा का प्रवर्तक बेन्थम को माना जाता है लेकिन बेन्थम वह पहला व्यक्ति नहीं था जिसने इस नाम का प्रयोग कियाiइस नाम का प्रयोग प्रसिद्ध उपयोगितावादी चिंतक **जॉन स्टुअर्ट मिल** के द्वारा किया गयाi1763 में प्रकाशित उसकी एक पुस्तक का नाम **'उपयोगितावाद'** थाi

1.1.4. उपयोगितावाद क्या है ?

वास्तविक दृष्टि से अगर देखा जाए तो उपयोगितावाद एक नैतिक सिद्धांत है जो मनुष्य के कार्य के स्वभाव और उद्देश्यों तथा उसके नैतिक निर्णय के स्तर से संबंधित हैiयह कोई राज्य या राजनीतिक उत्तरदायित्व का सिद्धांत नहीं हैiइसकी बुनियादी मान्यता यह है कि मनुष्य मूलतः एक इंद्रीय प्रधान प्राणी हैiवह अपना हर कार्य सुख प्राप्ति और दुःख से बचने के उद्देश्य से करता हैi अतः उसके हर कार्य का आधार और कारण दुःख -सुख का चिंतन हैi दूसरे शब्दों में मनुष्य द्वारा अंततः यही कार्य किए जाते हैं जिनसे प्रसन्नता अर्थात सुख प्राप्त होता है और दुःख से उसकी रक्षा होती हैiउपयोगितावाद के प्रवर्तक **बेंथम** के अनुसार-

"प्रकृति ने मानव जाति को दुःख-सुख नामक दो महत्वपूर्ण स्वामियों के शासन में रखा हैiहमें क्या करना चाहिए और हम क्या करेंगे, इसका निर्णय उन्हीं पर निर्भर करता हैiइसके सिंहासन के एक ओर सद-असद का मापदंड बना हुआ है और दूसरी ओर कार्य कारण की जंजीर बंधी हुई हैiहमारे मन, वचन, कर्म पर उन्हीं का शासन रहता हैiअगर हम उनकी अधीनता से मुक्त होने का कोई प्रयास करते हैं तो इससे उनकी और भी पुष्टि हो जाती है तथा उसका प्रमाण मिल जाता हैiएक मनुष्य शब्दों में उनके शासन से मुक्त होने का बहाना भले ही कर ले, लेकिन वास्तविकता की दृष्टि से वह सदैव उनके अधीन ही रहेगाi"

इस प्रकार उपयोगितावाद के अनुसार मनुष्य की मौलिक प्रवृत्ति,आनंद या सुख प्राप्ति की हैi वह सदैव सुख प्राप्त करने तथा दुःख से बचने का प्रयास करता हैi यही उसकी संपूर्ण चेष्टाओं की मूल प्रेरणा और उद्देश्य है, जिसका आधार उपयोगितावाद हैiजिस कार्य से सुख प्राप्त होता है वह उपयोगी और जिससे दुःख प्राप्त होता है वह अनुपयोगी हैi मनुष्य हमेशा वही कार्य करता है जिससे उसे सुख की प्राप्ति और दुःख से मुक्ति मिलती हो, अर्थात जो उसके लिए उपयोगी होiउसके अनुसार प्रत्येक वह कार्य जो दुःख की अपेक्षा सुख की अधिक उत्पति करता है ,अच्छा है और प्रत्येक वह कार्य जिसका परिणाम की सुख की तुलना में दुःख अधिक होता है, बुरा हैi अर्थात सुख दुःख या उपयोगिता ही नैतिकता का निर्धारक यंत्र हैi यही वह कसौटी है जिस पर एक कार्य के नैतिक या अनैतिक होने का निर्धारण किया जाता हैiइस प्रकार उपयोगितावाद के अनुसार नैतिकता किसी कार्य का अंतर्निहित और निरपेक्ष गुण नहीं हैi वह आत्मानुभूतिवाद की धारणा में विश्वास नहीं रखता कि कुछ कार्य अपने परिणामों से अलग स्वभावतः अच्छे या बुरे होते हैंi झूठ बोलना चाहे उसके कितने ही अच्छे परिणाम क्यों ना होते हो एक आत्मानुभूतिवादी के लिए बुरा और अनैतिक है, जबकि अगर उसके उपयोगी परिणाम होते हैं और उनसे सुख उपजता है तो एक उपयोगितावादी के लिए झूठ बोलना अच्छा और नैतिक हैi अतः मानव अनुभव और उपयोगिता के आधार पर प्रतिष्ठित होने के कारण उपयोगितावाद एक क्रियात्मक और व्यावहारिक सिद्धांत हैi फलतः वह कोरे तर्क तथा कल्पना पर आधारित नैतिक सिद्धांतों का उग्र विरोध करता हैi

1.1.5. उपयोगितावाद की विशेषताएं

उपयोगितावाद एक सक्रिय प्रयोगात्मक और व्यवहार-प्रधान विचारधारा हैi अतः उसकी अध्ययन पद्धति भी इसके अनुरूप आगनात्मक और अनुभूतिमूलक हैi उसका संबंध जीवित व्यक्तियों और ठोस तथ्यों से है , अमूर्त कल्पनाओं और वास्तविक सिद्धांतों से नहींi इस तरह इसका व्यवहारिक पक्ष सैद्धांतिक पक्ष की तुलना में बहुत सुदृढ़ हैi वह प्रत्येक वस्तु का मूल्यांकन उसे व्यवहार और उपयोगिता की कसौटी पर कसकर करता है और उस पर सही उतरने पर ही उसे स्वीकार करता हैiवह मनुष्य को सिर्फ बौद्धिक जीव ही नहीं मानता बल्कि उसे एक व्यवहारिक प्राणी भी मानता है ,जो हानि-लाभ और सुख-दुःख को ध्यान में रखकर ही अपना प्रत्येक कार्य करता हैiइसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए **रुडोल्फ मेज**का कहना है कि,"इसकी उत्पत्ति विद्यार्थियों के अध्ययन या व्याख्यान कक्षो में उतनी नहीं हुई जितनी कि जीवन की आवश्यकताओं तथा जीवन के लिए प्रतिदिन होने वाले संघर्ष के उतार-चढ़ाव मेंi"अतः उपयोगितावाद का व्यावहारिक आचार-शास्त्र और राजनीति से गहरा संबंध हैi उपयोगितावाद में निष्ठा रखने वाले सभी लोग व्यक्तिवादी हैंi हाब्स और लाक द्वारा स्थापित व्यक्तिवादी परंपरा के अनुसार इन लोगों की भी मान्यता है कि राज्य का अस्तित्व व्यक्ति के लिए है ना कि व्यक्ति का अस्तित्व राज्य के लिएiअर्थात व्यक्ति और राज्य एक साधन है, जिसका मुख्य कार्य समाज में शांति और व्यवस्था स्थापित करना और विभिन्न लोक कल्याणकारी कार्य करना हैi

उसके द्वारा किये जाने वाले लोककल्याणकारी कार्यो का उद्देश्य "अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख" होना चाहिएi

उपयोगितावादी लोग व्यक्तिगत स्वतंत्रता के प्रबल समर्थक है और व्यक्ति को अधिकतम संभव स्वतंत्र प्रदान करना चाहते हैंiउनके अनुसार व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर सिर्फ एक सीमा होनी चाहिए और वह सीमा है सार्वजनिक शांति और व्यवस्था कीiअर्थात समाज में व्यक्तियों को सार्वजनिक शांति और व्यवस्था को बनाए रखने में अधिकतम सत्ता का उपभोग करने का अधिकार हैi अतः वे हर तरफ के

अधिनायकवाद और निरंकुशतावाद के विरोधी हैं और उसका सभी संभव उपायो से उन्मूलन करना अपना पवित्र कर्तव्य समझते हैंi

व्यक्तिगत अधिकारों और स्वतंत्रा के समर्थक होते हुए भी उपयोगितावादी व्यक्ति कल्याण के लिए राज्य और समाज को अनिवार्य मानते हैं क्योंकि उनकी मान्यता है ,क्योंकि व्यक्ति अलग -अलग और दूसरों से पूर्ण स्वतंत्र रहकर ना तो अपना विकास कर सकता है और ना आनंद का अनुभवiउसका सुख राज्य के अस्तित्व पर निर्भर करता हैi दूसरे शब्दों में उनकी यह मान्यता है कि राज्य रुपी रक्षा भवन के भीतर रहकर ही व्यक्ति अपने आप को सुरक्षित अनुभव कर सकता है जो कि उसके आनंदानुभव की पहली आवश्यकता है, लेकिन उनका राज्य अनिवार्य रूप से निरंकुश नहीं बल्कि लोकतंत्रात्मक तथा व्यक्ति के अधिकारों का सम्मान करने वाला औरलोककल्याणकारी नीतियों के अनुसार अपने आपका संचालन करने वाला हैiउपयोगितावादियों के अपने इस विचार को संघवाद का नाम दिया है जो व्यक्ति को व्यक्तिवादी होते हुए भी समाजिक बनाता है और उसे विकास और आनंद उपभोग के पथ पर आगे बढ़ाता हैi

इसी तरह उपयोगितावादी मनोविज्ञान ,कानून, अर्थशास्त्र और राजनीति से घनिष्ठ रूप से संबंधित हैiमनोविज्ञान के अनुसार वे यह प्रतिपादित करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति का चरित्र वैसा ही होता है जैसे समाज में वह रहता हैiमनोविज्ञान के आधार पर ही वह यह भी बतलाते हैं कि मनुष्य मुख्यतः सुख पाने और दुख से मुक्त होने के उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही अपने सारे कार्य करता हैiसाथ ही वे यह भी सिद्ध करते हैं कि यद्यपि मनुष्य के समस्त कार्यों का एकमात्र उद्देश्य सुख की प्राप्ति है, किंतु सुख से मतलब व्यक्ति के अपने ही सुख में नहीं हैiवह सब की भलाई में भी अपने सुख का अनुभव करता हैi अतः उपयोगितावादियों का आदर्श ऐसे समाज का निर्माण करना है जिसमें अधिक-से-अधिक व्यक्ति अधिक से अधिक सुख का भोग करते होi

मनोविज्ञान के आधार पर ही उपयोगितावादी यह भी सिद्ध करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति सुख की आकांक्षा और दुःख से मुक्ति की कामना करता हैi अतः राज्य को इसी आधार और उद्देश्य के अनुसार अपने कानूनों का निर्माण करना चाहिएiअर्थात राज्य के कानूनों का उद्देश अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख होना चाहिएiऐसे कानूनों को ही लोक-कल्याणकारी कानूनों की संज्ञा दी जा सकती है, क्योंकि वे ही जनता के दुखों का निवारण कर उसके जीवन को सुखी बनाने का सामर्थ रखते हैंi

इस प्रकार हम देखते हैं कि"उपयोगितावादी विचारधारा अति मानवीय और व्यावहारिक हैi वह सिर्फ एक ऐसी नैतिक विचारधारा ही नहीं है जो वैज्ञानिक होने की मान्यता प्राप्त करने की आकांक्षी हैiबल्कि वह एक ऐसी विचारधारा भी है जो राजनीति के क्षेत्र में प्रभावपूर्ण होकर राज्य के नियमों के माध्यम से अपने को साकार करना चाहती हैi"

संख्या में कम लेकिन प्रभाव में अधिक होने के कारण इंग्लैंड तथा अन्य देशों में उपयोगितावादियों की प्रेरणा से बहुत से सुधार आंदोलन संपन्न हुएi**प्रोफेसर डेविडसन** का कहना है कि "इसने राजनीति, सामाजिक सुधार और लाभकारी विधि निर्माण में एक बड़ी सीमा तक सक्रिय अभिरुचि को जागृत किया, जिसके बारे में इसके पूर्व कभी सोचा तक नहीं गयाiफलतः उपयोगितावादी विचारको का अपने युग में चिंतन पर गहरा प्रभाव पड़ाi" उपयोगितावाद के प्रमुख विचारक **जेरेमी बेंथम**,**जेम्स मिल,जॉन स्टुअर्ट मिल** और **हरबर्ट स्पेंसर** हैi

1.1.6. जेरेमी बेन्थम : जीवन परिचय

जेरेमी बेंथम का जन्म 1748 में लंदन के एक प्रतिष्ठित वकील परिवार में हुआ थाi उसके पिता और दादा उस समय के श्रेष्ठ कानूनविद थेiउनके पिता **जिरमिह बेंथम** की आकांक्षा थी कि उनका पुत्र भी एक नामी वकील बनेiबेंथम अलौकिक प्रतिभा का धनी बालक था इसलिए वह 3 वर्ष की आयु में ही लैटिन तथा 4 वर्ष की आयु में फ्रेंच पढ़ने लगाiउसने 13 वर्ष की आयु में मैट्रिक तथा 15 वर्ष की आयु में ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से स्नातक परीक्षा पास कर लीiइसके बाद उसने इसने "लिंकंस इन" में कानूनशास्त्र का अध्ययन करने के लिए प्रवेश लियाiसन 1768 में किताबों की एक दुकान में **प्रीस्टले**की एक पुस्तिका 'शासन पर निबंध' मिली जिसमें उसे एक पृष्ठ पर हचेसन की पुस्तक से उद्धृत वाक्यांश **अधिकतम संख्या काअधिकतम सुख** मिलाiइसे पढ़कर व आनंद विभोर हो उठा जैसे उसे कोई मणि मिल गई होi बेंथम खुशी से नाच उठा, मानो उसे ईश्वर का संदेश मिल गया था या उसने कोई महान खोज कर लीiइस वाक्यांश में जो अर्थ छिपा था वह बेंथम की संपूर्ण राजनीतिक विचारधारा का आधार एवं आदर्श बनाi

लिंकन्स इन में बेन्थम ने अपना अधिकांश समय विधि शास्त्र के अध्ययन में लगायाiइन्हीं दिनों वह किंग बैच के प्रधान न्यायाधीश लार्ड मैन्सफील्ड के न्यायालय में विधि का व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करने में व्यतीत करता थाiइसी दौरान उसे प्रचलित कानूनों की दुर्बलता, अपूर्णता और अनिश्चितता का पता लगाiउसने देखा की प्रचलित कानून बड़ा क्रूर और पाशविक थाi कानून भंग करने वाले दंड पाने से बच जाते थे और निरपराध दंड पाते थेi बेन्थम को प्रचलित कानून के खोखले पन का जितना अधिक ज्ञान हुआ वह उतनी ही अधिक दृढ़ता से उनके सुधार के लिए संकल्प करने लगाi वकालत करने की अपेक्षा उसने विधियों में संशोधन करने का बीड़ा उठा लियाiजब इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध विधिशास्त्री **ब्लैकस्टोन** ने इंग्लिश कानून टीकाएँ प्रकाशित की तो **ब्लैकस्टोन**द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत की धज्जियां उड़ाते हुए सन 1776 में बेन्थम ने 'शासन पर कुछ विचार'ग्रन्थ प्रकाशित किया जिस पर लेखक का नाम मुद्रित नहीं थाiबेनाम प्रकाशित बेंथम की इसरचना ने विधि शास्त्र के प्रकांड विद्वान ब्लैकस्टोन की आलोचना कर के न्याय क्षेत्र में हलचल मचा दीiयह कल्पना की जाने लगी कि शायद यह आलोचनात्मक कृति **डनिंग, मैन्सफील्ड** या **लार्ड कैमडन**में से किसी की हो सकती हैiजो उस समय विधिशास्त्र के प्रकांड पंडित थेiइस पुस्तक का प्रकाशन बिना लेखकीय नाम के हुआ थाiलेकिन इस पुस्तक की ख्याति के कारण बेंथम का पिता अपने आप को रोक नहीं सका और उसने घूम घूमकर बड़े गर्व के साथ सत्य का प्रचार किया कि पुस्तक उसके पुत्र द्वारा लिखी गई हैi

बेन्थम के पिता को अपने पुत्र की आगाध कानूनी ज्ञान पर गर्व हुआ और उसने यह समझ लिया कि पुत्र को वकालत के पेशे में बांधना व्यर्थ हैiउन्होंने उसके लिए एक सौ पौण्ड की वार्षिक आय की व्यवस्था कर दी ताकि वह आजीविका से चिंता मुक्त होकर चिंतन,सुधार और लेखन के कार्यों में अपने को लगा सकेi

बेन्थम प्रतिदिन नियमित रूप से लिखने वाला असाधारण व्यक्ति था और ज्ञान विज्ञान के सभी क्षेत्रों में उसकी निर्बाध गति थीiउसकी लेखो की पांडुलिपिया जो 148 संदुकों में बंद है, लंदन विश्वविद्यालय और ब्रिटिश म्यूजियम में आज भी सुरक्षित रूप से रखी गई हैiउसके लेखन का क्षेत्र बहुत व्यापक था , लेकिन लेखन के प्रति वह बड़ा लापरवाह भी थाiउसने नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र,अर्थशास्त्र, राजनीति आदि विषयों पर ग्रंथों की रचना कीi सन 1789 में उसकी संस्कृति नैतिकता और विधान निर्माण के सिद्धांत का प्रकाशन हुआ इसमें प्रकट विचारों के कारण व अलौकिक

बुद्धि संपन्न विधान निर्माता समझा जाने लगाउसके कृत्यों और सेवाओं से प्रभावित होकर 1792 में फ्रांस की राष्ट्रीय सभा द्वारा उसे **फ्रेंच नागरिक** का सम्मानजनक उपाधि सेविभूषित किया गयाi लेकिन इंग्लैंड ने उसके विचारों को कोई महत्व प्रदान नहीं कियाiफलतः वह प्रतिक्रियास्वरूप उग्र सुधारवादी बन गया और राजनीति में सक्रिय भाग लेते हुए अपने सुधारों को कार्यान्वित करने के लिए प्रयत्न करने लगाi6 जून, 1832 को 84 वर्ष की आयु में लंदन में उसका निधन हो गयाi

1.1.7. बेन्थम की कृतियाँ

बेंथम अपने समय का महानतम लेखक थाiउसमें नियमित रूप से लिखने की असाधारण प्रतिभा थीiउसके द्वारा लिखे गए पृष्ठों की संख्या एक लाख से भी अधिक हैiउसका कानून तर्कशास्त्र,नीतिशास्त्र आदि विषयों पर लिखा, लेकिन एक भी ग्रंथ को पूरा नहीं कियाiवह एक विषय पर लिखना शुरू कर देता लेकिन उससे उठने वाले जिज्ञासा को शांत करने के लिए पहली पुस्तक को अधूरी छोड़कर दूसरी पुस्तक लिखना शुरु कर देताi अतः बेन्थम की अधिकांश कृतियां स्फुट विचार मात्र थे जिन्हें **बोरिंग**नामक निष्ठावान शिष्य ने 11 खंडों में प्रकाशित कियाi बेन्थम की प्रमुख कृतियां निम्नलिखित है-

- फ्रेगमेंट्स आन गवर्नमेंट, 1776
- एन इंट्रोडक्शन टू दी मारल्स एण्ड लेजिसलेशन 1789
- एमेनिसिपेट योर कॉलोनीज, 1783
- प्रिंसिपल ऑफ इंटरनेशनल लॉ
- डिसकोर्सेज ऑन सिविल एंड पैनल लेजिसलेशन 1802
- ए थ्योरीआफ पनिशमेंट एंड रीवार्ड्स,1811
- केसिज्म आफ पार्लियामेंट्री रिफॉर्म्स ,1809

उपयोगितावादी चिंतन की सामान्य रूपरेखा उसकी प्रारंभिक रचना **फ्रेगमेंट्स ऑन गवर्नमेंट** पर मिलती है इसमें ब्लैकस्टोन की **कमेंट्रीज**की आलोचना की गई है और इस आलोचना के माध्यम से संपूर्ण विधिक व्यवसाय तथा इंग्लैंड के शासन के संबंध में **व्हिग** विचारधारा की आलोचना की गई हैi **फ्रेगमेंट्स ऑनगवर्नमेंट** ग्रंथ मुख्य रूप से आलोचनात्मक था,लेकिन बेन्थम ने एक अन्य प्रमुख ग्रंथ 'एन इंट्रोडक्शन टू दी मारल्स एण्ड लेजिसलेशन' में पुननिर्माण की कोशिश की हैiइस ग्रंथ में **हल्वेटीयस**द्वारा प्रतिपादित शैली पर मनोविज्ञान, नीतिशास्त्र को संयुक्त किया गयाiबेन्थम का कहना था कि सुख और दुःख ना केवल आलोचनात्मक न्यायशास्त्र के लिए आवश्यक मूल्य का मानक प्रदान करते हैं बल्कि वे मानव आचरण की उन कारणों को निर्धारित करते हैं जिनके द्वारा कुशल विधायक मानवीय व्यवहार पर नियंत्रण रख सकता है और उसे दिशा दे सकता हैi

1.1.8. बेंथम का उपयोगितावाद

उपयोगितावाद बेन्थम की समूची विचारधारा तथा चिंतन की आधारशिला हैiयह सुखवाद पर आधारित एक मनोवैज्ञानिक तथा सुधारवादी विचारधारा है जिसका प्रमुख केंद्र इंग्लैंड थाiबेंथम का उपयोगितावाद विचारों को निम्न तरह से समझा जा सकता है-

1.1.8.1. उपयोगिता का अर्थ

बेन्थम के अनुसार उपयोगिता के सिद्धांत का अर्थ उस सिद्धांत से है जो प्रत्येक कार्यवाही को, चाहे वह जो भी क्यों ना हो ऐसी धारणा के आधार पर स्वीकार या अस्वीकार करता है जिससे ऐसा लगता है कि वैचारिक पक्ष के हित में या तो अभिवृद्धि कर रहा है या ह्रास कर रहा हैiइस को दूसरे शब्दों में सुख की अभिवृद्धि या ह्रास का सिद्धांत कह सकते हैंiयह प्रत्येक कृत्य पर लागू होता है, केवल व्यक्ति के निजी कृत्यो परही नहीं सरकार के क्रियाकलापों पर भी समान रूप से लागू होता हैi

उपयोगिता की परिभाषा करते हुए बेंथम ने लिखा है कि "उपयोगिता किसी वस्तु का वह गुण है जिसके द्वारा व किसी ऐसे पक्ष के लिए लाभ,सुविधा,सुख, अच्छाई या कल्याण का सृजन करती है या ऐसे पक्ष के विरुद्ध होने वाले छल,पीड़ा बुराई या अहित को रोकने का कार्य करती है जिसके हित के बारे में विचार किया जा रहा हैi"

1.1.8.2. नैतिकता की परम्परागत धारणाओं का खंडन

बेंथम ने तत्कालीन समय में प्रचलित नैतिकता की सभी धारणाओं का खंडन किया और उपयोगिता को नैतिकता तथा मानवीय जीवन का आधार बनायाiबेंथम के समय में नैतिकता के विषय में विभिन्न विचार प्रचलित थेiप्रायः लोग ईश्वर की इच्छा को नैतिकता का आधार मानते थे और उनका कहना था कि धर्मशास्त्रों से ईश्वर की इच्छा का ज्ञान होता हैiइसलिए उनका कहना था कि जो कुछ ईश्वर की इच्छा अर्थात धर्मशास्त्रों के अनुकूल है ,वह नैतिक है और जो कुछ उसके विपरीत है , वह अनैतिक और पापमूलक हैiइसके अतिरिक्त नैतिकता के संबंध में प्राकृतिक विधि की धारणा प्रचलित थी और दार्शनिक मनुष्य के अंतःकरण को नैतिकता का स्रोत मानते थेi बेन्थम इन सभी को स्वीकार करते हुए कहता है कि "ईश्वरीय इच्छा ,प्राकृतिक विधि और अंतःकरण यह सब कुछ व्यैक्तिक या आत्मगत कल्पनाएं मात्र हैं और मनुष्य को जो कुछ अच्छा लगता है, उसी को ईश्वरीय इच्छा, प्राकृतिक विधि या अंतरात्मा के अनुकूल कह देता हैi "ईश्वरीय इच्छा ,प्राकृतिक विधि या अंतरात्मा के संबंध में प्रमाणिक रुप से हमारे द्वारा कुछ भी नहीं कहा जा सकता ,इसलिए यह धारणा निरर्थक हैi" नैतिकता की इन परंपरागत धारणाओं के स्थान पर बेन्थम सुखवाद में विश्वास करता है और यह मानता है कि सुख तथा दुःख अथवा प्रसन्नता और पीड़ा मनुष्य के दो सार्वभौम शासक हैi

1.1.8.3. प्रकृति ने मनुष्य को दो सत्ताधारी स्वामियों के अधीन रखा है

बेंथम के अनुसार प्रकृति मनुष्य को आनंद और पीड़ा नामक दो सर्वोच्च प्रभुओं के शासन में रखा हैiहम जो कुछ भी करते हैं जो कुछ भी करते हैं, और जो कुछ भी कहते हैं और जो कुछ भी सोचते है सबके हमअधीन हैi बेंथम के शब्दों में,"प्रकृति ने मानव समाज को दो सर्वाधिकार संपन्न स्वामियों सुख और दुःख के आधिपत्य में रख दिया हैi इन स्वामियों इंसानों का यह कर्तव्य है कि वे हमें बताएं कि हमें क्या करना चाहिए तथा निर्णय करें कि हम क्या कर सकते हैंi"

1.1.8.4. उपयोगिता का सिद्धांत सुख की प्राप्ति और दुःख के निवारण का सिद्धांत है

बेंथम का उपयोगितावाद का आधारशिला सुख और दुःख की मात्रा के ऊपर हैi बेन्थम के मत में जो वस्तु सुख की अनुभूति देती है वह अच्छी है ,ठीक और उपयोगी हैi जिस कार्य में मानव सुख में वृद्धि होती है वही कार उपयोगी और उचित है और जिस कार्य से मानव को दुःख प्राप्त होता है वह कार्य अनुपयोगी और अनुचित हैiमानव के समस्त कार्यों की कसौटी उपयोगिता हैiबेंथम के शब्दों में,"उपयोगिता के सिद्धांत से मेरा अर्थ उससे उस सिद्धांत से है जिससे संबंधित व्यक्ति की प्रसन्नता में वृद्धि या कमी होती है और जिसके आधार पर वह प्रत्येक कार्य को या तो उचित ठहराता है या अनुचित

या दूसरे शब्दों में जिससे सुख मिलता है या सुख नष्ट होता हैiमैं यह बात हर कार्य के लिए कहता हूं इसलिए मेरी यह बात किसी एक व्यक्ति पर नहीं बल्कि हर सरकारी कार्य पर लागू होती हैi" इस प्रकार बेंथम के अनुसार किसी वस्तु की उपयोगिता का एकमात्र मापदंड है यह है कि वह कहां तक सुख की वृद्धि करती और कहां तक दुःख को कम करती हैi

1.1.8.5. सुख-दुःख का वर्गीकरण

सुख-दुःख के स्वरूप को समझाने के लिए बेंथम उन्हें दो भागों में -सामान्य और जटिल में विभाजित करता हैiउसने सामान्य सुख के 14 और सामान्य दुःख के 12 भेद बताए हैं ,जो निम्न प्रकार है-

सामान्य सुख

- इंद्रिय सुख
- वैभव सुख
- कौशल का सुख
- मित्रता का सुख
- यश का सुख
- धार्मिक सुख
- दया का सुख
- निर्दयता का सुख
- स्मृति सुख
- आशा का सुख
- संपर्क या मिलन का सुख
- सहायता का सुख

सामान्य दुःख

- दरिद्रता
- भावना
- हिचकिचाहट
- शत्रुता
- अपयश
- धार्मिकता
- दया
- निर्दयता
- स्मृति
- कल्पना
- आशा

- संपर्क

सामान्यता सुख दुःख के इस वर्गीकरण की प्रस्तुत करने के पश्चात बेन्थम यह भी कहता है कि इनके सम्मिश्रण से विविध प्रकार के जटिल सुख दुःख पैदा होते हैंi

1.1.8.6. सुख-दुःख के निर्धारक तत्व

बेन्थम के अनुसार मनुष्य एक भावनात्मक प्राणी होता हैiअतः प्रत्येक मनुष्य की भावना जितनी सघन होती है उतनी ही सुख या दुःख को ग्रहण तथा अनुभव करने की उसकी क्षमता होती है अर्थात हर मनुष्य की सुख-दुःख का अनुभव करने की सामर्थ्य भिन्न -भिन्न प्रकार की होती हैiअतः किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह द्वारा अनुभव की जाने वाली सुख-दुःख की मात्रा इनके ग्रहण या अनुभव करने की सामर्थ्य को सुनिश्चित करने वाले तत्वों पर निर्भर हैi यह 32 तत्व हैi इनमें से प्रमुख है–

- स्वास्थ्य
- शक्ति
- कठोरता
- शारीरिक कमजोरी
- मन की चंचलता
- मनोवृत्ति
- अनुभव ग्रहण करने की शक्ति
- नैतिक पक्षपात
- धार्मिक पक्षपात
- लिंग
- शिक्षा
- जलवायु
- वंश

बेन्थम के अनुसार सुख-दुःख की मात्रा की गणना करते हुए इन्हें ध्यान में रखना चाहिएi

1.1.8.7. सुख-दुःख के स्रोत

सुख-दुःख प्राप्ति के चार स्रोत बताता हैiयह चार स्रोत है –भौतिक, नैतिक, राजनीतिक तथा धार्मिकiप्रकृति से प्राप्त होने वाले सुख भौतिक सुख कहलाते हैंi जब कोई सुख या दुःख नैतिक दृष्टि से अच्छा या बुरा काम करने पर होता है उसे नैतिक सुख या दुःख कहते हैंiजब कोई सुख या दुःख राज्य के सम्पर्क पर या कानून के कारण मिलता है तो यह राजनीतिक सुख-दुःख कहलाता हैiधार्मिक मान्यताओं के अनुसार या विरुद्ध काम करने पर जो सुख-दुःख मिलता है उसका स्रोत धर्म होता हैi इन सुख-दुःख के स्रोतों को मकान का उदाहरण देते हुए बेन्थम बताता है –"अगर किसी मनुष्य का मकान अपनी असावधानी से जलता है तो राजनीतिक दण्ड हैi अगर वह आग लगने पर सहायता ना देने वाले साथियों और पड़ोसियों की दुर्भावना से जलता है तो यह जनमत का दंड है और अगर किसी दैवी प्रकोप से भस्म हुआ है तो इसे धार्मिक दंड माना जाएगाi"

1.1.8.8. सुख की गणना -सुखवादी मापक यंत्र

उपयोगिता का निर्धारण करने में बेन्थम सुख-दुःख की मात्रा पर जोर देता हैiयदि एक कार्य से सुख की अधिक मात्रा उत्पन्न होती है तो वह अधिक अच्छा सुख है ,लेकिन समस्या यह है कि सुख-दुःख का निश्चय कैसे किया जाए ? इसकी मात्रा का निर्धारण करने के लिए बेंथम ने **सुखवादी मापक यंत्र** का आविष्कार किया जिसके अनुसार सुखो और दुःखो को तुलनात्मक ढंग से कुछ कसौटीयों पर कसा जाता है और उनकी मात्रा को नापा जाता हैi इसके आधार पर विभिन्न प्रकार के कार्यों या वस्तुओं से प्राप्त होने वाले सुखो का मूल्य ज्ञात किया जा सकता हैi जिसके निमित बेन्थम ने किसी कार्य के संबंध में अनेक परिस्थितियों का उल्लेख किया है जिनके आधार पर सुख या दुःख के कम या अधिक होने का ज्ञान किया जा सकता हैiये कसौटियां है-

- तीव्रता
- स्थिरता
- निश्चितता
- निकटता या दूरता
- जनन-शक्ति
- विशुद्धता
- विस्तार

बेन्थम के विचारों को स्पष्ट करते हुए **वेपर** ने लिखा है , "जब हम सुखों की गणना करते हैं तो हमें उनकी तीव्रता और स्थिरता को ध्यान में रखना चाहिए, हमें उनके निश्चितता और अनिश्चितता का ध्यान रखना चाहिए क्योंकि वह सुख जो अधिक निश्चित होता है उस सुख की तुलना में अधिक होता है जो सुख कम निश्चित होता हैiउसकी निकटता एवं दूरी भी हमारी गणना में आनी चाहिए, वह सुख जो अधिक निकट होता है या अधिक सरलता से प्राप्त होता है उस सुख से अधिक होता है जो दूर होता है और जिसे पाने में भी कठिनाई होती हैi हमें उनकी जनन शक्ति और उनकी विशुद्धता पर भी विचार करना चाहिए क्योंकि ऐसा सुख अधिक आनंददायक होता है जिसके पीछे उसी प्रकार के अन्य सुख भी जुड़े होi"

1.1.8.9. सुख की मात्रा समान हो तो बच्चो का खेल हो या कविता ,एक ही बात है

बेन्थम दो सुखो में केवल संख्यात्मक श्रेष्ठता का विधान करता है अर्थात गुण की दृष्टि से सभी सुख समान हैiयदि उनमें कोई अंतर है तो वह अधिक और कम का अंतर हैiउसके अनुसार, गणना करने से जो भी सुख मात्रा में अधिक हो उसे अपनाना चाहिएiसुख की मात्रा समान होती है खेलने,पढ़ने और मनोरंजन से सामान सुख मिलते हैंi बेन्थम के शब्दों में," सुख की मात्रा समान होने पर पुशपिन (बच्चों का खेल) और कविता का रसास्वादन दोनों एक ही कोटि के आनंद हैi" दुःखो में भी बेन्थम गुणात्मक भेद नहीं करता हैi उसी के शब्दों में,"एक कील के चुभने से उतनी ही पीड़ा होती है जितनी एक कविता सुनने सेi" वह यह भी कहता है,"अधिकतम सुख की गणना करने में प्रत्येक व्यक्ति एक माना जाएगा और किसी को भी एक से अधिक नहीं माना जाएगाi"

1.1.8.10. राज्य का उद्देश्य अधिकतम लोगो का अधिकतम सुख

बेन्थम के अनुसार राज्य के आदेशों का पालन इसलिए होता है कि यह उपयोगी है और सामान्य हित तथा सुख को बढ़ाने वाला हैiराज्य के नियमों की आज्ञा-पालन से होने वाले लाभ आज्ञा भंग के दुष्प्रभावों से अधिक हैi बेन्थम की दृष्टि में राज्य का आधार उपयोगिता से उत्पन्न होने वाली आज्ञा-

पालन की आदत हैiइस प्रकार राजनीति के क्षेत्र में उपयोगिता का सिद्धांत कानून प्रदान करने वालों का तथा शासन का मार्गदर्शन करता हैi

1.1.8.11. कानून का ध्येय अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख

बेन्थम के अनुसार, शासन और कानून की उत्पत्ति और अस्तित्व उसकी सामान्य उपयोगिता पर निर्भर है और उसका पालन भी लोग इसीलिए करते हैं कि वह उपयोगी हैiअतः वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि कानून निर्माण भी उपयोगिता के सिद्धांत के अनुकूल होना चाहिएi यदि राज्य के कानून उपयोगिता की कसौटी पर खरे नहीं उतरे तो उन्हें बदल देना चाहिएi अच्छा कानून वही है जिससे अधिकतम व्यक्ति की अधिकतम भलाई होती होi

1.1.9. उपयोगिता वाद की आलोचना

बेन्थम को उपयोगितावाद का जनक कहा जाता है ,लेकिन उसके उप्योगितावादी विचार विरोधाभास एवं भ्रम का पिटारा हैiउसके उपयोगितावाद की निम्न आधार पर आलोचना की जाती है -

- सुखवादी मान्यता
- अधिकतम संख्या का अधिकतम सुख असंगत
- सुख भौतिक ना होकर मानसिक होता है
- सुखो के गुणात्मक भेद की उपेक्षा
- सुखो को माप नहीं जा सकता
- नैतिकता की उपेक्षा
- व्यक्ति और समाज की उपयोगिता के बीच सामंजस्य का अभाव
- बहुमत के अत्याचार को प्रोत्साहन
- साध्य से साधन का मूल्यांकन करने वाला सिद्धांत
- अमनोवैज्ञानिक सिद्धांत
- मानव प्रकृति का अत्यधिक सरलीकरण
- उपयोगिता सिद्धांत राजनीतिक दर्शन ना होकर शासन का दर्शन है
- मौलिकता का भाव

1.1.10. राज्य की उत्पत्ति संबंधी बेन्थम का विचार

राज्य की उत्पत्ति के बारे में बेन्थम ने विचार किया थाi बेन्थम से पूर्व राज्य के उत्पत्ति के बारे में सामाजिक संविदा सिद्धांत का बोलबाला थाiबेन्थम ने संविदा सिद्धांत को अस्वीकार करते हुए उसका विरोध कियाiउसने कहा कि ऐसा कोई भी समझौता नहीं हुआ था और यदि ऐसा हुआ भी हो तो वर्तमान पीढ़ी उसे मानने के लिए बाध्य नहीं की जा सकतीiसंविदा सिद्धांत से अलविदा मांगते हुए स्वयं बेन्थम ने लिखा है, “ मैंने प्राथमिक संविदा छोड़ दी है और इसमें मिथ्या प्रलाप को आवश्यकता वाले उन व्यक्तियों के मनोरंजन के लिए छोड़ दिया हैi” इस प्रकार उसने ब्लैकस्टोन के सिद्धांत को ध्वस्त कर दिया कि विधि का मूल सामाजिक संविदा हैi

राज्य के उत्पति के संबंध में संविदा सिद्धांत का खंडन करने के बाद बेन्थम ने इस पर विचार किया कि राज्य की उत्पत्ति कैसे हुई ? आदर्शवादियों के इस मत से सहमत नहीं है कि हम राज्य की आज्ञा का पालन इसलिए करते हैं क्योंकिराज्य नैतिक एवं श्रेष्ठतम संस्था है और राज्य के आदेशों का पालन करना हम अपना नैतिक कर्तव्य मानते हैं या ऐसा करने से हमारा नैतिक विकास होता हैiबेन्थम के अनुसार राज्य की उत्पत्ति का कारण संविदा नहीं, बल्कि आज्ञा पालन की आदत हैi लोगों में आज्ञा पालन की आदत इसलिए आती है क्योंकि वह उपयोगी है और सामान्य सुख तथा हित को बढ़ाने वाली हैi बेन्थम के शब्दों में,"राज्य की आज्ञा पालन से होने वाली हानि अवज्ञा से होने वाली हानि से कम हैi"
इस प्रकार बेन्थम का उपयोगिता सिद्धांत ही उसके राज्य की उत्पत्ति संबंधी विचारों का आधार हैiजब व्यक्तियों की एक संख्या आदतन एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह की आज्ञा का पालन करती है तो व्यक्ति राजनीतिक समाज (राज्य) की रचना करते हैंiदूसरे शब्दों में , राज्य व्यक्तियों का एक योगमात्र है और उसका हित तो उसके घटकों के हितों के योग के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैi

1.1.11. राज्य के कार्य

राज्य का कानून निर्माण की शक्ति उसकी संप्रभुता हैiव्यक्तियों को कानून निर्माण का अधिकार नहीं है क्योंकि ऐसा होने पर सभी व्यक्ति अपने-अपने स्वार्थ में कानून बनाने लगेंगेiराज्य लोक कल्याणकारी संस्था होने के कारण सार्वजनिक हितो एवं सामान्य सुख को ध्यान में रखकर कानूनों का निर्माण करता हैiबेंथम का यह भी कहना है कि राज्य को अत्यधिक मात्रा में कानूनों का निर्माण नहीं करना चाहिएi

बेंथम राज्य को कानून निर्माण करने वाली संस्था होने के कारण **संप्रभु** मानता है लेकिन उसकी शक्तियों को असीमित नहीं मानताiसंप्रभु पर व उपयोगिता का प्रतिबंध भी लगाता हैiयदि नागरिक समाज का विशाल भाग किसी विषय पर कानून बनाने का व्यापक विरोध करें तो संप्रभु का कर्तव्य है कि उस विषय पर कानून कदापि ना बनाएंi कानून का प्रण उसकी उपयोगिता आज्ञा पालन में ही हैiयदि लोगों के मन में कानूनों के प्रति सम्मान नहीं होगा या लोग ऐसा मान लेंगे कि कोई कानून उनके सुख में वृद्धि नहीं करेगा या दुःखों को बढ़ाएगा तो उसका पालन नहीं करेंगे-शासकों को यह बात ध्यान में रखनी चाहिएiयदि लोगों को लगे कि कोई कानून के दुःखों को बढ़ाएगा या सुखों को कम करेगा तो ऐसे कानून का विरोध करना चाहिएiबेंथम के शब्दों में अवज्ञा की उपयोगिता आज्ञा पालन से अधिक हो तो ऐसे संप्रभु की अवज्ञा की उपयोगिता प्रत्येक नागरिक का मौलिक अधिकार एवं कर्तव्य दोनों हैi

राज्य के कार्यों के संबंध में बेंथम ने एक और महत्वपूर्ण तथ्य का प्रतिपादन किया हैi राज्य को सदैव इस बात का प्रयास करना चाहिए कि ना केवल वह स्वयं बल्कि नागरिक भी सार्वजनिक कल्याण की पूर्ति के लिए कार्य करेंiनागरिक द्वारा स्वेच्छा एवं प्रसन्नता के साथ प्रकार के कार्यों का संपादन करने से समाज के ताने-बाने को सबल बनाने में सहयोग मिलेगाi इस प्रकार के कार्यों का संपादन करके राज्य विभिन्न प्रकार के धार्मिक विद्वेष तथा अन्य प्रकार के विघटन कारी तत्वों से छुटकारा पा सकता है जो नागरिक समाज को बांटने का काम करता हैiबेंथम का आग्रह समाज के प्रत्येक व्यक्ति को लोककल्याण के कार्यों से जोड़ने के प्रति हैiमनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो अपने सुख के लिए दूसरों पर निर्भर हैiयदि कोई मनुष्य दूसरों के कल्याण से जुड़े हुए कार्यों को नहीं करेगा तो अन्य व्यक्ति भी उसके कल्याण /हित /सुख से जुड़े हुए कार्यों को नहीं करेंगेiइसका परिणाम यह होगा कि समाज व्यक्तियों के पृथक-पृथक दीप समूहो की भांति प्रतीत होगा, कोई संगठित और सभ्य इकाई नहींi ऐसा समाज न तो दीर्घजीवी होगा और ना ही

सुखीiसमाज की जीवंतता और निरंतर अस्तित्व में बने रहने के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी क्षमता एवं योग्यता के अनुसार लोककल्याण से जुड़े कार्यों को करेंiसमाज का निर्माण इसी भावना के कारण होता हैiराज्य का दायित्व है कि लोककल्याण से जुड़े कार्यों को करने में व्यक्तियों को कोई भी व्यवधान आने पर उसका निराकरण करेंiयदि कोई व्यक्ति इस प्रकार के कार्यों को करने में अवरोध उत्पन्न करता है तो राज्य उसे दंडित करेंi दण्ड व्यवस्था सुनिश्चित करने एवं लोककल्याण के कार्य निष्कंटक होते रहने के लिए ही नागरिक गणराज्य को कर देते हैंiजो राज्य नागरिकों को लोककल्याण के कार्यों की ओर प्रेरित करता है, वह लंबे समय तक अपना अस्तित्व बनाए रखने में सफल रहता हैi

1.1.12. कानून संबंधी विचार

किसी भी देश में कानून और संस्थाओं को विद्यमान समय की आवश्यकताओं का प्रतिनिधित्व करना चाहिएiइनका मूल्यांकन अतीत के संदर्भ में नहीं अपितु उनकी वर्तमान उपादेयता के दृष्टिकोण से किया जाता हैiव्यक्तिवादियों की ही भांति बेन्थम यह मानता है कि कानून हमारी स्वतंत्रता को कम (सुख) करते हैं लेकिन कानून हमारी मनमानी स्वतंत्रा को कम करके हमें **सुख** प्रदान करते हैं और सुख ही एकमात्र कसौटी है जिस पर स्वतंत्रा को कसा जाना चाहिएiराज्य का लक्ष्य है अधिकतम सुखन की अधिकतम स्वतंत्रताiबेन्थम के दर्शन में कानून एवं स्वतंत्रता के संबंध पर**सोरेल** का कथन है कि "कानून का मुख्य लक्ष्य सुरक्षा है और सुरक्षा के सिद्धांत का आशय उन सभी आशाओं को बनाए रखना है जिन्हें स्वयं कानून उत्पन्न करता हैiसुरक्षा सामाजिक एवं सुखी जीवन की एक आवश्यकता है जबकि समानता एक प्रकार की विलासिता है जिसे कानून केवल उसी सीमा तक ला सकता है जहां तक उसका सुरक्षा से कोई विरोध नहीं होiजहां तक स्वतंत्रता का संबंध है ,वह कानून का कोई उद्देश्य नहीं है, यह तो सुरक्षा की एक शाखा मात्र है और यह एक ऐसी शाखा है जिसमें कानून काट छांट किए बिना नहीं रह सकताi" बेंथम ने कानून की तुलना दवाओं से की हैiजिस प्रकार दवा रोग का निदान तो करती है लेकिन अत्यधिक दवाओं के सेवन स्वास्थ्य को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार कानून हमारे सुख को संरक्षित रखने का माध्यम है लेकिन यदि राज्य के द्वारा अत्यधिक मात्रा में कानून बनाए जाने लगेंगे इससे व्यक्तियों की स्वतंत्रता सीमित/संकुचित हो जाने का खतरा उत्पन्न हो जाएगाiऐसी दशा में व्यक्तियों के दुःख बढ़ जाएंगेi यदि राज्य ऐसा करता है तो उसकी उपयोगिता पर भी प्रश्नचिन्ह लग जाएगा -ऐसा बेंथम का मत हैi उसके अनुसार राज्य कानून का निर्माण तभी करें जब ऐसा करने से सामान्य सुख में वृद्धि होती होiराज्य को अनावश्यक कानून-निर्माण से बचना चाहिएi

कानून का लक्ष्य होना चाहिए " सर्वहित की भावना को इस प्रकार परिभाषित-अनुशासित करना, जिससे कि वह अपनी इच्छा के विरुद्ध भी समाज के अधिकतम सुख में योग दे सकेiबेन्थम का विश्वास था कि कानून में निहित 'अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख' का सिद्धांत एक कुशल विधायक के हाथों में एक प्रकार का सार्वभौम साधन देता हैiउसके द्वारा वह "विवेक तथा विधि के हाथों सुख के वस्त्र बना सकता हैi"

बेन्थम का मत है कि कानून का निर्माण करते समय कानून निर्माताओं को चार प्रकार के लक्ष्य ध्यान में रखनी चाहिए-**आजीविका**,**समानता**,**सुरक्षा** और **पर्याप्तता**i

आजीविका

आजीविका जीवन का आधार है और इसकी सहायता से दुःख को रोका जा सकता हैiजीविका से संबंधित संसाधनों की पर्याप्तता हमारे सुखों को बढ़ाने का काम करती हैiराज्य का दायित्व है कि कानून बनाकर व्यक्ति को यह विश्वास दिलाए कि उसे उसके श्रम का पूरा मूल्य प्राप्त होगाiइससे नागरिक ना केवल श्रम करने की ओर अग्रसर होंगे, बल्कि नित नए संसाधनों की खोज कर जीविका को सुरक्षित रखने का प्रयास भी करेंगेi बेन्थम सबको काम उपलब्ध कराने हेतु राज्य को औद्योगिकरण करने की सलाह भी देता हैi

सुरक्षा

सुरक्षा जीवन जीने एवं जीवन को कायम रखने की प्राथमिक आवश्यकता हैiराज्य का दायित्व है कानून के माध्यम से सभी नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करेंiसुरक्षा का संदर्भ बेन्थम की दृष्टि से अत्यंत व्यापक हैiसुरक्षा से उसका तात्पर्य व्यक्ति के शरीर ,संपत्ति ,संसाधन ,शक्ति, सम्मान और जीवन की उत्तम दशाओं की सुरक्षा से हैi

पर्याप्तता

पर्याप्तता का तात्पर्य संसाधनों तक सबकी समान एवं प्रभाव पहुँच से हैi जीवन को संचालित करने के लिए जिन वस्तुओं की आवश्यकता है ,वे सभी को उपलब्ध हो इसका प्रयास राज्य को कानून के माध्यम से करना चाहिएiऐसा ना हो कि संसाधनों पर समाज के थोड़े से ही व्यक्तियों का नियंत्रण हो जाएiराज्य को कानून द्वारा संसाधनों के केंद्रीयकरण को रोकना चाहिए, जिससे कि सभी के जीवन के साथ न्याय हो सकेi

समानता

समानता चार प्रकार की है – नैतिक,बौद्धिक,आर्थिक और राजनीतिकi बेन्थम का मत है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए नैतिकतता एवं बौद्धिकता का स्तर या मात्रा भिन्न-भिन्न होती हैi इसका निर्धारण प्रकृति स्वयं करती हैi इस पर किसी व्यक्ति का नियन्त्रण नहीं होताiअतः राज्य इस प्रकार की असमानताओ को दूर करने के लिए कोई सार्थक कदम नहीं उठा सकताi

1.1.13. बेंथम एक महान सुधारक

बेंथम द्वारा प्रतिपादित प्रमुख सुधार निम्नलिखित है

1.1.13.1. शासन प्रणाली में सुधार

राजनीतिक विचारों की दृष्टि से बेंथम जनतंत्रवादी थाiउपयोगिता के सिद्धांत अनुसार लोकसत्ता और जनतंत्र ही उपयोगी सिद्ध होते हैंiजनतंत्र में ही सबकी स्वार्थ-सिद्धि का सिद्धांत लागू हो सकता है ,राजतंत्र इस दृष्टि से उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकताi इसी प्रकार उपयोगितावादी सिद्धांत के अनुसार अल्पतंत्र भी ठीक नहीं बैठताiवास्तव में जनतंत्र ही 'अधिकतम लोगों के लिए अधिकतम सुख' का साधन बन सकता हैiअपने समकालीन विचारको की भांति ब्रिटिश शासन प्रणाली की अत्यधिक प्रशंसा करने के बजाय बेंथम ने दृढ़ता और इमानदारी के साथ उसकी आलोचना कीiउसने जनतंत्र की सफलता के लिए सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार ,वार्षिक संसद, एक सदनीय व्यवस्थापिका और गुप्त मतदान पर विशेष बल दियाi

बेन्थम ने सार्वभौमिक पुरुष मताधिकार का पुरजोर समर्थन कियाi इसके लिए उसने केवल यह शर्त रखी कि मताधिकार का प्रयोग करने वाला थोड़ा पढ़ा लिखा होiउसने महिला मताधिकार पर इसलिए जोर नहीं दिया क्योंकि उसकी दृष्टि में अभी इंग्लैंड में इस अधिकार के उपभोग का समय नहीं आया थाi
उसने कामन सभा के वार्षिक चुनाव आयोजित कराने पर जोर दियाiउसका यह भी मत था कि संसद के सत्र अल्पकालीन हो ताकि सदस्यों को अधिक समय तक अपने निर्वाचन क्षेत्रों में रहने तथा मतदाताओं से संपर्क स्थापित करने में सुविधा हो सकेiउसका आरोप था कि प्रचलित व्यवस्था के अंतर्गत एक बार निर्वाचन हो जाने के बाद सांसदों का अपने निर्वाचन क्षेत्र से संपर्क टूट जाता है तब सांसद जनता का प्रतिनिधित्व कर के अपने स्वार्थों का प्रतिनिधि बन जाता हैi
बेन्थम के युग में मतदाता स्वतंत्रतापूर्वक अपने मत का प्रयोग करने में डरते थे क्योंकि हाथ उठाकर खुले मतदान की व्यवस्था प्रचलित थीi अतः बेन्थम गुप्त मतदान के पक्ष में थाi इसके अतिरिक्त लार्ड सभा को जो सार्वजनिक हितों के प्रति उदासीन सदन था,भंग कर देने का सुझाव दियाiवस्तुतः वह वार्ड सभा का समर्थक नहीं थाi इसे वह धनिक वर्ग की संस्था मानता थाi वह राजपद के भी विरुद्ध था और अपने समय के अंग्रेजी संविधान को धनिक वर्ग द्वारा प्रभावित राजतंत्र कहा करता थाiउसने स्वतंत्र प्रेस की अवधारणा का भी समर्थन कियाiउसके मत में बिना प्रेस की स्वतंत्रता के सच्चे लोकमत की अभिव्यक्ति असंभव थीi

1.1.13.2. विधि निर्माण के क्षेत्र में सुधार

बेंथम एक महान विधि सुधारक थाiउसने अपनी पुस्तक **प्रिंसिपल ऑफ मॉरल्स एंडलेजिसलेशन** के प्रकाशित होने पर वह विधि निर्माण एवं विधि सुधार के नए पैगंबर बन गएi संसार के विभिन्न देशों के राजनेता व्यवहारिक पथ-प्रदर्शन के लिए उनकी ओर देखने लगेi ब्लैकस्टोन ने अंग्रेजी संविधान को दैवी इच्छा के अनुसार एक क्रमिक स्वभाविक विकास बताते हुए इसकी बड़ी प्रशंसा की थीi बेन्थम ने सिद्ध किया कि , "अंग्रेजी विधि व्यवस्था केवल दुर्बल और गरीबों के सताने वाली निर्लज्ज निरंकुशता थीi यह शिक्षित और शक्ति संपन्न लोगों को सहायता देने की व्यापक योजना थी ताकि ये लोग अज्ञानी और दलित लोगों को दबाए रख सकेi"
बेन्थम के अनुसार विधि निर्माण का उद्देश्य है – आजीविका,पर्याप्तता ,समानता और सुरक्षाi सामान्य अर्थों में जनता का हित संवर्धन ही विधि का उद्देश्य हैiउनका कहना है कि यदि विधियों का पालन कराना है तो यह आवश्यक है कि विधि को जनता का समर्थन प्राप्त होiबेन्थम ने यह अनुभव किया कि तत्कालीन विधियां बहुत अस्त-व्यस्त अवस्था में थी अतः उनका संहिताकरण भी किया जाना चाहिएi विधियो के संहिताबद्ध करने के अलावा उसने अपना ध्यान उनके स्वरूप संगठन की ओर भी दियाi बेन्थम उस अनावश्यक परिभाषिकता और व्यर्थ के शब्दजाल और प्रचलित शब्दावली से चिढ़ते थे जो विधि निर्माताओं को बहुत प्रिय थीiउनका कहना था कि विधियों को सीधे-,सादे आसानी से समझ में आने वाले छोटे-छोटे वाक्य में व्यक्त किया जाना चाहिएiविधियां उन लोगों के लिए सुलभ और सुगम होनी चाहिए जिन पर उनके पालन करने का उत्तरदायित्व हैi

1.1.13.3. दंड व्यवस्था एवं जेल सुधार

बेंथम के काल में फौजदारी कानून अत्यंत कठोर थाiछोटे-छोटे अपराधों के लिए मृत्युदंड की सजा दी जाती थीiबेंथम ने इसका विरोध कियाiउसने कहा कि फौजदारी कानून मनुष्योचित हो तथा अपराध से अधिक कभी भी दण्ड नहीं दिया जाना चाहिएiअपराध का निर्णय आनंद और पीड़ा के मापदंड से करना चाहिएi उसका कहना था कि दंड स्वयं एक बुराई और पीड़ा का कारण हैi दंड केवल उसी समय देना

चाहिए जबकि उससे भी अधिक बड़े कष्ट का निवारण करना होiअधिक दण्ड देने से लाभ के बदले हानि होती हैiउसने दंड के 12 नियम और 12 लक्षण बताएंiबेंथम के अनुसार दण्ड देते समय चार बातों का ध्यान रखना चाहिए –

- अपराध किस प्रकार का है ?
- परिस्थितियां जिनमें अपराध किया गया हैi
- अपराधी का उद्देश्य क्या है ?
- अपराध से किस प्रकार के व्यक्ति को हानि पहुंचती हैi

बेन्थम के मतानुसार दण्ड निष्पक्ष होना चाहिए तथा उसके द्वारा अपराधियों को चेतावनी मिलनी चाहिए अर्थात दंड को सार्वजनिक रूप से दिया जाना चाहिएi वह क्षमा के विरुद्ध थाi

बेन्थम का मत था कि दण्ड से होने वाले परिणामों का अंदाज लगाते समय अपराधी के सुधार का भी ध्यान रखना चाहिएiउसका विश्वास था कि दण्ड-व्यवस्था उचित होने पर अपराधी को सुधारा जा सकता है और उसे पुनः समाज की उपयोगी और सम्मानित सदस्य बनाया जा सकता हैiइसी आधार पर बेन्थम ने अपराधियों के पुनर्वास के लिए अनेक महत्वपूर्ण सुधारों का समर्थन किया था , जैसे कारावास में अपराधियों को औद्योगिक शिक्षा देनाiअपराधियों के दैनिक जीवन को व्यवस्थित करने के लिए भी बेंथम ने की योजना बनाई जिसको उसने **पैनोप्टीकन**नाम दियाi इस योजना के अनुसार कारागार की इमारतें चंद्राकार बनाई जाए जिससे कि जेल का अधिकारी अपने निवास स्थान से जेल के सभी कैदियों पर भली-भांति दृष्टि रख सकेiइस योजना की मुख्य बातें थी - सावधानीपूर्वक निरीक्षण, सहानुभूति पूर्वक अनुशासन तथा उन्नत वातावरणi जेल के समय अपराधियों को प्रारंभिक शिक्षा के साथ-साथ व्यवसाय की भी शिक्षा देनी चाहिएi साथ ही अपराधियों के सुधार हेतु नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा दी जानी चाहिएi इस प्रकार में अच्छे चरित्र का निर्माण हो सकेगा और जेल से छूटने के बाद वे पुनः समाज के स्वस्थ नागरिक बन सकेंगेiयोजना के अनुसार कारावास से छूटने पर अपराधियों को कम-से-कम तब तक के लिए कोई काम भी दिया जाना चाहिए जब तक कि वे जनता का पुनः विश्वास प्राप्त ना कर लेंi

यद्यपि बेंथम द्वारा दिए गए सभी सुझावों को उसके जीवन काल में कार्यान्वित नहीं किया जा सका फिर भी उनके समय से अब तक जो भी कारागार हो उसमें व्यापक सुधार किए गए और औद्योगिक विद्यालय और सुधारशालाओं की स्थापना हुईiउन सबके प्रेरणा उन्हीं से प्राप्त हुई और उन सबका आधार भी सिद्धांत है जिनको बेंथम में प्रतिष्ठित किया थाi

1.1.13.4. शिक्षा योजना में सुधार

विधियों ,दंड व्यवस्था तथा राज्य के विधान ,आदि के लिए ही बेन्थम ने सुधारवादी योजनाएं नहीं बनायी , शिक्षा के क्षेत्र में भी उसने सुधारवादी योजनाएं बनायीi मानव जाति का सुधार करने में शिक्षा की शक्ति पर बेंथम का अटल विश्वास थाiउसकी दो शिक्षा योजनाएं थी - एक गरीब और अनाथ बच्चों के लिए और दूसरी मध्य तथा उच्च वर्ग के बालकों के लिएi प्रथम योजना के अनुसार अनाथ बालकों को चरित्र संबंधित शिक्षा भी दी जानी चाहिए तथा इसके साथ ही उसे कोई उपयोगी कला-कौशल सिखाना चाहिए जिससे कि वे अपनी आजीविका कमाने में समर्थ हो सकेiइसके साथ ही उन्हें बौद्धिक विकास संबंधी शिक्षा भी दी जानी चाहिएiमध्य और उच्च वर्ग के बालकों के लिए केवल बौद्धिक विकास संबंधी शिक्षा दी जानी चाहिए ,धार्मिक या नैतिक शिक्षा नहींi बेन्थम के समय में ग्रीक,लैटिन आदि का अध्ययन कराया जाता था ,लेकिन उसने अन्य उपयोगी विषयों के अध्ययन पर भी जोर दिया वह मॉनिटर पद्धति

का समर्थक थाi इस पद्धति के अनुसार ऊंची कक्षा के अथवा योग्य विद्यार्थी नीचे वाले अथवा कमजोर विद्यार्थियों को पढ़ाते थेi

1.1.13.5. आर्थिक विचार

आर्थिक विचारों की दृष्टि से बेन्थम एडम स्मिथ का अनुनायी था, लेकिन अनेक बातों में उसका एडम स्मिथ से मतभेद थाi वह इस बात से सहमत था कि सरकार को मांग और पूर्ति के नियम में यथासंभव कम से कम हस्तक्षेप करना चाहिए और वह अबाध व्यापार का कट्टर समर्थक थाi उसने अनियंत्रित प्रतियोगिता की प्रशंसा की और एकाधिकारो तथा और अध्युपकारों का विरोध कियाi

उसे उपनिवेशवाद से सहानुभूति नहीं थी उसका विश्वास था कि उपनिवेशो के साथ व्यापार करने के लिए उन पर आधिपत्य कायम रखना आवश्यक नहीं है और उसने बताया कि जो पूंजी औपनिवेशिक व्यापार में लगाई जाती है, यदि उसे अन्यत्र लगाया जाए तो भी उतना ही लाभ होगाiउसने माना कि कुछ देशों पर ब्रिटेन का शासन ऐसा है कि उससे मानव जाति के परम हित की पूर्णता में सहायता मिलती है, लेकिन वह इस बात को स्वीकार नहीं करता था कि उपनिवेश देश के लिए संपत्ति का स्रोत थेi 1828 में उसे कनाडावासियों की ओर से एक याचिका तैयार की जिसमें पूर्ण पृथकत्व की मांग की गयीiसामान्य तौर पर यह कहा जा सकता है कि बेंथम जैसे उपयोगितावादियों को उपनिवेशो के जाने से तनिक भी दुःख ना होगाi

1.1.14. सारांश

बेन्थम के विचारों की कई आधारों पर आलोचना की जाती हैiआलोचकों के अनुसार उसके विचारों में मौलिकता का अभाव है, उसका सुखवादी मापक यंत्र त्रुटिपूर्ण है , वह मूलतः राजनीतक चिंतक ना होकर सुधारक है ,उसने स्वतंत्रता और समानता को उचित महत्व नहीं दियाi**वेपर** ने तो यहां तक कहा की, "बेन्थम एक महान दार्शनिक नहीं था, यद्यपि यह एक विडंबना है कि वह दर्शन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता हैi" **कार्लायल ने** बेंथम के सुखवादी दर्शन को "सूअरों का दर्शन" कहा है ,जिसका अभिप्राय यह है कि सुख तथा आनंद के मध्य बेन्थम स्पष्ट भेद नहीं कर पायाi वेपर के अनुसार बेंथमवाद के राजनीतिक दर्शन को मध्ययुगीन राजनीतिक शब्दावली से मुक्त किया हैiविधिशास्त्र पर बेन्थम के प्रभाव की तुलना आर्थिक चिंतन पर एडम स्मिथ के प्रभाव से की जाती है और उन्हें **विधिशास्त्र का न्यूटन** कहा जाता हैi

बेन्थम के विचारों का प्रभाव से ब्रिटिश राज्य की सीमाओं से बाहर भी फैलने लगाiअपने समय के बौद्धिक दिग्गजों पर भी उसका गहरा प्रभाव पड़ाiजेम्स मिल ,जॉन ऑस्टिन, जॉन स्टुअर्ट मिल उसकी बौद्धिक विरासत हैi"इंग्लैंड में प्रत्यक्षवादी विश्लेषणात्मक न्यायशास्त्र के प्रवर्तक **जॉन ऑस्टिन** अपने नीतिशास्त्रीय दृष्टिकोणों में बेन्थम के अनुनायी थेi" फ्रेंच क्रांति में उसने सक्रिय दिलचस्पी दिखलाई और उसकी विधान संबंधी रचनाओं का 1802 में मिराबू के सचिव ने फ्रेंच भाषा में अनुवाद कियाiफ्रांसिसी सभा की प्रक्रिया बहुत कुछ बेन्थम द्वारा तैयार की गई रूपरेखा पर आधारित थीiमिराब ने अपने भाषणों में उसके अनेक राजनीतिक और विधिक प्रस्तावों को प्रस्तुत किया और 1792 में बेन्थम को फ्रांस का नागरिक बना दिया गयाi बेन्थम के विचारों का रूस ,पुर्तगाल ,स्पेन और दक्षिण अमेरिका के देशों में व्यापक प्रचार हुआiसुप्रसिद्ध भारतीय गवर्नर जनरल **लॉर्ड विलियम बेंटिक** बेन्थम का परम प्रशंसक थाi गवर्नर जनरल पद पर जब उसकी की नियुक्ति हुई तो उसने बेन्थम को लिखा था कि "वास्तव में भारत का गवर्नर जनरल बनकर मै नहीं जा रहा हूं ,लेकिन आप जा रहे हैंi"आगे चलकर

भारत में बेंटिक ने सती-प्रथा के उन्मूलन, कानूनो के संहिताकरण , आदि के क्षेत्र में महत्वपूर्ण सुधार किए¡ बेन्थम के प्रभावो का वर्णन करते हुए**हैजलिट** ने लिखा है कि "उसका नाम इंग्लैंड में बहुत ही कम व्यक्ति जानते हैं, यूरोप में इससे अधिक व्यक्ति जानते हैं ,किंतु चिल्ली के मैदानों में और मैक्सिको की खानों में उसका नाम सबसे अधिक लोग से जानते हैं¡"

1.1.15. अभ्यास /बोधात्मक प्रश्न

1.1.15.1. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

- उपयोगितावाद क्या है ?
- बेन्थम की मुख्य धारणाए क्या है ?
- बेन्थम के जेल सुधार सम्बन्धी सुझाव क्या है?
- राजनीतिक चिंतन में बेन्थम का क्या योगदान है ?
- "अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख" की व्याख्या कीजिये¡

1.1.15.2. लघु उत्तरीय प्रश्न

- उपयोगितावाद की मुख्य विशेषता लिखिए¡
- बेन्थम की रचनाओं को लिखिए¡
- सुखमापक गणना पद्धति क्या है ?
- बेन्थम को दार्शनिक उग्रवाद क्यों कहा जाता है?
- बेन्थम की दण्ड व्यवस्था सम्बन्धी उपयोगितावादी धारणा बताइए¡

1.1.15.3. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. उपयोगितावाद का मुख्य प्रवर्तक कौन माना जाता है?

(अ) जर्मी बेन्थैम

(ब) स्टुअर्ट मिल

(स) बर्क

(द) हीगल

2. सर्वप्रथम उपयोगिता शब्द का उपयोग किसने किया ?

(अ) स्टुअर्ट मिल

(ब) हीगल

(स) बर्क

(द) बेन्थम

3.उपयोगितावाद पुस्तक का लेखक कौन है ?

(अ) बेन्थम

(ब) स्टुअर्ट मिल

(स) जान लाक

(द) रूसो

4. उपयोगिता किस विचारधारा का प्रबल समर्थक माना जाता है ?
   (अ) निजी स्वतंत्रता
   (ब) हिंसा
   (स) क्रांति
   (द) परिवर्तन
5. किस देश की सरकार बेन्थम की विचारधारा से प्रबल समर्थक माना जाता है ?
   (अ) इंगलैंड
   (ब) फ्रांस
   (स) रूस
   (द) जर्मनी

1.1.15.4. बहुविकल्पीय प्रश्नो के उत्तर

1.(अ) जर्मी बेन्थैम
2.(अ) स्टुअर्ट मिल
3. (ब) स्टुअर्ट मिल
4. (अ) निजी स्वतंत्रता
5. (ब) फ्रांस

1.1.16. कठिन शब्द

संवर्धन- बढ़ाना
आधिपत्य-शासन या कब्जा

1.1.17. संदर्भ ग्रंथ सूची

- डा. अनूप चंद कपूर , प्रिंसिपल ऑफ़ पोलिटिकल साइंस,1950 ,एस. चंद एवं कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड, राम नगर ,नई दिल्ली,आईएसबीएन-978-81-219-0276-2
- डा. बी. एल. फड़िया, पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन ,साहित्य भवन पब्लिकेशन ,आगरा ,1992 , आईएसबीएन-978-93-5173-312-6
- डा. आर.के.आनंद,डा. जीवन महता, डा. एन. डी.अरोड़ा,राजनीति विज्ञान के सिद्धांत ,साहित्य भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.)लि.,2007
- जीवन महता, राजनीतिक चिंतन का इतिहास, साहित्य भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.)लि.,2008 ,आईएसबीएन-978-93-5073-409-9
- डा. भूपेश मणि त्रिपाठी, राजनीतिक सिद्धांत,स्व प्रकाशित ,2013, आईएसबीएन-978-93-5087-469-1
- डा. पुखराज जैन,राजनीतिक चिंतन का इतिहास,2006, साहित्य भवन पब्लिकेशन,आगरा, आईएसबीएन-81-7288-031-6
- डा. सुरेश चन्द्र सिंहल, प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा

- डा. जे.सी. जौहरी,राजनीति विज्ञान,एस बी पी डी पब्लिकेशन,आगरा आईएसबीएन-978-93-5167-451-1
- ए डी आशीर्वादम, कृष्णकांत मिश्र,राजनीति विज्ञान 2016, एस. चन्द एंड कंपनी (प्रा.) लिमिटेड, रामनगर, नई दिल्ली ,आईएसबीएन-978 -81-219-0896-2
- प्रो श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी, समकालीन राजनीतिक चिंतन,2013,प्रत्युष पब्लिकेशन्स, दिल्ली, आईएसबीएन-978 -93-82171-08-9

इकाई-2 जेम्स मिल के राजनीतिक विचार

इकाई की रूपरेखा

1.2.1. उद्देश्य कथन
1.2.2. प्रस्तावना
1.2.3. जेम्स मिल का जीवन परिचय
1.2.4. जेम्स मिल की रचनाएं
1.2.5. जेम्स मिल कामनोविज्ञान
1.2.6. जेम्स मिल कासरकार संबंधी सिद्धांत
1.2.7. जेम्स मिल का राजनीतिकअर्थशास्त्र
1.2.8. कानून औरअंतरराष्ट्रीय कानून पर जेम्स मिल के विचार
1.2.9. जेम्स मिल का शिक्षा सिद्धांत
1.2.10. सारांश
1.2.11. अभ्यास / बोधात्मक प्रश्न
1.2.11.1. दीर्घ उतरीय प्रश्न
1.2.11.2. लघु उत्तरीय प्रश्न
1.2.11.3. बहु विकल्पीय प्रश्न
1.2.11.4. बहु विकल्पीय प्रश्नों के उत्तर
1.2.12. कठिन शब्द
1.2.13. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.2.1. उद्देश्य कथन

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप-

- मिल के जीवन और उससे सम्बन्धित पुस्तको के बारे में जान जायेंगेi
- मिल एक दार्शनिक से बढ़कर एक अर्थशास्त्री था ये समझ सकेंगेi
- मिल के राजनीतिक सिद्धांतो को समझ सकेंगेi
- मिल का राजनीतिक चिंतन में दिए गए योगदानो को जान जायेंगेi

1.2.2. प्रस्तावना

मन से दार्शनिक कर्म से इतिहासकार-अर्थशास्त्री जेम्स मिल भारत के बारे में अपनी औपनिवेशिक सोच के लिए कुख्यात हैiईस्ट इंडिया कंपनी में नौकरी करते हुए उसने 'ब्रिटिश भारत का इतिहास' नामक बृहद ग्रंथ लिखा, जो खासा विवादित हुआi पुस्तक में मिल ने यह दर्शाने की कोशिश की थी कि अंग्रेजों के आने से पहले भारत में राजनीतिक अराजकता की स्थिति थीi अंग्रेजों ने भारत का नागरीकरण करने के साथ-साथ यहां के नागरिकों को 'सभ्य' बनाने में भी मदद कीi मिल की भारती विरोधी टिप्पणियों को नजरंदाज कर दिया जाए तो वह एक बेहतर इंसान थाi अपनी बहुमुखी प्रतिभा के

बल पर उसने गरीब परिवार से उठकर समाज अपना स्थान बनायाi उसने अपने गुरु बैंथम के विचारों को स्वीकृति दिलाने का भी काम कियाiउसको इतिहास से ज्यादा प्रसिद्धि अर्थशास्त्र के क्षेत्र में मिलीi कुल मिलाकर वह अपने समय का महान विचारक, शिक्षाशास्त्री और दार्शनिक थाiभारत के बारे में उसने वही लिखा, जो कंपनी उससे लिखवाना चाहती थीiहम इसे उसका वैचारिक विचलन या पद और प्रतिष्ठाके लिए किया गया समझौता कह सकते हैंi

इस इकाई में हम उसके राजनीतिक विचारो का विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगेi

1.2.3. जेम्स मिल का जीवन परिचय

इतिहासवेत्ता, अर्थशास्त्री और उपयोगितावादी विचारकजेम्स मिल का जन्म 1773 में स्कॉटलैंड के एक दरिद्र मोची के घर हुआ थाiउसके पिता का नाम भी जेम्स मिल ही थाi माता का नाम इसबेल फेंटन था जिनका सम्बन्ध एक संपन्न किसान परिवार से थाi वह स्वयं भी एक विदुषी महिला थीiबालक जेम्स को भी माँ के ही संस्कार अधिक मिलेi परिणाम यह हुआ कि उसकी बचपन में अच्छी शिक्षा-दीक्षा हुईi माँ की पहल पर ही आगे की शिक्षा के लिए जेम्स को चर्च द्वारा संचालित धार्मिक पाठशाला में भर्ती करा दिया गयाi वहां से प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने बाद वह मेंट्रोस चला गयाi जहाँ से उसने स्कूली शिक्षा पूरी कीi

उच्च शिक्षा के लिए लगभग सत्रह वर्ष की अवस्था में जेम्स एडिनबर्ग विश्वविद्यालय में भर्ती हो गयाi दाखिले के समय जेम्स को कुछ परेशानियों का सामना करना पड़ाi उस समय विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिए अधिकतम आयु तेरह-चौदह वर्ष तक ही थीi जेम्स को दाखिला दिलाने में सर जान स्टुअर्ट की प्रेरणा और प्रयास दोनों ही काम आयेi इस कारण वह सदैव उसका ऋणी रहाi यहाँ तक कि उसने अपने पुत्र का नामकरण भी उनको सम्मान देने के लिए जान स्टुअर्ट मिल ही रखाi

विश्वविद्यालय में अध्ययन के दौरान जेम्स ने स्वयं को मेधावी विद्यार्थी सिद्ध करते हुए ग्रीक साहित्य का उच्च अध्ययन कियाi विशेष रूप से प्लेटो के दर्शन काi इसी दौरान वह उस समय के प्रख्यात दार्शनिक डॉगाल्ड स्टीवर्ट के सम्पर्क में आया जो उस समय स्काटिश पुनर्जागरण के आन्दोलन के बेहतरीन व्याख्याकार थेi इसी दौरान उसने बेन्थम के पुस्तकों का अध्ययन कियाi उस समय उसको लगा कि उसका मानसिक प्रस्फुटन हो रहा हैi बेन्थम के विचारो ने उसको बहुत प्रभावित कियाi विशेषकर उसका सुखवादी विचारधारा जिसका प्रभाव जेम्स के आगामी लेखन पर भी बना रहाi

अध्ययन के पश्चात जीविका का प्रश्न खड़ा हुआ तो जेम्स को नौकरी की तलाश में जुटना पड़ाi सन 1790 से 1802 तक वह संघर्ष करता रहाi इस बीच सन 1794 में एम ए करनेके बाद स्कॉटलैंड में इसाई धर्म का प्रचारक बन गयाi बच्चो को ट्यूशन पढ़ाते हुए ही उसने परास्नातक की शिक्षा पूरी कीi निरंतर अध्ययन करते हुए उसने दर्शन,इतिहास तथा राजनीति का अध्ययन कर लियाi इससे उसका आत्मविश्वास बढ़ाi उसके बाद उसे लगा कि स्काटलैंड में उसकी तरक्की के भरपूर अवसर नहीं है , तो वह 1802 में वह सर जान स्टुअर्ट के साथ लन्दन चला गयाi जहाँ उसे उसका पसंदीदा काम भी मिल गयाi सन 1803 में वह एक महत्वपूर्ण पत्रिका **लिटरेरी जनरल** का संपादक बन गयाi जिसपर रहते हुए उसने अनेक शोधपरक आलेख लिखेiजिसमें उसके अनेक लेख प्रकाशित हुएi पुरे यूरोप में उसकी धाक ज़मने लगीi जेम्स के नेतृत्व में पत्रिका की प्रतिष्ठा में खूब वृद्धि हुईi लेकिन 1806 में पत्रिका के अचानक बंद होने से जेम्स के आगे फिर से आजीविका का संकट आ गयाi लेकिन तब तक जेम्स मिल में आत्मविश्वास आ चुका था और उसने लेखन के सहारे ही भविष्य में जीने का निर्णय लियाi

सन 1804 में मिल ने एक विधवा स्त्री की बेटी हैरियटबुरो से विवाह कियाi उसकी 9 संतानों में सबसे छोटी संतान यशस्वी जॉन स्टूअर्ट मिलथाi

सन 1808 में जेम्स मिल का**बेन्थम** से परिचय हुआiउससे प्रभावित होकर जेम्स मिलने उपयोगितावाद को शास्त्रीय रूप देने का प्रयत्नकिया और इस प्रयत्न में उसने उपयोगितावाद में **रिकॉर्डो**तथा **माल्थस** के विचारों को भीस्थान दियाi सन 1806 से 1817 तक वह हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया लिखने में व्यस्त रहाiसन 1818 में इस ग्रंथ के प्रकाशन से ना केवल उसे यश प्राप्त हुआ बल्कि उसकी आर्थिक कठिनाइयांदूर हो गईiईस्ट इंडिया कंपनी के इंडिया ऑफिस के पत्र व्यवहार विभाग में उसे सम्मानितपद प्रदान किया गयाiसन 1830 में वह अपने विभाग का अध्यक्ष बन गया इसी पदपर कार्य करते हुए ही सन 1836 में उसकी मृत्यु हो गईiकठोर श्रम औरप्रतिभा के बल पर उसने समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त कियाi

1.2.4. जेम्स मिल की रचनाएं

जेम्स मिल में मौलिकता की कमी नहींथीiहाब्स , हार्टले,बेंथम ,रिकार्डो माल्थस आदि का उस पर पर्याप्त प्रभाव रहा थाiविलक्षण प्रतिभा का धनी मिल ने दर्शनशास्त्र के अध्ययन की शुरुवात प्लेटो के दर्शन से कीi उसने विद्यार्थी जीवन में ही प्लेटो के दर्शन की समालोचना करने वाले अनेक निबन्ध लिखेi जिसके कारण उसे प्लेटो के दर्शन का आधिकारिक विद्वान माना गयाi यही नहीं अपने अध्ययन के दौरान ही ग्रीक,तथा लैटिन भाषाओँ का स्तरीय ज्ञान प्राप्त किया तथा उनमे सृजनात्मक छाप छोड़ीi उसका सारा साहित्य मौलिकता की श्रेणी में आता हैi रिकार्डो और माल्थस से प्रेरणा लेते हुए उसने सुखवाद के विचार को मान्यता दी तथा उनके प्रचार के लिए अनेक पुस्तके तथा लेख आदि लिखेi जिन्हें विद्वानों की भरपूर सराहना मिलीi उसका लेखन अर्थशास्त्र,राजनीति,इतिहास,दर्शनशास्त्र आदि क्षेत्रो में फैला हैi कुछ विद्वानों को उसके विचारो में यत्र-तत्र विरोधाभास भी नजर आता है लेकिन यह कोई नयी बात नहीं हैi इस प्रकार का विरोधाभास प्रायः सभी विलक्षण प्रतिभा-संपन्न के साथ होता हैi इंग्लैण्ड की उपनिवेशीवादी राजनीति को स्थिर बनाने एवं उसको वैचारिक- बौद्धिक समर्थन देने में जितना योगदान जेम्स मिल का था शायद ही किसी अन्य विद्वान या लेखक का हैi मिल इंडोलोजी की उस प्रवृत्ति के अग्रदूत थे जिसने संस्कृत भाषा ,साहित्य दर्शन,हिन्दू धर्म ,हिन्दू समाज व्यवस्था और ब्रह्मणो की निंदा शुरू कीi जेम्स की पुस्तक 'ब्रिटिश भारत का इतिहास' को भारत का पहला प्रमाणिक इतिहास मान लिया गया थाi 1819 में वह कंपनी के बोर्ड में नियुक्त हुआ और दस वर्षो के भीतर ही भारत का सम्पूर्ण ब्रिटिश प्रशासन उनके अधीन आ गयाi उनकी पुस्तक कम्पनी सरकार के हर कर्मचारी को पढ़नी पड़ती थीi उसी आधार पर भारत का शासन चलता थाi मिल कभी भारत नहीं आया था उन्होंने मनुस्मृति के एक भ्रष्ट अनुवाद के आधार पर हिन्दू विरोधी,भारत विरोधी,ब्राह्मण विरोधी और संस्कृत विरोधी स्थापनाएं कर डाली जो बहुत प्रभावी हुईi इसी कारण उन्हें साम्राज्यवादी इतिहासकार माना जाता हैi मिल ने भारत को लेकर अपनी पुस्तक में एक स्थान पर एक चौका देने वाला उल्लेख किया कि –

" ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत को सभ्य बनाने ,उसका नगरीकरण करने में मदद की थी.. अंग्रेजो के आने से पहले भारत एक बर्बर युग से बाहर आने के लिए छटपटा रहा था .."

हालाकि बाद में मिल अपने ही कथन से उलट गया और कहा कि भारत में ब्रिटिश राज को 'समाज के संपन्न तबके के लिए बाहरी मदद उपलब्ध कराने वाला व्यापक तंत्र' कह कर ब्रिटिश राज्य की वास्तविक खामियों की ओर इशारा भी कियाi

उसके लेखो का फ्रांसिसी क्रांति पर व्यापक प्रभाव पड़ाi
निम्नलिखित ग्रंथों ने उसे विशेषख्याति प्रदान की –

- हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया (1818)
- एनालिसिस ऑफ द फिनोमेंना ऑफ द ह्यूमन माइंड(1819)
- एलिमेंट्स ऑन पॉलीटिकल इकोनामी (1821)
- फ्रेगमेंट्स ऑन मैकनिटोश (1835)

सन 1818 में प्रकाशित 'ब्रिटिश भारत का इतिहास' पुस्तक प्रकाशित होने के साथ ही मिल की गिनती अपने समय के प्रमुख विद्वानों में होने लगीi इस पुस्तक को भरी सफलता प्राप्त हुईi हालाकि इसके कारण उसकी आलोचना भी खूब हुईi
इसके अलावा जेम्स मिल नेशासन, अंतर्राष्ट्रीय विधि, शिक्षा आदिविषयों पर भी बहुत से निबंध और लेख लिखेंiउसके यह लेख **लंदन रिव्यू**और **मिनिस्टररिव्यू** पत्रों में निकला करते थेi जेम्स मिल ने अपने मित्र बेंथम की ही भांति अनुभूतिमूलक अध्ययन पद्धति का अनुगमन कियाiमिलके शिक्षा संबंधी सिद्धांत की जानकारीइनसाइक्लोपीडियाब्रिटानिका के पांचवे संस्करण में इस विषय में प्रकाशित लेख से मिलती हैi

1.2.5. जेम्स मिल कामनोविज्ञान

बेंथम मनोविज्ञान के प्रति उदासीन था ,लेकिन जेम्स मिल ने उपयोगितावाद कोमनोवैज्ञानिक आधार प्रदान कियाi उसकी पुस्तक **एनालिसिस ऑफ द फिनोमेंनाऑफ द ह्यूमन माइंड**उपयोगितावाद को स्पष्टता मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करती हैiमिल की विधि निष्कर्षात्मक और प्रयोगात्मकहैiमानव मस्तिष्क के अध्ययन के लिए अंतर्दर्शन एवं प्रयोगात्मक विधि का समर्थन करते हुएउसने कहा है कि जैसे आणविक सिद्धांत द्वारा विज्ञान का अध्ययन किया जा सकता है वैसेही ज्ञानेंद्रियों द्वारा मस्तिष्क की व्याख्या संभव हैi जेम्स मिल की गणना साहचर्यवादी मनोविज्ञान के प्रवर्तकों में की जाती हैi इस क्षेत्र में वह हाब्स और डेविड हार्टले का ऋणी थाi साहचर्य की धारणा द्वाराउसने कल्पना, विचार और मस्तिष्क की अन्य परिस्थितियों की तथा साथ ही आध्यात्मिक प्रकृति कीव्याख्या कीi मिल ने बताया कि किसी कार्य की नैतिकता और अनैतिकता से ही उसकी उपयोगिता सिद्धहोती हैiसुख और दुःख नैतिकता के सार हैंi जेम्स मिल के इन विचारों से व्यक्ति सुखवादीउपयोगितावाद और उदारवाद को बल मिलाi
उन्होंने इंग्लैण्ड की राजनीति के दार्शनिक परिवर्तनवाद की स्थापना की और मताधिकार के विस्तृत विस्तार द्वारा सुराज्य की सुरक्षा का पक्ष लियाi मिल ने सभी मानसिक घटनाओं को सहचर्य से और समस्त साहचर्य को एक साथ घटित होने से प्रतिपादित कियाi

1.2.6. जेम्स मिल कासरकार संबंधी सिद्धांत

मिल का विश्वास था कि सभी व्यक्ति सुख चाहते हैं और कष्ट से बचनाचाहते हैंiक्योंकि सुख की सामग्री सीमित है, अतः इसका संचय करने के लिए व्यक्तियों में आपसमें संघर्ष और स्पर्धा होती हैiव्यवहारिक रूप में शक्तिशाली दुर्बलो को दबाकर उनके द्वाराउत्पन्न सुख की सामग्री हथियाने में आनंद अनुभव करते हैंiइस प्रक्रिया में सबको आनंद मिलताहो, ऐसा संभव नहीं होताiअतः सब व्यक्तियों की

संपत्ति और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए आवश्यक हैकि सब मिलकर कुछ व्यक्तियों को सबकी सुरक्षा के उद्देश्य से शासन की शक्ति प्रदानकर देiउन लोगों द्वारा सरकार का निर्माण हो और वे 'अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख'की व्यवस्था करेंiमिल यह जानता था कि शासन करने का अधिकार प्राप्त होने पर व्यक्ति अपनीशक्ति का प्रयोग स्व-सुख प्राप्ति के लिए ही कर सकता है,अतः उसका विचार था कि उस पर प्रतिबंधलगना चाहिए ,क्योंकि सरकार का मुख्य कार्य व्यक्ति के हस्तक्षेप से बचना हैiयदि सरकार पर प्रतिबंध न लगाया जाए तो वह निरंकुशता की ओर अग्रसर होगीi लोगों का दमन करने लगेगी और राज्यमें आतंक फैल जाएगाi मिल ने कहा कि इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए यह निश्चय किया जानाचाहिए कि कौन सी सरकार आदर्श हैiराजतंत्र,श्रेणीतंत्र और लोकतंत्र में से किसी में भी जनताके अधिकार वास्तविक अर्थ में सुरक्षित नहीं होतेi प्रत्येक में स्वार्थ भावना का समावेशरहता हैi मिल ने यह भी कहा कि इंग्लैंड की भांति राजतंत्र ,श्रेणीतंत्र और लोकतंत्र का समन्वय भी समस्या कासही निदान नहीं है, क्योंकि इन तत्वों में से कोई भी दो तत्व मिलकर जनता के अधिकारोंको आघात पहुंचा सकते हैं फिर भी लोकतांत्रिक शासन सर्वोत्तम है ,क्योंकि इसमें उद्देश्यसे विचलित होने पर सरकार को अपदस्थ किया जा सकता हैi मिल चाहता था कि ब्रिटिश लोकसभाइतनी सशक्त हो ,जो राजा और लॉर्डसभा की सम्मिलित शक्ति से टक्कर ले सकेi वह लोकसभा को हीजनता की सभा मानता थाiलार्डसभा के प्रति उसका रुख कठोर थाiउसने यह भी सुझाव दिया था कि यदि लोकसभा किसी अधिनियम को लार्डसभा द्वारा ठुकरा दिए जाने पर तीन विभिन्न सत्रों में पारितकर दे,तो वह अधिनियम लॉर्डसभा की स्वीकृति के बिना ही कानून बन जाना चाहिएiआज जेम्स मिलकी धारणा के अनुरूप लार्डसभाकी शक्तियां सीमित कर दी गई है और यह लोकसभा के सम्मुख नगण्य स्थान रखती हैi

राज्य केकार्यक्षेत्र पर विचार प्रकट करते हुए मिलने कहा था कि राज्य का प्रमुख कार्य ऐसीव्यवस्था करना है जिससे कोई व्यक्ति अपने सुख के लिए दूसरों का अहित न कर सकेiराज्य को ऐसा कानून बनाना चाहिए जिससे व्यक्ति की अवांछनीय कुचेष्टाओं पर प्रभावकारी नियंत्रण रहेiयह कहना उपयुक्त होगा कि मिलने सार्वजनिक हित की दृष्टिमें राज्य का कर्तव्य व्यक्तियों के कार्यों को मर्यादित करना माना थाi

मिल यह भी चाहता था कि जनता के प्रतिनिधि वस्तुतःजन-भावनाओं का प्रतिनिधित्व करें और स्वयं को जनता के हितों के अनुरूप ही समझेiउसनेसुझाव दिया कि प्रतिनिधियों का कार्यक्रम सीमित कर दिया जाना चाहिए और जनता को समय-समयपर अपनी इच्छा व्यक्त करने का अधिकार मिलना चाहिएi इस प्रकार की व्यवस्था से जनता मेंअपने उत्तरदायित्व के प्रति सजगता का विकास होगा,वह समय-समय पर अपने प्रतिनिधियों सेप्रश्न कर सकेगी और उनके कार्यों का विवरण भी मांग सकेगीi मिल का विचार था कि प्रतिनिधियोंकी संख्या अधिक नहीं होनी चाहिएiप्रतिनिधि कम संख्या में होने पर योग्यतापूर्वक कार्यकर सकेंगे और उन्हें यह ध्यान रहेगा कि अच्छा कार्य करने पर ही वो पुनः निर्वाचित होसकेंगेi

मिलने उन व्यक्तियों को मताधिकार देने का विरोध किया जो अन्योन्याश्रित हो अथवाकिसी भी रूप में दूसरो के प्रभाव में होiऐसे व्यक्तित्व स्वविवेक से और स्वतंत्रतापूर्वकअपने मताधिकार का प्रयोग नहीं कर सकतेiइसी आधार पर मिलने स्त्रियों और पराश्रित व्यक्तियोंके मताधिकार का समर्थन नहीं कियाiउसने व्यापक व्यस्क मताधिकार को भी ठीक नहीं समझाक्योंकि सब व्यक्तियों में मताधिकार का प्रयोग करने की समान योग्यता नहीं होतीiउसने मध्यम वर्ग के लोगों को मताधिकार और शासनाधिकार प्रदान करने का पक्ष लियाiउसकाविचार था कि मध्यम वर्ग ही राष्ट्र को उचित नेतृत्व दे सकता हैiउसका उपयोगितावाद मध्यम वर्गकी सर्वोच्चता का दर्शन थाi

जेम्स मिल नेउपयोगितावादी मापदंड को लोकप्रिय बनाने का पूराप्रयास किया और अपने विचारों को मानव-प्रकृति पर आधारित किया लेकिन उसकी सबसे बड़ीकमी यह थी कि उसने मानव-स्वभाव की केवल एक तरफा व्याख्या की और व्यक्ति में स्वार्थीतत्वों का ही दर्शन कियाi उसने इस तथ्य की उपेक्षा कर दी कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणीहैi

बेंथम और जेम्स मिल के शासन संबंधी विचारों पर तुलनात्मक टिप्पणी करते हुए **सेबाइन**ने लिखा है कि,“ जेम्स मिल के शासन संबंधी विचार बेंथम के शासन संबंधी विचारों से बहुतभिन्न थेiजेम्स मिल ने अपने ग्रंथ **ऐसे ऑन गवर्नमेंट** में इन विचारों के दार्शनिक आधारको अधिक स्पष्टता से व्यक्त किया हैiउसने इस बात को विशेष रुप से सिद्ध किया है किबेन्थम उदारवादियों का राजदर्शन ह्यूम की अपेक्षा हाब्स पर अधिक निर्भर थाi

हाब्स की भांतिमिल का भी विश्वास था कि सभी मनुष्यों में शक्ति प्रदान करने की अदम्य इच्छा होतीहै और संस्थाओं के प्रतिबंध इस इच्छा को नहीं रोक सकतेi यद्यपि बेंथम की भांति उसनेभी उदारवादी और स्वेच्छाचारी दोनों प्रकार की शासन-प्रणालियों के लिए शक्तियों के विभाजन अथवासंतुलन की कल्पना को अस्वीकार कर दिया फिर भी वह यह मानता था कि शासन-संबंधी सबसे जटिलप्रश्न शासकों की शक्ति को मर्यादित करने से संबंधित होता हैiउसके विचार से इस समस्याका एकमात्र समाधान यह था कि एक ऐसे विधानमंडल की स्थापना की जाए जिसके हित देश केहितों के अनुरूप होi विधान मंडल के सदस्य अपनी शक्ति का प्रयोग केवल सर्वसाधारण के हितके लिए करें और विधानमंडल का कार्यपालिका पर नियंत्रण होiउसे आशा थी कि जब सार्वभौममताधिकार के आधार पर प्रतिनिधि-शासन व्यवस्था की स्थापना होगी और सीमित पदावधि रखी जाएगी तबयह उदेश्य प्राप्त हो जाएगाiयद्यपि मिल अपने प्रत्येक तर्क को इस ढंग से प्रस्तुत करता था मानो वह एक सार्वभौम और शाश्वतसिद्धांत हो,फिर भी मिल के राजनीतिक चिंतन का एक तात्कालिक उद्देश्य यह था कि औद्योगिक मध्यम वर्ग को मताधिकारप्राप्त होi मिल इस वर्ग को सबसे अधिक बुद्धिमान समझता थाi उसका विचार था कि निम्न वर्ग कोइस वर्ग से मार्गदर्शन प्राप्त होगाi मिलने इस संभावना पर कभी विचार नहीं किया कि मध्यमवर्ग राजनीतिक शक्ति का अपने हित के लिए प्रयोग कर सकता हैi”

1.2.7. जेम्स मिल का राजनीतिकअर्थशास्त्र

राजनीतिक अर्थशास्त्र में जेम्स मिलपर **एडम स्मिथ,माल्थस** तथा **रिकार्डो** का प्रभाव थाi उसने माल्थस के जनसंख्या सिद्धांत कासमर्थन कियाiयह उसके राजदर्शन का अंग बन गयाi मिल का स्पष्ट विचार था कि प्रतिबंध लगाकरबढ़ती हुई जनसंख्या को रोका जाना चाहिएiयद्यपि प्रकृति स्वयं जनसंख्या-वृद्धि पर अंकुशरखती है तथापि विवेक द्वारा भी उसे नियंत्रित किया जा सकता हैiसामाजिक शांति के लिएमिलने आवश्यक समझा कि श्रम द्वारा उत्पादित वस्तुओं की अधिकतम मात्रा लोगों को प्राप्तहो और सरकार आर्थिक तथा अन्य संघर्षो द्वारा कमजोर पक्ष की रक्षा करेंi

इतिहास मिल का प्रिय विषय थाiमगर उसकी प्रतिभा बहुमुखी थीiराजनीति और अर्थशास्त्र को लेकर उसने जो लेख लिखे उनकी भरपूर सराहना हुईi कई विश्वविद्यालयों ने उसको अपने पाठ्यक्रम में शामिल भी कर लिया थाi**एलिमेंट्स ऑन पॉलीटिकल इकोनामी**पुस्तक में सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता, उसके लक्ष्य और समस्याओं की गंभीर विवेचना की गई थीiउसमें मिल ने दर्शाने का प्रयास किया है कि जनसंख्या वृद्धि विकास की प्रमुख समस्याओं में से एक हैi क्योंकि जिस अनुपात में जनसंख्या वृद्धि होती है, उस अनुपात में संसाधनों का विकास नहीं हो पाताiउसने संसाधनों के अनियमित

बंटवारे को भी विकास की समस्याओं से जोड़ा तथा माना कि किसी वस्तु की वास्तविक कीमत उसमें लगे श्रम के आधार पर आंकी जानी चाहिए, न कि उसके निर्माण में प्रयुक्त कच्चेमाल अथवा किसी और कारण सेi पुस्तक में वस्तुतः डेविड रिकार्डो के विचारों को ही विस्तार दिया गया थाi मिल ने उसमें राजनीति पर दिए गए अपने वक्तव्य संकलित किए गए हैं, जिनमें से एक लेख में जेम्स मिल ने जनसंख्या-वृद्धि और संसाधनों के अंतर्संबंध को स्पष्ट किया है. लेख में उसने एक स्थान पर लिखा है कि—

'सामान्यतः, यदि बाकी सब लक्षण अपरिवर्तित हों और पूंजी एवं जनसंख्या वृद्धि का अनुपात एकसमान रहे तो मजदूरी में प्रभावी वृद्धि भी अपरिवर्तनीय बनी रहती हैंiयदि जनसंख्या की अपेक्षा पूंजीनिवेश में अधिक वृद्धि हो तो मजदूर वर्ग की आय पर उसका सकारात्मक प्रभाव पड़ता हैiपरिणामतः औसत मजदूरी बढ़ने लगती हैiयदि ये दोनों ही स्थितियां न हों और यदि पूंजीनिवेश अनुपात में वृद्धि होती है, तब मजदूरी में भी आनुपातिक वृद्धि होगीiलेकिन इसके विपरीत यदि जनसंख्या वृद्धि के सापेक्ष पूंजी अनुपात में गतिरोध है, यानी पूंजीनिवेश की मात्रा में ठहराव बना रहे तो निश्चित रूप से इसका असर मजदूरी पर पड़ेगा और वह तेजी से गिरने लगेगीi"

जेम्स मिल की कमी थी कि उसने अपने राजनीतिक दर्शन तथा आर्थिक विचारों में कभी समन्वय स्थापित करने की नहीं सोचीi इतिहास में रुचि के कारण उसने 'ब्रिटिश भारत का इतिहास' लिखा, जिसमें उसने निहित पूर्वग्रहों के कारण औपनिवेशिक ब्रिटिश राजनीति का समर्थन कियाiतथापि समानांतर रूप से वह अर्थशास्त्र एवं एक अर्थविज्ञानी के रूप में कार्य करता रहाi निश्चित रूप से इसके पीछे **रिकार्डो** के साथ मित्रता एवं **बैंथम** की प्रेरणाएं भी थींiदरअसल मिल का अर्थदर्शन रिकार्डो तथा सामाजिक दर्शन बैंथम के चिंतन का ही विस्तार हैiवस्तुतः मिल अर्थशास्त्र के क्षेत्र में रिकार्डो का अनुयायी थाi किंतु यह मिल ही था जिसने रिकार्डो को उसकी अर्थशास्त्र की पहली पुस्तक के प्रकाशन के लिए प्रेरित किया थाi यही नहीं, मिल के प्रयासों से ही रिकार्डो को ब्रिटिश संसद के लिए चुना गया थाiबैंथम, जेम्स मिल तथा रिकार्डो की तिकड़ी के संबंध के बारे में माना जाता है कि—

'बैंथम मिल का नैतिक गुरु तथा मिल रिकार्डो का नैतिक गुरु थाi'

आगे चलकर रिकार्डो ने भी 'सुखवाद' के सिद्धांत की अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण से व्याख्या कीi मिल का मानना था कि सरकार को जनजीवन में हस्तक्षेप की नीति से बचना चाहिएiउसके बदले उसको जनता के बीच से ही संसाधन जुटाकर उनपर कार्य होना चाहिएi इसके ठीक विपरीत अपने राजनीतिक चिंतन में वह आर्थिक रूप से विपन्नों को सरकारी संरक्षण दिए जाने की नीति का समर्थक था और मानता था कि आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग को संरक्षण प्रदान करने के लिए सरकार को अधिक से अधिक मदद करनी चाहिएi

जेम्स मिल ने भले ही कोई नया सिद्धांत नहीं गढ़ा हो, मगर बैंथम तथा रिकार्डो के विचारों को तार्किक ढंग से आगे ले जाने और उनकी आसान शब्दों में व्याख्या करने में उसका योगदान अविस्मरणीय हैiउसका विश्वास था कि जब हम लोगों के समूह के साथ मिलकर कुछ करना चाहते हैं तो उस अवस्था में समूह के हित उसके अधिकांश सदस्यों की अधिकतम संतुष्टि के बराबर होते हैंi दूसरे शब्दों में एक लोकतांत्रिक संगठन में समूह के हितों के साथ-साथ उसके सदस्यों के हित भी समानरूप से सधते चले जाते हैंi एक कल्याणकारी समूह ऐसा ही सपना अपने सदस्यों को लेकर देखता है कि उसके किसी भी कर्तव्य से अधिक से अधिक सदस्य इकाइयों का भला हो सकेi इस तरह मिल ने सामूहिक जीवन की विशिष्टताओं का पक्ष लेकर उसके माध्यम से समतावादी समाज की संकल्पना का ही विस्तार किया थाi

अपने पुस्तक **'एलीमेंट्स ओफ पोलिटिकल इकोनामी'** में रिकार्डो के तुलनात्मक लाभों के सिद्धांत का उपयोग करते हुए उसने गणितीय उदाहरण जुटाने की अपेक्षा तर्क का सहारा लिया हैiउसका मानना था कि श्रमिक के ग्रहण करने की मात्रा केवल उतनी होती है, जितनी वह पूंजी की उत्पादकता में बढ़ोत्तरी करता हैiजबकि पूंजीपति का लाभ उसके द्वारा भूमि आदि संसाधनों में किए गए निवेश का आनुपातिक होता हैi इन दोनों के अतिरिक्त भूस्वामियों का एक तीसरा भी वर्ग है जो केवल अपना हित देखता है और अपना ही स्वार्थ-साधन चाहता हैiमिल की निगाह में असली मुनाफाखोर भी यही हैi

मिल ने बैंथम के सुखवाद के विचार का समर्थन किया था, किंतु उसके बहाने वह अनिमित उपभोग को अनुमति देने के विरोध में थाi हालांकि सर्वांगीण सामाजिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उसने उपभोग को नियंत्रित करने की सलाह दी थीi अपनी पुस्तक 'राजनीतिक अर्थव्यवस्था के मूलतत्व' में उपभोग को व्याख्यायित करते हुए मिल लिखता है कि—

"उपभोग के दो चेहरे होते हैं: उत्पादक एवं अनुत्पादकi उत्पादक उपभोग से उसका अभिप्राय ऐसे उपभोग से था जो मूलतः उत्पादक गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए निवेश के रूप में किया जाता हैiइसमें वह सब आ जाता है जो किसी उद्यमी द्वारा, किसी वस्तु के उत्पादन को कार्यरूप देने के लिए किया जाता हैiइसमें श्रम, मशीनरी, औजार, कच्चा माल और भवन, जहां पर उत्पादन कार्य संपन्न किया जाना है, यहां तक कि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में उत्पादकता को बढ़ाने में शामिल मवेशी भी सम्मिलित हैंiइनके अतिरिक्त कच्चे माल भी इनमें उत्पादक उपभोग का ही हिस्सा हैi

दूसरी ओर अनुत्पादक उपभोग में मजदूरी तथा अन्य ऐसे सभी उपभोग सम्मिलित हैं जिनका उत्पादकता से कोई संबंध नहीं हैi साफ है कि पूंजीपति द्वारा किया जाने वाला निवेश बहुआयामी होता है, उसके लिए उद्यमी को अधिक खतरा भी उठाना पड़ता हैi इस कारण उसका लाभ भी अधिक, उसके द्वारा लगाई गई पूंजी के अनुपात में बढ़ता चला जाता हैi मजदूर द्वारा किया गया निवेश जिसमें सामान्यतः उसका श्रम ही शामिल है, इसलिए अनुत्पादक वर्ग में सम्मिलित है, क्योंकि उसमें सिवाय श्रम कौशल के और कुछ नहीं हैi

जेम्स मिल का मानना था कि वितरण तथा विनिमय माध्यमिक क्रियाएं हैं; जिनके द्वारा उत्पाद को उसके उपभोक्ताओं तक पहुंचाया जाता हैiविनिमय अपने आप में लक्ष्य नहीं है, उसका कर्तव्य उत्पाद-विशेष को, समय रहते उपभोक्ता को उपलब्ध पहुंचाना हैi ताकि सतत उपभोग के द्वारा वह अपनी मांग को बनाए रख सकेiउपभोक्ता को उत्पाद का सीधा संबंध उसके उपभोग से होता हैiकोई भी व्यक्ति किसी वस्तु का निर्माण या अर्जन इसलिए करता है, क्योंकि वह उसकी कामना करता हैi जैसे ही वस्तु विशेष के प्रति उसकी कामनाएं तृप्त हो जाती हैं; फिर उस वस्तु के निर्माण का उसके लिए कोई अर्थ नहीं रह जाताi बावजूद इसके यदि कोई व्यक्ति अपनी अपेक्षा से अधिक वस्तु का उत्पादन करने में सफल है और वैसी कामना भी रखता है, तो इसका सीधा-सा अभिप्राय है कि वह कुछ अन्य वस्तुओं की कामना करता हैं जिन्हें वह अपने उत्पाद के बदले प्राप्त करना चाहता हैi यदि वह किसी ऐसी वस्तु का उत्पादन करता है जो उसकी निजी कामनाओं से बाहर है अथवा जिसकी तात्कालिक आवश्यकता उसको अपेक्षाकृत कम है, तो इसका आशय होगा कि वह ऐच्छिक वस्तु की अपेक्षा उस वस्तु का उत्पादन एवं विपणन अधिक सफलतापूर्वक कर सकता हैi

जेम्स मिल की पुस्तक 'राजनीतिक अर्थव्यवस्था के मूलतत्व' एक तरह से रिकार्डो की विचारधारा का ही विस्तार थीiइस पुस्तक में मिल ने जहां एक ओर बैंथम के सुखवाद की नई व्याख्या करते हुए उसे लोकप्रिय बनाने में सफलता प्राप्त ही, वहीं रिकार्डो की उत्पादकता संबंधी विचारधारा को

भी आगे बढ़ाने का काम कियाiयह पुस्तक एक तरह से इन दोनों के सिद्धांतों का ही प्रस्तुतीकरण हैiयह बताना भी शायद अप्रासंगिक न हो कि जेम्स मिल व्यक्तिगत रूप से बैंथम के अपेक्षाकृत अधिक निकट थाi मिल और उसका परिवार वर्षों तक बैंथम के किरायेदार रह चुके थेi यही नहीं बैंथम ने जेम्स मिल के पुत्र जान स्टुअर्ट मिल की शिक्षा का भी प्रबंध किया थाi

बैंथम की विचारधारा से प्रभावित होकर मिल ने 'वेस्टमिनिस्टिर रिव्यू' नामक अंग्रेजी पत्रिका में कई लेख लेख लिखे. मिल का सबसे मौलिक काम लोकतंत्र तथा नागरिक अधिकारों को लेकर लिखे गए उसके लेखों में देखने को मिलता हैiउसका मानना था कि नागरिकों को राजनीतिक गतिविधियों में अधिक से अधिक हिस्सा लेना चाहिए,ताकि उनमें अपने अधिकारों को लेकर अधिक जागरूकता आएi1820 में लिखे गए अपने एक लेख में मिल ने नागरिक अधिकारों का पक्ष लेते हुए उन्हें न केवल प्राकृतिक अधिकारों के निकट बताया, बल्कि उल्लेख किया कि मानवमात्र के कल्याण तथा उससे अधिकतम सुख पहुंचाने के लिए भी लोकतंत्र एवं जनआधिकारिता अनिवार्य हैi

यह बात भी ध्यान में रखने की है कि मिल आर्थिक मामलों में सरकार के कम से कम हस्तक्षेप के समर्थन में थाi

अर्थशास्त्र से उसकी पहली मुठभेड़ **कार्न लॉ** के औचित्य को लेकर लिए गए एक लेख से हुईiकर्ण लॉ की व्यवस्था यूरोप में बारहवी शताब्दी के दौरान की गयी थीi इसका विकट रूप सन 1803 में नेपोलियन युद्ध के पश्चात उस समय देखने को मिला जब कृषि क्षेत्र के घाटे से उबरने के लिए अनाज के आयात पर रोक लगा दी गयीiइस व्यवस्था का उद्देश्य किसानो को मंदी से बचाना थाi माल्थस जैसा अर्थशास्त्री भी कार्न लॉ के पक्ष में थाi अनाज पर लगाया गया प्रतिबन्ध एक सीमा तक तो कारगर सिद्ध हुआi इसने किसानो को मंदी की मार से उबारने में मदद कीi लेकिन जैसे जैसे किसानो की आर्थिक स्थिति सुधरती गयी , इससे होने वाली समस्याओं में वृद्धि होने लगीi कानून के प्रभाव से किसानो की आय बढ़ी साथ ही उनका प्रभाव भीi अब वे इस अवस्था में पहुँच गए थे कि अनाज का भाव तैयार करने में सरकार पर दबाव डाल सके अथवा अनुकूल समय आने पर उसको महंगे दामो में बेच सकेi इसका समाज पर विपरीत प्रभाव पड़ाi दाम बढ़ने से गरीबो की मुसीबते बढ़ने लगीi दुसरी ओर चीजो के मूल्यों में भी उसी अनुपात में तेजी आयीi परिणामतः अर्थव्यवस्था लड़खाड़ेने लगी और कार्न लॉ के विरुद्ध माहौल बनने लगाi

1804 में कार्न लॉ की आलोचना करते हुए जेम्स मिल ने अनाज के आयत पर लगे सभी प्रतिबन्ध हटा लेने की जनता की मांग का समर्थन कियाi उसने पर्याप्त तर्क देते हुए माल्थस की आलोचना भी की जो उस कानून के पक्ष में थाiमिल का कहना था कि किसी भी राष्ट्र की कुल सालाना बिक्री और सालाना खरीद में हमेशा अंतर होता हैi अतः व्यापार में स्थायित्व के लिए किसी भी वस्तु के अतिरिक्त आपूर्ति को आवश्यक रूप से अन्य किसी वस्तु की अतिरिक्त मांग द्वारा संतुलित रखना चाहिएi

सन 1808 में अपनी एक पत्रिका **कामर्स डिफेंडेड** के एक लेख में लिखा कि -

"किसी भी राष्ट्र के पास कोई एक वस्तु उसकी आवश्यकता से बहुत अधिक हो सकती है , यद्यपि वह अपनी विश्व-भर के कुल मांग से अधिक कभी नहीं हो सकती हैi ऐसी वस्तु की अतिरिक्त जरुरत के स्थान पर आसानी से ले जाना संभव है , किन्तु ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती है कि वहां से कोई और आवश्यक वस्तु उचित मात्रा में उपलब्ध न हो सकेi अतः सवाल यह उठता है कि उस वस्तु के निर्माण के लिए करना उचित होगा,जिसका अभाव बना हुआ हैi संतुलन की अवस्था में बाज़ार में न तो कोई वस्तु अपनी मांग से अधिक उपलब्ध होगी, न ही किसी वस्तु का अभाव हो सकेगाi"

1.2.8. कानून औरअंतरराष्ट्रीय कानून पर जेम्स मिल के विचार

जेम्स मिल तत्कालीनब्रिटिश कानूनी व्यवस्था से बहुत असंतुष्ट थाi अपने **जूरिस प्रयुडेंस** तथा **अ लॉ ऑफ नेशन** लेखों में उसनेकानून और न्याय के संबंध में महत्वपूर्ण विचार प्रकट किएiउसने कहा कि न्याय का लक्ष्यलोगों के अधिकारों से सुरक्षा प्रदान करना हैi न्याय को यह देखना है कि ये अधिकार सुरक्षितकिस प्रकार बनाए जा सकते हैंiअधिकारों की सुरक्षा के लिए आवश्यक है कि उन्हें स्पष्टरूप से परिभाषित किया जाए ,साथ ही ऐसे कार्य दंडनीय माने जाएं जो अधिकारों के प्रयोगमें बाधा डालते होiकुछ पदाधिकारियों का कार्य ही यह देखना होना चाहिए कि व्यक्तियों के अधिकारोंका अतिक्रमण तो नहीं होताi मिलने कहा कि जिस प्रकार माल और फौजदारी कानून होते हैं ,उसीप्रकार अधिकारों के संबंध में माल कानून को उनकी की परिभाषा अथवा व्याख्या करनी चाहिए तथाफौजदारी कानून को अपराधियों के लिए दंड की व्यवस्था हेतु आगे आना चाहिएiकार्य-विधि कीएक व्याख्या एक संहिता द्वारा की जानी चाहिए ताकि न्यायालयों के संगठन और उनकी कार्य-प्रणालीपर प्रकाश पड़ सकेंi

अंतरराष्ट्रीय कानून पर अत्यधिक स्पष्ट विचार करते हुए जेम्स मिलने कहा है कि यह कानून अत्यंत उपयोगी और आवश्यक है क्योंकि इनसे राष्ट्रों का आचरणउसी प्रकार नियंत्रित होता है जिस प्रकार भद्रता अथवा आचरण के नियम भद्र-जनों के व्यवहारको नियंत्रित करते हैंi अंतरराष्ट्रीय कानून के पीछे जन-भावना की स्वीकृति निहित होतीहैiअति शक्ति-संपन्न राष्ट्र भी जनमत के दबाव की अवज्ञा नहीं कर सकते, विशेषकर तब जबकिवे राष्ट्र प्रजातांत्रिक होi अंतरराष्ट्रीय कानूनों के संतोषजनक संचालन के लिए अंतरराष्ट्रीयकानून संहिता के निर्माण और अंतरराष्ट्रीय कानूनों को लागू करने के लिए एक ट्रिब्यूनलकी स्थापना पर बल दियाiउसने कहा कि अंतर्राष्ट्रीय कानून-संहिता में राज्यों के अधिकारनिश्चित और परिभाषित कर दिए जाने चाहिएiजैसे यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि शांति के समयराज्य का अपने क्षेत्रपर , अपनी नदियों पर और पूरे समुद्र पर व्यापार करने का अधिकार होताहैiप्रत्येक देश को समुद्री मार्ग द्वारा दूसरे देशों में जाने का अधिकार समानता केआधार पर होना चाहिएiयुद्धकाल में भी सभी राष्ट्रों को यह स्वतंत्रता होनी चाहिए खुलेसमुद्र का प्रयोग कर सकेंi
मिलने युद्ध तथा इससे से संबंधित विचार व्यक्त किए हैiउसने कहा कि युद्धन्यायोचित भी हो सकता है और ऐसे युद्ध के बाद शांति की स्थापना भी हो सकती हैiयदि उद्देश्य किसीराज्य को उसके अतिक्रमण का दण्ड देना हो तो वह युद्ध अन्यायपूर्ण नहीं कहलाएगा, बशर्ते के उद्देश्य पूरा हो जाने परयुद्ध समाप्त कर दिया जाएi

मिल ने यह विश्वास प्रकट किया कि अंतरराष्ट्रीय न्यायालय राज्यों के पारस्परिकआचरण को तभी समुचित रूप से नियंत्रित कर सकेगा जब न्यायधीश अपने कार्यों और निर्णयोंमें निष्पक्ष रहेंगेiयद्यपि राज्यों को मर्यादित करने वाली शक्ति अंतिम रूप से लोकमतही होगी फिर भी निसंदेह राज्यों के आपसी विवादों का औचित्य अंतरराष्ट्रीय न्यायालय द्वारानिश्चित किया जा सकता हैiमिल चाहता था कि अंतरराष्ट्रीय संबंधों का ऐसा सुंदर रुप स्थापितहो जाए कि प्रत्येक राज्य किसी अन्य देश के मामले में अनुचित हस्तक्षेप ना कर अपने कार्योंका संपादन शांतिपूर्वक करता रहेi राज्यों में परस्पर मैत्री-भाव और सहयोग कायम होi वास्तवमें जेम्स मिल कर अंतरराष्ट्रीय कानून संबंधी विचार बहुत कुछ मौलिक और अत्यंत उपयोगीथेi

1.2.9. जेम्स मिल का शिक्षा सिद्धांत

जेम्स मिल शिक्षा के महत्व के प्रति भी उतना हीसजग था जितना बेंथमiउसने निम्न और उच्च दोनों ही वर्गों की शिक्षा पर समान बल दिया औरयह मत व्यक्त किया कि शिक्षा का उद्देश व्यक्तियों तथा समाज को समग्र रूप से सुख प्रदानकरना हैi

जेम्स मिल ने कहा कि शिक्षा के दो प्रमुख उद्देश्य है –

- व्यक्ति स्वयं सुख प्राप्तकरें
- वह अपने अर्जित ज्ञान को दूसरों में बाँट कर उन्हें सुखदे

अतः स्पष्ट है किमिल का दृष्टिकोण उपयोगितावादी ही थाiउसकी आकांक्षा थी कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससेव्यैक्तिक और सार्वजनिक दोनों प्रकार के सुखों का प्रसार होiव्यक्ति की बौद्धिक और आध्यात्मिकदोनों ही प्रकार की उन्नति होनी चाहिएi शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण होना चाहिएiशिक्षा एक निश्चित आयु पर ही पूरी नहीं हो जाती , अतः वह जीवन पर्यंत चलनी चाहिएi शिक्षा के उद्देश्यप्राप्ति के साधनो पर विचार करते हुए मिल ने कहा कि बुद्धि को जितना उर्वर बनाया जाएगा और व्यक्तिके सामने विभिन्न रूपों में जितना ज्ञान प्रस्तुत किया जाएगा, उसकी बौद्धिक प्रतिभा का उतनाही अधिक विकास होगाi मिल ने शिक्षा को सर्वाधिक शक्तिशाली तत्व मानते हुए कहा कि , "समाज में जितनेभी वर्ग देखने को मिलते हैं, वे सब शिक्षा के ही परिणाम हैiशायद ही ऐसा कोई कार्य होगा जिसेशिक्षा ना करती होi"

मिल के शिक्षाविषयक मत का मूलाधार उसका यह विश्वास है कि "सभी व्यक्ति समान होते हैं और यदि उनकोअपने व्यक्तित्व के विकास का पूरा अवसर दिया जाए तथा उनके शिक्षण की उपयुक्त व्यवस्थाकी जाए तोकि उनका विकास हो सकेi"

मिल हॉल, बैक आदि विद्वानोंसे प्रभावित थाiजेम्स मिल ने अपनी शिक्षा संबंधी निबंध में यह प्रश्न उठाया कि आखिरशिक्षा का उद्देश्य क्या है? शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा से जो भी व्यक्ति पढ़ता लिखताहै ,जेम्स के मतानुसार उसका पहला उद्देश्य तो यह होता है कि वह स्वयं सुख प्राप्त करेंऔर दूसरा उद्देश्य होता है कि वह अपने अर्जित ज्ञान से दूसरों लोगों में बांट कर उसेप्रसन्न करें ,इस प्रकार शिक्षा संबंधी मिलकर यह दृष्टिकोण उपयोगितावाद ही थाi एक पादरीके पद पर रहने के बाद भी जेम्स मिल का यह मत था कि सामान्य शिक्षण संस्थाओं में बच्चोंको धार्मिक पुस्तकें नहीं पढ़ाई जानी चाहिएiमिलने का सुझाव दिया कि इंग्लैंड की स्कूलोंके पाठ्यक्रम में से बाइबल की शिक्षा को हटा देना चाहिएi शिक्षा के संबंध में मिल का मतअत्याधुनिक था और इसमें संदेह नहीं कि शिक्षा के लौकीकरण की ओर बड़ा महत्वपूर्णकदम थाiशिक्षा के परिणाम पर जेम्स मिल का आगाध विश्वास थाi जेम्स मिल के पुत्र जॉन स्टुअर्टमिल ने अपने पिता के शिक्षा संबंधी मतों का उल्लेख करते हुए अपनी आत्मकथा में लिखाहै मेरे पिता को मनुष्य जाति के मस्तिष्क पर विवेक शक्ति के प्रभाव पर इतना विश्वासथा कि "उनका कहना था कि यदि समस्त मनुष्यों को पढ़ा दिया जाए और उन्हें भाषणों तथा पुस्तकोंद्वारा हर प्रकार के मत सुनने और पढ़ने को मिले तो शायद ही कोई ऐसी चीज हो जो ना होसकेi" मिल का कहना था कि हम मनुष्य की बुद्धि को जितना हीरोचक और प्रभावी बनाएंगे जितना ही उसकेसामने भिन्न-भिन्न रूपों में ध्यान रखेंगे उतना ही उसकी बौद्धिक प्रतिभा का विकास होगाiजिस प्रकार खेत को जितना ही अधिक जोता जाता है उतना ही बढ़ता जाता है ,उसी प्रकार तरह-तरहके विचारों से मानव मस्तिष्क को जितना ही पूर्ण किया जायेगा उतनी उसकी बौद्धिक प्रतिभाऔर प्रखर होगीiपरंतु जेम्स मिल अपने बच्चों को तथा

विद्यार्थियों के ज्ञान के क्षेत्र सेबाहर निकालकर उसके विस्तृत क्षेत्र में लाना चाहता थाi बाईबिल को पाठ्यक्रम से निकालदेने के सुझाव का भी यही कारण थाiउसका कहना था कि व्यापक शिक्षा व्यक्ति के पास हो तो वह बुरे विचारों और भावनाओं का उन्मूलन कर देती है ,और उनका स्थान न्याय और दया की भावनाओं तथाविचारों को दे देती हैi

जो शिक्षाकर देती है वही सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि न्याय औरदया के विचारों से केवल शिक्षित व्यक्ति को ही नहीं बल्कि उस व्यक्ति के संपर्क मेंआने वाले प्रत्येक व्यक्ति को बड़ा आनंद मिलता हैi मिल का यह भी कहना था कि शिक्षा मानवतावादी भावनाओं को उत्पन्न करने का एक बड़ा अच्छा साधन ,अंतर्राष्ट्रीय विधिकी शिक्षा देना हैiअतः इसकी शिक्षा भी दी जानी चाहिएiमिल के शिक्षा संबंधी विचार आधुनिकयुग का रचनात्मक उदय है जिसके विचारों का प्रभाव पड़ाi

1.2.10. सारांश

जॉन स्टूअर्ट मिल तो निश्चित रूप सेअपने पिता के विचारों से बहुत अधिक प्रभावित हुआiजो भी हो मिल को बेन्थम की विचारधाराने बेहद प्रभावित किया थाiइसका परिणाम यह हुआ कि आगे कई वर्षों तक वह बेन्थम का सहयोगीऔर समर्थक बना रहाiउसने अपनी सृजनात्मक उर्जा का बड़ा हिस्सा बेन्थम के विचारों को प्रचारितकरने में लगा दियाi मिल की रचनात्मकता का अगला चरण 1811 में देखने को मिलताहै जब उसने **विलियम इन** के सहयोग से एक **पत्रिकाफिलिन्थ्रोपिस्ट**का प्रकाशन शुरू कर दियाiपत्रिका में मिलने शिक्षा, प्रेस की स्वाधीनता, मानव कल्याण तथा कैदियों की समस्याओंतथा उनकी अनुशासनात्मकता को लेकर कई महत्वपूर्ण लेख लिखेंi इससे पहले बेंथम ने भी कैदियोंकी समस्याओं पर विचार तथा कारागार की आम मानवीय परिस्थितियों की आलोचना कर चुका थाiहम कह सकते हैं कि जेलों को अधिकाधिक मानवीय बनाने के पीछे मिल प्रबंधन का ही प्रभावथा इस दौरान उसे सुकरात के विचार को लेकर भी कई आलेख पत्र पत्रिकाओं के लिए लिखें जिससेजनमानस के बीच में विवादित व्याख्याकार के रूप में बनती चली गईiजेम्स मिल ऐसा उदारवादी था जिसने निजी संपत्ति के प्रति सम्मान तथा उत्पादन और व्यापार के सभी पक्षों में स्वेच्छातंत्रवादी दृष्टिकोण के विस्तार के साथ-साथ वंचित वर्गो के प्रति सहानुभूति की भावना को बढ़ावा दियाi उसने शिक्षा की समस्याओं पर विशेष ध्यान दियाi

मिलने अपने समकालीन सभी विचार को प्रभावित किया **जॉन स्टुअर्ट मिल**पिता के विचारों से बहुत प्रभावित हुआi उसने लिखा है कि जन्म के बाद से ही वह उपयोगितावादियोंका नेता था और इस राजनीतिक संप्रदाय के व्यवहारिक सुधारों को का रूप देने में व प्रधानतासक्रिय व्यक्ति थाi

इंग्लैंड कीउपनिवेश आदि राजनीति को अस्थिर बनाने एवं उसको वैचारिक बौद्धिक समर्थन देने मेंजितना अधिक योगदानजेम्स मिल का रहा उतना शायद ही किसीऔर विद्वान लेखक साहित्यकार का रहा होi इसका उसको लाभ भी मिला ब्रिटिश सरकार ने उसकोउच्च पद एवं विविध सम्मान से सम्मानित कियाi

1.2.11. अभ्यास /बोधात्मक प्रश्न

1.2.11.1. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

- जेम्स मिल के जीवनी पर प्रकाश डालिएi
- जेम्स मिल के सरकार सम्बन्धी विचारो का विश्लेषण कीजियेi

- कानून और अंतरराष्ट्रीय कानून पर मिल के विचारो को बताइए¡
- मिल के मनोविज्ञान और अर्थशास्त्र पर क्या विचार दिए¡
- जेम्स मिल का शिक्षा सिद्धांत क्या है?

1.2.11.2. लघु उत्तरीय प्रश्न

- जेम्स मिल की रचनाओ को लिखे¡
- जेम्स मिल के चिन्तन पर किसका प्रभाव है?
- मिल राज्य के सम्बन्ध पर किस तंत्र को सर्वश्रेष्ठ मानता था?
- मिल का राजनीतिक अर्थशास्त्र क्या है?
- मिल ने अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय और राज्य के सम्बन्ध में क्या विचार दिया है?

1.2.11.3. बहुविकल्पीय प्रश्न

1.मिल के पिता क्या थे -

(अ) लकड़हारा

(ब) सोनार

(स) मोची

(द) दर्जी

2. हिस्ट्री ऑफ़ ब्रिटिश इण्डिया कब प्रकाशित हुई?

(अ) 1818

(ब) 1819

(स) 1820

(द) 1821

3.इनमे से किससे मिल प्रभावित नहीं था -

(अ)रूसो

(ब) बेन्थम

(स) माल्थस

(द) रिकार्डो

4.मिल की पुस्तक 'राजनीतिक अर्थव्यवस्था के मूल तत्व' किसके विचारधारा का विस्तार है -

(अ) माल्थस

(ब)बेन्थम

(स) हाब्स

(द) रिकार्डो

5. मिल शिक्षा के पाठ्यक्रम किस शिक्षा का विरोध करता था-

(अ) शारीरिक शिक्षा

(ब)व्यायाम शिक्षा

(स) बाइबिल शिक्षा

(द) संगीत शिक्षा

1.2.11.4. बहुविकल्पीय प्रश्नो के उत्तर

1. (स) मोची
2.(अ) 1818
3.(अ)रूसो
4.(द) रिकार्डो
5.(स) बाइबिल शिक्षा

1.2.12. कठिन शब्द

विनिमय– लेन -देन

ट्रिब्यूनल- विशेष अदालत

1.2.13. संदर्भ ग्रंथ सूची

- डा. अनूप चंद कपूर , प्रिंसिपल ऑफ़ पोलिटिकल साइंस,1950, एस. चंद एवं कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड, राम नगर ,नई दिल्ली,आईएसबीएन-978-81-219-0276-2
- डा. बी. एल. फड़िया, पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन ,साहित्य भवन पब्लिकेशन ,आगरा ,1992 , आईएसबीएन-978-93-5173-312-6
- डा. आर.के.आनंद,डा. जीवन महता, डा. एन. डी.अरोड़ा,राजनीति विज्ञान के सिद्धांत , साहित्य भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.)लि.,2007
- जीवन महता, राजनीतिक चिंतन का इतिहास, साहित्य भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.)लि.,2008 ,आईएसबीएन-978-93-5073-409-9
- डा. भूपेश मणि त्रिपाठी, राजनीतिक सिद्धांत,स्व प्रकाशित ,2013, आईएसबीएन-978-93-5087-469-1
- डा. पुखराज जैन,राजनीतिक चिंतन का इतिहास,2006, साहित्य भवन पब्लिकेशन,आगरा, आईएसबीएन-81-7288-031-6
- डा. सुरेश चन्द्र सिंहल, प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा
- डा. जे.सी. जौहरी,राजनीति विज्ञान,एस बी पी डी पब्लिकेशन,आगरा आईएसबीएन-978-93-5167-451-1
- डा. प्रभुदत्त शर्मा,पाश्चात्य राजनीतिक विचारो का इतिहास,कालेज बुक डिपो,जयपुर,आईएसबीएन-81-85788-02-2
- ए. डी. आशीर्वादम ,कृष्णकांत मिश्र,राजनीति विज्ञान 2016, एस. चन्द एंड कंपनी (प्रा.) लिमिटेड, रामनगर ,नई दिल्ली ,आईएसबीएन-978 -81-219-0896-2

इकाई-3 जॉन स्टुअर्ट मिल के राजनीतिक विचार

इकाई की रूपरेखा

1.3.1. उद्देश्य कथन

1.3.2. प्रस्तावना

1.3.3. जान स्टुअर्ट मिल :जीवन परिचय

1.3.4. मिल की कृतियां

1.3.5. मिल के चिंतन को प्रभावित करने वाली परिस्थितियां

1.3.6. मिल का उपयोगितावादी विचार

1.3.6.1. मिल का उपयोगितावादबेंथमवाद का संशोधित संस्करण

1.3.6.1.1. सुखो में मात्रात्मकही नहीं ,गुणात्मक अंतरभी है

1.3.6.1.2. सुखो की गणना-पद्धति में परिवर्तन

1.3.6.1.3. बेन्थम के सिद्धांत का उद्देश्य सुख या आनंद-प्राप्ति था और मिल का शालीनता और सम्मान पर बल

1.3.6.1.4. मिल की नैतिकताएं बेन्थम से अधिक संतोषजनक

1.3.6.1.5. स्वतंत्रता उपयोगिता से अधिक उच्च और मौलिक

1.3.6.1.6. सुखो की प्राप्ति अप्रत्यक्ष ढंग से होती है

1.3.6.1.7. मिल का सिद्धांत नैतिक,बेन्थम का राजनीतिक

1.3.6.1.8. मिल द्वारा अन्त:करण के तत्व पर बल

1.3.6.2. मिल के उपयोगितावादी विचारों का मूल्यांकन

1.3.7. मिल की स्वतंत्रता सम्बन्धी धारणा

1.3.7.1. मिल की स्वतंत्रता का स्वरूप

1.3.7.2. मिल के स्वतंत्रता संबंधीविचारों की आलोचना

1.3.7.2.1. खोखली और नकारात्मक स्वतंत्रता

1.3.7.2.2. समानता की उपेक्षा

1.3.7.2.3. सनकी और झक्कियोंको स्वतंत्रता देना हास्यास्पद

1.3.7.2.4. कार्य स्वतंत्रता का भ्रान्तिपूर्ण विभाजन

1.3.7.2.5. व्यक्ति और समाज केबीच का संबंध गलत ढंग से प्रस्तुत करना

1.3.7.2.6. अविकसित देशों केनागरिकों को स्वतंत्रता से वंचित करना

1.3.7.2.7. अल्पमत को बहुमत सेअधिक महत्व देना

1.3.8. मिल की प्रतिनिधिशासन संबंधी अवधारणा

1.3.8.1. प्रतिनिधि शासन क्यों ?

1.3.8.2. प्रतिनिधि सभा कासंगठन एवं कार्य

1.3.8.3. आनुपातिक प्रतिनिधित्व

1.3.8.4. मतदाता के लिएशैक्षणिक एवं संपत्ति संबंधी योग्यताएं

1.3.8.5. सार्वजनिक एवं खुलामतदान

1.3.8.6. बहुल मतदान
1.3.8.7. प्रतिनिधियों (सांसदों) की स्थिति
1.3.8.8. आलोचना
1.3.9. मिल की राज्य सम्बन्धी अवधारणा
1.3.10. सारांश
1.3.11. अभ्यास / बोधात्मक प्रश्न
1.3.11.1. दीर्घ उतरीय प्रश्न
1.3.11.2. लघु उत्तरीय प्रश्न
1.3.11.3. बहु विकल्पीय प्रश्न
1.3.11.4. बहु विकल्पीय प्रश्नों के उत्तर
1.3.13. कठिन शब्द
1.3.14. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.3.1. उद्देश्य कथन

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- जान स्टुअर्ट मिल के व्यक्तित्व से परिचित हो जायेंगेi
- मिल क्यों स्वतंत्रता का अग्रदूत माना जाता है समझ जायेंगेi
- जान एक अग्रणी उदारवादी था यह समझ सकेंगेi
- मिल के अन्य राजनीतिक विचारधारा से परिचित हो जायेंगेi
- मिल के राजनीतिक योगदान के महत्व को जान जायेंगेi

1.3.2. प्रस्तावना

जॉन स्टुअर्ट मिल उपयोगितावाद का अंतिम समर्थक और व्यक्तिवाद की अग्रणी विचारकोमें से थाiउसने उपयोगितावादी दर्शन को एक नयी दिशा प्रदान कीi उसके विचारों में उपयोगितावाद ,व्यक्तिवाद और उदारवाद का अपूर्व सामंजस्य मिलता हैiजीवन की प्रारंभिक अवस्था में आर्थिक मामलों में आंशिक अनुदान दृष्टि अपनाते हुए भी मिल आयु-वृद्धि के साथ समाजवादी धारा की ओर मुड़ने लगाi स्वतंत्रा के लिए जो बेचैनी उसके हृदय मेथी वह शताब्दियों तक पाठकों के अपनी ओर आकृष्ट करती रहेगीi विचार और अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता का उसने जो गौरवपूर्ण समर्थन किया ,वह राजनीतिक चिंतन के क्षेत्र में अधिकारपूर्ण वाणी मानी जाती है और मिल्टन तथा जेफरसन की श्रेणी में उसको स्थान मिलता हैiराष्ट्रवाद का जो समर्थन मिलने किया उसने एशियावासियों की हृदय के ऊपर अमिट असर डाला हैi यह सच है कि राजनीतिक दर्शन के इतिहास में **जॉन स्टुअर्ट मिल** की गणना अग्रिम पंक्ति के विचारको में नहीं होती, फिर भी उसके विचारों के अध्ययन के बिना राजनीतिक दर्शन का ज्ञान अधूरा हैiचाहे विद्वानों की आकाशगंगा में मिल का नाम हाशिए पर आता हो, लेकिन उसकी विख्यात कृति **ऑन लिबर्टी**(स्वतंत्रता पर निबन्ध) ने उसको विश्व के स्वतंत्रता पसंद करोड़ों लोगों के हृदय का सम्राट बना दिया हैi**वेपर** के अनुसार विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर लिखे इसअद्वितीय एवं ओजस्वी निबंध ने दुनिया के लोकतंत्र समर्थकों के बीच सम्मानीय स्थान प्रदान कर दिया हैi प्रस्तुत

इकाई में हम स्टुअर्ट मिल के जीवन,कृतियों और उसके राजनीतिक विचारो का विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगेi

1.3.3. जान स्टुअर्ट मिल : जीवन परिचय

जॉन स्टूअर्ट मिल उपयोगितावाद का अंतिम समर्थक थाiउसका जन्म लंदन में 20 मई सन 1806 को हुआi उसके पिता जेम्स मिल एक प्रसिद्ध इतिहासकार एवं उपयोगितावादी विचारक थेiअपने बच्चों की शिक्षा के बारे में उनका विचार कुछ विलक्षण थाi उनका कहना था कि स्कूल में बच्चों की पढ़ाई ठीक तरह नहीं हो सकतीi यदि बच्चों को प्रतिभावान बनाना है तो उन्हें अपने ढंग से घर पर पढ़ाया जाएiजान को उसके पिता घर पर ही कठोर, किंतु शुष्क वातावरण में पढ़ाया करते थेi जिसका परिणाम यह हुआ कि 3 वर्ष की अवस्था में ही उसे ग्रीक भाषा की शिक्षा दी गयी और 8 वर्ष की आयु में उसे गणित और अंग्रेजी की उच्च शिक्षा मिलने लगीiबचपन में जब खेलने-कूदने के दिन होते हैं, मिलने प्लेटो ,हेरोडोटस, जेनोफन का अध्ययन पूरा कर लिया थाi साथ ही उसने लैटिन भाषा भी सीख लीiउनके पिता अपने पुत्र को एक तेजस्वी विद्वान बनाना चाहते थेi8 वर्ष के मिल के हाथों में प्लेटो के संवाद थमा देते थेi कभी **रिपब्लिक** और कभी अरस्तू की **लॉज** उसके हाथ में देकर कहते इसे पढ़ोi8 वर्ष के जान को प्लेटो के संवादों से बहुत से अंश कंटस्थ याद हो गए थेi उसने तर्कशास्त्र , राजनीति , मनोविज्ञान , रसायन विज्ञान और अर्थशास्त्र का गहरा अध्ययन कियाiएकान्तप्रिय मिल अध्ययन में इस तरह निमग्न रहता कि यदि कोई उससे मिलने आता तो उसे या तो अपना शत्रु समझता है या अपरिचितi

इस कठोर आराधना का मूल्य मिल को चुकाना पड़ाi वह युवावस्था में ही वृद्ध होने लगाiएक अजीब थकावट, उदासी और मानसिक तनाव का शिकार हो गयाi उसका मन बहलाने के लिए उसके पिता ने उसे फ्रांस भेज दियाi जहाँ वह जेरेमी बेन्थम के भाई सर सेम्युअल बेन्थम के पास रहाi फ्रांस में मिल नदियों के किनारे , सागर के तटो और पहाड़ों की वादियों में घूमता रहाiपहली बार उसने प्राकृतिक सौंदर्य की छटा को निहारा , उसे वनस्पति शास्त्र प्राणी शास्त्र के अध्ययन में दिलचस्पी उत्पन्न हुईi फ्रांस की प्राकृतिक सौंदर्य और ताजी हवा ने उसके रुग्ण मन में एक नई मस्ती बिखेर दीiइंग्लैंड वापस लौटने पर मिल फिर किताबों की दुनिया में खो गयाiइन्हीं दिनों बेन्थम की पुस्तक **कानून के सिद्धांत** पढ़ने को मिलीiउसने इस पुस्तक के बारे में अपनी **आत्मकथा** में लिखा है , "इस पुस्तक के अध्ययन से मेरे जीवन में और मानसिक विकास में नवयुग का श्रीगणेश हुआi"

16 वर्ष की उम्र में मिल एक प्रौढ़ विद्वान बन चुका थाiउसने एक संस्था बनाई जिसका नाम **यूटिलिटेरियन सोसायटी** रखाi इस संस्था में लंदन के प्रमुख विद्वान सामयिक विषयो पर खुलकर बहस करते थेi17 वर्ष की आयु में ईस्ट इंडिया कंपनी के भारत के साथ होने वाले पत्र-व्यवहार विभाग के निरीक्षक कार्यालय में क्लर्क की नौकरी मिल गयीi इण्डिया ऑफिस में कार्य करने से शासन की वास्तविक समस्याओं का गहरा और क्रियात्मक अनुभव हुआi

इस समय दो घटनाओं ने मिल के जीवन में आमूलचूल परिवर्तन ला दियाi संयोग से उसके हाथ एक फ्रेंच उपन्यासकार एवं नाटककार ज्यां फ्रंक्वा की पुस्तक **"संस्मरण"** लग गईiपुस्तक पढ़कर उसके जीवन में एक नई स्फूर्ति का संचार होने लगाi उसके पिता ने उसे ललित साहित्य पढ़ने से विरक्त किया थाiअब उसे ललित साहित्य में मजा आने लगा थाiउसके जीवन का दर्शन ही बदल गयाiअब मिल महसूस करने लगा कि मनुष्य का भौतिक सुख,भौतिक उपलब्धियां ही सब कुछ नहीं होतेi भौतिक एवं आत्मिक सुखो के समन्वय का नाम असली सुख हैiदूसरी घटना थी, सन 1830 में मिल का परिचय एक

अत्यंत प्रतिभाशालिनी एवं मेघावी **श्रीमती हेरियट टेलर** नामक उच्च वर्गीय महिला से हुआi श्रीमती टेलर के सम्पर्क से मिल के बौद्धिक संकट का अंत हो गयाiउसने टेलर से विवाह कर लियाiश्रीमती टेलर के कारण ही मिल के विचारों में मानवीयता की संवेदनशीलता प्रतीत होने लगीi वह उससे बड़ी विचारक और कार्यकाल से महान कवियत्री जान पड़ीi अपनी पुस्तक 'स्वतंत्रता' पत्नी को समर्पित करते हुए मिल ने लिखा,"मेरे विचारों में जो सर्वोत्तम है, वह उसकी प्रेरक है तथा आंशिक रूप में उसकी लेखिका भीi" मिलने बौद्धिक संकट की अवस्था में यह अनुभव कर लिया था कि एक सुविकसित व्यक्तित्व के लिए भावनाओं की तृप्ति होना आवश्यक हैiवास्तव में यह संकट मिल का अपने पिता के बौद्धिक शासन के विरुद्ध एवं बेन्थमवादी उपयोगिता सिद्धांत के संशोधन तथा परिवर्तन की प्रक्रिया का आरंभ बिंदु माना जा सकता हैiउसकी सर्वाधिक सुंदर रचना का प्रारम्भ तभी से हुआ जब से वह टेलर के संपर्क में आयाi सन 1852 में टेलर का निधन हो गया जो मिल के लिए बहुत बड़ा आघात थाiवह फिर से किताबों की दुनिया में खो गयाiएक विद्वान और विचारक के रूप में उसे अब अपूर्व यश प्राप्त हो चुका थाiउसकी लोकप्रियता का लाभ उठाने में राजनीतिक दल भी पीछे नहीं थेi सन 1866 में वेस्टमिनिस्टर क्षेत्र से उसे कमान सभा का चुनाव लड़ाया गयाiउसने संसद में महिला मताधिकार, अल्पमत प्रतिनिधित्व तथा खुले मतदान का प्रबल समर्थन कियाiउसके भाषणों को सुन करप्रधानमंत्री**ग्लेडस्टन**ने कहा था , "जान मिल जब भाषण दे रहे थे तो मेरे मन में बार-बार यह भावना जागृत हो रही थी, जैसे मैं किसी संत की बात सुन रहा हूंi" रूढ़ीवादी अंग्रेजों को उसके प्रगतिशील विचार पसंद नहीं आए और जब तीन वर्ष बाद कामन सभा के चुनाव हुए तो वह हार गयाi 1873 में मिल का निधन हो गयाi

1.3.4. मिल की कृतियां

जॉन स्टुअर्ट मिल के जीवन की कहानी अध्ययन ,चिंतन और लेखन की कहानी हैi1834 से 1840 तक वह **लंदन रिव्यू**का संपादक रहाiइस पत्रिका का नाम बाद में **लंदन एंडवेस्टमिनिस्टर रिव्यू** कर दिया गयाi मिल ने इस पत्रिका के संपादन में अपनी विद्वता एवं लेखन प्रतिभा का परिचय दियाiउसने अनेक महत्वपूर्ण लेख लिखे ,जिसके कारण एक तर्कशील विद्वान के रूप में उसे बहुत प्रसिद्धि मिलीi उसकी पुस्तकों का प्रकाशन सन1843 से प्रारंभ हुआ जो 1873 में उसकी मृत्यु के पश्चात 1 वर्ष तक चलता रहाiउसकी प्रमुख रचनाएं निम्नलिखित हैं –

- व्हाट इज पोएट्री ,1833 ,1869
- एस्से ऑन बेन्थम ,1838
- अ सिस्टम ऑफ लॉजिक,1841
- एसेज ऑन सम अनसेटिल्ड क्वेस्चन इन पालिटिकल इकोनामी,1844
- द प्रिंसिपल ऑफ पोलिटिकल इकॉनमी:विथ सम आफ देयर अप्लिकेसंस टू सोसल फिलासफी,1848
- ऑन लिबर्टी,1859
- डिस्ट्रेशंस एंड डिस्कशन्स ,1859
- ए फ्यू वर्ड्स ऑन नान-इंटरवेंशन ,1859
- कंसीडरेशन ऑन रिप्रेजेंटेटिव गवेर्न्मेंट ,1861

- यूटिलिटेरिएनिज्म,1863
- अगस्त कोंत एंड पाजिटीविज्म,1865
- द सब्जेक्शन ऑफ़ विमेन ,1869
- ऑटोबायोग्राफी,1873
- थ्री एसेज ऑन रिलिजन, 1874
- ऑन नेचर,1874

मिल के राजनीतिक विचारो के विविध सोपान और व्यापक आयाम हैi**मिल** की रचनाओ के अध्ययन से यह प्रकट होता है कि अपने पिता के बाद वह सबसे अधिक **बेन्थम** से प्रभावित थाiउसके ग्रंथो ने विभिन्न क्षेत्रो में व्यवहारिक सुधार के भी अनेक सुझाव प्रस्तुत कियेi

1.3.5. मिल के चिंतन को प्रभावित करने वाली परिस्थितियां

जॉनस्टुअर्ट मिल के चिंतन को प्रभावित करने वाले लोगों में उसके पिता **जेम्स मिल,** उपयोगितावाद विचारक **बेंथम** तथा उसकी पत्नी **श्रीमती टेलर** प्रमुख थीi वह विख्यात कवि **वर्ड्सवर्थ**,**कॉलरिज** तथा **गेटे** की भावपूर्ण रचनाओं से भी बहुत अधिक प्रभावित हुआi फ्रांस के प्राकृतिक सौंदर्य और साहित्यिक वातावरण ने भी उसकी चिंतन धारा में समरसता का संचालन कियाi **जान मिल** के पिता जेम्स मिल का चरित्र कठोर और अहंकारपूर्ण थाi उसमें रागात्मकता की कमी थीiवह अपने गुणों से दूसरों की बात को दबा देता थाiउसका कहना था कि यदि बच्चों को किसी काबिल बनाना है तो उन्हें ढंग से घर पर ही पढ़ाया जाएiउसने जान को घर पर ही कठोर अनुशासन में रहकर पढ़ने की आदत डाल दीiउसे शेक्सपियर और कॉलरिज पढ़ने की बजाय प्लेटो के संवाद और अरस्तू के तर्कशास्त्र पढ़ने के बाध्य कियाiइन नीरस रचनाओं को पढ़ कर वह थक सा गयाiउदासी और मानसिक तनाव का शिकार होने लगाi वेपर के शब्दों में,"उसके दृष्टिकोण के गठन पर उसके पिता,सुप्रसिद्ध दार्शनिक,अर्थशास्त्री,इतिहासकार जेम्स मिल का,जो 1832 में बेन्थम की मृत्यु के पश्चात **बेन्थमी संप्रदाय**के प्रधान बने, बहुत प्रभाव पड़ाi"

मिलने राजनीति दर्शन की शिक्षा बेंथम से पायी थीiबेन्थम उसके पिता के मित्र और गुरु थेiबेन्थम के उपयोगितावादी सिद्धांत से अभिभूत होकर उसने कहा था,"मुझे उपयोगितावाद में एक धर्म ,एक दर्शन,एक विश्वास मिला हैi" विधिशास्त्रवेत्ता**जॉन ऑस्टिन** और उसके भाई ने भी प्रारंभिक अवस्था में मिल के बौद्धिक जीवन को प्रभावित कियाiजर्मन महाकवि गेटे की विराट शक्तिशाली जीवन-दर्शन से भी मिल का परिचय हुआiयह परिचय विल्हेम हम्बोल्ट के माध्यम से हुआiहंबोल्ट एक महान राजनीतिक विचारक था और अपने ग्रंथ **लिबर्टी** के प्रारंभ में मिलने उसका नामोल्लेख नत्मस्तक होकर किया हैi श्रीमती टेलर के संपर्क में आने से मिल के जीवन में प्रेम और सहृदयता की सरिता बहने लगीi शुष्कता और निराशा के बादल छटने लगेi उनके विचारों से प्रभावित होकर मिलने **दी सब्जेक्शन ऑफ़ वीमेन** पुस्तक लिखीi वे महिलाओं और श्रमिकों की पीड़ा को समझने लगे और साम्राज्यवादियों की भाषा बोलने लगेi

जब जॉन स्टुअर्ट बीमार थे तो उन्हें रोमांटिक विचारधारा के कवि वर्ड्सवर्थ और कॉलरिज की कविताओं को पढ़ने का अवसर मिलाiइन कवियों के अध्ययन से उसे सत्य की वह झांकी की मिली जिसकी ओर बेंथम की दृष्टि भी कभी नहीं गई थीiवर्ड्सवर्थ और कॉलरिज की कविताओं की रस सागर

में डूब कर जान को यह भान हुआ कि बेंथम का हृदय का जीवन की अधिक मार्मिक वस्तुओं को स्पर्श ना कर सका थाiअपनी पहली फ्रांस यात्रा के समय उसने जीवन में प्राकृतिक सौंदर्य की छटा को निहाराiपहली बार संस्कृति प्रेमी समाज के साहित्य, कला और संगीत के प्रत्यक्ष संपर्क में आयाiउसकी आत्मा के तार झनझना उठेi**डेविडसन** के शब्दों में,"मिल के हृदय में एक नवीन मानव का आविर्भाव हुआ जिसमें अधिक गहरी सहृदयता थी, जिसका बौद्धिक दृष्टिकोण अधिक व्यापक था और जिसने बुद्धि के साथ-साथ भावनाओं की तृप्ति के महत्व का भी अनुभव किया थाi"

1.3.6. मिल का उपयोगितावादी विचार

जेम्स मिल केप्रयत्नों और बेन्थम के प्रति उसकी श्रद्धा नेस्टुअर्ट मिल को कट्टर उपयोगितावादी बना दियाiबेंथम की उपयोगितावादी सिद्धांतमें मिलने महत्वपूर्ण संशोधन करते हुए सुखवादी तत्वों का समावेश कर दिया जिसके फलस्वरूपमूल सिद्धांत प्रायः समाप्त सा हो गयाi वर्डसवर्थ,कालरिज,काम्टे,डार्विन, स्पेंसर आदि केप्रभाव तथा इंग्लैंड की परिवर्तित परिस्थितियों के कारणमिल के प्रारंभिक बेन्थमवादी विचारों में धीरे-धीरे परिवर्तन आता गयाऔर उसने नवीन सिद्धान्तो पर बल देना शुरू कर दियाiउपयोगितावाद की रक्षा करने केप्रयत्न में उसने इतने संशोधन कर दिए उसका स्वरूप ही बदल गयाiवेपर के अनुसार"उपयोगितावाद पर लगाए गए आरोपों से उसकी रक्षा करने की इच्छा से मिलने संपूर्णउपयोगितावाद को ही तरफ फेंक दियाi" उसने उपयोगितावाद के स्थान पर व्यक्तिवाद परअधिक बल दिया और इसीलिए राजनीतिक चिंतन के क्षेत्र में उसे प्रायः अंतिम उपयोगितावादी तथा प्रथम व्यक्तिवादी दार्शनिक माना जाता हैiमिलने उपयोगितावाद पर जो विचारप्रकट किए उसके प्रख्यात निबंध**यूटिलिटेरियानिज्म** में उपलब्ध हैi

1.3.6.1. मिल का उपयोगितावादबेंथमवाद का संशोधित संस्करण

जे एस मिल नेअपने निबंध**यूटिलिटेरियानिज्म**में उपयोगितावाद का संशोधित विचार दर्शन प्रस्तुत कियाiयह उसके नव-चिंतन का परिणाम है जिसमें वह सुखो के गुणात्मक अंतर की विवेचना करता हैiमिलके अनुसार कुछ सुख दूसरे सुख से श्रेष्ठ होते हैंiइसलिए कुछ विशेष प्रकार के सुखों की,दूसरे सुखो की अपेक्षा ,इच्छा करना उचितहैiमिल भौतिक सुखों के साथ-साथ नैतिक सुखो पर भी बल देता हैiमिलके अपने शब्दों में,"इसतथ्य को स्वीकार करना उपयोगितावाद के सिद्धांत के अनुरूप है कि अन्य सुखों कीअपेक्षा कुछ सुख अधिक वांछनीय और महत्वपूर्ण होते हैं जबकि अन्य वस्तुओं कामूल्यांकन करने में मात्रा के साथ-साथ गुण का भी विचारकिया जाता है तो केवल मात्रा को भी सुखों की मूल्यांकन का आधार मानना निरी मुर्खता हैi

मिल ने बेंथम कीउपयोगितावादी सिद्धांत में संशोधन कर दिया जिससे मुख्य दर्शन में हीं आधारभूतपरिवर्तन हो गयाiमिल द्वारा बेंथम के उपयोगितावाद मेंनिम्नलिखित संशोधन किए गए हैं-

1.3.6.1.1. सुखो में मात्रात्मकही नहीं, गुणात्मक अंतर भी है

बेन्थम सुखो और दुःखो की मात्रात्मक भेद को ही स्वीकारकरता था गुणात्मक भेद को नहींi लेकिन मिलने इन दोनों भेदो को स्वीकार किया हैi उसनेकहा कि सुख और दुःख के गुणात्मक अंतर को मानना पूर्णतः उचित हैi कुछ सुख मात्रा में कमहोने पर भी इसलिए प्राप्त करने योग्य है क्योंकि वे श्रेष्ठ और उत्कृष्ट हैंiनिश्चय ही तुलसी और किट्स के कार्यों का आनंद गुल्ली डंडा खेलने के आनंद से

अधिकउत्तम हैiशारीरिक सुखो की तुलना में मानसिक सुख अधिक श्रेष्ठ होते हैं क्योंकि वेअधिक स्थायी और सुरक्षित होते हैंi मिल ने बतलाया कि सुखो में केवल कम या अधिक का ही अंतर नहीं होता, बल्कि उनकेगुणों भी अंतर होता हैi वे अपने महत्व के आधार पर उच्चया निम्न भी हो सकते हैंi

1.3.6.1.2. सुखो की गणना-पद्धति में परिवर्तन

मिल द्वारा सुखो में गुणात्मक भेद मान लेने से बेंथम कासुखवादी मापदंड पूर्णतः खंडित हो जाता हैi सुखों को नापने अथवा निष्पक्ष रूप मेंउनका मूल्यांकन करने के बेंथमवादी प्रयत्नों का कोई मूल्य नहीं रहताiबेंथम सुख कीमात्रा को सुखवादी गणना-पद्धति से मापना चाहता था जबकि मिल का मत था कि विद्वानोंकेप्रमाण ही सुखों की जांच या निर्णयके सही आधार हैi " दो सुख प्रदान करने वाली विभूतियों की प्रगाढ़ता का निर्णय उन्ही व्यक्तियों द्वारा हो सकता है जिन्हें दोनों अनुभूतियों का ज्ञान होi"

1.3.6.1.3. बेन्थम के सिद्धांत का उद्देश्य सुख या आनंद- प्राप्ति था और मिल का शालीनता और सम्मान पर बल

वेपर के अनुसार , "मिल की धारणा थी कि आनंद गुण तथा मात्रा दोनों में ही भिन्न होते हैi" उसके अनुसार जीवन का अंतिमउद्देश्य उपयोगितावादी नहीं, बल्कि शालीनता हैiअपनी पुस्तक **ऑनलिबर्टी** में वह लिखता है कि व्यक्तिवाद का प्रभाव सामान्य विचारधारा द्वारा कठिनाई से हीपहचाना जाता हैiवह **हम्बोल्ड**के **स्वयं अनुभूति** के सिद्धांत को स्वीकार करता हैiमिलका कहना है,"केवल यही महत्वपूर्ण नहीं कि मनुष्य क्या करता है ,यह भी महत्वपूर्ण हैकि उसके वह खास काम करने के तरीके क्या है ? बेन्थम के सिद्धांतों का उद्देश आत्मानुभूति नहीं बल्कि आनंद-प्राप्ति है ,जबकि मिल इसके विपरीत यह बताता है कि "वह आनंद, जोशालीनता अथवा सम्मान की वृद्धि करें, दूसरे आनंद से श्रेष्ठ हैiइस प्रकार श्रेष्ठता का मापदंड उपयोगिता का सिद्धांतनहींi अतः हमें यह कहना चाहिए कि शालीनता या सम्मान की वृद्धि करने वाले श्रेष्ठ होते हैi मिल यहाँ श्रेष्ठ जीवन का विचार प्रस्तुत कर रहा हैi उसके लिए जीवन आनंद-प्राप्ति के साधन से कुछ अधिक हैi"

उपयोगितावाद में मिल की नैतिकतावाद की अवधारणा से बेन्थम की विचारधारा में एक क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ हैi मिल ने राज्य को नैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक नैतिक संसथान घोषित किया हैi राज्य का उद्देश्य उपयोगिता नहीं, वरन व्यक्ति में नैतिक गुणों का विकास करना हैi

1.3.6.1.4. मिल की नैतिकताएं बेन्थम से अधिक संतोषजनक

सम्मान या शालीनता का उपयुक्ततादीविचार मिल को नैतिक बाधा के अनुपयोगितावादी विवेचन की भी प्रेरणा देता हैi बेन्थम ने नैतिक बाधा का कारण केवल मनुष्य की स्वार्थपरता को माना है, लेकिन मिल का विचार इससे भिन्नहैiउसके अनुसार भय ,स्मृति ,स्वार्थ, नैतिकता में उसी प्रकार बाधा पहुंचाते हैं जिसप्रकार प्रेम, सहानुभूति तथा धार्मिक भावनाएंi मिल कुछ अधिक यथार्थवादी प्रतीत होता हैiमिल के अनुसार नैतिक बाधा की भावना उपयोगितावादी सिद्धांत द्वारा स्पष्ट की जा सकतीहैiइस प्रकार उसकी नैतिकताए बेन्थम से अधिक संतोषजनक हैi

1.3.6.1.5. स्वतंत्रता उपयोगिता से अधिक उच्च और मौलिक

बेंथम उपयोगितावाद में मिल एक और भी परिवर्तन के लिए उत्तरदायी हैi वेपर ने लिखा है कि , "मनुष्य की आत्मा को श्रेष्ठ बनाने का विचार उसे स्वतंत्रता केअनुपयोगितावादी विश्लेषण कीओर अग्रसर करताहैiसच्चे उपयोगितावादियों के लिए स्वतंत्र उपयोगिता से अधिक निम्न है, लेकिन मिल के लिएस्वतंत्रता उपयोगिता से अधिक उच्च और अधिक मौलिक हैi"

1.3.6.1.6. सुखो की प्राप्ति अप्रत्यक्ष ढंग से होती है

मिलने "अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख" की कल्पना कोस्वीकार करते हुए इसमें बेंथम की व्याख्या की त्रुटि को दूर करने की चेष्टा कीi बेन्थमने कहा था कि राज्य के कार्यों की नाप-तोल करते समय अन्य बातों के साथ ही विस्तारपर भी बल दिया जाना चाहिए अर्थात यह देखना चाहिए कि राज्य की कितनी अधिक जनसंख्या कोउसकार्य से सुख
पहुंचेगाi पर यह प्रश्न अविचारित रह गया थाएक व्यक्ति के सुख की खोज में लगे रहने पर वह अन्य व्यक्तियों को सुख किस तरह पहुंचा सकेगाiमिलने इसका समाधान करते हुए बताया कि यद्यपि अपना ही अधिकतम सुख प्राप्त करने की लालसाव्यक्ति का एकमात्र उद्देश्य रहता है फिर तुरंत ही वह सामाजिक हित के रूप में प्रत्येकव्यक्ति के अधिकतम सुख का रूप धारण कर लेता हैi

1.3.6.1.7. मिल का सिद्धांत नैतिक,बेन्थम का राजनीतिक

एक अन्य दृष्टिकोण से भी मिल की धारणा बेन्थम की धारणा से भिन्नहैiबेंथम अधिकतम सुख के सिद्धांत को एक राजनीतिक सिद्धांत समझता था, नैतिक नहींiउसकी रुचि इस बात में अधिक थी की, "विधि-निर्माता और शासन सामाजिक नीतियों केनिर्धारण तथा विधि निर्माण में इसका प्रयोग करेंi" उसे इसे व्यक्तिगत आचरण कासिद्धांत बनाने में विशेष रुचि नहीं थीi बेन्थम की मान्यता थी कि यदि कानून को निष्पक्षहोना है तो वह गुणात्मक भेद की बारीकियों में नहीं जा सकताiएक इमानदार और नेक विधि-निर्माता के सामने इसके अलावा और कोई उपाय नहीं है कि वह यह मानकर चलें कि विभिन्नव्यक्तियों के सुखों की तुलना केवल मात्रा की दृष्टि से ही की जा सकती है, पर मिल के हाथोंमें स्थिति उल्टी हो गईi

1.3.6.1.8. मिल द्वारा अन्तःकरण के तत्व पर बल

बेंथम ने उपयोगितावाद के भौतिक पक्ष पर बल देते हुए वाह्य बातों परअधिक ध्यान दिया जबकि मिलने आंतरिक पक्ष को अधिक महत्व दियाiउसने बेंथम केव्यक्तिगत और सामाजिक हितों में एकता एवं संबंध स्थापित करने का प्रयास कियाi बेन्थम नेव्यक्ति को सुख प्राप्ति के लिए प्रेरित करने वाले चार वाह्य दबावो- शारीरिक, सार्वजनिक, धार्मिकऔर नैतिक की चर्चा की थीi उसने यह सब अति विशेष सुखो और दुःखो तथा व्यक्तिगत एवंसार्वजनिक हितो में एकरूपता स्थापित करने की समस्या के निराकरण के लिए किया थाiलेकिन मिलने इस निराकरण को अपर्याप्त मानते हुए विश्वास प्रकट किया कि इस प्रकारकृत्रिम साधनों द्वारा स्थापित की हुई हितो की एकरूपता स्थाई नहीं हो सकतीiउसने ऐसाआधार ढूंढने के प्रयत्न में ,जो व्यक्ति को अपने स्वार्थों की बलि देकर भी सामान्य हित-साधना की ओर उन्मुख करें, अंतः करण के तत्व पर विशेष बल दियाi

1.3.6.2. मिल के उपयोगितावादी विचारों का मूल्यांकन

मिल बेन्थम केविचारों में परिष्कार और संशोधन करते हुए उसकी मौलिक मान्यताओं पर ही कुठाराघात करदेता हैiयद्यपि बेंथमवाद की रक्षा के प्रयत्न मेंमिल अपने परिवर्तनों में वास्तव में उसे नष्ट करने की ओर अग्रसर होता है, फिर भी यहभी सच है कि मिल बेंथमवाद में एक शक्तिशाली परिवर्तन लाता है जो बेंथमवाद सेकहीं अधिक उपयोगितावादी हैiवेपर के अनुसार , "उसकी रचनाओं में राज्य का नकारात्मकचरित्र लोप हो जाता हैi अपनी **पॉलीटिकल इकोनामी** में वह स्पष्ट कहता है कि व्यक्तिगतप्रसन्नता के अनुगमन का परिणाम सामाजिक प्रसन्नता ही होगीiयह कथन मनुष्यों कीशक्ति संबंधी विभिन्नताओ तथा ऐतिहासिक प्रभावों को नगण्य कर देता हैiयदि मनुष्यों कावातावरण चिरकाल से असमान है तो वे प्रतियोगिता की दौड़ में बराबर नहीं आ सकतेiभूमि,उद्योग और ज्ञान पर अल्पसंख्यकों का एकाधिकार होता हैi विधि संबंधी संपूर्ण योजनाउन्ही अल्पसंख्यकों के द्वारा निर्धारित होती हैi इस कारण मिल समाजवाद के प्रति बहुतसहानुभूति रखता है और चाहता है कि राज्य को व्यक्ति

के विकास की बाधाओं को हटाकर बहुसंख्यको के जीवन को सुखमय बनाने का साधन बनानाचाहिएiमिल बेंथम के धनया संपत्ति के महत्व का कोई स्थान नहीं देताi जमींदारी में उसेकोई भलाई नहीं दिखाई देतीi मिल अनिवार्य शिक्षा का समर्थन करता हैiवह उत्तराधिकारजन्य अधिकारको सीमित करने को सहमत हैंiशिशुओं के लिए औद्योगिक कानून का समर्थन करता हैiउसकी धारणाहै कि प्रयोगात्मक एकाधिकारियों पर राज्यों का नियंत्रण होना चाहिएi आर्थिक विषयों में वह मजदूरों के कार्य करनेके घंटों को सीमित कर देना चाहता हैiइन सब में वह बेन्थम से अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ हैi

1.3.7. मिल की स्वतंत्रतासंबंधी धारणा

मिल के स्वतंत्रता संबंधी विचारों कासमावेश उसकी पुस्तक **ऑन लिबर्टी** में हैi मिल के समय राज्य का कार्यक्षेत्र बहुत अधिक बढ़गया था और सरकार जनहित के नाम पर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को सुनियोजित करने वाले कानूनबनाने लगी थीiसामाजिक व्यवस्थापन द्वारा सामान्य जनता की सुख-वृद्धि के प्रयास मेंब्रिटिश सरकार जिस प्रकार व्यैक्तिक स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने लगी थी उससे मिल को यह भय होगया था कि जनता का बहुमत अथवा लोकप्रिय शासन भी कहीं भूतकालीन निरंकुश शासन के समानआतताई और स्वेच्छाचारी ना बन जाएiउसका विश्वास था कि राज्य द्वारा अधिक अधिनियम के निर्माणका अर्थ है -व्यक्ति और उसकी स्वतंत्रा पर अधिक प्रतिबंधों का होना जिसका परिणाम थाराज्य के समक्ष नागरिक के व्यक्तित्व का हननiउसकी मान्यता थी कि राज्य को व्यैक्तिक स्वतंत्रता का हनन करने का कोई अधिकार नहीं हैiजनता के शासन के नाम पर बहुमत द्वारा अनचाहेप्रतिबंध लगाना या लोकमत के नाम पर अनुचित कानूनों को ठोक देना सर्वथा अवांछनीय हैi अपने इन्ही विचारों के कारण मिलने मानव-स्वतंत्रता के व्यक्तिवादी रूप का प्रतिपादन कियाi

1.3.7.1. मिल की स्वतंत्रता का स्वरूप

मिल के अनुसार स्वतंत्रता दो प्रकार के हैं –विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथाकार्यों की स्वतंत्रता

विचार और अभिव्यक्ति कीस्वतंत्रता

विचारों की स्वतंत्रता के संबंध में मिल के तर्क बड़े प्रभावशाली हैंiमिल के अनुसार समाज और राज्य को व्यक्ति की वैचारिक स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगानेका कोई अधिकार नहीं हैi किसी भी व्यक्ति को किसी भी प्रकार के विचार व्यक्त करने कीस्वतंत्रता होनी चाहिए चाहे वे विचार समाज के अनुकूल हो या प्रतिकूलiबौद्धिक अथवा वैचारिक स्वतंत्रता ना केवल उस समाज के लिए हितकर है जो उसकी अनुमति देता हैबल्कि उस व्यक्ति के लिए भी हितकर है जो उसका उपभोग करता हैiयदि संपूर्ण समाज एक ओर हो और व्यक्ति अकेला दूसरी ओर तो भी उस व्यक्ति को विचार व्यक्त करने कीस्वतंत्रता मिलनी चाहिएi मिल के ही शब्दों में,"यदि एक व्यक्ति के अतिरिक्त संपूर्णमानव-जाति एकमत हो जाए तो भी मानव-जाति को उसे जबरदस्त चुप कराने का उसी प्रकारअधिकार नहीं है जिस प्रकार यदि वह शक्ति-प्राप्त होतातो उसे मानव-जाति को चुप करने का अधिकार नहीं थाi"

मिलने दृढ़तापूर्वक कहा किसत्य किसी विचारधारा के दमन से सामाजिक प्रगति अवरूद्ध होती हैiयदि मार्टिन लूथर सेपहले धर्म-सुधार के प्रयासो तथा धार्मिक आंदोलनकर्ताओं का दमन कर दिया जाता तो धर्म-सुधार आंदोलन बहुत पहले ही सफल हो गया रहता और 16वी शताब्दी के बाद होने वाली प्रगतिकाफी समय पूर्व ही संपन्न हो जातीi दमन से सत्य का उन्मूलन नहीं किया जा सकता और नही विचारों कोकब्र में दफनाया जा सकता हैi विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की पुष्टि और समाज की प्रगतिकीद्योतक होती हैi

मिल ने कहा कि विचार एवं भाषणकी स्वतंत्रता मानसिक स्वास्थ्य के लिए अत्यंत आवश्यक हैi इससे अधिकतम मनुष्यों को केवलअधिकतम सुख की अनुभूति ही नहीं होती ,बल्कि इसके द्वारा सत्य की खोज भी की जा सकती हैiइस राजनीतिक स्वतंत्रता से उच्च नैतिक स्वतंत्रता का जन्म होता हैi सार्वजनिकप्रश्नों पर उन्मुक्त चर्चा हो ,राजनीतिक निर्णयों में उनका हाथ हो, नैतिक विश्वासहो और उस नैतिक विश्वास को कार्यान्वित करने के लिए उत्तरदायित्व का भाव हो–जब यह बातें होती हैं, तभी विवेकशील मनुष्य कोजन्म होता हैi इसलिए इस तरह का चरित्र-निर्माण सिर्फ इसलिए जरूरी नहीं है कि उससे किसीस्वार्थ की पूर्ति होती हैiवह इसलिए भी जरूरी है क्योंकि वह मनवोचित है, क्योंकि वह सभ्य हैi मिल ने वैचारिक स्वतंत्रता सम्बन्धी विचारो में इस बात पर बल दिया है कि एक ऐसे लोकमत का निर्माण होना चाहिए जो सहिष्णुतापूर्वक हो,जो आपसी मतभेदों को महत्व देता हो और जो नए विचारो का स्वागत करने के लिए तैयार होi

कार्यों कीस्वतंत्रता

वैचारिक स्वतंत्रता का महत्वपूर्ण पक्षकार्य की स्वतंत्रता हैi मिल का दृढ मत है कि,"विचारों की स्वतंत्रता अपूर्ण है यदि उन विचारोंको क्रियान्वित करने की स्वतंत्रता ना होi"

दृष्टि, संकल्प, सृष्टि –यह मनुष्य के अविभाज्यअंग है और कार्यों द्वारा मनुष्य अपना अनुदाय समाज को देता हैiयह अनुदाय उसके व्यक्तित्वका मानवीय पक्ष है, साथ ही सामाजिक प्रगति का अनन्यतम साधन हैiयदि कोई व्यक्ति स्वतंत्रतापूर्वक केवल सोचता ही है, पर आचरण में सदा दूसरों की आज्ञा का अनुवर्ती रहता है तो वहजीवित दास है क्योंकि उसके मन और शरीर पृथक है ,वह अपूर्ण मानव हैi "सोचने,, समझने बोलनेऔर कार्य करने की स्वतंत्रता एक ही प्रधान तत्व के सोपान है ,इनमें से किसी की उपेक्षानहीं की जा सकतीiस्वतंत्र कार्य के अभाव में स्वतंत्र चिंतन वैसा ही है जैसा कि पक्षीउड़ना तो चाहता है ,पर उसके पंख उड़ते नहींi"

1.3.7.2. मिल के स्वतंत्रता संबंधीविचारों की आलोचना

मिल के स्वतंत्रता संबंधी धारणा काजिन आधारों पर आलोचना की जाती है वो है–

1.3.7.2.1. खोखली और नकारात्मक स्वतंत्रता

प्रो अर्नेस्ट बार्कर केअनुसार, "मिल एक खोखली स्वाधीनता तथा काल्पनिक व्यक्ति का प्रतिपादन करने वाला पैगंबर थाi उसके पास अधिकारों के संबंध मेंउसका कोई दर्शन नहीं था ,इन्ही अधिकारों से स्वतंत्रता के विचार को ठोस अर्थ प्राप्त होता हैi" वह समाज की कोई ऐसी पूर्ण कल्पना नहीं कर पाया जिसमें'राज्य और व्यक्ति' के मिथ्या अंतर अपने आप लुप्त हो जाते हैiवास्तव में मिलने व्यक्ति को समाज से पृथक देखा है और समाज के नियमों को व्यक्ति की स्वतंत्रता से कोई विरोध नहीं होताi वे तो व्यक्ति की स्वतंत्रता को संभव बनाने में सहायक होते हैi

1.3.7.2.2. समानता की उपेक्षा

मिल स्वतंत्रता पर तो जोर तो देता है ,लेकिन समानता की उपेक्षा की दृष्टि से देखता हैi वहस्वतंत्रता को अपने आप में पूर्ण मानता है ,लेकिन स्वतंत्रा के सार्थकता के लिएसमानता भी आवश्यक हैi स्वतंत्रता समानता से अधिक उपयोगी हो सकती है, लेकिन समानता केअभाव में स्वयं स्वतंत्रता भी अधिक दिनों तक नहींटिक पातीi

1.3.7.2.3. सनकी और झक्कियोंको स्वतंत्रता देना हास्यास्पद

मिलसनकी और झक्की व्यक्तियों को भी विचार अभिव्यक्ति कीस्वतंत्रता प्रदान करता हैi उसको ऐसा लगता है कि इन सनकियों में से ही कोई सुकरातनिकल आये जो समाज में क्रांति का सूत्रपात करके परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त कर देi

1.3.7.2.4. कार्य स्वतंत्रता का भ्रान्तिपूर्ण विभाजन

मिल द्वारा कार्य करने की स्वतंत्रता को दो वर्गो- स्व-संबंधी औरपर-संबंधी में बांटना भ्रांति पूर्ण हैiवास्तव में व्यक्ति के कार्यों में ऐसा भेद नहीं किया जा सकताiमिल के अनुसार शराब पीना स्व-संबंधी कार्य है, यह तभीसामाजिक (पर-सम्बन्धी) रुप धारण करता है जब शराब पीकर कोई व्यक्ति सड़क पर हुड़दंग मचाये, लेकिन ऐसेव्यक्ति का अपने घर में शराब पीना भी नितांत स्व-संबंधी कार्य नहीं है, इसका उसकी पत्नीऔर बच्चों पर गहरा प्रभाव पड़ता हैiशराबी के बच्चे उसकी देखा-देखी उस दुर्व्यसन में फंस सकते हैं और इससे समाज को हानिहोगीi

1.3.7.2.5. व्यक्ति और समाज केबीच का संबंध गलत ढंग से प्रस्तुत करना

लिंडसे के अनुसारमिल के स्वतंत्रता संबंधीविचारों सेदो तथ्य उभरते हैं -एक तो यह कि मिल अपनी इस पूर्वधारणा से कभी मुक्त नहीं हो पाए कि राज्य व्यक्ति के हितों का सहायक ना होकर एक बाधाहै और उसका हस्तक्षेप वांछित कम है और अवांछित अधिक हैiदूसरे वह इस मनोवैज्ञानिक सत्यकी कमी स्वीकार नहीं कर सके कि समाज व्यक्तियों के एक स्वभाविक और ऐच्छिक विकास कापरिणाम है , जब लोग केवल एक-दूसरे के साथ संघर्ष करने के लिए नहीं बल्कि एक-दूसरे परनिर्भरता के लिए ही अधिक बसते हैंiमिल का राज्य एक ऐसा कृत्रिम राज्य है ,जहां लिंडसे केशब्दों में मानो व्यक्ति एक दूसरे से बिल्कुल अलग रहकर सुनेपन का जीवन व्यतीत करतेरहे हो और सर्वप्रथम ही राज्य में एकत्रित हुए होंi

1.3.7.2.6. अविकसित देशों केनागरिकों को स्वतंत्रता से वंचित करना

मिल स्वतंत्रा केवल ऐसे लोगों के लिएउपयुक्त मानता है जो विकसित हैiवह पिछड़े और अविकसित देशों के नागरिकों के लिएस्वतंत्रता का प्रावधान नहीं करतेiउनके लिए वह निरंकुश शासन को ही उपयुक्त मानता हैiवस्तुतः स्वतंत्रता संबंधी मिलकर विचार जातिगत मिथ्याभिमान से परिपूर्ण हैiवह इसमिथ्या धारणा का शिकार था कि संसार में कुछ जातियां श्रेष्ठहोती है बाकी सभी हीनi वह कहता था कि पिछड़ी और असभ्य जातियों को स्वतंत्रता नहीं दी जा सकतीi

1.3.7.2.7. अल्पमत को बहुमत सेअधिक महत्व देना

मिल बहुमत की स्वेच्छाचारिता के भय से आतंकित था इसलिए उसने उसकीतुलना में अल्पमत को अधिक महत्व दियाiवस्तुतः बहुमत के स्वेच्छाचारी होने के संबंधमें मिल की धारणा गलत मान्यताओं पर आधारित हैiपहले तो यह नहीं माना जा सकता किबहुमत स्वेच्छाचारी ही होता है और दूसरा यदि वह स्वेच्छाचारी भी है तो आधुनिकलोकतंतत्रात्मक व्यवस्था के पास शासन संचालन काअन्य कोई अच्छा विकल्प नहीं हैi वस्तुतः उसके चिंतन में अल्पमत सदा संघर्ष की मुद्राबनाकर बहुमत के विरुद्ध खड़ा दिखाई देता हैi

1.3.8. मिलकी प्रतिनिधिशासन संबंधी अवधारणा

अपने ग्रंथों **ऑन लिबर्टी** तथा **प्रतिनिधि शासन** में मिल यद्यपिलोकतंत्रात्मक शासन को संदेह की दृष्टि से देखता है फिर भी वह एक लोकतांत्रिकविचारक है और इंग्लैंड के लोकतंत्र के समर्थक लेखों

में सबसे महान लेखक हैiयह सत्यहै कि किसी अन्य ने मिल के समान इस बात पर जोर नहीं दियाकि लोकतंत्र सभी देशों के लिए उपयोगी नहीं हो सकता, फिर भी मिल के समान किसीको भी इतना विश्वास नहीं था कि जहां लोकतंत्र उपयुक्त हो सकता है वहां वह सर्वोत्तमशासन प्रणाली हैi

1.3.8.1. प्रतिनिधि शासन क्यों ?

लोकतंत्र एक सर्वोत्तम शासन प्रणाली होने के उपरांत भी मानवीय विकृतियों के कारणकई दुर्बलताओं का शिकार हो सकती है ,जिसमें लोकतंत्र में कई कमियां उभरने लगती हैंiइन कमियों को दूर करना आवश्यक हैiमिल के शब्दों में , "मनुष्य द्वारा बनाई हुई अन्यसभी वस्तुओं की भांति लोकतंत्र को भी अच्छा बनाया जा सकता है और बुरा भीi तो फिर,क्यों ने लोकतंत्र को और अधिक अच्छा बनाया जाए ?" मिल का यह भी कहना था कि वर्तमानमें राज्यों का आकार बहुत बड़ा होता जा रहा है और जनसंख्या भी बढ़ रही हैiइसलिए प्रत्यक्ष लोकतंत्र तो संभव नहीं है , अतः लोकतांत्रिक व्यवस्था केवल 'प्रतिनिधिलोकतंत्र' के रूप में ही कायम रह सकती हैiइसीलिए लोकतंत्र पर लिखी कृति को उसने**प्रतिनिधि शासन** नाम दियाiमिल के अनुसार, "प्रतिनिधि शासन वह व्यवस्था है जिसमें संपूर्णजन समुदाय या उसका अधिकांश भाग निर्वाचित प्रतिनिधियों के द्वारा अंतिम नियंत्रणशक्ति का प्रयोग करता हैi"

उपरोक्त परिभाषाआधार पर मिल की प्रतिनिधि शासन प्रणाली के तीन प्रमुख तत्व उभरते हैं :

- संपूर्णअधिकांश लोगों का सहयोग
- संपूर्ण या अधिकांश लोगों के हाथ में नियंत्रण शक्ति
- प्रतिनिधियोंका नियतकालिक चुनाव

1.3.8.2. प्रतिनिधि सभा कासंगठन एवं कार्य

प्रतिनिधि सभा को मिल द्विसदनात्मक बनाना चाहता थाiउसके मत मेंउच्च सदन निम्न सदन की निरंकुशता को हल्का करने के लिए आवश्यक हैiवह दोनों सदनोंमें प्रतिनिधित्व का भिन्न आधार रखना चाहता थाiउसकी मान्यता है कि यदि एक सदनसाधारण लोगों का प्रतिनिधि सदन हो तो दूसरा सदन राजनीतिज्ञों और ऐसे व्यक्तियों कासदन हो जिन्होंने प्रशासकीय और राजनीति क्षेत्रों में महत्वपूर्ण कार्य किए होiमिल के शब्दों में,"प्रतिनिधि सभा यह राय के साथ उसकेप्रत्येक अंग की राय का प्रतिनिधित्व होiजहां तकहो राष्ट्र के प्रत्येक वरिष्ठ और योग व्यक्ति के विचारों का भी प्रतिनिधित्व होi"

1.3.8.3. आनुपातिक प्रतिनिधित्व

मिल लोकतंत्र में बहुमत की निरंकुशता को लेकर बहुत अधिक चिंतित थाi बहुमत की सरकारअल्पमत की उपेक्षा कर सकती है,अतः जनता को बहुमत की निरंकुशवाद को समाप्त करने से बचाने तथा अल्पमतको शासन में प्रतिनिधित्व देने की आवश्यकता थीiमिल का विचार था कि बहुमत कीनिरंकुशवाद को समाप्त करने के लिए निर्वाचन प्रणाली में सुधार किया जाएi एकसदस्य वाले निर्वाचन क्षेत्र के स्थान पर, बहुसदस्य वाले निर्वाचन क्षेत्र बनायाजाए और 'अनुपातिक प्रतिनिधित्व' के आधार पर निर्वाचन कराया जाएiइस प्रणाली में जिसदल को जितने प्रतिशत मत मिलते हैं, उसी के अनुपात में उस दल के प्रत्याशियों कोप्रतिनिधित्व मिलता हैiइस पद्धति का लाभ यह होगा कि छोटे दलों को भी तथा अल्पमतो कोभी उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त होगाiअल्पमत भी सार्वजनिक संस्थाओं में अपनी आवाजबुलंद करके अपनी बात कह सकेगाi बहुमत निरंकुशता उसका गला नहीं घोट पाएगीi जब

प्रतिनिधि संस्थाओं में अल्पमतो को भी समुचित स्थान मिलेगा, तो उनकीआवाज को दबाया नहीं जा सकेगाi

1.3.8.4. मतदाता के लिएशैक्षणिक एवं संपत्ति संबंधी योग्यताएं

मिल लोकतंत्र की इस कमजोरी से भी चिंतित थाकि इसमें विधायिका के अधिकांश निर्वाचित सदस्य अशिक्षित, अनपढ़ और राष्ट्रीयसमस्याओं से अनभिज्ञ होते हैंiमिल के शब्दों में,"विधायिका में बुद्धि का निम्नश्रेणी का होना तथा उस जनसमुदाय में वृद्धि की कमी होना,जो विधायिका कानियंत्रण करती है , किसी भी समाज के लिए एक खतरा हैi" उसकी दृष्टि में लोकतंत्र के लिएआवश्यक है कि जनता शिक्षित, बुद्धिमान तथा राजनीतिक दृष्टि से पूर्णतया जागरूक होiअतः वह निरक्षर और अज्ञानी व्यक्तियों को मताधिकार प्रदान करने के पक्ष में नहीं थाiकेवल व्यस्क हो जाने से ही कोई मत देने का अधिकारी नहीं हो सकताi वह लिखना पढ़ना औरगणित का सामान्य ज्ञान रखने वाले व्यक्ति को ही मताधिकार प्रदान करना चाहता थाi

शैक्षणिक योग्यता के अतिरक्त मिल मतदाता के लिए संपत्ति संबंधी योग्यता भी आवश्यक मानता थाiउसकी मान्यताथी कि जिसके पास संपत्ति होती है वे उन लोगों की तुलना में अधिक उत्तरदायित्व कीभावना से कार्य करते हैं जिनके पास संपत्ति का अभाव होता हैiवह यह भी मानता था किजिनके पास संपत्ति होती है और जो कर अदा करते हैं वे निर्धनों और करना देने वालों सेअधिक बुद्धिमान भी होते हैं और राष्ट्रीय वित्त का सही उपयोग भी मितव्ययता के साथ करसकते हैंi अतः मिल संपत्ति रखने वाले तथा कर देने वाले व्यक्तियों तक ही वोट काअधिकार सीमितरखना चाहता थाi

1.3.8.5. सार्वजनिक एवं खुलामतदान

बेंथम और जेम्स मिल जैसे विचारकोने गुप्त मतदान प्रणाली का समर्थन कियाथाiलेकिन जॉन स्टुअर्ट मिल खुली मतदान प्रणाली का समर्थक थाi उसके अनुसार मत देने काअधिकार एक पवित्र अधिकार है जिसका प्रयोग पूर्ण समाज और विवेक के साथ किया जाना चाहिएiबुद्धिमताऔर विवेक से किए गएसार्वजनिक कर्तव्य के निर्वाह में गोपनीयता अवांछनीय हैi

मिल की दृष्टि में गुप्तसे मतदाता आसानी से धोखा दे सकता हैi वह अपने वचन का पालन न करके चुपचाप अन्य व्यक्ति के प्रभाव में आकर उसके पक्ष में मतदान कर सकता हैiवस्तुतः इस प्रणाली में भ्रष्टाचार , प्रलोभन और अनैतिक आचरण जैसे कृत्यों को प्रोत्साहन मिलता हैi**3.8.6 बहुल मतदान**

मिल को लोकतंत्र में एक बहुत बड़ी बुराई नजर आती थी कि शिक्षितऔर अशिक्षित, निर्धन एवं धनी, समान्य एवं विशिष्ट योग्यता वाले सभी व्यक्तियों को इसमेंएक समान माना जाता हैiइसका मतलब ऐसा शासन स्थापित करना जो सबसे कम शिक्षित लोगोंका तथा हाथ से काम करने वाले श्रमिकों का शासन होगा ,क्योंकि उनकी संख्या अधिक हैiसंख्या के आधार पर मत के अधिकार को लोकतंत्र का एक बहुत बड़ा दोष मानता थाiइसे वहझूठा लोकतंत्र कहता थाiजबकि सच्चे लोकतंत्र में सब व्यक्तियों के मत बराबर नहीं,लेकिन उनकी योग्यता के आधार पर होते हैंiलोकतंत्र की इस दुर्बलता को दूर करने के लिएमिलने बहुल मतदान की अवधारणा प्रस्तुत कीi उसके अनुसार मूर्ख और अशिक्षित व्यक्तियों की तुलना में शिक्षित और विद्वान व्यक्तियों को अधिक संख्या (बहुल मतदान) में मत का अधिकार होनाचाहिएi

1.3.8.6. विधि आयोग

मिल केअनुसार प्रतिनिधि सभा का कार्य शासन करना नहीं है क्योंकि शासन करने की उसमेंयोग्यता नहीं हैiउसका प्रमुख कार्य सरकार का निरीक्षण और नियंत्रण करना हैiचूकि वहविधि

निर्माण की योग्यता नहीं रखती इसलिए विधि निर्माण का कार्य एक विशिष्ट आयोग कोकरना चाहिएiजिसके सदस्य लोक सेवा से संबंधित व्यक्ति थेi विधि आयोग द्वारा निर्मित विधियों कोपारित करने का कार्य प्रतिनिधि सभा (संसद) को करना चाहिएi इस सुझाव द्वारा मिलने विधि निर्माण के कार्य में संख्या और योग्यता का सामंजस्य करने का प्रयत्न किया थाi

1.3.8.7. प्रतिनिधियों (सांसदों) की स्थिति

मिल जनप्रतिनिधियों को मात्र जनता के अभिकर्ता नहीं मानताi उसके अनुसार प्रतिनिधि तो एक स्वतंत्र पथ-प्रदर्शक और शिक्षा देने वाली शक्ति होनी चाहिएi वह इस बात काविरोधी था कि संसद सदस्य दलगत अनुशासन में बंधे रहेiउसके अनुसार संसद सदस्यों को वेतन नहीं दिया जाना चाहिए, क्योंकि वेतन की व्यवस्था से वे व्यवसायिक राजनीतिज्ञो की भांति हो जाएंगेi

1.3.8.8. आलोचना

मिल लोकतांत्रिकशासन प्रणाली एवं प्रतिनिधि शासन का प्रबल समर्थक था उसने प्रतिनिधि शासन के दोषोंको दूर करने के लिए कई सुझाव दिए ,जैसे- मताधिकार का आधार शैक्षणिक योग्यता हो, योग्यव्यक्तियों को एक से अधिक मत देने का अधिकार हो,व्यवस्थापिका द्विसदनात्मकहो ,अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व देने के लिए अनुपातिक प्रणाली अपनायी जाएiमिल के बहुतसारे सुझावों का क्रियान्वयनहुआ है , फिर भी आलोचकों के अनुसार उसके समस्त विचारोंका क्रियान्वयन कर दिया जाए तो लोकतंत्र के नाम पर अभिजात्य तंत्र की स्थापना होजाएगीiमिल के विचारों का विश्लेषण करने से ऐसा लगता है कि वह एक विरक्त लोकतांत्रिक हैiउसने लोकतंत्र में अविश्वास प्रकट किया है,उसे संदेह की दृष्टि से देखा है ,लोकतंत्र केप्रति अपनी निराशाओं और शंकाओं को व्यक्त किया हैi

मिलने सर्वप्रथम व्यवस्थापिका केकार्यक्षेत्र को सीमित कर दिया उसके अनुसार विधायिका कों सिर्फ शासन पर नियंत्रण करनाचाहिए, उसे न तो कर लगाना चाहिए , न आय-व्यय का प्रस्ताव पारित करनाचाहिए , न विधि का निर्माण करना चाहिएi वह यह भी कहता है कि संसद के सदस्यों को मतदाताओं कीभावनाओं के अनुसार नहीं बल्कि अपने उच्च विवेक से स्वतंत्र रूप से कार्य करना चाहिएi मिल द्वारामतदाता की योग्यता का जो मापदंड प्रस्तुत किया गया है यदि उसे लागू किया जाए तो तीसरीदुनिया के देशों में मतदाताओं की संख्या गौड़ हो जाएगीi उसने 'प्रतिनिधि शासन' में असमानता के गीत गाते हुए कहा है कि धनी व्यक्तियों को अनेक मत का अधिकार बनाता हैi वह भूल जाता है कि लोकतंत्र का आधार ही समानता है और वह इसी पर कुठाराघात कर रहा हैi

1.3.9. मिल की राज्य सम्बन्धी अवधारणा

उपयोगितावाद और स्वतंत्रता-सिद्धांत की व्याख्या में मिल द्वारा संशोधन किये जाने का यह स्वाभाविक परिणाम हुआ कि राज्य-सम्बन्धी धारणा में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुएi मिल की मान्यता है कि राज्य स्वार्थ की अपेक्षा मानव इच्छा का परिणाम अधिक हैi राज्य के यांत्रिक सिद्धांत यदि मानव इच्छा अथवा मानव व्यक्तित्व की उपेक्षा करते है तो वे अपूर्ण हैi मिल ने राज्य और उसकी संस्थाओं को स्वाभाविक मानने वालो तथा उन्हें अविष्कार और मानव प्रयासों का फल समझने वालो के बीच का मार्ग ग्रहण किया हैi उसका विश्वास है कि राज्य का विकास हुआ है,पर यह विकास जड़-वस्तुओ की तरह न होकर चेतन वस्तुओं के समान हुआ है,राज्य की उत्पत्ति मानव-हित के लिए हुई है क्योंकि जितने भी राजनीतिक संगठन है उन सबका अस्तित्व सार्वजानिक कल्याण के लिए ही हैi

राज्य के सकारात्मक पक्ष पर प्रकाश डालते हुए मिल ने व्यक्तियों के कार्यो में राज्य के हस्तक्षेप को पूर्णतः निषिद्ध न ठहरा कर वैयक्तिक विकास की कुछ स्थितियों में हस्तक्षेप अनिवार्य माना हैi उसकी मान्यता है कि व्यक्ति सुख के लिए समाज का सुख आवश्यक नहीं है क्योंकि जीवन-संघर्ष में सभी व्यक्ति समाज में समान नहीं हैi यदि राज्य सभी व्यक्तियों के जीवन को सुखी बनाना चाहता है और प्रत्येक को आत्म-विकास की सुविधाएँ देना चाहता है तो यह आवश्यक है कि वह समाज में व्याप्त विषमताओं और भिन्नताओं को दूर करेi मिल चाहता है कि भूमि,उद्योग, ज्ञान आदि पर थोड़े से व्यक्तियों का एकाधिकार नही रहना चाहिएi समाजवादी न होते हुए भी मिल के ह्रदय में संभवतः समाजवाद के प्रति प्रच्छन्न सहानुभूति विद्यमान है तथापि उसे उग्र समाजवाद से कोई सहानुभूति नहीं है जो भूमि के राष्ट्रीयकरण का समर्थक होi वह संपत्ति का भी उतना प्रबल पक्षधर नहीं है जितना बेन्थमi

सकारात्मक राज्य में विश्वास होने के कारन मिल यह मानता है कि राज्य को कुछ नैतिक कार्य करने पड़ते हैi उसके मतानुसार राज्य का सविंधान ऐसा होना चाहिए जिससे नागरिको के सर्वोत्तम नैतिक और बौद्धिक गुणों का विकास हो सकेi मिल राज्य द्वारा अनिवार्य सुख का समर्थक है और इसे स्वतंत्रता का अतिक्रमण नहीं मानताi वह सार्वजानिक स्वास्थ्य के कल्याण की दृष्टि से व्यापार तथा उद्योग पर सरकार का व्यापक नियंत्रण स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत है, लेकिन उन नियंत्रणों की ठीक-ठीक सीमायें उसने स्पष्ट नहीं की हैi

स्पष्ट है कि मिल राज्य के रचनात्मक और निषेधात्मक दोनों प्रकार के कार्यों की व्याख्या करता हैiराज्य का रचनात्मक कार्य वह है कि यह ऐसे स्वतंत्र वातावरण का निर्माण करे जिसमे विचार-मंथन ,अनुभव-वृद्धि ,चरित्र-निर्माण आदि संभव हो सकेiव्यक्ति या समाज पर प्रतिबन्ध लगाना राज्य का निषेधात्मक कार्य हैi मिल सामाजिक अव्यवस्था, अराजकता,अशांति आदि के समय राज्य के हस्तक्षेप को न्यायपूर्ण और समाज-हित में मनाता हैi वह व्यक्तिगत एवं सामाजिक कार्यो की मर्यादा भंग होने पर भी राज्य के हस्तक्षेप का समर्थन करता हैi

1.3.10. सारांश

राजनीतिदर्शन के इतिहास में जॉन स्टुअर्ट मिल का अनूठा स्थान हैi वह इतिहासकार दार्शनिक, अर्थशास्त्री, नीतिशास्त्र और राजनीति विज्ञान का प्रकांड विद्वान थाiवह समाज सुधारकऔर प्रखर संसदवेत्ता थाiसन 1873 में लार्ड मार्ले ने लिखा कि लगभग 20 वर्षों तक आक्सफोर्ड सेनिकलने वाला प्रत्येक बुद्धिजीवी मिल के उपदेशों से किसी ना किसी रूप में प्रभावितरहाi लार्ड आक्सफोर्ड लिखते हैं कि जब मैं 1870 में आक्सफोर्ड में गया तो उसकाप्रभाव चरम सीमा पर थाiप्रोफेसर मार्शल के अनुसार , "1867 में मिल की कृति 'पॉलीटिकलइकोनामी' को पढ़कर के अर्थशास्त्र के गहन अध्ययन की ओर प्रवृत्त हुए क्योंकि इन दिनों मिल की ख्याति चरम पर थीi" मैकाले का तो यहां तक कहना था कि, उन्नीसवींशताब्दीके मध्य पत्रकार अपने विचार मिल से ग्रहण करते थेi" मिल के योगदान के बारे में कहा जाताहै कि राजनीति दर्शन में अकेला 'स्वतंत्रता' का प्रकाश स्तंभ हैi

सबाईन ने उसे उदारवाद का प्रवक्ता माना है औरउदारवादी दर्शन की दृष्टि से उसके योगदान के महत्व को माना हैi

निष्कर्षतः राजनीति दर्शन के इतिहास में मिल का महत्व चिरस्थाई हैiस्वतंत्रा के पुजारी के रूपमें उसे **रूसो**,**वाल्टेयर** और **जेफरसन** के साथ सदैव स्मरण किया जाता रहेगाi

1.3.11. अभ्यास /बोधात्मक प्रश्न

3.11.1दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

- मिल के चिंतन को प्रभावित होने वाली परिस्थितियों का अवलोकन कराते हुए उसके जीवन और कृतियों का उल्लेख कीजिये¡
- मिल द्वारा उपयोगिता के सिद्धांत में किये गए परिवर्तनों का उल्लेख कीजिये¡
- मिल के स्वतंत्रता सम्बन्धी विचारो का मूल्यांकन कीजिये¡
- जान स्टुअर्ट मिल के विचारो का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये¡
- मिल के राज्य तथा शासन सम्बन्धी विचारो का उल्लेख कीजिये¡

1.3.11.2. लघु उत्तरीय प्रश्न

- मिल के स्वतंत्रता सम्बन्धी विचारो का क्या स्वरूप है ?
- मिल के संसद सम्बन्धी विचारो का संक्षिप्त वर्णन कीजिये¡
- मिल के प्रतिनिधि सरकार सम्बन्धी विचारो की आलोचना कीजिये¡
- मिल के कार्य सम्बन्धी स्वतंत्रता का मूल्याङ्कन कीजिये¡
- "मिल शासन में अल्पमत को बहुमत से भी अधिक महत्व देता है¡" इसकी विवेचना कीजिये¡

1.3.11.3. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. मिल की पहली महत्वपूर्ण पुस्तक का प्रकाशन 1848 में हुआ था जिसका नाम था -
   (अ) राजनीतिक अर्थ व्यवस्था
   (ब) उपयोगितावाद
   (स) राजनीतिक सिद्धांतो का इतिहास
   (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं
2. मिल ने अपनी आत्मकथा का प्रकाशन किस वर्ष किया -
   (अ) 1859
   (ब) 1873
   (स) 1860
   (द) 1869
3. मिल के स्वतंत्रता सम्बन्धी विचारो को किस प्रसिद्ध पुस्तक के माध्यम से संग्रहित किया है -
   (अ) स्वतंत्रता पर निबंध
   (ब) एरियोपोजिटिका
   (स) राजनीतिक दर्शन
   (द) इनमे से कोई नहीं
4. अल्पमत सरकार का समर्थक कौन माना जाता है ?
   (अ) बेन्थम
   (ब) वर्क
   (स) मिल

(द) हीगल

5. जे.एस.मिल के पिता का क्या नाम था-

(अ) बेन्थम

(ब)जेम्स मिल

(स) रूसो

(द) हीगल

1.3.11.4. बहुविकल्पीय प्रश्नो के उत्तर

1. (अ) राजनीतिक अर्थ व्यवस्था

2. (ब) 1873

3.(अ) स्वतंत्रता पर निबंध

4. (अ) बेन्थम

5. (ब) जेम्स मिल

1.3.12. कठिन शब्द

रुग्ण- भावहीन

यूटिलिटेरियन–उपयोगितावादी

विरक्त – सबसे अलग

1.3.13. संदर्भ ग्रंथ सूचि

- डा. अनूप चंद कपूर, प्रिंसिपल ऑफ़ पोलिटिकल साइंस,1950 ,एस. चंद एवं कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड, राम नगर, नई दिल्ली,आईएसबीएन-978-81-219-0276-2
- डा. बी. एल. फड़िया, पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन ,साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा ,1992 , आईएसबीएन-978-93-5173-312-6
- डा. आर.के.आनंद,डा. जीवन महता, डा. एन. डी.अरोड़ा,राजनीति विज्ञान के सिद्धांत, साहित्य भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.)लि.,2007
- जीवन महता, राजनीतिक चिंतन का इतिहास, साहित्य भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.)लि.,2008, आईएसबीएन-978-93-5073-409-9
- डा. भूपेश मणि त्रिपाठी, राजनीतिक सिद्धांत,स्व प्रकाशित, 2013, आईएसबीएन-978-93-5087-469-1
- डा. पुखराज जैन,राजनीतिक चिंतन का इतिहास,2006, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, आईएसबीएन-81-7288-031-6
- डा. सुरेश चन्द्र सिंहल, प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा
- डा. जे.सी. जौहरी,राजनीति विज्ञान,एस बी पी डी पब्लिकेशन,आगरा आईएसबीएन-978-93-5167-451-1

- प्रो श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी,समकालीन राजनीतिक चिंतन,2013, प्रत्युष पब्लिकेशन्, दिल्ली,आईएसबीएन-978-93-82171-08-9
- ए डी आशीर्वादम ,कृष्णकांत मिश्र,राजनीति विज्ञान 2016, एस. चन्द एंड कंपनी (प्रा.) लिमिटेड, रामनगर ,नई दिल्ली ,आईएसबीएन-978 -81-219-0896-2
- डा. प्रभुदत्त शर्मा,पाश्चात्य राजनीतिक विचारो का इतिहास, कालेज बुक डिपो,जयपुर,आईएसबीएन-81-85788-02-2

इकाई-4 हरबर्ट स्पेंसर के राजनीतिक विचार

इकाई की रूपरेखा

1.4.1 उद्देश्य
1.4.2. प्रस्तावना
1.4.3. हर्बर्ट स्पेंसर : जीवन परिचय
1.4.4. स्पेंसर की रचनाएं
1.4.5. स्पेंसर के विचारो के स्रोत
1.4.7. स्पेंसर का विकासवादी सिद्धांत
1.4.7.1. स्पेंसर के विकासवाद के डार्विन के सिद्धांत से समानता एवं भिन्नता
1.4.7.2. स्पेंसर के अनुसार विकास की प्रक्रिया
1.4.7.3. विकास की चार अवस्थाएं

1.4.8. स्पेंसर का सामाजिक विकास का सिद्धांत
1.4.8.1. स्पेंसर के सामाजिक सहयोग सिद्धांत की व्याख्या
1.4.8.2. प्राणी और राज्य में विभिन्नताएं
1.4.9. स्पेंसर का व्यक्तिवाद
1.4.10. स्पेंसर के अनुसार राज्य के कार्य
1.4.10.1. विधायको के पाप
1.4.11. अधिकारों पर स्पेंसर केविचार
1.4.12. स्पेंसर के दर्शन की आलोचना
1.4.13. सारांश
1.4.14. अभ्यास / बोधात्मक प्रश्न
1.4.14.1. दीर्घ उतरीय प्रश्न
1.4.14.2. लघु उत्तरीय प्रश्न
1.4.14.3. बहु विकल्पीय प्रश्न
1.4.14.4. बहु विकल्पीय प्रश्नों के उत्तर
1.4.15. कठिन शब्द
1.4.16. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.4.1. उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप-

- हर्बर्ट स्पेंसर के जीवन से परिचित हो जायेंगेi
- स्पेंसर के कृतियों से परिचित हो सकेंगेi
- स्पेंसर के विचारो के स्रोतों को जान सकेंगेi
- स्पेंसर के महत्वपूर्ण विचारो का विश्लेषण कर सकेंगेi

- स्पेंसर का राजनीतिक योगदान जान जायेंगेi

1.4.2. प्रस्तावना

स्टुअर्ट मिल के साथ साथ हर्बर्ट स्पेंसर राजनीतिक उदारवाद तथा इंग्लैण्ड की सहज दार्शनिक परम्परा का सर्वश्रेष्ठ प्रवक्ता हैiस्पेंसर को समाजशास्त्र का अंग्रेज पिता कहा जाता हैiस्पेंसर उन्नीसवी सदी के बुद्धिवाद का एक आश्चर्यजनक चमत्कार थाi इसने भौतिक शास्त्र से ले कर निति शास्त्र तक ज्ञान के सम्पूर्ण क्षेत्र को समाविष्ट कर लिया थाi उसने सामाजिक शास्त्रों के अध्ययन के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन कियेiउसने मनोविज्ञान और जीव विज्ञान का सम्बन्ध स्थापित किया और इस प्रकार पुराने साहचर्यपरक मनोविज्ञान के रूढ़ीवाद को समाप्त कियाiउसने राजनीति और नीतिशास्त्र पर समाजशास्त्रीय अनुसन्धान और इसलिए सांस्कृतिक इतिहास के सन्दर्भ में विचार कियाi मिल की भांति स्पेंसर ने भी पुराने उपयोगितावादी दर्शन और सामाजिक अध्ययन के बौद्धिक पृथकत्व को नष्ट किया तथा उन्हें आधुनिक विज्ञान के व्यापक क्षेत्र का एक भाग बना दियाi इस दृष्टि से काम्टे के दर्शनका भी बौद्धिक दृष्टि से बहुत अधिक महत्व थाi इस इकाई में हम हर्बर्ट स्पेंसर जीवन परिचय , कृतियों और विचारो का विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगेi

1.4.3. हर्बर्ट स्पेंसर : जीवन परिचय

हर्बर्ट स्पेंसर 19वीं शताब्दी के ब्रिटिश सामाजिक राजनीतिक चिंतन में सर्वाधिक मौलिक और विवादास्पद हस्ती हैiउसका जन्म 27 अप्रैल,1820 को हुआ थाiउनके पिता एक अध्यापक थेi स्पेंसर उनकी इकलौती संतान थीiस्पेंसर का स्वास्थ्य कोमल और कमजोर होने के कारण उन्हें किसी सार्वजनिक शिक्षण संस्था में अध्ययन के लिए नहीं भेजा गयाiउसकी शिक्षा घर पर ही पिता एवं चाचा द्वारा हुईiवह स्वाध्यायी बन गया और अपने आप अध्ययन करता रहाiसमाजशास्त्र और जीवशास्त्र के साथ-साथ उसने विज्ञान की भी और यहां तक कि इंजीनियरिंग की शिक्षा भी अपने आप लीi वह एक इंजीनियर बन गयाiवह आजीवन अविवाहित रहाiअपने बाल्यकाल में ही मशीनों की ओर आकर्षित हुआ और अनेक आविष्कारों के बारे में उसने खोज किएi1830 मैं 17 वर्ष की आयु में उसने लंदन जाकर सिविल इंजीनियर के रूप में रेलवे लाइनो एवं पुलोकाचार वर्ष तक कार्य कियाiउसने लंदन की राजनीतिक व सामाजिक जीवन के मामलों में सक्रिय रुचि ली और कुछ लेख भी प्रकाशित किएi1848 में स्पेंसर ने इंजीनियरिंग का कार्य छोड़ दिया और **इकोनॉमिस्ट** नामक साप्ताहिक पत्रिका का उप संपादक बन गयाi यहीं से उसका साहित्यिक जीवन प्रारंभ होता हैiइन्हीं दिनों वह **हक्सले, टिंडाल, न्यूमन** और **इलियट** जैसे प्रतिभाशाली एवं महान व्यक्तियों के संपर्क में आयाi1853 में उसने इकोनॉमिस्ट के उप-संपादक के पद से त्यागपत्र देकर स्वतंत्र रूप से लेखन का कार्य प्रारंभ कियाi सारे जीवन भर उसका स्वास्थ्य खराब रहा और आर्थिक दशा भी ठीक नहीं रही, इसलिए स्पेंसर जीवन भर संघर्ष करता रहाiउसे अपने लेखन कार्य से भी अधिक धन प्राप्त नहीं हो सकाi

एक लेखक के रूप में स्पेंसर का जीवन प्रारंभ में बहुत संघर्षपूर्ण रहाi जब 1862 में उसकी ग्रंथ माला का पहला खंड प्रकाशित हुआ था भीषण आर्थिक संकट में आ गयाi इससे धर्म तथा ईश्वर के संबंध में प्रकट किए गए विचारों से उसके ग्राहक नाराज हो गए और चंदा वापस करने की मांग करने लगेiकिंतु उसके अमेरिकन प्रशंसकों ने 7000 डालर की राशि एकत्र करके उसकी एक स्थाई निधि बनाई ताकि उस की ब्याज की आय से निश्चिंत होकर अपना लेखन कार्य कर सकेंi 1868 के बाद स्पेंसर को एक प्रमुख

विचारक के रूप में प्रसिद्धि मिली और उसकी रचनाओं की खूब बिक्री हुईiइससे उसकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ और जीवन का शेष भाग सुख से व्यतीत हुआi1903 में उसका निधन हो गयाi

4.4 स्पेंसर की रचनाएं

स्पेंसरने केवल पुस्तके ही नहीं लिखीं बल्कि बड़ी संख्या में लेख निबंध और पुस्तके लिखीi स्पेंसर की निम्नलिखित रचनाएं हैं-

- शासन का समुचित क्षेत्र (प्रापर स्फेयर ऑफ़ गवेरमेंट),1842
- सामाजिक स्थिति विज्ञान (सोसल स्टैटिक्स),1850
- समन्वयात्मक दर्शन (सिंथेटिक फिलोसफी), 1859
- प्रथम सिद्धांत (फ़र्स्ट प्रिंसिपल),1864
- प्राणी शास्त्र के सिद्धांतi (प्रिंसिपल ऑफ़ बायोलोजी) ,1864
- प्राणी शास्त्र के सिद्धांतii (प्रिंसिपल ऑफ़ बायोलोजी) ,1867
- मनोविज्ञान के सिद्धांत (प्रिंसिपल ऑफ साईकोलोजी) , 1870
- समाजशास्त्र का अध्ययन (द स्टडी ऑफ़ सोसियोलोजी), 1873
- नीति शास्त्र के सिद्धांत (प्रिंसिपल ऑफ़ एथिक्स),1879
- व्यक्ति बनाम राज्य (द मैन वेर्सेस स्टेट) , 1884
- एसे (थ्री वॉल्यूम)
- ऑटोबायोग्राफी (थ्री वॉल्यूम)

राजनीतिक चिंतन की दृष्टि से उसकी रचनाएं महत्वपूर्ण हैi**शासन का समुचित क्षेत्र** में उग्र व्यष्टिवाद का समर्थन करने वाले कतिपय निबंध हैi**मनोविज्ञान के सिद्धांत** में मन के विकास का प्रतिपादन किया गया हैi**सामाजिक स्थिति विज्ञान** का मूल विचार है राज्य की स्थापना से पहले ही प्राकृतिक नियम के अस्तित्व का विचारiइसी ग्रंथ में उसने राज्य को एक आवश्यक बुराई बतलाया और कहा कि राज्य का कार्यक्षेत्र सीमित किया जाएi इसी पुस्तक में विस्तार से स्पेंसर ने राज्य की तुलना शरीर से की थी और इसी पुस्तक में सामाजिक नियमों की अभिव्यक्ति भौतिक विज्ञान की भाषा में करने की कोशिश की थीi

अपनी रचनाओं के कारण स्पेंसर को काफी प्रसिद्धि मिलीiउसकी रचनाओं का यूरोप के विभिन्न देशों की, चीन तथा जापान की भाषा में अनुवाद हुआiउस की प्रसिद्ध कृति **फर्स्ट प्रिंसिपल को** ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में शामिल की गईi

4.5 स्पेंसर की विचारों के स्रोत

हर्बट स्पेंसर की दार्शनिकता के उद्गम और विकास का विशुद्ध वर्णन उसकी आत्मकथा में मिलता हैi स्पेंसर को अपने दर्शन में जिन विभिन्न स्रोतों से प्रेरणा प्राप्त हुई उन्हें चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है -

- प्रारंभिक पर्यावरण

- अंग्रेजी रेडिकलवाद
- शैलिंग और श्लेगल द्वारा प्रतिपादित जर्मन आदर्शवाद
- प्राकृतिक विज्ञानों का उसका स्वयं का अध्ययन

यदि उसने अपने प्रारंभिक पर्यावरण से स्वतंत्रा के प्रति प्रेम प्राप्त किया तो उसने जीवन के बाद विकास के प्रति उद्दाम लालसा भी विकसित कीi इन दोनों (स्वातंत्र्य प्रेम तथा विकास के प्रति अनुराग) में संघर्ष की दशा में व्यक्ति की स्वतंत्रता की, उसके विकास कर प्रति अनुराग, पर विजय हुईi
हरबर्ट स्पेंसर का जन्म उस परिवार में हुआ था जो धार्मिक क्षेत्र में विचार-स्वातंत्र्य का प्रेमी थाi"उसे शक्ति के प्रति उपेक्षा और विद्रोह से प्रेम अपने पूर्वजों से विरासत में मिला था जिनका विश्वास था कि प्रकृति के वे नियम जो कारण-कार्य के वैज्ञानिक सिद्धांतों में पाए जाते है, मानव-निर्मित कानूनों से अधिक श्रेष्ठ हैi" उसकी शिक्षा परंपरागत अर्थातरूढ़िगत अनुशासन से मुक्त थीiयुवावस्था में उसे जो रूढ़िवाद-विरोधी शिक्षा प्राप्त हुई उससे उसकी विचारधारा प्रभावित हुईiउसका चाचाटॉमस स्पेंसर राजनीति में एक उग्र सुधारवादी रेडिकल था और बर्मिंघम के जासेफ़ स्टर्ज का सहयोगी था जिसने 1841 में नान कानफर्मिस्ट नामक पत्रिका संचालित कीi1842 में स्वयं हरबर्ट स्पेंसर ने 'सरकार का उपयुक्त क्षेत्र' विषय पर इस पत्रिका में अपना लेख प्रकाशित किया कराया थाiबचपन से ही स्पेंसर उग्र दार्शनिक सुधारवाद या रेडिकलवाद के वातावरण में पोषित हुआ था औरजब उसका मस्तिष्क रचनात्मक स्तर पर पहुंचा तो वह इस विश्वास से प्रभावित हुआ कि व्यक्तिगत सुख की उपलब्धि सर्वोत्तम रूप से आंतरिक शक्तियों के उन्मुक्त स्फुरण द्वारा ही प्राप्त हो सकती है और इसलिए वह सत्ता के सब रूपों के विरुद्ध हो गयाi
इकोनॉमिस्ट के संपादक के रूप में स्पेंसर टॉमस हाग्संकिन के संपर्क में भी आया जिसने उसके दर्शन को बहुत अधिक प्रभावित कियाi हाग्संकिन बेन्थम-विरोधी रेडिकल थाi उसका राज्य की हस्तक्षेप नीति के सिद्धांत में विश्वास थाiउसकी मान्यता थी कि समाज एक प्राकृतिक तथ्य और विश्वात्मा या सर्वोच्च नैतिक शक्ति से इसका संचालन करने के लिए प्राकृतिक नियम निर्धारित किए हैं ताकि उसके सदस्य इनकी सहायता से उचित व्यवस्था स्थापित कर सकेi उसके अनुसार ऐसी दशा में शासन के कोई सकारात्मक कार्य नहीं हैiराज्य का कार्य केवल प्राकृतिक कानूनों को भली-भांति क्रियान्वयन के लिए स्वतंत्र वातावरण का निर्माण करना हैi अंतिम लक्ष्य तो राज्य-शुन्यता है जिसमें प्रशासनलुप्त हो जाएगाi स्पेंसर हाग्सकिन के विचारों से गंभीर रूप से प्रभावित था और संभवतः यही कारण है कि वह आजीवन व्यैक्तिक स्वतंत्रता तथा हस्तक्षेप की नीति का प्रतिपादक रहाi

कॉलरिज की लेखों के माध्यम से स्पेंसर ने **शैलिंग** और **श्लेगल** के जर्मन आदर्शवाद का भी पर्याप्त अध्ययन किया थाiइस अध्ययन ने भी उसके चिंतन को प्रभावित कियाiजर्मन आदर्श से उसे 'जीवन की धारणा' की प्राप्ति हुईiवह विश्वास करने लगा कि जीवन की प्रकृति का वह नहीं है जिसका भौतिक विज्ञान द्वारा निरूपण किया जा सकेiइसके विपरीत समस्त प्रकृति में जीवन की दैवी शक्ति हैi "यह एक गूढ़ सिद्धांत है जिसके अनुसार प्रकृति और समाज आंतरिक विकास द्वारा प्रकट होकर पूर्ण व्यक्तित्व प्राप्त करते हैंi"

प्राकृतिक विज्ञानो के अध्ययन ने भी स्पेंसर के दर्शन को रूप प्रदान कियाi अपने बाल्यकाल से ही स्पेंसर भौतिकी में विशेष रूचि रखता थाiवह एक इंजीनियर था उसने विभिन्न अविष्कारों के विषय में अन्वेषण किये थेi उसे प्राकृतिक कार्य-कारण के सिद्धांत एवं प्राकृतिक नियमों के प्रति बहुत आकर्षण थाi वह बचपन से ही जीव-विज्ञान में बहुत रुचि रखता थाi आयु की परिपक्वता के साथ उसने लेमार्क

द्वारा प्रतिपादित जीव-विज्ञानके सिद्धांतों को अपनायाi इस जीव-विज्ञान का उसके समाजशास्त्र पर गहरा प्रभाव पड़ाi लेमार्क के जीव-विज्ञान ने ही मनोविज्ञान और समाजशास्त्र के क्षेत्र में स्पेंसर का मार्ग-प्रदर्शन कियाi वास्तव में स्पेंसर लेमार्क का शिष्य था न कि डार्विन काi उसने डार्विन की पुस्तक**द ओरिजिन ऑफ़स्पेसिज** प्रकाशित होने के पहले ही जीवन के उद्गम के विषय में अपने विचार बना लिए थेi

1.4.7. स्पेंसर का विकासवादी सिद्धांत

स्पेंसर को जिस बात ने अपने समकालीन विकासवादी विचारकों में प्रमुख बनाया हुआ उसका आचारशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र की समस्याओं का विकासवादी सिद्धांत के अनुकूल व्याख्या करने का प्रयास हैiएक वैज्ञानिक होने के कारण स्पेंसर ने यह मत व्यक्त किया कि विश्व में एक नियमित तथा निश्चित विकासवादी सिद्धांत कार्य करता है औरउसी के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपनी मौलिकता का विकास कर पूर्ण व्यक्तित्व की प्राप्ति करता हैiउसकी यह दृढ मान्यता थी कि परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया संसार की प्रत्येक वस्तु को प्रभावित करती हैi

19वीं सदी में डार्विन ने अपनी जिस विकासवादी विचारधारा का प्रतिपादन किया था, उससे स्पेंसर ने कोई सहायता नहीं ली थी और न ही उससे प्रभावित हुआ थाiवास्तविकता तो यह है कि स्पेंसर अपने विकासवादी सिद्धांत को डार्विन के पुस्तक द ओरिजिन ऑफ़ स्पेसिज के प्रकाशित होने के 6 वर्ष पूर्व ही प्रतिपादित कर चुका थाiडार्विन,वैलास, हक्सले और ल्यूज आदि प्राणीशास्त्रियों के निष्कर्षों ने स्पेंसर के परिणामों की सत्यता को स्वीकार कियाiइससे प्रभावित होकर स्पेंसर अपने दर्शन के औचित्य को खोजने के लिए जीवशास्त्र की ओर उन्मुख हुआi

1.4.7.1. स्पेंसर के विकासवाद के डार्विन के सिद्धांत से समानता एवं भिन्नता

डार्विन की धारणा थी कि प्रत्येक काल में सर्वत्र एक ही जाति के विभिन्न प्राणियों और प्राणियों की विभिन्न जातियों में निरंतर संघर्ष चलता रहता हैiइस संघर्ष में केवल योग्यता प्राणी ही बच पाते हैंi यह संघर्ष जीवन के अस्तित्व के लिए होता है क्योंकि जीविका के साधन सीमित हैiअधिक बलशाली व्यक्ति अपनी जीवन-सामग्री जुटाकरजीवित रह जाते हैं, जबकि निर्बल प्राणी इस संघर्ष में नष्ट हो जाते हैंiकुछ व्यक्ति दूसरों की अपेक्षा अधिक बलशाली इसलिए होते हैं क्योंकि संयोगवश प्राप्त अपने कुछ वंशानुक्रमगतरूप के कारण वे स्वयं को परिस्थितियों के अनुरूप अथवा अपने पर्यावरण के अनुकूल सरलता से ढाल लेते हैं,लेकिन जिनमें उन गुणों का अभाव होता है वे नष्ट हो जाते हैंiकुछ व्यक्ति दूसरो की अपेक्षा अधिक बलशाली इसलिए होते हैं क्योंकि संयोगवश प्राप्त अपने कुछ वंशानुक्रमगत रूप के कारण वे स्वयं को परिस्थितियों के अनुरूप या अपने पर्यावरण के अनुकूल सरलता से ढाल लेते है,लेकिन जिनमे वे गुण नही होते वे नष्ट हो जाते हैंi जो व्यक्ति संघर्ष से बच जाते है उनके गुण वंशानुक्रमण द्वारा उनकी संतान में आ जाते है और इन विभिन्नताओ से वंचित हो जाने पर नवीन प्रजातियों का जन्म होता हैi

डार्विन के **योग्यतम की उत्तरजीविता** के सिद्धांत को स्वीकार करते हुए स्पेंसर ने अपने ग्रन्थ में **प्रिंसिपल ऑफ़ एथिक्स**में लिखा है , "निम्न कोटि के प्राणियों के भांति मनुष्य के बारे में वह नियम जिसके अनुसार आचरण करने पर एक प्राणीवर्ग जीवित रहता है ,यह है कि व्यस्को में से वो व्यक्ति जो स्वयं को अपने पर्यावरण के सबसे अधिक अनुकूल बना लेते हैं ,सबसे अधिक प्रगति करते हैं और जो सबसे कम अनुकूल बना पाते है वे सबसे कम अनुकूल बना पाते है वे सबसे कम प्रगति करते हैंi

लेकिन उपर्युक्त विचारो के द्वारा स्पेंसर डार्विन के प्राकृतिक चुनाव के जीवशास्त्रीय सिद्धांत को सामान्य रूप में ही स्वीकार करता हैi अनेक बातों में उसका डार्विन से मतभेद हैi वह डार्विन की भांति यह नहीं मानता कि प्राणियों में विभिन्नताएं संयोगवश आती हैi इसके विपरीत उसका कहना है कि वह परिवर्तन और अनुकूल या प्राणियों की यह विभिन्नताएं उद्देश्यपूर्ण होती हैiजीवित प्राणी स्वयं को पर्यावरण के अनुकूल बनाने का निरंतर प्रयत्न करते है और इन प्रयत्नों द्वारा नवीन कार्यों एवं विशेषताओं को विकसित करते रहते हैंi ये विशेषताएं वंशानुक्रम द्वारा एक संतति से दूसरे संतति में संक्रांत हो जाती हैंi डार्विन के विपरीत स्पेंसर सोद्देश्य विभिन्नताओं और उनके वंशानुक्रम द्वारा संक्रमण में विश्वास करता था और इस बात का उसके राजदर्शन पर गहरा प्रभाव पड़ाi

1.4.7.2. स्पेंसर के अनुसार विकास की प्रक्रिया

विकास प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए कहता है कि संपूर्ण विश्व की उत्पत्ति पदार्थ से होती हैi पदार्थ और दृश्य-जगत एक दूसरे से संबंधित हैiविकास केवल चेतना-जगत में ही नहीं होता बल्कि अचेतन या अजैविक जगत भी विकासशील हैi स्पेंसर ने अपने समकालीन वैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि प्रारंभिक अवस्था में विश्व अविरल रूप से गतिमान गैस से व्याप्त थाi धीरे-धीरे विकास की प्रक्रिया द्वारा उसमें परिवर्तन हुआ और ठंडा होने पर उसके अनेक टुकड़े हो गए जिनको ग्रह और उपग्रह कहा जाने लगाi कालांतर में गैस का यह अनिश्चित स्वरूप वाला गोला निश्चित स्वरूप वाला एवं ठोस हो गया और तापमान एवं वातावरण संबंधी परिस्थितियों केअनुकूल होने पर उस पर प्राणियों का विकास हुआiइस भांति भौतिक जगत से ही चेतन जगत का उदय एवं विकास हुआi19वीं शताब्दी के अनेक वैज्ञानिकों ने ईश्वर में विश्वास ना रखकर जीवन-शक्ति के विचार का प्रतिपादन किया थाiयह शक्ति स्थिर नहीं बल्कि गतिशील मानी गयी थीiयह कहा गया था कि निरंतर मानव-समाज उर्ध्व गति से प्रगति करता है, लेकिन इसका लक्ष्य स्पष्ट नहीं किया गया थाi स्पेंसर ने निरंतर विकास के सिद्धांत को स्वीकार कर व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार की पुष्टि करने के उद्देश्य से अपने राजदर्शन के सिद्धांतो पर इसका प्रयोग कियाiशक्ति के विनाश में विश्वास ना कर उसने हर चेतन और अचेतन वास्तु में शक्ति विद्यमान रहती है और इसी कारण उस वस्तु का विकास होता हैiइस शक्ति के स्वरूप में परिवर्तन हो सकता है लेकिन उसका विनाश नहीं हो सकताi

स्पेंसर जैविक और अजैविक जगत में विकास-प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए अतिजैविक जगत के विकास की भी चर्चा करता हैi अतिजैविक जगत से उसका तात्पर्य समाज और व्यक्ति से हैiउसके अनुसार व्यक्ति का मस्तिष्क शैशवास्था से व्यस्कावस्था तक विकसित होता रहता हैiइसी भांति समाज का विकास होता है , यद्यपि इसमें भी 'योग्यतम की विजय' का सिद्धान्त लागू होता है अर्थात वही समाज जीवित रह पाता है जो स्वयं को भौतिक वातावरण के अनुकूल बना लेता है और ऐसा करने में असमर्थ रहने वाला समाजविनष्ट हो जाता हैi स्पेंसर ने ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर अपने इस सिद्धांत की पुष्टि करने का प्रयास किया हैi

1.4.7.3. विकास की चार अवस्थाएं

स्पेंसर ने विकास-क्रम के संबंध को व्यक्त करते हुए लिखा है कि –"विकास गति के निरंतर विघटन एवं द्रव्य के संगठन का एक स्पष्ट रूप हैiइस क्रिया में एक अनिश्चित, अव्यवस्थित एवं पृथक स्थिति से द्रव्य एक निश्चित एवं सुव्यवस्थित तथा संयोजित अवस्था में परिवर्तित होता रहता हैiइसके साथ ही उस द्रव्य के अवरुद्ध गति भी समानांतर रूप से परिवर्तित होती रहती हैi" इस व्याख्या से स्पष्ट है कि पदार्थों के परिवर्तन की निम्नलिखित चार अवस्थाएं होती है, जिनके द्वारा प्रकृति का विकास होता रहता है-

- सरल से जटिल की ओर
- अनिश्चित से निश्चित की ओर
- अशक्त से सशक्त की ओर
- सजातीय से जाति विजातीय की ओर

स्पेंसर के अनुसार इन अवस्थाओं द्वारा ही विकास की प्रक्रिया चलती रहती हैi जैसे-सजातीय पदार्थ सदैव एक सा नहीं रह सकता, वह वाह्य प्रभावों एवं परिस्थितियों के फलस्वरूप अपना रूप निरंतर परिवर्तित करता रहता है और विजातीयता की ओर अग्रसर रहता हैiपर्वत श्रेणियां,समुद्र,नक्षत्र इसके उदाहरण हैi स्पेंसर ने कहा कि आदिम युग में मनुष्य और बंदर की आकृति और रहन-सहन एक ही प्रकार की थीiउसमें किसी भी प्रकार की विभिन्नता नहीं थी,पर व्यक्तियों ने स्वयं को उसी रूप में ढाल लिया जिसकी समय और परिस्थिति के अनुसार आवश्यकता थीiजीवन-संघर्ष में सफलता प्राप्त करने के लिए उन्होंने अभिनव वस्तुओं का प्रयोग किया जिसके फलस्वरूपउनमे अनेक गुणों का सूत्रपात हुआi बंदरो ने स्वयं में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया तथा वे अपने मूल रूप में ही रहेi

1.4.8. स्पेंसर का सामाजिक विकास का सिद्धांत

जीवन-पर्यंत व्यक्ति के अधिकारों की नीति का प्रबल समर्थक रहा, पर साथी ही समाज के सावयवी धारणा के प्रति भी उसके मन में गहरी आस्था थीiजिस तरह हाब्स ने सामाजिक समझौता सिद्धांत का राजाओं के निरंकुशवाद का समर्थन करने के लिए चातुर्यपूर्ण प्रयोग किया था , ठीक उसी प्रकार स्पेंसर ने विश्व-विकास और सामाजिक सावयव की भावना की सहायता रेडिकलवाद या व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों का समर्थन करने का प्रयत्न कियाi

राज्य का सावयव सिद्धांत स्पेंसर के मस्तिष्क की ही उपज हो ,ऐसी बात नहीं हैiयह सिद्धांत अत्यंत प्राचीन है जो राज्य एवं शरीर का संबंध स्थापित करते हुए यह प्रतिपादित करता है कि राज्य एक व्यक्ति के शारीरिक संगठन की भांति हैiराज्य की प्रकृति मानव-शरीर के समान है और जिस प्रकार शरीर के विभिन्न अंग भी पारस्परिक सहयोग एवं निर्भरता के साथ कार्य करते रहते हैं, ठीक उसी प्रकार राज्य के विभिन्न अंग भी परस्पर निर्भरता एवं सहयोग के साथ कार्य करते हैंiराज्य की उत्पत्ति के संबंध में यह सिद्धांत मौन हैi वस्तुतः यह सिद्धांत अपने आप में ही उतना ही प्राचीन है जितना राजनीतिक दर्शनi इस सिद्धांत का उल्लेख **प्लेटो** के लेखों में मिलता है जहां वह यह कहता है कि, "राज्य एक विस्तृत डील-डौल वाले व्यक्ति के समान हैi" उसने गणतंत्र की तुलना एक महामानव से की थी और कहा था कि राज्यएवं व्यक्ति के कार्य समानांतर होते हैंiउसने इस विभाजन का आधार मनुष्य की आत्मा के तीन नियमों बुद्धिमत्ता ,साहस और इच्छा को बताया थाi**अरस्तू** ने भी राज्य और मानव शरीर में समानता का प्रतिपादन किया थाiउसका दृढ़ विश्वास था कि व्यक्ति वास्तव में समाज का एक स्वभाविक अंग हैiरोमन विद्वान **सिसरो**ने लिखा है कि "राज्य के मुखिया का राज्य में वही स्थान है जो शरीर में आत्मा का होता हैi" ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार के प्रारंभिक दिनों में **संत पॉल** चर्च को ईसा मसीह का जीवित शरीर मानता थाiआधुनिक युग में **हाब्स** और **रूसो** ने राज्य के सावयवी स्वरूप पर बहुत ध्यान दियाi हाब्स ने राज्य की तुलना एक कल्पित महामानव या दैत्य से कीi रूसो ने विधान-मंडल को राज्य का ह्रदय तथा कार्यपालिका को राज्य का मस्तिष्क बतलाया थाi19वीं शताब्दी में राज्य का यह सावयवी सिद्धान्त बहुत लोकप्रिय हो गयाi

1.4.8.1 स्पेंसर के सामाजिक सहयोग सिद्धांत की व्याख्या

सावयव-सिद्धांत का सर्वाधिक वैज्ञानिक प्रतिपादन जिस व्यक्ति ने किया वह हरबर्ट स्पेंसर थाi उसकी सावयवी धारणा उसकी पुस्तक **सोशल स्टेटिक्स** और उसके निबंध **सोशल आर्गनिज्म** में प्रमुख रूप से पाई जाती हैi**प्रिंसिपल्स ऑफ सोशियोलॉजी** तथा **फैक्ट फॉर कमेंटस** नामक पुस्तक में उसने अपने विचारों को तर्क पूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया हैiप्लेटो ,अरस्तू और हाब्स आदि में से किसी ने भी राज्य को एक सावयव नहीं बतलाया थाiउनके लिए केवल राज्य का स्वरूप सावयवी था अर्थात उनका कहना था कि "राज्य जीव की तरह है" किंतु स्पेंसर ने राज्य को वास्तविक सावयव का स्वरूप दियाiउसने कहा कि "राज्य स्वयं एक जीवधारी हैi" स्पेंसर ने बहुत विस्तार से राज्य एवं शरीर में समानता स्थापित करने की चेष्टा कीi उसने राज्य और जीवधारी में जो समानताए प्रदर्शित की , वे इस प्रकार हैं-

- प्राणी-शरीर और समाज-शरीर दोनों का आरंभ सर्वप्रथम कीटाणुओं के रूप में हुआiइन दोनों में समान रूप से निरंतर वृद्धि की प्रक्रिया चालू रहती हैi ज्यों-ज्यों इनके अंगों का विकास होता है त्यों-त्यों इनका असादृश्य बढ़ता जाता है और इनकी बनावट में विशेष जटिलता आ जाती हैiसबसे क्षुद्र प्राणी के शरीर की बनावट बिल्कुल असाधारण होती हैi उसमे पेट,श्वास-नली या पसली के अतिरिक्त और कुछ नही होताi इसी प्रकार समाज अपनी अनुन्नत दशा में केवल बहादुरों , शिकारियों और भद्दे औजार बनाने वालो का एक समुदाय थाiलेकिन परिवर्तन के साथ समाज का विकास होता गया और उसमें जटिलता बढ़ती गईiजटिलता बढ़ने के साथ-साथ उसमें श्रम विभाजन होने लगा और औद्योगिक विकास का प्रादुर्भाव हुआi राज्य के विकास और ह्रास में भी वही नियम लागू होते हैं जो एक सावयव मेंi सावयव की भांति ही राज्य का भी किशोर,तरुण और वृद्धावस्था होती है और अंत में सावयव की भांति ही वह भी एक दिन विनष्ट हो जाता हैi
- स्पेंसर ने कहा है कि जिस प्रकार शरीर सावयवो से बना हुआ है जो उसे जीवन प्रदान करते हैं उसी प्रकार राज्य का निर्माण भी व्यक्तियों से होता है जिससे उसे जीवन प्राप्त होता हैi
- शारीरिक स्वास्थ्य शरीर के सावयव या सभी अंगों पर निर्भर होता हैiयदि किसी भी सावयव में कोई रोग हो जाता है तो सारे शरीर को कष्ट उठाना पड़ता हैi जिस प्रकार राज्य का स्वास्थ्य नागरिकों के स्वास्थ्य पर निर्भर हैiनागरिकों द्वारा कर्तव्य-पालन के अभाव में संपूर्ण राज्य को हानि होती हैiजिस प्रकार यदि अंग के निर्बल या बीमार होने से उसका प्रभाव संपूर्ण शरीर पर पड़ता है ,ठीक उसी प्रकार यदि राज्य के नागरिक अस्वस्थ या अशिक्षित होते हैं या व्यक्तिगत स्वार्थों से परिपूर्ण होते हैं तो समूचे राज्य के हितों पर उसका प्रभाव पड़ता हैi
- शरीर में भौतिक परिवर्तन होता रहता हैi जीर्ण-शीर्ण अंगो को पौष्टिक भोजन द्वारा नवीन एवं पुष्ट बनाया जाता हैiइसी प्रकार राज्य में भी परिवर्तन होता रहता हैiजिस प्रकार शरीर के स्नायु नष्ट होते रहते हैं और उनके स्थान पर नए स्नायु उत्पन्न होते रहते हैं, ठीक उसी प्रकार राज्य के निर्बल ,रोगी एवं वृद्धि मनुष्य नष्ट होते रहते हैं और उनका स्थान नवीन व्यक्ति लेते रहते हैंi
- शरीर के तीन मुख्य कार्य होते हैं -पोषण,वितरण और संचालनiमुख, पेट और आंते पोषण का काम करती हैi ये अंग भोजन पचाकर शरीर की रक्षा करते हैंi रक्त-नाड़ियाँ,शिराएँ, हृदय ,नसे आदि भोजन की वितरण का कार्य करती है और मस्तिष्क तथा स्नायु तंत्र द्वारा सुसंचालन का

कार्य होता हैiठीक इसी प्रकार का संगठन तथा कार्य-प्रणाली राज्य में विद्यमान हैiउद्योग एवं कृषि राज्य के पोषक अंग है तथा सरकार रूपी मस्तिष्क राज्य संचालन का कार्य करता हैi

- अंत में, एक शरीर की भांति समाज के किसी एक अंग की अधिक वृद्धि का अर्थ होता है दूसरे अंगों में वृद्धि में अवरोधiबड़े-बड़े भू-स्वामी और उद्योगपति श्रमिकों के शोषण के आधार पर स्थित हैiस्पेंसर ने समाज तथा समय में जो समानताएं देखी संक्षेप में है-
- दोनों ही लघु समूह से आरंभ होकर आकार में बढ़ते हैंi
- जैसे-जैसे वे बढ़ते जाते हैं उनमें प्रारंभिक सरलता के स्थान पर जटिलता आती जाती हैi
- इस बढ़ती हुई विभिन्नता के साथ उन दोनों के निर्णायक अंगो में परस्पर निर्भरता बढ़ती हैi प्रत्येक अंग का जीवन तथा साधारण कार्य संपूर्ण जीवन पर निर्भर हो जाता हैi
- संपूर्ण का जीवन, अंगों के जीवन की अपेक्षा पहले से कहीं अधिक स्वतंत्र हो जाता हैi

1.4.8.2. प्राणी और राज्य में विभिन्नताएं

हर्बर्ट-स्पेंसर ने प्राणी और राज्य में निम्नलिखित विभिन्नताएं दर्शायी है-

- पशु या मानव-शरीर के विभिन्न अंग मिलकर एक संपूर्ण शरीर की रचना करते हैं :यदि उन्हें शरीर से अलग कर दिया जाए तो वे सजीव नहीं रहते और बेकार हो जाते हैiअर्थात जीवधारी रचना का आकार ठोस है ,निश्चित है और उसकी इकाइयां परस्पर संबद्ध हैiइसके विपरीत सामाजिक शरीर खंडित है, उसका पशु या व्यक्ति के समान कोई निश्चित आकार नहीं हैiउसकी इकाइयों में परस्पर संपर्क तो होता है, पर उनमें उतना घनिष्ठ संबंध नहीं हैi वे बिखरी हुई हैi स्पेंसर के अनुसार सामाजिक शरीर की इकाईयाँ स्वतंत्र है और अधिक या कम विस्तृत रूप में बिखरी हुई हैi
- एक जीवित शरीर में चेतना शरीर के एक विशिष्ट भाग में केंद्रित होती हैiशरीर के विभिन्न अंगों की अपनी कोई पृथक-पृथक चेतना या इच्छाएं नहीं होतीi शरीर के केवल एक केंद्र में चेतना रहती हैiलेकिन जीवित शरीर के विपरीत समाज में चेतना का कोई एक केंद्र नहीं होता तथा व व्यापक रूप से समाज में फैली हुई होती हैiसमाज में प्रत्येक सदस्य की अपनी निजी चेतना होती हैiवह शैक्षिक कार्य करने में स्वतंत्र है जबकि जीवन के अंग इस दृष्टि से मस्तिष्क के पूरी तरह आधीन होते हैंi

यह भेद स्वीकार करते हुए भी स्पेंसर की यही मान्यता है कि राज्य एक जीवधारी रचना हैi इन भेदों के आधार पर ही उसने व्यक्तिवादी सिद्धांत का प्रतिपादन किया हैiउसके मत में चूँकि राज्य में चेतना का ऐसा एक केंद्र नहीं होता जैसा जीवधारी में होता है ,अतः राज्य को चाहिए कि वह व्यक्तियों को अपने हित-साधन के लिए पूरी स्वतंत्रता प्रदान करेंiसमाज का अस्तित्व सदस्यों के लिए है, सदस्य समाज के लिए नहीं हैiइस प्रकार स्पेंसर ने सावयव सिद्धांत को व्यक्तिवाद का आधार बनाकर विरोधाभास को जन्म दिया जो आज भी विवाद का विषय बना हुआ हैi

1.4.9. स्पेंसर का व्यक्तिवाद

स्पेंसर की व्यक्तिवादी विचारधारा का उसके राज्य-सम्बन्धी विचारो पर गहरा प्रभाव पड़ा हैi लेकिन विचित्र बात तो यह है कि अपने सावयवी सिद्धांत द्वारा भी उसने अपने व्यक्तिवादी विचारो का पोषण

करने की चेष्टा की और दोनों में ताल-मेल बैठाने का असफल प्रयत्न कियाi स्पेंसर ने व्यक्तिवाद पर अपने जो विचार प्रकट किये , वे मिल के व्यक्तिवादी विचारो से मिलते है i

व्यक्तिवाद का समर्थन स्पेंसर ने यह कहकर आरम्भ किया है कि राज्य के अस्तित्व का कारण मनुष्य की पूर्वजो से प्राप्त कुटिलता और अहमन्यता हैiराज्य रक्षक होने की अपेक्षा आक्रान्ता अधिक हैi स्वयं उसके शब्दों में, "चाहे यह सत्य हो या नहीं कि मनुष्य का पोषण असमानता में होता है और पाप के कारण वह जन्म लेता है ,लेकिन यह निश्चित रूप से सच है कि शासन का जन्म अत्याचार से होता है और पाप के कारण ही वह पनपता हैiराज्य का निर्माण लोगो की कुप्रवित्तियों का दमन करने और अन्य लोगो के अत्याचारों तथा धोखेबाजी से व्यक्ति की रक्षा करने के लिए किया जाता हैi नैतिक रूप से पूर्ण समाज में राज्य के अस्तित्व के लिए कोई ठोस तर्क नहीं रहताi"

स्पेंसर के व्यक्तिवादी विचारो का सार यह है कि व्यक्ति का विकास प्राकृतिक ढंग से उसी तरह स्वच्छंदतापूर्ण होना चाहिए जिस तरह मानव के अतिरिक्त किसी अन्य स्वतंत्र जीव का होता हैi मानव के मार्ग में समाज या राज्य एक बहुत बड़ी बाधा है जिसके द्वारा व्यक्ति का विकास संभव नहीं होता,प्रयुत रूक जाता हैi अतः व्यक्ति के विकास के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति पर राज्य का किसी भी तरह का नियंत्रण न होi एक शाश्वत सुख,समृद्धि और आनंद के लिए राज्य की समाप्ति ही श्रेयस्कर हैiराज्य की विधियों, परम्पराओं एवं तथाकथित सामाजिक नैतिकताओं के कारण व्यक्ति का स्वाभाविक विकास रूक जाता हैi अतः पुलिस एवं न्यायालयो के अतिरिक्त शासन के सभी अंगो को यथाशीघ्र समाप्त कर देना चाहिएi राज्य और समाज व्यक्तियों का समूह है , अतः उनका अस्तित्व व्यक्ति के अस्तित्व पर आश्रित हैi राज्य उन व्यक्तियों का समूह है जो अपनी अंतर्निहित शक्तियों के विकास और प्रयोग के लिए आवश्यक स्वतंत्रता की मांग करते हैi प्रत्येक की स्वतंत्रता दुसरो की समान स्वतंत्रता से सिमित होती है इसलिए स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए ही शासन का जन्म हुआ है और वही उसका मापदंड हैi स्पेंसर के अनुसार व्यक्ति के दो रूप है – वाह्य और आंतरिकi अपने वाह्य अस्तित्व में व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिए ताकि अपने आस-पास के वातावरण में वह संघर्ष द्वारा अपना उचित स्थान प्राप्त कर सकेi आंतरिक दृष्टि से व्यक्ति एक चेतना है जिसके विकास के लिए भी स्वतंत्रता की आवश्यकता है – ऐसी स्वतंत्रता जिसके द्वारा वह दूसरे व्यक्तियों की चेतना का उसी प्रकार सम्मान कर सकेi

स्पेंसर की मान्यता है कि राज्य में जितनी अधिक स्वतन्त्रता होगी वह राज्य उतना ही अधिक अच्छा होगाi उसके अनुसार राज्य एक ऐसी अनैतिक संस्था है जो भूतकालीन अवशेषों पर स्थित है और व्यैक्तिक स्वतंत्रता में सदैव हस्तक्षेप करती हैi राज्य की भांति ही अन्य अनेक अवशेष है और अपने अवशेषों को कायम रखने के लिए वे राज्य की सहायता चाहते है और इसलिए राज्य का समर्थन भी करते हैi

1.4.10. स्पेंसर के अनुसार राज्य के कार्य

स्पेंसर ने राज्य के कार्यो का वर्णन निषेधात्मक रूप से किया हैi राज्य को चाहिए कि वह स्वयं को -

- विधि व्यवस्था की रक्षा के लिए पुलिस-व्यवस्था
- वाह्य आक्रमणों और आंतरिक शांति की रक्षा के लिए सनिक संगठन
- अपराधियों को दण्ड देने के लिए न्यायलय व्यवस्था तक ही सिमित रखे

ये न्यूनतम कार्य हैi राज्य एक आवश्यक बुराई होते हुए भी ये कार्य उसे करने होंगेi शिक्षा,स्वास्थ्य, सफाई अदि की व्यवस्था व्यक्तियों द्वारा स्वयं की जाएगीi

स्पेंसर के अनुसार राज्य को उद्योगों का संचालन , किसी धार्मिक चर्च की स्थापना , गरीबो की सहायता, उपनिवेशों की स्थापना ,जनता-स्वास्थ्य के लिए चिकित्सालयों की व्यस्था और लोगो की शिक्षा का प्रबंध आदि नहीं करने चाहिएi राज्य का हस्तक्षेप केवल तभी मान्य है जब उसे शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त न होiराज्य की शिक्षा का प्रबंध होने पर रुढ़िवादी हितो की रक्षा होगी जो व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधक सिद्ध होंगेi

स्पेंसर ने विकास का स्पष्टतम लक्ष्य व्यक्तियों के जीवन में चलने वाला संघर्ष माना है जिसके द्वारा शक्तिशाली एवं योग्य व्यक्ति विजयश्री का वरण करते है तथा निर्बल एवं अयोग्य प्राणी काल कवलित हो जाते है, इसलिए राज्य अथवा समाज को इस संघर्ष को रोकने या दूसरे जाता शब्दों में सबलो की रक्षा करने के लिए कुछ नहीं करना चाहिए क्योंकि यदि राज्य निर्बलो की सहायतार्थ आगे आएगा तो संसार अयोग्य एवं निर्बल व्यक्तियों से भर जायेगा जिसमे सम्पूर्ण समाज को हानि उठानी होगीiअतः विकास की स्वाभाविक वृद्धि तथा व्यक्ति एवं पर्यावरण में पूर्ण सामंजस्य स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि राज्य मानवीय भावना से अपने को यथासंभव दूर रखेi राज्य का कार्य केवल समाज के सदस्यों को संगठित रखना और उनके राज्य के अस्तित्व विरोधी आचरण पर अंकुश लगाना है क्योंकि "राज्य को यदि संरक्षक समझा जाये तो देखा जाता है कि जैसे ही वह संरक्षण से अधिक कुछ करता है, वह आक्रान्ता बन जाता है और यदि उसे अनुकूलीकरण में सहायक समझा जाये तो जब भी वह सामाजिक संगठन को कायम रखने से अधिक कुछ करता है, अनुकूलीकरण की प्रक्रिया रूक जाती जाती हैi"

स्पेंसर की मान्यता है कि राज्य में न सिक्को की व्यवस्था होनी चाहिए , न डाकघरों कीiनोटों और सिक्को के आदान-प्रदान पर प्रतिबन्ध लगाना विनिमय तथा सामाजिक अधिकार के प्राकृतिक नियमो का हनन हैiसमुद्री जहाजो की कुशल यात्रा के लिए राज्य को प्रकाश-गृहो की भी व्यवस्था नहीं करनी चाहिएiराज्य को सफाई और जनकल्याण का भी कोई कार्य नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे योग्यतम की उत्तरजीविता के प्राकृतिक सिद्धांतो में बाधा पड़ती हैi यदि लोग स्वास्थ्य का महत्व समझेंगे तो स्वयं उसकी रक्षा करेंगेiस्पेंसर ने राज्य द्वारा सार्वजानिक प्रयोग एवं देश की सुरक्षा के आवश्यक भवन , सड़के, पुल आदि बनाने के अतिरिक्त अन्य वस्तु-निर्माण के कार्यो की भी निंदा कीi

स्पेंसर राज्य को अन्य उद्योगों की तरह ही एक उद्योग मानता है जिसका एक ही कार्य है- "सुरक्षा"iयह सुरक्षा भी प्राकृतिक संघर्ष को अवरुद्ध करती है, इसलिए वह कहीं तो इस सुरक्षा का समर्थन करता है और कहीं विरोधiराज्य के हस्तक्षेप को स्पेंसर ने स्पेंसर ने औद्योगिक क्षेत्र में सर्वाधिक महत्व दिया हैi उसको आर्थिक क्षेत्र पर राज्य को कोई भी नियंत्रण स्वीकार नहीं है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविका के लिए किसी भी साधन को अपनाने का अधिकार हैi

स्पेंसर का राज्य-सिद्धांत मुख्य रूप से उन कार्यो का उल्लेख करता है जो राज्य को तुरंत त्याग देने चाहिएiराज्य ने यह कार्य विधायको के पापों के कारण अपने सिर पर ओढ़ रखे है लेकिन विकास प्रक्रिया के साथ-साथ ये कार्य अनावश्यक हो जायेंगेi

1.4.10.1. विधायको के पाप

अपनी पुस्तक **सींस ऑफलेजिस्लेटर** मेंस्पेंसर ने उन त्रुटियों और भयंकरभूलो की ओर संकेत किया है जो सरकार ने भूतकाल में की थीiउसके अनुसार विभिन्न देशोंकी कानून संहिताए है दुःखद अनुमानों के संग्रह हैंiअधिकांश अधिनियम तत्कालीन प्रचलित अधिनियमों को सुधारने की दृष्टि से निर्धारित किए

गए हैंiयह इस बात का प्रमाण है कि जोअधिनियम पहले निर्धारित किए गए थे,अधूरे थे और ठीक नहीं थेi यही कारण है कि इन्हें सुधारनेके लिए नवीन कानून का निर्माण करना पड़ाi स्पेंसर का व्यक्ति में पूर्ण विश्वास है औरयही विश्वास उसमें संसद की संप्रभुता के प्रति और असम्मान उत्पन्न करता हैi उसका कहनाहै कि "भूतकाल का महान राजनीतिक अंधविश्वास राजाओं का दैवी अधिकार थाiवर्तमान काल का महान राजनीतिक अंधविश्वास संसदों के दैवी अधिकार हैंi" फिर से "हम फिर लौटकर उसी बात पर आते हैं कि संसदो (या विधान-मंडलों) के स्वैच्छिक दैवी अधिकार और बहुमत दल के दैवी अधिकार केवल अंधविश्वासी हीहैi श्वेतांगो ने राज्य के अधिकार के स्रोत के संबंध में प्राचीन धारणाओं को त्यागदिया है ,लेकिन राज्य की असीमित शक्ति के प्रतिपादन का लक्ष्य अब तक कायम हैiअसीमशक्ति की धारणा आधुनिक विचारधारा से मेल नहीं खातीiजनता पर असीमित शक्ति के अधिकार, जो सामान्यतः राजा को उप-ईश्वर की मान्यतादेने के कारण उसका स्वाधिकारी माना जाता था, आजकल शासन करने वाले नेता का अधिकार मानाजाता हैiयद्यपि आज नेता के देवत्व में किसी का विश्वास नहीं हैi भूतकाल में उदारवाद काकार्य राजाओं की शक्तियों को सीमित करना थाiभविष्य में सच्चे उदारवाद का कार्य संसदया विधान-मंडल की शक्ति की सीमा निर्धारित माना जाएगाi"

1.4.11. अधिकारों पर स्पेंसर केविचार

स्पेंसर व्यक्तिवादी विचारक था, अतः उसने अधिकारों के संबंध में व्यक्तिवादी दृष्टिकोण अपनायाiउसने कुछ अधिकारों का उल्लेखकिया जो व्यक्ति के लिए नितांत आवश्यक हैi इन्हें उसने प्राकृतिक अधिकारों की संज्ञादीiप्राकृतिक अधिकार स्पेंसर के विचारों का हृदय हैiउसके ग्रन्थ **प्रिंसिपल ऑफ सोशियोलॉजी**का आरंभ सामाजिक सावयव की धारणा से और अन्त प्राकृतिक अधिकारों से हुआ हैiसन 1824 मेंप्राकृतिक अधिकारों पर रचित उसके ग्रंथ **मैन वर्सेस द स्टेट** का प्रारंभ और अंत भी अधिकारोंके साथ हुआi

स्पेंसर के अनुसार प्राकृतिक अधिकारों द्वारा व्यक्ति को स्वतंत्रता पूर्वक जीवित रहने का अधिकारप्राप्त हुआ है ताकि वह अपनी नैसर्गिक शक्तियों का विकास कर सकेi वह स्वतंत्रता को शासन से पूर्ववर्ती मनाता हैi स्पेंसर ने प्राकृतिक अधिकारों की व्याख्या जर्मन शब्द **नेचररेक्ट** कीहै जो जर्मन-विधिशास्त्र का आधार हैi उसका विश्वास है कि जो ज्ञान जर्मनी जैसे उच्च दार्शनिक देश मेंप्रचलित है वह अवश्य ही पूर्ण होना चाहिएi

प्राकृतिक अधिकारोंके संबंध में स्पेंसर और लॉक की तुलना करना स्पष्टता की दृष्टि से उपयुक्त हैiलॉकके मतानुसार राज्य विहीन प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य को प्राकृतिक अधिकार प्राप्त थेi लेकिन उस समय इन प्राकृतिक अधिकारों की रक्षा के लिए कोई सर्वमान्य नियम नहीं थे औरना ही उनकी व्याख्या करने वाली कोई शक्ति थीi अतः विवाद एवं संघर्षग्रस्त अवस्थासे प्राकृतिक अधिकारों की रक्षा के लिए समझौतेद्वारा राज्य की उत्पत्ति का प्रतिपादन किया गयाiलेकिन लॉक की तरह स्पेंसरप्राकृतिक अधिकारों को अतीत की वस्तु नहीं मानताiउसका तर्क है कि भविष्य में ये अधिकारव्यक्तियों को औद्योगिक एवं अराजकतावादी समाज से प्राप्त होंगेiजैसे प्रत्येक व्यक्तिको जीने का अधिकार है और प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह दूसरों को जीने देiलेकिन यह अधिकार ऐसा है जो केवल **औद्योगिक समाज** में ही व्यक्तियों को दिया जा सकता हैiइस तरह स्पेंसर ने वर्तमान समाज के लिए प्राकृतिक अधिकारों को स्पष्ट नहीं किया बल्कि भावी समाज के प्राकृतिक अधिकार निर्धारित किए हैiवह जीवन,संपत्ति और व्यक्तिगत स्वातन्त्रय के अधिकारों को लॉक की भांति अतीत के आधार पर व्यक्ति को नहीं देता ,बल्कि उन्हें भावी

समाज में इन अधिकारों का उपयोगकरने के लिए देता हैi स्पेंसर लॉक के प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धांत का इसलिए विरोधकरता है कि लॉक के प्राकृतिक अधिकार स्थायी नियम हैi वे शाश्वत है जिनमें कोई परिवर्तननहीं हो सकताi समाज की प्रगति का प्रभाव इन पर नहीं पड़ताiस्पेंसर इन शाश्वत प्राकृतिक नियमोंको स्वीकार नहीं करता क्योंकि उसका सावयवी कारण और विकास में पूर्ण विश्वास हैiसमाज केपरिवर्तन के साथ-साथ नियमों में भी परिवर्तन होना ही चाहिएi

स्पेंसर व्यक्ति के अधिकारों को अपनी तथा अंतरवृत्तियों की अभिव्यक्ति के लिएसामान्य अधिकार का कृत्रिम विभाजन मानता हैiव्यक्ति के यह अधिकार प्राक-सामाजिक तथास्वभाविक है जो ईश्वर-प्रदत्त गुणों की भांति उसमें व्यक्तित्व में अंतर्निहित हैiउसके अनुसार अधिकार के व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक दो पक्ष हैi पहले पक्ष में वे अधिकार सम्मिलित होते हैं जो स्वयं व्यक्ति के जीवन से संबंधित होते हैंiइनकासंबंध व्यक्ति की संपत्ति और परिवार से होता हैi स्पेंसर भूमि के अधिकार कोस्वीकार नहीं करता लेकिन यह मानता है कि भूमि की उपज को व्यक्ति अधिकारपूर्वकअपनी कह सकता है क्योंकि "भूमि पर अपना श्रम लगाने से पूर्व उसने समाज की स्वीकृतिप्राप्त कर ली थीi" सार्वजनिक अधिकार राज्य या समाज से संबंधित हैiइनके अंतर्गतव्यक्तियों के उन अधिकारों का समावेश होता है जिनका संबंध व्यक्ति के निजी जीवन से नाहोकर संपूर्ण समाज से होता हैiस्पेंसर व्यक्तिके लिए तीन वास्तविक अधिकार निर्धारित करता है –

- जीवन रक्षा का अधिकार
- स्वतंत्रता का अधिकार
- सुख सुविधा का अधिकार

राज्य का यह कर्तव्य है कि इन अधिकारों की रक्षा करेंiसार्वजनिकअधिकारों के विषय में स्पेंसर की यह धारणा थी कि सरकार एक बुरी और अनैतिक संस्था है जो व्यक्तियों की स्वतंत्रतामें हस्तक्षेप करती हैiराज्य को चाहिए कि वह अपना हस्तक्षेप कम से कम करेंiसरकार कीउपेक्षा करना भी वह एक अधिकार मानता हैiउसके मत से राज्य तो परस्पर आश्वासन के लिएहै एक साझेदारी की व्यापारिक संस्था हैiव्यक्ति द्वारा प्राकृतिक अधिकारों का आबाध उपयोग राज्य की शक्ति को सीमित करता हैi

अधिकारों पर विचार करते समय इस स्पेंसर ने मानवतापर सर्वाधिक बल दिया हैiस्त्री-पुरुषों कोसमान आधार पर अधिकार दिए जाने चाहिएiस्त्रियों को मतदान का अधिकार देने की वकालतकरके स्पेंसर ने इस क्षेत्र में जान स्टुअर्ट मिल का मार्ग प्रशस्त किया हैi स्पेंसर की दृष्टि में समान स्वतंत्रता के नियम के अनुसार बालकों को भी समान स्वतंत्रतामिलनी चाहिएiउन पर अभिभावकों का कठोर नियंत्रणनहीं होना चाहिए और उन्हें भी वयस्कों की तरह अपने अधिकारों का उपयोग करने देना चाहिएiपरिवार के संबंध में स्पेंसर ने **नारीकी पराधीनता** की कठोर भर्त्सना कीi इस प्रकार से समानतासंबंधी उसके विचार उसे एक प्रगतिशील विचारक के रूप में प्रतिष्ठित करते हैंi

1.4.12. स्पेंसर के दर्शन की आलोचना

यद्यपिस्पेंसर का अध्ययन अत्यंत गंभीर और व्यापक है फिरभी वह अनेक त्रुटियों और असंगतियों से परिपूर्ण हैi स्पेंसर के दर्शन की निम्न आधारों पर आलोचना की जाती है-

स्पेंसर का दर्शनअसंगतियों और प्रवंचनाओं का पिटारा हैiवह व्यवस्थितएवंसंश्लिष्ट नहीं हैiजगह-जगह ऐसी मान्यताएं है जो परस्पर विरोधी हैi एक ओर तो स्पेंसर उग्रतम व्यक्तिवाद का समर्थन करता है दूसरी

ओर विकास-सिद्धान्त का समर्थन करते हुए सामाजिक सिद्धांतका उपदेश देता हैiएक ही प्रणाली में इन दो विरोधी धारणाओं को संयुक्त कर देना असंभव हैi

स्पेंसर की अंतिम संतुलन की धारणाआधुनिक विज्ञान को अमान्य हैi विकास एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया हैi इनमे प्रत्येक अनुकूलीकरणऐसी नवीन स्थितियां उत्पन्न करता है जिसके लिए नवीन अनुकूलीकरण आवश्यक होता हैiइसप्रक्रिया का कोई अंत नहीं हैiविज्ञान की यह धारणा स्पेंसर के समनव्यात्मक दर्शन केमूल पर कुठाराघात करती हैi

स्पेंसर ने अपने विकासवादी सिद्धांतके समर्थन में जो तर्क प्रस्तुत किए हैं वह काल्पनिकप्रतीत होते हैं क्योंकि तथ्यों द्वारा उनकी पुष्टि संभव नहीं हैi स्पेंसर का कहना है कि मानव शरीरआरम्भ में अमीबा जैसा था सत्य प्रतीत नहीं होता हैi

स्पेंसर ने विकासवादके साथ 'अस्तित्व के संघर्ष' तथा 'योग्यतम की उत्तरजीविता' संबंधी सिद्धांतों कोजोड़कर एक भयानक विचारधारा का प्रतिपादन किया हैiयह निश्चित ही एक अमानवीय विचार है कि शक्ति के संघर्ष में दुर्बल जीवो काअस्तित्व समाप्त हो जाता हैi ऐसा प्राकृतिक नियम हैiवस्तुतः मत्स्य न्याय का यह सिद्धांत समाजपर लागू नहीं होताi मनुष्य एक सभ्य प्राणी है और उसमें परोपकारी तत्व विद्यमान हैiसाथही राज्य का भी यह कर्तव्य है कि वह निर्बलो एवं साधनहीनो की रक्षार्थ विशेष उपाय करेंi राज्यअपने सभी घटकों को उन्नति और विकास के समान अवसर प्रदान करता हैi

स्पेंसर ने व्यक्तिवादके समर्थन में जो सावयवी तर्क दिए हैं वह भ्रमपूर्ण हैiआर्थिक हस्तक्षेप कीनीति का औचित्य यह कहकर सिद्ध नहीं किया जा सकता कि "आर्थिक जीवन-प्राणी सावयव केपाचनतंत्र की भांति मस्तिष्क रूपी शासन व्यवस्था से मुक्त होना चाहिएi" वास्तव में पाचन-प्रणाली मस्तिष्क से पूर्णतः स्वतंत्रनहीं है और यदि उसमें स्वतंत्रा आ जाती है तो स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकताiइसलिए राज्यमें भी आर्थिक व्यवस्था पर से राज्य के हस्तक्षेप को समाप्त नहीं किया जा सकता ,क्योंकि ऐसाकरने से सामाजिक जीवन में अनेक दोष आ जायेंगेi

स्पेंसर ने अंग और शरीर दोनों को प्राणीके रूप देने की गलती की हैi व्यक्ति और समाज दोनोंअभिन्न होने के कारण पृथक-पृथक प्राणी किस प्रकार हो सकते हैं ? शरीर का कोई भी एक अंग अलग प्राणीनहीं कहला सकताi

स्पेंसर समाज रूपीप्राणी के अली टुकड़े करता हैiइसीलिए बार्कर ने व्यंगात्मक भाषा में कहा है , स्पेंसर ने अपने सामाजिक प्राणी की हत्या कर उसे अनेकटुकड़ों में बांटकर दरवाजे के बाहर फेंक दिया हैi" समाज रुपी प्राणी के वह तीन टुकड़े करताहै -व्यक्ति, औद्योगिक क्षेत्र और राज्यiऔद्योगिक क्षेत्र इस जीव का उदर है क्योंकि उससे संपूर्ण समाजका भरण-पोषण होता हैi राज्य इस जीव का नाड़ी-संस्थान है जिसके द्वारा संपूर्णवाह्य व्यवस्था का संरक्षण और समाचार संस्थान एवं यातायात का प्रबंध होता है अर्थात वमस्तिष्क हैiइसके बाद मस्तिष्क और उदर को एक-दूसरे से स्वतंत्र कर दिया जाता हैiउदरपर मस्तिष्क का कोई नियंत्रण नहीं रहताiयह नियंत्रण उसी तरह नहीं रहता जिस तरह 'धमनीऔर शिराओ' या रेल की पटरी और टेलीफोन के तारों में नहीं रहताiस्पेंसर का कहना है कियद्यपि रेल की पटरी और टेलीफोन के तार एक-दूसरे के समानांतर और साथ-साथ चलते हैं फिर भी उनमे कोई सम्बन्ध नहीं होताiठीकउसी तरह राज्य और औद्योगिक क्षेत्र साथ-साथ चलते हुए भी एक दूसरे से सर्वथा स्वतंत्र रहकर अपने अस्तित्व को कायम रख सकते हैंiउसके सिद्धान्त की यह सबसे बड़ी विफलता है क्योंकि"वह अपने प्राणिशास्त्र के सिद्धान्त द्वारा पराजित हो जाता हैi"

सावयवी सिद्धान्त ही वह धुरी हैजिसके चारों ओर स्पेंसर का राजनीतिकचिंतन चक्कर लगाता है लेकिन आलोचकों ने इस धुरी की अच्छी तरह खबर ली हैi स्थूल रूप से जीवितशरीर के साथ राज्य की तुलना करना भले ही आपत्तिजनक न हो ,लेकिन शरीर के अंग प्रत्यंग की राज्यसंबंधी बातों से तुलना करने पर कठिनाई पैदा हो जाती हैiशरीर एक ठोस वस्तु हैजबकि राज्य एक भावात्मक संस्था हैi
स्पेंसर का सावयव सिद्धान्त राज्य की निरंकुशता का प्रतिपादक हैiयदि यह बात स्वीकार कर ली जाए कि राज्य एक पूर्ण अंग है और व्यक्तित्व जीवकोष के समान है तो इसका स्वाभाविक अर्थ है कि व्यक्ति राज्य के लिए है ,ना कि राज्य व्यक्तिके लिएi

स्पेंसर की अधिकार सम्बन्धी धारणा भी बहुत दोषपूर्ण हैi एकओर तो वह प्राकृतिक अधिकारों की कटु आलोचना करता हैऔर दूसरी और भविष्य के औद्योगिक समाज में उसकी विद्यमानता को स्वीकार करता हैiइस प्रकार उसके सिद्धान्त में द्वन्द खड़ा हो जाता हैi एक ही बात को वह एक बार तो स्वीकार करता हैऔर दूसरी बार अस्वीकारi

1.4.13. सारांश

अनेक कमियों के बावजूद स्पेंसर 19वीं शताब्दी केविकासवादी चिंतन का प्रमुख दार्शनिक और वैज्ञानिक व्यक्तिवाद का महान प्रवक्ता थाi स्पेंसर का अध्ययन गम्भीर और विशाल थाiसाम्यवादी होने के नाते उसकी तुलना अरस्तू ,हीगल,और काम्टे से की जा सकती हैiयदि बौद्धिक विशुद्धता की ओर ध्यानदिया जाए तो संभवतः स्पेंसर**कार्लमार्क्स**कीअपेक्षा अधिक विद्वान थाiमार्क्स तीन खंडों में**दास कैपिटल** लिखा तो स्पेंसर ने तीन खंडों के**समाजशास्त्र के सिद्धांत** की रचना कीiअपने ग्रंथों में समाजशास्त्रीय अनुसंधान में उसनेविकासवाद को अत्यधिक प्रश्रय दियाi
स्पेंसर के व्यक्तिवाद को अमेरिका में **सुमनर** नेप्रचारित कियाiउदारवादी परंपरा में स्पेंसर का महत्व विशेषतः इस बात में है कि उसनेवैज्ञानिकों का आधार ग्रहण कर और राज्य की हिंसात्मक एवं पापात्मकता की ओर ध्यान आकर्षितकर उग्र व्यक्तिवाद का पोषण किया हैiप्रारंभिक उदारवाद का संबंध मानववाद के साथ था, लेकिन स्पेंसर ने उदारवाद को वैज्ञानिक आधार प्रदान कियाiइस तरह प्राणिशास्त्र सम्मत उदारवाद का निर्माण हुआi
स्पेंसर के दर्शन के महत्व का मूल्यांकनप्रस्तुत करते हुए **फ्लूगल**का कथन है– " स्पेंसर एक महान विचारक था तथा जीवन के तथ्योंके बीच संबंध स्थापित करने की उसकी प्रबल आकांक्षा थीi**डार्विन**के समान वह प्रकृति के निकट संपर्कमें नहीं रहा, फिर भी उसके विचारों की महानता औरउत्कृष्टता कि आज तक कोई नहीं कर सका हैi

1.4.14. अभ्यास /बोधात्मक प्रश्न

1.4.14.1. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

- स्पेंसर के सावयव सिद्धांत की विवेचना कीजियेi
- स्पेंसर का व्यक्तिवाद क्या है ?
- राज्य के कार्यो के सम्बन्ध में स्पेंसर के क्या विचार है ?
- स्पेंसर के प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धांत को बताइएi
- राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में स्पेंसर का योगदान बताइएi

1.4.14.2. लघु उत्तरीय प्रश्न

- स्पेंसर की कृतियों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए¡
- स्पेंसर के सावयव के सिद्धांत की उपयोगिता बताइए¡
- स्पेंसर ने सैनिक और औद्योगिक समाज के बारे में क्या विचार दिया है ?
- स्पेंसर के विकासवाद को संक्षेप में बताइए¡
- स्पेंसर के विचारो का स्रोत क्या है ?

1.4.14.3. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. किसको समाजशास्त्र का अंग्रेज पिता कहा जाता है-

(अ) बेन्थम

(ब) स्पेंसर

(स) मिल

(द) जेम्स मिल

2. हर्बर्ट स्पेंसर का जन्म हुआ था -

(अ) 1821

(ब) 1819

(स) 1820

(द) 1818

3.स्पेंसर किस कृति को आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है -

(अ)शासन का समुचित क्षेत्र

(ब) प्राणीशास्त्र के सिद्धांत¡

(स) प्राणीशास्त्र के सिद्धांत¡¡

(द) प्रथम सिद्धांत

4.समाजशास्त्र , मनोविज्ञान , प्राणीविज्ञान, राजनीति के अतिरिक्त वह किस विधा में कुशल था -

(अ) भौतिकी में

(ब)साहित्य में

(स)संगीत में

(द) सिविल इन्जीनयरी में

5. स्पेंसर किस का शिष्य था -

(अ)लेमार्क

(ब)डार्विन

(स) टामस स्पेंसर

(द) इनमे से कोई नहीं

1.4.14.4. बहुविकल्पीय प्रश्नो के उत्तर

1.(ब) स्पेंसर
2. (स) 1820
3.(द) प्रथम सिद्धांत
4.(द) सिविल इन्जीनयरी में
5. (अ)लेमार्क

1.4.15. कठिन शब्द

कतिपय- कुछ
अभिनव- बिलकुल नया
उद्गम- उत्पति
अहमन्यता- स्वयं की भावना

1.4.16. संदर्भ ग्रंथ सूचि

- डा. अनूप चंद कपूर , प्रिंसिपल ऑफ़ पोलिटिकल साइंस,1950 ,एस. चंद एवं कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड, राम नगर ,नई दिल्ली,आईएसबीएन-978-81-219-0276-2
- डा. बी. एल. फड़िया, पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन ,साहित्य भवन पब्लिकेशन ,आगरा ,1992 , आईएसबीएन-978-93-5173-312-6
- डा. आर.के.आनंद,डा. जीवन महता, डा. एन. डी.अरोड़ा,राजनीति विज्ञान के सिद्धांत ,साहित्य भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.)लि.,2007
- जीवन महता, राजनीतिक चिंतन का इतिहास, साहित्य भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.)लि.,2008 ,आईएसबीएन-978-93-5073-409-9
- डा. भूपेश मणि त्रिपाठी, राजनीतिक सिद्धांत,स्व प्रकाशित ,2013, आईएसबीएन-978-93-5087-469-1
- डा. पुखराज जैन,राजनीतिक चिंतन का इतिहास,2006, साहित्य भवन पब्लिकेशन,आगरा, आईएसबीएन-81-7288-031-6
- डा. सुरेश चन्द्र सिंहल, प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा
- डा. जे.सी. जौहरी,राजनीति विज्ञान,एस बी पी डी पब्लिकेशन,आगरा आईएसबीएन-978-93-5167-451-1
- डा. प्रभुदत्त शर्मा,पाश्चात्य राजनीतिक विचारो का इतिहास,कालेज बुक डिपो,जयपुर,आईएसबीएन-81-85788-02-2
- ए डी आशीर्वादम, कृष्णकांत मिश्र,राजनीति विज्ञान 2016, एस. चन्द एंड कंपनी (प्रा.) लिमिटेड, रामनगर, नई दिल्ली, आईएसबीएन-978 -81-219-0896-2

खंड–2 आदर्शवादी चिन्तन

इकाई–1 आदर्शवाद का उदय "आदर्शवाद का उदय : इमैनुएल काण्ट के राजनीतिक विचार"

इकाई की रुपरेखा

2.1.1. उद्देश्य
2.1.2. आदर्शवाद का उदय
2.1.3. प्रस्तावना
2.1.4. काण्ट के दार्शनिक विचार
2.1.5. मानव स्वभाव की अवधारणा
2.1.6. राज्य का औचित्य समान स्वतंत्रता का सिद्धान्त
2.1.7. काण्ट की नैतिक स्वतंत्रता
2.1.8. राज्य का कर्त्तव्य
2.1.9. शक्ति पृथ्थकरण की धारणा
2.1.10. इतिहास दर्शन
2.1.11. सारांश
2.1.12. अभ्यास / बोधप्रश्न
2.1.13. कठिन शब्दावली
2.1.14. संदर्भ ग्रंथ सूची

2.1.1. उद्देश्य

इस इकाई के आदर्शवादी दार्शनिक इमेनुअल काण्ट के विचारों के विविध पक्षोंपरप्रकाश डाला जायेगा।

- आदर्शवाद को समझ सकेंगे।
- कांट के दर्शन की पृष्ठभूमि का विवेचन कर सकेगे।
- काण्ट के विचारों का विभिन्न आयाम (मानव स्वभाव, नैतिक स्वतंत्रता, राज्य,प्रभुसत्ता, गणतंत्र, शक्ति पृथ्थकरण को समझ पायेगे)।
- एक दार्शनिक के रुप में मूल्यांकन करेंगे।

2.1.2. आदर्शवाद का उदय

राज्य का आदर्शवादी सिद्धान्त राज्य की समस्याओं को दार्शनिक ढंग से सुलझाने काप्रयास करता है। आदर्शवाद अंग्रेजी केपdealism शब्द का अनुवाद है वह dea शब्द से बना है। आइडिया शब्द का अर्थ विचार होता है। इसलिए dealism शब्द का अर्थ विचार संबंधी होता है। राजनीतिक दृष्टि से आदर्शवाद किसी यथार्थ राज्य का विवेचन नही करताप्रत्युत विचार जगत के राज्य अथवा आदर्श राज्य का विवेचन करता है। यह सिद्धान्त बतलाता है कि राज्य का आदर्श क्या है, इसे कैसा होना चाहिए, चाहे वह अपने लक्ष्य से दूर क्यों न हो। इस सिद्धान्त के अनेक नाम हैं जैसे– दार्शनिक सिद्धान्त (Philosophical theory)

चरमतावादी सिद्धान्त (Absolutist theory) नैतिक सिद्धान्त (Ethical theory) आध्यात्मिक सिद्धान्त (Metaphysical theory) और राज्य का आदर्शवादी नैतिक सिद्धान्त (idealistic Ethical theory of state) औरप्रत्ययवाद आदिप्रमुख हैं। इसके विभिन्न नामों के कारण आदर्शवाद के विभिन्न विचारको की आदर्श राज्य के सम्बंध में भिन्न–भिन्न धारणाएँ हैं। इस सिद्धान्त और विचारधारा केप्रतिपादक काण्ट, हीगल, ग्रीन, बोसांकेप्रमुखतया थे। इन आदर्शवादियों ने राज्य संबंधी समस्याओं का दार्शनिक दृष्टिकोण से अध्ययन विवेचन किया है।

आदर्शवादियों के अनुसार राज्य मनुष्य की आंतरिक मनोवृत्ति का हीप्रकट और व्यापक रुप है अतः राज्य और व्यक्ति में कोई विरोध नही हो सकता है राज्य एक नैतिक और आध्यात्मिक संस्था है इसका कार्य व्यक्ति के बाहरी क्रियाकलापों को नियन्त्रित करना ही नही अपितु व्यक्ति को नैतिक बनाना है। इस उद्देश्य कीप्रापित हेतु राज्य को अधिकार है कि वह मनुष्य के समस्त क्रियाकलापों को नियंत्रित कर सके। आदर्शवाद के अनुसार राज्य के अधिकार और उसका कार्यक्षेत्र असीमित है तथा व्यक्ति को राज्य के विरुद्ध कोई भी अधिकारप्रापत नही हो सकता।

एक व्यवस्थित अवधारणा के रुप में आदर्शवाद का क्रमिक विकास हुआ है यद्यति आधुनिक काल में आदर्शवाद काप्रतिपादन 18वीं सदी के कुछ जर्मन दार्शनिकों तथा काण्ट तथा हीगेल द्वारा हुआ था किन्तु राज्य दर्शन के लिए यह नवीन विचारधारा नही थी इसका इतिहास ग्रीक दर्शन से ही आरंभ हो जाता है जहाँ सुकरात,पलेटो, अरस्तू जैसे विचारकों ने इसकाप्रतिपादन किया। यूनानी विचारकपलेटो ने इसे व्यवस्थित सिद्धान्त का रुप दिया।पलेटो के अनुसार राज्य मनुष्य के मस्तिष्क का ही वृहद् रुप है। उसने लिखा कि राज्य का जन्म वृक्ष चट्टानों से नही होता। वह तो उन विवेकशील मनुष्यों के कार्यों कापरिणाम है जो इसके निवासी हैं। दूसरे शब्दों में राज्य मनुष्य के मस्तिष्क का विकसित रुप हैपलेटो के विचारों का उसके शिष्य अरस्तु ने अनुसरण किया। उनका कहना था कि 'राज्य जीवन के लिएपैदा होता है और वह श्रेष्ठ जीवन के लिए बना रहता है।पलेटो और अरस्तू का विचार था कि मनुष्य राज्य सेपृथक नही रह सकता है जोपृथक रह सकता है वह या तोपाशु है अथवा देवता। इसप्रकार युनानी विचारक राज्य को व्यक्ति की अपेक्षा अधिक महत्व देते थे। वे व्यक्ति को राज्य के आश्रित मानते थे। उनका विचार था कि व्यक्ति अपनी समस्त आकाँक्षाओं कीपूर्ति केवल राज्य मे ही कर सकता है। इसप्रकार आधुनिक आदर्शवादी विचारधारा काप्रथम आधारपलेटो तथा अरस्तू के लेखों में मिलता है।पलेटो और अरस्तू के इन विचारों की सादृश्यता भारत केप्राचीन मनीषीयों के विचारों में देखी जा सकती है जिन्होंने यह कहा कि राज्य संस्था के अभाव में व्यक्ति का जीवन संभव नही है। उनके अनुसार– राज धर्म के आधारपर मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन संचालित हो सकता है इसके अंतगर्त अन्य सभी धर्म समा सकते है तथा इसपर ही सभी धर्म आश्रित है। 17वीं शदी केपुर्नजागरण काल में आदर्शवाद के दर्शन होते है। थॉमस मूर नेपलेटो के आदर्शवादी राज्य की कल्पना सेप्रभावित होकर अपनीपुस्तक Utopia की रचना

की थी। आधुनिक काल में आदर्शवाद कापुनरुत्थान रुसों ने किया। रुसो ने अपनीपुस्तक Social contract में राज्य को आदर्श नैतिक संस्था बताया है जो व्यक्ति की सामान्य इच्छा (General will) पर आधारित है। सामान्य इच्छा का सिद्धान्त रुसो की विशिष्ट देन है। रुसों के दर्शनपरपलेटो का बहुत अधिकप्रभाव है औरपलेटो के समान ही वह इस विचार काप्रतिपादन करता है कि व्यक्ति नैतिक जीवन कीप्रापित राज्य के अन्दर रह कर ही कर सकता है।रुसों के उपरांत जर्मनी आदर्शवाद का केन्द्र बन गया। इसका मूल कारण यह था िकइस क्षेत्र में राष्ट्रीयता की भावनाप्रबल रुप से विद्यमान होते हुए भी उस समय तक राष्ट्रीय राज्यों का उदय नही हुआ था। फ्रांस की राज्य क्रांति सेप्रभावित जर्मन जनता के केन्द्रीय व्यवस्था संबंधी विचारों को केवल आदर्शवादी धारणाएँ ही संतृष्टि दे सकती थी। जर्मनी के आदर्शवादी लेखक हें– काण्ट, फिक्टे, हीगेल। काण्ट के दर्शन में आदर्शवाद में उदारवादी तत्वपर्यापत मात्रा मेंपाये जाते हैं यह उदारवादी तत्व हीगेल मेंपूर्णतया समापत हो जाते हैं।

आदर्शवाद जर्मनी से इंग्लैण्ड में आया और उसे कार्लायल कालरिज आदि कवियों ने अपनाया। तत्पश्चात ग्रीन, बोसांके और ब्रैडले आदि विचारकों ने इस सिद्धान्त काप्रतिपादन किया। ग्रीन की दृष्टि में ''राज्य एक नैतिक संवास है किन्तु यह निरंकुश और सर्वशक्तिमान संवास नही है क्योंकि इसका आधार शक्ति नही इच्छा है।'' (will not forceis the basis of state)

ग्रीन ने मानव चेतना के माध्यम से राज्य की उपयोगिता सिद्ध करने की चेष्टा की। राज्य व्यक्ति केपूर्ण नैतिक विकास में योगदान करता है। ब्रैडले ने राज्य की उपयोगितापर बल देते हुए कहा है कि मनुष्य जो कुछ भी है समाज के कारण है तथा यह समाज एक कोरी कल्पना नही यथार्थ है स्वपन नही संभावना है। राज्य के अधीन रहकर ही व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है।प्रथम विश्वयुद्ध केपाश्चात जर्मनी मे नाजीवाद तथा इटली में फासीवाद का उदय हुआ था इन दोनों विचारधाराओंपर आदर्शवाद की छाप थी यद्यपि आज आदर्शवाद राज्य का कोईप्रभावशाली सिद्धान्त नही है फिर भी उसके समर्थक संसार के हर कोने मेंपाये जाते हैं। आदर्शवादियों को दो श्रेणी में वर्गीकृत किया जा सकता है। उग्र आदर्शवादीयों ने राज्य को निरंकुशतावादी, सर्वाधिकारवादी स्वरुपप्रदान किया है जबकि उदार आदर्शवादियों ने इसे ऐसे नैतिक स्वरुपप्रदान किया है जिसके अंतगर्त वह लोकतंत्री तथा लोककल्याणकारी स्वरुप बनाए रखने में समर्थ रह सके। आदर्शवादी चिंतकों ने राज्य का दार्शनिक ऐतिहासिक तथा नैतिक आधारप्रस्तुत करते हुए राजनीतिक चिंतन को एक नया रुपप्रदान किया है।

आदर्शवाद की आधारभूत मान्यताएँ :– आदर्शवादी राज्य की सर्वोच्चता के सिद्धान्तपर विश्वास करता है। आदर्शवादी चिंतन की अनेक विशेषताएँ है जो इसप्रकार है–

मनुष्य एक सामाजिकप्राणी है– आदर्शवाद मनुष्य को एक सामाजिक अथवा राजनीतिकप्राणी समझता है क्योंकि वह अपनी अंतर्निहित शक्तियों का विकास राज्य के माध्यम से करता है। कोई भी व्यक्ति यदि राज्य के बाहर रहेगा तो वह एक

विवेकहीन तथा सीमितप्राणी मात्र बनकर रह जायेगा।पलेटो की Republic तथा अरस्तू के Politics का भी यही स्वर है। आदर्शवादी सिद्धान्त व्यक्ति तथा समाज में एक सजीव तथा सायवी संबंध मानता है उनके अनुसार व्यक्ति को अपना मूल्य तथा महत्व समाज द्वाराप्रापत होता है।

राज्य एक नैतिक संस्था है – आदर्शवादी राज्य को एक नैतिक संस्था मानते हैं। उनके अनुसार राज्य अपने आप में संपूर्ण है तथा उसमें निवास करने वाले सभी व्यक्ति उसकेपूरक हैं।पलेटो के अनुसार राज्य एक नैतिक एकता है। अरस्तू के अनुसार ''राज्य का अस्तित्व जीवन के लिए है और इसकी निरंतरता अच्छे जीवन के लिए है।'' काण्ट के अनुसार राज्य एक नैतिक संवास है जिसका उद्देश्य व्यक्तियों के लिए नैतिक व न्यायसंगत जीवन को संभव बनाना है। हीगेल के अनुसार ''राज्यपृथ्वीपर ईश्वर का ही अवतरण है।'' इस तरह आदर्शवादी चिंतन में व्यक्ति के नैतिक उद्देश्यों कीप्रापित के लिए राज्य को आवश्यक माना गया है।

राज्य का अपना लक्ष्य एवं व्यक्तित्व होता है – आदर्शवाद के अनुसार राज्य एक ऐसा साध्य है जिसके विकास हेतु व्यक्ति को अपना त्याग करके भीप्रयत्नशील रहना चाहिए। व्यक्ति को अपने विकासार्थ राज्य की अधीनता में रहना चाहिए। इस तरह आदर्शवादियों ने राज्य की सर्वोपरिता सिद्ध करने केप्रयास में व्यक्ति कोपूर्ण रुप से राज्य में विलिन कर दिया है। रुसो का कहना है कि राज्य के आदेशों कापालन की कड़ी में व्यक्ति अपने ही आदेशों कापालन करता है। हीगेल के शब्दों में व्यक्ति के ऊपर राज्य कापूरा अधिकार है तथा बदले में मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य है कि वह राज्य का सदस्य रहे। हाबहाऊस की दृष्टि में आदर्शवादियों का राज्य एक महानप्राण एक आत्मा एक श्रेष्ठ वैयक्तिक इकाई है जिससे मनुष्य अपनी निजी चेतना तथा अधिकारों की माँग के साथ रहता है और इसप्रकार उनकीप्रसन्नता यापीड़ा मात्र अधीनस्थ तत्व है।

राज्य का आधार शक्ति नही अपितु इच्छा है – आदर्शवाद के अनुसार राज्य का आधार शक्ति या बल नही वरन् इच्छा है। व्यक्ति राज्य के कानूनों कापालन इसलिए नही करते हैं कि राज्य उसे बलपूर्वक मनवा सकता है बल्कि इसलिए करते हैं कि वास्तव में राज्य शक्ति के कानून व उसके आदेश उस सामान्य इच्छा के मूर्त रुप होते हैं। ग्रीन के अनुसार यदि राज्य उत्पीड़न करके अपनी आज्ञाओं कापालन कराता है तो वह राज्य कभी भी स्थायी नही हो सकता।

राज्य आंतरिक एवं बाह्य रुप से सर्वशक्तिमान है – राज्य वह सर्वश्रेष्ठ संगठन है जिसके ऊपर किसी भीप्रकार का कोई बंधन नही होता। यह नैतिकता का संरक्षक है तथा सर्वशक्तिमान संस्था है। इसकी सीमा में इसके आदेशों कापालन सभी के लिए आवश्यक है। राज्य की सीमा में राज्य के आदेश सर्वत्र एक जैसेप्रभावी है। बाह्य दृष्टि से राज्यपर कोईप्रतिबंध नही होता। यह अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपना संबंध तथा नीतियाँ सुनिश्चित करने के लिएपूर्ण स्वतंत्र एवं सक्षम होता है। हीगेल तथा बोसांके जैसे आदर्शवादियों के अनुसार राज्य के विराट रुप कापूर्ण दिग्दर्शन हमें युद्ध की अवस्था में दृष्टिगत होता है। ग्रीन ने युद्ध को आवश्यक नही

माना है। उग्र आदर्शवादियों के अनुसार युद्ध भी कोई बुरी बात न होकर एक अनिवार्य वस्तु और राज्य के उत्कर्ष का एक उपयोगी साधन है।

मानव स्वतंत्रता राज्य के आज्ञापालन में ही निहित है– आदर्शवादी राजकीय बन्धनों के अभाव को स्वतंत्रता नही समझते और इस सम्बंध में उनका विचार है कि जिसप्रकार कुरुपता के अभाव का अर्थ सुन्दरता नही है, उसीप्रकार बन्धनों का अभाव का अर्थ स्वतंत्रता नही है। ये सकारात्मक स्वतंत्रता के उपासक हैं और उनका विचार है कि वास्तविक स्वतंत्रता राजकीय बंधनोंके आधारपर हीप्रापत की जा सकती है। स्वतंत्रता का उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए अधिकाधिक अवसरप्रदान करना है और ये अवसर राज्य के द्वारा हीप्रदान किये जा सकते हैं। अतः मानव की वास्तविक स्वतंत्रता राज्य की आज्ञापालन में ही निहित है। बन्धनों के अभाव में तो स्वतंत्रता केवल शक्तिशाली व्यक्तियों का विशेषाधिकार मात्र बनकर रह जाती है। स्वतंत्रता की राज्यपर निर्भरता के सम्बंध में आदर्शवादी दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुएप्रो0 बार्कर अपनी तार्किक शैली में लिखते हैं कि ''मानवीय चेतना स्वतंत्रता को जन्म देती है, स्वतंत्रता में अधिकार का भाव निहित है और अधिकार (अपनी रक्षा हेतु) राज्य की माँग करते हैं।''

राज्य अधिकारों का जन्मदाता है– आदर्शवादी, व्यक्तिवादियों या अनुबन्धवादियों की भांति राज्य सेपूर्वप्राकृतिक अधिकारों के अस्तित्व को स्वीकार नही करते हैं। वे अधिकारों को मानव जीवन की ऐसी बाह्यपरिसिथतियाँ मानते हैं जिनके द्वारा व्यक्ति का आन्तरिक विकास सम्भावित होता है और राज्य ही एकमात्र ऐसी संस्था है जो व्यक्ति के आंतरिक विकास हेतु आवश्यक बाह्यपरिसिथतियाँ उत्पन्न कर सकती है। आदर्शवादी राज्य को ही अधिकारों का जन्मदाता और नैतिक अभिभावक मानते है तथा उनका विश्वास राज्य के द्वारा ही उनके अधिकारों के संरक्षण में है।

व्यक्ति और राज्य में कोई विरोध नही– आदर्शवादी व्यक्ति और राज्य केपारस्परिक सम्बंध के विषयपर सावयव सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं और उनका विचार है कि जिसप्रकार अंग और शरीर के हितों में कोई विरोध नही होता, उसीप्रकार व्यक्ति और राज्य में भी कोई विरोध सम्भव नही है। आदर्शवाद के अनुसार व्यक्ति के वास्तविक हित वही हैं जिन्हें राज्य द्वारा उनका हित समझा जाय। व्यक्ति व राज्य के हितों में विरोध केवल भ्रमवश ही हो सकता है और ऐसी सिथति में जब कभी भी व्यक्ति और राज्य के हितपरस्पर विरोधी रुप में उपसिति हों तो राज्य के हितो को उत्कृष्ट व महत्वपूर्ण समझते हुएप्राथमिकता दी जानी चाहिए।

राजनीतिक और नैतिक कर्त्तव्यों में कोई अन्तर नही– आदर्शवादी राजनीतिक और नैतिक कर्त्तव्यों में कोई अन्तर नही मानते हैं। काण्ट के अनुसार कर्त्तव्य का सम्बंध मानव की आन्तरिक चेतना से है और राज्य मानव की आन्तरिक चेतना की ही व्यापक अभिव्यक्ति है, अतः राज्य केप्रति हमारेप्रत्येक कर्त्तव्य का नैतिक होना आवश्यक है। जो वस्तु नैतिक रुप से गलत है वह कभी भी कानूनी रुप में सत्य नही हो सकती है।

2.1.3. प्रस्तावना

आधुनिक युग में आदर्शवादी विचारधारा का जनक काण्ट था जिसने विचारों की दुनिया में नई लहर को जन्म दिया। डॉ0 क्लिंके के शब्दों में– काण्ट विचारों की दुनिया में एक नए युग का सूत्रपात किया। उसकी रचनाएँ दर्शन के इतिहास में मील कापत्थर है, वह उन महान तथा गंभीर मनीषियों में गिना जाता है जिन्होंने न केवल अपनी रचनाओं से अपितु जीवन शैली से भी आधुनिक युग के बौद्धिक जीवनपर अमिट छाप छोड़ी। काण्ट के कईप्रशंसक उसे आधुनिक दर्शन के इतिहास में केन्द्रीय व्यक्ति मानते हैं।

2.1.4. ''काण्ट का राजनीतिक विचार''

काण्ट का जन्मपूर्वीप्रशा के नगर कीन्सिवर्ग में 1724 में हुआ था तथा 1804 में वहींपर देहावसान भी हुआ। उसका जीवन अत्यन्त साधारण था। उसनें एकाधबार ही नगर के बाहर यात्राएँ की थी। कीन्सिवर्ग में ही उसकीप्रारम्भिक तथा विश्वविद्यालयी शिक्षा सम्पन्न हुई। 1755 कोन्सिवर्ग मेंप्राइवेट डोजेन्ट की नियुक्ति तथा 1770 में विश्वविद्यालय की दर्शनपीठ में आचार्य केपदपर नियुक्ति हुई। अध्ययन, अध्यापन और लेखन उनके दैनन्दिन जीवन कोपरिभाषित करते हैं। एकान्त अध्येधा तो वह था हीपर किसी भी अर्थ में असामाजिक नही था। ग्रीन केप्रायः उद्धत शब्दों में उसके जीवन का इतिहास लिखना बड़ा कठिन है क्योंकि न तो उसका कोई जीवन था और न इतिहास क्योंकि वह जर्मनी के उत्तरपूर्वी सीमापर एक कान्सिवर्ग नामक एकपुराने शहर की एक शांत गली में एक यान्त्रिक के रुप में व्यवस्थित और कौमार्य का जीवन व्यतीत करता था। मुझे विश्वास नही कि गिरजा घर का महान घण्टा भी अपने कार्य को कांट की अपेक्षा अधिक निष्काम भाव तथा नियमित रुप से करता हो। सोकर उठना, कॉफीपीना, लिखना,पढ़ना, कालेज में व्याख्यान देना, खाना, घूमना सबका एक निश्चित समय था और जब इमेनुयल काण्ट अपना खाकी रंग का कोटपहने हुए और मनीला छड़ी को हाथ में लिए हुए अपने घर को छोड़कर लाइम ट्री नामक सड़क के लिए रवाना हो जाता था तोपड़ोसी समझ जाते थे कि इस समय ठीक साढ़े तीन बजे हैं और जब निश्चित समयपर गुजरता था तो मित्रतापूर्ण भाव से उसका अभिनन्दन करते थे और उससे अपनी घड़ी मिलाते थे। काण्ट ने केवल एक बार दोपहर के बाद का घूमना छोड़ा और उसका कारण था उसका रुसो के ग्रंथ 'इमैनुयल' केपढ़ने में तन्मय हो जाना। वह केवल एक बार बर्लिन को चला किन्तु कुछ ही मील के बाद वह लौट आया।

काण्ट संसार के महानतम दार्शनिकों मे से एक था उसकी गणना सुकरात,पलेटो, अरस्तु तथा हीगेल के साथ होती है। उसने तीस वर्ष से अधिक तथा कान्सिवर्ग विश्वविद्यालय में न्याय शास्त्र तथा अध्यात्म शास्त्रपढ़ाया था। काण्ट कीप्रसिद्ध कृतियाँ हैं–

1. The critique of pure reason
2. The critique of practical reason
3. The critique of judgement

ये तीनों ग्रंथ काण्ट के समीक्षात्मक दर्शन के आधार ग्रंथ हैं। ये तीनों ग्रंथ राजनीतिक चिंतन के दार्शनिक आधार को समझने के लिए बहुत सहायक है इसके अतिरिक्त काण्ट के लेख और छात्रों को दिये गये व्याख्यान भी उसके राजनीतिक चिंतन की विस्तृत जानकारी के लिए केन्द्रीय महत्व के हैं।

काण्ट के राजनीतिक चिंतन के क्षेत्र की समस्याएँ :–

काण्ट ने उस समयप्रचलित व्यक्तिवाद के स्वरुपोंपरप्रहार किया। उसने मनुष्य के नैतिक एवं बौद्धिक स्वरुप कोप्रस्तुत किया। उसने सुखवाद तथा उपयोगितावाद की आलोचना की।प्रसंविदा सिद्धान्त की ऐतिहासिकता और उसके स्वीकृत स्वरुप के औचित्यपरप्रश्न चिन्ह लगायाप्राकृतिक अधिकारों का खंडन किया। कांट ने व्यक्ति की स्वायत्तता को महत्व दिया हैपर व्यक्ति की स्वायत्तता नीति सम्पन्न, विवेक सम्पन्न व्यक्ति की स्वायत्तता है– सुखवादी भोगवादी व्यक्ति की नहीं। कांट ने फ्रांसीसी राज्य क्रांति 1789 का स्वागत किया। उसकी दृष्टि में क्रांति में मनुष्य के संकल्प की सत्ताप्रमाणित की। इसके अतिरिक्त फ्रांसीसी क्रान्ति 1789 ने जर्जर समाज व्यवस्था को विश्रंखलन कर दिया इसका भी कांट ने स्वागत किया। कांट ने राज्य के स्वरुप को लोकतंत्रात्मक माना किन्तु शासन का स्वरुप उसकी दृष्टि में कभी लोकतांत्रिक नही हो सकता है और न कभी होना चाहिए। सारी जनता अपनेप्रतिनिधियों के माध्यम से कानून बना सकती हैपर वह स्वतः शासन नही कर सकती। फ्रांसीसी क्रान्ति 1789 का स्खलनप्रमाणित करता है कि लोकतांत्रिक राज्य सम्भव है और उचित,पर लोकतांत्रिक शासन न संभव है न उचित।

काण्ट के दार्शनिक विचार :–

काण्ट अपनीपुस्तक शुद्ध बुद्धि मीमांसा (Critique of Pure reason) में बताया है कि शुद्धि (Pure reason) का तात्पर्य उस ज्ञान से है जो मन की स्वाभाविकप्रकृति के कारणप्रापत होता है न कि इन्द्रियों के माध्यम से होने वाले अनुभवों से। ज्ञानप्रापत करने के दो साधन हैं–

1. इन्द्रियाँ
2. मन या बुद्धि

इन्द्रियों का कार्य विभिन्नप्रकार के संवेदनप्रस्तुत करना है। इन्द्रियों का कार्य विभिन्नप्रकार के संवेदनप्रस्तुत करता है या मन इन संवेदनों के मध्य सम्बंध स्थापित करता है या उन्हें व्यवस्थित करता है। कांटे के विचार में मानव बुद्धि की कुछ मर्यादाएँ होती है। देश (space) काल (time) तथा कार्य सम्बंध (causation) उसपर अपनाप्रभाव डालते हैं। इन तत्वों की मर्यादा के कारण ही हमको किसी भी वस्तु के ज्ञान द्वारा इनकीपुष्टि आवश्यक नही। इन्द्रिय जनित अनुभवों के आधारपर वस्तु सत्ता का जो ज्ञान हमेंप्रापत होता है उसे अनुभव सापेक्ष (Abosterion) और दूसरेप्रकार का ज्ञान अनुभव निरपेक्ष कहलाता है। दूसरे में किसीप्रकार के अनुभव की आवश्यकता नही होती।

कांट के अनुसार दृश्य जगत के इन्दिय गोचर बाह्य रुप को ही हम जान सकते हैं मूल अथवा वास्तविक रुप अर्थात विशुद्ध सत्य को नही क्योंकि यह अनुभव

निरपेक्ष है, इस कारण हमारे अनुभव का विषय नही बन सकता। कांट के विचार में बुद्धि केवल अनुभव जन्य ज्ञान तक सीमित होती है वह इस बाह्य जगत के मूल तत्व कोप्रकट नही कर सकती। वह तो केवल इसी बात को बता सकती है जिसका उसे अनुभव होता है वह ईश्वर, आत्मा, भावी जीवन आदि को अनुभवातीत मानता है।

काण्ट का कहना है कि नैतिक कर्तव्यों की भावना जन्म से ही मानव अन्तःकरण में रहती है सभी को इसकाप्रत्यक्ष अनुभव होता है यही मनुष्य को कर्त्तव्यपालन कीप्रेरणा देती है और अच्छे बुरे तथा सत असत का बोध कराती है। नैतिक भावना अन्तःकरण को आदेश देती है वहपूर्ण निरपेक्ष होता है। नैतिक नियमों कापालन भी सभीपरिस्थितियों मेंपूर्ण रुप से किया जाना चाहिए। इसी कारण इन्हें नैतिक नियम निरपवाद नैतिक कर्त्तव्यादेश कर्त्तव्य के अटल आदेश यापरमादेश कहते हैं। इनके अनुसार कार्य इसलिए श्रेष्ठ माने जाते हैं क्योंकि ये अन्तःकरण की नैतिक भावना के अनुसार होते हैं। यह भावना सभी कालों में हमें आदेशप्रदान करती है और कर्त्तव्यों का ज्ञान कराती है। इसकी दूसरी विशेषता यह सिद्ध करना है कि मनुष्य में स्वतंत्र इच्छा की सत्ता है। इसे तर्क से नही वरन् व्यावहारिक अनुभव से सिद्ध किया जा सकता है। काण्ट नैतिकता को ही मनुष्य कीपूर्णता का मापदण्ड स्वीकार करता है। उसका यह भी कहना है कि नैतिकता से अलग होनेपर राजनीति मूल्यहीन हो जाती है तथा नैतिक आदेशों के आधारपर ही राजनीति का अध्ययन किया जाना चाहिए।

काण्ट रुसो के नैतिक इच्छा तथा सामान्य इच्छा के सिद्धान्त में आस्था रखता है। उनके अनुसार वास्तव में केवल वही मनुष्य स्वतंत्र है जो नैतिक रुप से स्वतंत्र है। सच्ची स्वतंत्रता वही है जो दूसरों के समान अधिकार तथा सार्वदेशिक कानून द्वारा मर्यादित है। स्वतंत्रता से तात्पर्य अनियंत्रित कार्य करने की स्वतंत्रता से नही है। सच्ची स्वतंत्रता वही है जो दूसरों के समान अधिकार तथा सार्वदेशिक कानून द्वारा मर्यादित हो। यह व्यक्ति की इच्छा का अधिकार भी है जिसे हम स्वनिर्धारित आदेशात्मक कर्त्तव्य (A selfimposedimperative duty) भी कह सकते हैं। इस तरह कांट अधिकार और स्वतंत्रतापर जोर देता है वह मानव इच्छाओं को दो भागों में बाँटता है–

वासनापूर्ण इच्छाएँ–जिनमें मनुष्य कीप्रकृति वासना की ओर झुकती है।

विवेकपूर्ण इच्छाएँ–इनका आधार नैतिकता होती है और ये यर्थाथ इच्छाओं काप्रतिनिधित्व करती है।

2.1.5. मानव स्वभाव की अवधारणा :–

काण्ट ने स्वीकार किया है कि मनुष्य काप्राकृतिक रुप असामाजिक हैपर इसी असामाजिकता से आनुभाविक औरप्रतिभासिक जगत में सामाजिकता उत्पन्न होती है। मनुष्य तो मानो लकड़ी से गढ़ा गया हैपरन्तु मानवता यही दोषपूर्ण लकड़ी मनुष्य की असामाजिकता को गढ़ती है। मनुष्य कीप्रबल आकाँक्षा है कि वह निर्बन्ध होकर अपने स्वार्थ कोपूरा करे, इसलिए वह चाहता है कि हर चीज उसकी इच्छा द्वारा संचालित हो, वह तब तक ऐसा नही कर सकेगा जब तक दूसरोंपरप्रभुत्व न

स्थापित कर ले। इसलिए वह अपने वर्चस्व के लिएप्रयासरत रहता है उसकी आकाँक्षा है कि लोग उसकी सत्ता स्वीकार करें और उसको यश तथा सम्मानप्रदान करेंपर वह अपने को अन्य मनुष्यों से विशिष्ट मानकर अलग–थलग रखना चाहता है। स्वेच्छा से कोई मनुष्य दूसरों के वर्चस्व को स्वीकार नही करता है इसलिए अनिवार्यतः मनुष्यों के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। इस संघर्ष के नाते मनुष्य अपनी बुद्धि,प्रतिभा और क्षमता काप्रयोग करता है। चुनौतियों से जूझने के लिए जब मनुष्य एक दूसरे के साथ संघर्ष करते हैं तो उस समय भी मनुष्य में नैतिक विवेक की आदिमप्राकृतिक क्षमता विद्यमान रहती हैपर यह क्षमता तभीपरिलक्षित होती है जब मनुष्य अहंकार सेप्रेरित होकर दूसरों के साहचर्य की तलाश करते हैं।प्रकृति स्वार्थ और अहंकार के माध्यम से दूसरे मनुष्य कोप्रतिद्वन्दिता के लिएप्रेरित करती है और इसीलिए वह कष्ट झेलकर विषमपरिस्थितियों से जूझते हुए अपनीपरिस्थितियोंपर विजयपाने के लिएप्रेरित होता है। इसप्रकार मनुष्य को अपनी इच्छा के विरुद्ध सभ्य तथा सुसंस्कृत होनापड़ा और उन्हें मजबूरन सामाजिक मान्यताओं की सृष्टि करनीपड़ी।

प्राकृतिक अवस्था एवं सामाजिक समझौता :– काण्ट केपूर्ववर्ती राजनीतिक दार्शनिकों हाब्स, रुसो आदि नेप्राकृतिक अवस्था के चित्रण से राज्य की उत्पत्ति की कथाप्रारंभ की। काण्ट ने इसपर असहमति व्यक्त की। राज्य की उत्पत्ति काण्ट के लिए रोग जनित अभिप्रेरणाओंपर आधारित है। अभिप्रेरणाएँ भावनाएँ जैसे– भय, लोभ, सहानुभूति, दया इत्यादि है। ऐसे विवरण मात्र ऐतिहासिक हो सकता है कि तथ्य के स्तरपर राज्यों की उत्पत्ति ऐसे संभव हुई हैपर काण्ट के लिए अनुभाविक कारण राज्य के औचित्य काप्रमाण नही है। काण्ट ने ऐसा तर्क दिया जिससे सिद्ध होता है किप्राकृतिक अवस्था की ऐतिहासिकता राज्य के विवेचन के लिए निरर्थक है। मनुष्य कैसा आचरण करेंगे इसके सम्बन्ध में निश्चयात्मक रुप से कुछ नही कहा जा सकता है। काण्ट नेप्राकृतिक अवस्था की अवधारणा को एक विचारप्रयोग के रुप मेंप्रस्तुत किया है। उसके अनुसार राज्यपर विचार करते समय हमें यह मानसिकपरिकल्पना करनी चाहिए कि एक समय था जब राज्य नही था उस समय कोई कानून भी नही था।प्राकृतिक अवस्था अनिश्चितता बल्कि उसकी नैतिक उपयोगिता है। काण्ट नेप्राकृतिक अवस्था की अवधारणा को एक विचारप्रयोग के रुप मेंप्रयुक्त किया है। उसके अनुसार राज्यपर विचार करते समय हमें यह मानसिकपरिकल्पना करनी चाहिए कि एक समय था जब राज्य नही था।प्राकृतिक अवस्था अनिश्चयात्मकता की अवस्था है व्यक्ति एक दूसरे के लिए असहनीय है। जीवन धारण के लिए संपति आवश्यक हैपर किसी चीज को संपति कहने के लिए कानूनों का होना अनिवार्य है। वह यह मानता है कि राज्य के अस्तित्व में व्यक्तियों के संकल्प की भूमिका हैपर यह केवल युक्ति तर्क मूलक है,पर उसके अनुसार सामाजिकप्रसंविदा की अवधारणा को एकप्राक कल्पना मान सकते हैं। काण्ट का मत है कि व्यक्ति की नैतिक सत्ता उसकी स्वतंत्रता में संचित है। यह बात हर व्यक्ति के लिए समीचीन है। किसी की भी स्वतंत्रता दूसरे व्यक्ति के लिए बाधक न

हो इसके लिए एक बाह्य नियामक की जरुरत है। काण्ट के अनुसारप्रसंविदा विवेक की अवधारणा है।

2.1.6. राज्य का औचित्य और समान स्वतंत्रता का सिद्धान्त :–

नैतिकता का नियम आनुभाविक नही है बल्किप्रागानुभाविक है। मनुष्य का सर्वोत्तम नैतिक विकास उसकी विवेक सम्मत स्वायत्तता है। बाह्य जगत में हर व्यक्ति की स्वायत्तता ऐसी सुनिश्चित की जाए कि एक व्यक्ति की स्वायत्तता दूसरे के लिए बाधक न बने, इसलिए उनके आचरण का एक सार्वजनिक मापदण्ड सुनिश्चित हो। यह सार्वजनिक मापदण्ड सार्वभौम बुद्धि की सार्वजनिक अभिव्यक्ति है यह सार्वजनिक न्याय का मापदण्ड है। किसी भी मनुष्य को दूसरे मनुष्य की स्वतंत्रता में बाधक नही बनना चाहिए सबके लिए एक औचित्य का मापदण्ड स्थापित करनापड़ेगा। राज्य नैतिक आधारपर टिका है। उसका सम्बंध अविच्छिन्न है। चूँकि हम राजनीतिक जगत में आचरण द्वारा एक दूसरे से संबंधित हैं इसलिए अपेक्षित है कि हम इन संदर्भों में वैसे ही आचरण करें जैसा आचरण उचित है। अतः आवश्यकता है एक मापदण्ड की। यह मापदण्ड सार्वभौम होना चाहिए जैसा आचरण उचित हो। काण्ट की राजनीतिप्रागानुभाविक सिद्धान्तों की राजनीति है।

राज्य की विशेषताओं के बारे में काण्ट का कथन है कि राज्य का आधार मनुष्य का स्वविवेक है किन्तु राज्य स्वतः सद्विवेक का विग्रह नही है यह एक नैतिक संस्थान है किन्तु नैतिकता कीपूर्ण अभिव्यक्ति नही।

दूसरा लक्षण है राज्यप्रभुसत्ता सम्पन्न है। काण्ट ने सामंतवादी संस्थाओं, निगमों, श्रेणियों, सामंतो केपरंपरागत अधिकारों और चर्च की विशिष्ट सुविधाओं इत्यादि को समापत करने की संतुष्टि की। राज्य का तीसरा लक्षण है कि राज्य एकात्मक है। मध्ययुग में सत्ता सोपान में विभाजित है। राज्य की सत्ता सर्वोपरि है। इसके समानान्तर न कोई सत्ता है और न कोईपरंपरागत अधिकार तथा रीति–रिवाज।

राज्य का चौथा लक्षण है कि व्यक्ति के संदर्भ में नैतिक दृष्टि से राज्य की शक्तियों की सीमा है। व्यक्ति ने सार्वजनिक न्याय की व्यवस्था को इसलिए अनिवार्य माना कि दूसरे व्यक्ति उनकी स्वायत्तता में हस्तक्षेप न करे और इसप्रकार सार्वजनिक न्याय से अनुशासित होकर वह अपनी स्वायत्तता के नैतिक लक्ष्य कोप्रापत कर सके। इसलिए राज्य का उद्देश्य है कि स्वायत्तता कीप्रापित में जितनी बाधाएँ हैं उन बाधाओं को दूर किया जाए। स्वतंत्रता, समानता और स्वावलम्बन सुनिश्चित करना राज्य का कर्त्तव्य है।

2.1.7. काण्ट की नैतिक स्वतंत्रता की धारणा :–

काण्ट के महान ग्रंथ Critique of Pure reason का अवसान अविश्वासवाद से हुआ है। वह उसपरिणामपरपहुँचा कि हमारा ज्ञान केवल घटना चक्र तक सीमित है, हम विशुद्ध सत्य को ही जान सकते हम उसके केवल उस रुप को जान सकते हैं जो कि हमारे सामनेप्रकट होता है। दूसरे शब्दों में काण्ट जगत के वास्तविक स्वरुप तथा उसके भाषित होने वाले स्वरुप में विभेद करता है। जोड के शब्दों में ''ठीक जिसप्रकार कि एक ऐसा व्यक्ति जो कि अपनी नाकपर जन्म से ही नीले रंग

के स्थायी रुप में लगे हुए चश्में के कारण यह कहे कि संसार कीप्रत्येक वरूतु नीली है, और जिसप्रकार नीलापन वस्तुओं में ही नही बल्कि उन स्थितियों के कारण जिनमें कि उन्हें देखा जाता है इसीप्रकार काण्ट की धारणा कीप्रत्येक वस्तु जिसे हम जानते हैं वह गुण रखती है जो कि मानव वृद्धि से निस्तृत होते हैं। इन गुणों को मानव मस्तिष्क ने जानने कीप्रक्रिया में उसमें आरोपित कर दिये हैं फलतः हम किसी वस्तु को उसके वास्तविक रुप में नही जानपाते हम केवलप्रकट रुप को जानते हैं।

काण्ट का विश्वास है कि मनुष्य में विशुद्ध सैद्धान्तिक विवेक के अतिरिक्त विशुद्ध व्यावहारिक विवेक भी होता है जो उसके नैतिक अनुभव का मूल है। उसका व्यावहारिक विवेक अथवा नैतिक अनुभव उसे यह बताता है कि कुछ कार्य ऐसे हैं जो उसे करने चाहिए, बिना इस बातपर विचार किये हुए कि वह उन्हें करता है या नही। इसी अनुभव के द्वारा उसे यह विश्वास होता है किपरमात्मा है। मानव इच्छा स्वतंत्र है और आत्मा अमर है। ये ऐसी बाते हैं जिनकी सत्यता, विशुद्ध सैद्धान्तिक बुद्धि द्वारा कभी सिद्ध नही की जा सकती है। यह भावना कि मुझे क्या करना चाहिए मनुष्य की एक अदभुत विशेषता हैप्रकृति जगत में ऐसी कोई चीज नही होती यह सिद्ध करता है कि वहप्रकृति जगत का एक भाग मात्र होने से कुछ अधिक है, वह शाश्वत सत्य के जगत काप्राणी है।

काण्ट मानव को दो भागों में विभक्त करता है एक अनुभवप्रधान तथा दूसरा अतिक्रमणात्मक। अनुभवप्रधान आत्मा में इच्छाओं तथा भावनाओं का संघर्ष रहता है। इसमें उत्पत्ति का नियम बनता है जो किप्रकृति जगत में राज्य करता है। अतिक्रमणात्मक आत्मा नैतिक अथवा बुद्धिप्रधान आत्मा है जिसके कारण मनुष्य शाश्वत सत्य के जगत काप्राणी हो जाता है और इस नाते वास्तविक स्वतंत्रता का उपभोग करता है। जिस समय मनुष्य अपनी इच्छाओं और वासनाओं की तृपित की चेष्टा करता है तो वह स्वतंत्र रहता है वह ऐसे नियमों से अनुशासित रहता है जिसका मूल्य स्वयं उसके अंतर है।

कर्त्तव्य की व्याख्या करने से काण्ट की नैतिक स्वतंत्रता की धारणा और अधिक स्पष्ट हो जायेगी। हमारे अधिकतम कार्यों में यदि की शर्त लगी रहती है इसलिए इन्हें सर्शत आदेश कहा जाता है क्योंकि ये मेरी अन्यथा इच्छाओं की तृपित के लिए अभीष्ट है। कर्त्तव्य भी एक आदेश (imperative) हैपरन्तु दूसरे सर्शत की अपेक्षा यह अटल है। हमारा कर्त्तव्यपालन करने का कर्त्तव्य हमारी किसी विशेष वस्तु की इच्छापर निर्भर नही करता। इसके ऊपर किसी यदि की शर्त नही लगी है। मनुष्य को अपने कर्त्तव्य कापालन करना चाहिए नही कि यह स्वास्थ्य, धन, कीर्ति, शक्ति अथवा अन्य किसी वस्तु की कामना करता है बल्कि केवल इसलिए की उसके वास्तविक स्वरुप का नियम है और ऐसा करते ही वह शाश्वत सत्य कोप्रापत करता है। थोड़े से मानव जीवन का मूल तथ्य नैतिक स्वतंत्रता है जो कि नैतिक नियम अथवा कर्त्तव्य के अटल आदेश कापालन करने में निहित है।

अब यहप्रश्न उठता है कि इस नैतिक नियम के अनुसार हमे क्या करना चाहिए। काण्ट कहता है कि मनुष्य को बाहरी बातोंपर विचार किये बिना ही अपने

कर्त्तव्य कापालन करना चाहिए। इसका ध्येय एक ऐसी इच्छा उत्पन्न करता है जो कि स्वयं अपने में शुभ हो, हमारी आवश्यकताओं को तृपत करने के लिए उसका निर्देशन करना नही केवल वही इच्छा शुभ कही जा सकती है जो कि नैतिक नियम द्वारा निर्धारित होती है। काण्ट ने कुछ सूक्तियाँ नियमित की है जो हमारे आचरण के लिएप्रथप्रदर्शन का कार्य कर सकती है।

1. इसप्रकार ऐसा आचरण करो जिससे तुम्हारी इच्छा का सिद्धान्त एक विश्व व्यापक नियम बन सके।
2. अपने में अथवा किसी दूसरे व्यक्ति में मानवता है, उसे सदैव साध्य समझते हुए साधन कभी नही, आचरण करो।
3. इसप्रकार आचरण करो जिससे मानवता साध्यों का राज्य बन जाए।

2.1.8. राज्य का कर्त्तव्य :–

काण्ट राष्ट्रवादी राज्य को स्वीकार करता है उसकी स्वतंत्रता राष्ट्रवादी स्वतंत्रता है राष्ट्र के नागरिक निर्णय क्षमता सम्पन्न हो। काण्ट की दृष्टि में आत्मनिर्णय की क्षमता और राष्ट्र दोनों की गरिमा को सुरक्षित रखता है।

राज्य के नागरिक समान हैं इसका अर्थ यह है कि कानून के समक्ष सभी समान हैं। राष्ट्र राज्य में भेदभाव करने वाले अधिनियम स्वीकृत करने योग्य नही है। राज्य की विशेषता यह है कि यह विधिक संस्थान है। यह अधिनियमों की सृष्टि करता है इन अधिनियमों को उद्देश्य है ऐसीपरिस्थितियों को सुनिश्चित करना जिसमें व्यक्तियों की समान स्वतंत्रता सुरक्षित हो इसप्रकार कानून संप्रभु का आदेश है। काण्ट मानता है कि संप्रभु भी मनुष्य है या मनुष्य का समूह। काण्ट की धारणा थी कि नैतिकतापर अधिष्ठित कानूनपरंपरा और इतिहासपर भी आधारित नही है। इसलिए उसने विधिशास्त्र के ऐतिहासिक सम्प्रदाय को अमान्य कर दिया।

राज्य का लक्षण है कि अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इसकी शक्तियाँ सीमित है। दो राज्यों के बीच युद्ध राज्य केप्रभुसत्ता सम्पन्न होने का लक्षण माना जाता है। यह संप्रभु शक्ति की अभिव्यक्ति थी। काण्ट के लिए युद्ध और उसके लिए की गयी तैयारियाँ नैतिक जीवन केप्रतिकूल है। काण्ट अंतर्राष्ट्रीय स्तरपर संघर्ष तथा युद्ध की समापित का स्वपन देखता था। वह आशावादी था। उसके आशावाद का आधार था जैसे मनुष्यों के आपसी संघर्ष से राज्य का अस्तित्व हुआ उसीप्रकार राज्यों के आपसी संघर्ष में कालान्तर में राज्यों के अंतर्राष्ट्रीय संघ का अस्तित्व संभव हुआ। शांति संबंधी अपनी अवधारणाओं का विवरण काण्ट ने अपने लेख (Perpectual peace) मेंप्रस्तुत किया है। राज्य नागरिकों के अधिकारों का सृष्टा है संपति का अधिकार भी एक अधिकार है। इस अधिकार का भी सृष्टा राज्य है। राज्य का लक्षण यह है कि वह नागरिकों के अधिकारों का सृष्टा है। संपति का अधिकार भी एक अधिकार है। इस अधिकार का भी सृष्टा राज्य है। व्यक्ति केपास ऐसा कोईप्राकृतिक अधिकार नही है जो राज्य के आविभवि केपहले उसकेपास था और आविभवि होनेपर भी उसकेपास बना हुआ है। राज्य का एक लक्षण यह है कि दण्ड देने की शक्ति इसकेपास सुरक्षित है। राज्य विधि संस्थान है जो विधि तोड़ता है वह दण्ड कापात्र है। इसप्रकार दण्ड देना राज्य की संप्रभुता में निहित है।

काण्ट ने अपने ढंग से दण्ड के आधार का निर्धारण किया है। दण्ड का आधार है कि इससे अपराधी के व्यक्तित्व कीप्रतिष्ठा स्थापित होती है। अपराधी भी एक व्यक्ति है। इस रुप में एक साध्य है उसने अधिनियम तोड़कर समानान्तर अधिनियम स्थापित किया है। दण्ड का दूसरा आधार है अपराध द्वारा उत्पन्न रिक्तता कोपूरित करना अपराध न्याय का स्खलन करता है। यदि अपराधी को मृत्युदण्ड से वंचित करनेपर उसके जीवित शरीर का चिकित्सकीयप्रयोग समाज के लिए कल्याणकारी हो तो भी दण्ड देना अनिवार्य है। दण्ड का आधार हैपारस्परिकता का नियम (Rule of Reciprocity) जैसा और जितना अपराध वैसा ही उतना दण्ड।

दण्ड का एक आधार है कि यह समान स्वतंत्रता के सिद्धान्त के लिए आवश्यक है इसलिए जब कोई व्यक्ति अधिनियम तोड़कर किसी को नुकसानपहुँचाता है तो वह स्वतः अपने को ही नुकसानपहुँचाता है। अपराधी भी समाज मे रहता है इसलिए अपराध द्वारा जैसे दूसरों को नुकसान होता है वैसे उसको भी। काण्ट का कथन है–पf you kill him, you kill yourself अर्थात कोई दूसरे की हत्या करता है वह अपनी ही हत्या करता है। काण्ट के अनुसार दण्डप्रतिशोध नहीप्रतिकार है। दण्ड का उद्देश्य अपराधी का सुधार करना नही अपितुप्रतिकारात्मक सिद्धान्त है।

संप्रभुता सिद्धान्त :–

काण्ट ने सम्राट की शक्ति को स्वतंत्र कहा है। काण्ट की धारणा थी कि संप्रभुता की असीमता विधिकता असीमता है नैतिक नही यह संप्रभुता कापहला चरण है। संप्रभुता का दूसरा लक्षण अविभाज्यता है। काण्ट एकात्मक राज्य का समर्थक था। एकात्म राज्य में संप्रभु शक्ति का एक ही केन्द्र होता है। संप्रभु विधि का सृष्टा है। यदि कई केन्द्र होंगे तो समानान्तर संप्रभु होंगे और समानान्तर विधियाँ होगी। फलस्वरुप राज्य ही विभाजित हो जायेगा वह एकात्मक नही रह जायेगा। इसलिए संप्रभुता स्वभावतः अविभाज्य है। काण्ट के अनुसार जो संप्रभु है वह कानून का सृजन करे और दूसरे लोग उसे लागू करें। यह राजतंत्र मे अपेक्षित है। संप्रभु कभी भी कानून को लागू नही करपायेगा। न्याय की रक्षा के लिए कानून बनाने तथा कानून को लागू करने की शक्तियाँ अलग–अलग होनी चाहिए।

गणतंत्र का सिद्धान्त :–

काण्ट के अनुसार शासन का शुद्ध रुप गणतंत्र है। सिद्धान्ततः जनतंत्रात्मक राज्य में शासन का स्वरुप राजतंत्रात्मक हो सकता हैपर यह संवैधानिक राजतंत्र होगा। काण्ट के लिए यही गणतंत्र का रुप है। हैसरीस केशब्दों में काण्ट के लिए गणतंत्र शब्द का वही अर्थ था जो आजकल संसदीय जनतंत्र का अर्थ है हालाँकि काण्ट ने अनिवार्यतः ऐसा कहीं कहा नही है। यह केवल अर्थनिर्वचन से स्पष्ट होता है। काण्ट ने यहाँ तक कहा कि निरंकुश शासक भी गणतंत्र की आत्मा को सुरक्षित रख सकता है।काण्ट के लिए शासन का शुद्ध रुप गणतंत्र है। सिद्धान्ततः जनतांत्रिक राज्य में शासन का स्वरुप राजतंत्रात्मक हो सकता हैपर यह संवैधानिक राजतंत्र होगा। काण्ट के लिए यही गणतंत्र का रुप है। हैंस रीस के अनुसार काण्ट

के लिए गणतंत्र का वही अर्थ है जो आजकल संसदीय जनतंत्र का अर्थ है। हलाँकि काण्ट ने अनिवार्यतः ऐसा कहीं कहा नही है यह केवल अर्थ निर्वचन से स्पष्ट होता है। कहीं–कहीं काण्ट ने यहाँ तक कहा है कि एक निरंकुश शासक भी गणतंत्र की आत्मा को सुरक्षित रख सकता है। काण्ट के लिए गणतंत्र का शुद्ध रुप है– निर्वाचित विधान सभा और संवैधानिक राजतंत्र का योग। निर्वाचित विधानसभा जनतांत्रिक संप्रभुता कीप्रतिनिधि है और संवैधानिक शासन कानून की मर्यादाओं को स्वीकार करते हुए विधानसभा द्वारापारित अधिनियमों को लागू करता है। काण्ट ने यह संभावना स्वीकार की है कि विधानसभा द्वारापारित अधिनियम सार्वजनिक न्याय के मापदण्डों के अनुकुल न हो। गणतंत्रात्मक शासन और संवैधानिक राजतंत्र इस दिशा में एकप्रयास है। इसी व्यवस्था में समान स्वतंत्रता सर्वाधिक रुप से सुनिश्चित हो सकती है।

2.1.9. शक्तिपृथक्करण का सिद्धान्त :–

शक्तिपृथक्करण के सिद्धान्त केप्रणेता मांटेस्क्यू थे। अस्तित्ववादी विचारक यास्पर्स नें काण्ट के विभाजन को मूलतः काण्ट द्वाराप्रस्तुत बुद्धि की 3 शक्तियों का विभाजन माना है। बुद्धि की इन 3 शक्तियों का स्वरुप काण्ट की तीन कृतियों मेंप्रस्तुत है।पहली शक्ति है चिंतन और मन। इसे काण्ट ने The Critique of Pure Reason मेंप्रस्तुत किया है शासन में इसका रुपपरिलक्षित होता है व्यवस्थापिका में। बुद्धि की दूसरी शक्ति है आचरण करने की संकल्प शक्ति इसे काण्ट ने Practical Reason कहा है। शासन में यहपरिलक्षित होती है कार्यकारिणी में। बुद्धि की तीसरी शक्ति है निर्णय लेने की क्षमता इसे काण्ट ने The critique of Judgement मेंप्रस्तुत किया है। शासन में यहपरिलक्षित होती है न्यायपालिका में।

मात्र दार्शनिक स्तरपर नही बल्कि व्यावहारिक स्तरपर भी काण्ट ने शक्तिपृथक्करण के सिद्धान्त को अपनाया है।पृथक्करण ही निरंकुश शक्ति का विकल्प है। काण्ट का मानना है कि जब एक ही जगह सारी शक्तियाँ केन्द्रित होती हैं तो निरंकुशता जन्म लेती है।

काण्ट केप्रतिरोध संबंधी धारणापर फ्रांसीसी क्रांति 1789 काप्रभाव था वह निरंकुशता का समर्थक नही है,पर वह सामान्य जनता के सक्रियप्रतिरोध की हिंसात्मकता और अराजकता से चिंतित था। वैसे काण्ट मानता था कि फ्रांस की राज्य क्रांति अर्थात जनता द्वारा सम्राट का विरोध विधिसम्मत था। फ्रांसीसी राजक्रान्ति 1789 ऐतिहासिक संयोग से अनिवार्य थी। काण्ट की यह धारणा थी कि कभी–कभी विषमपरिस्थितियों में समवेत सक्रियप्रतिरोध अपने आप उभार आता है। उनकी न तो वकालत करनीपड़ती है न रोका जा सकता है। काण्ट ने इसे आवश्यकता का अधिकार कहा है। काण्ट ने समवेत सक्रियप्रतिरोध का समर्थन नही किया है। ऐसी स्थिति में संप्रभु की गलत नीतियों कापरिष्करण औरपरिवर्धन कैसे हो काण्ट का समाधान है : विचारों कीप्रासंगिकता, अभिव्यक्ति तथाप्रचार–प्रसार।

2.1.10. काण्ट का इतिहास दर्शन :–

इतिहास के दर्शन कीप्रस्तुति काण्ट केपूर्व भी हुई थी। यूनानी तथा रोमन चिंतन और मध्यकालीन ईसाई दर्शन में इतिहास की भिन्न–भिन्न धारणाएँ दीखपड़ती है। बोदा और माण्टेस्क्यू ने अधिकार युग में इतिहास की विकास योजना को रंखांकित कियापर काण्ट की इतिहास संबंधी अवधारणा पिछली अवधारणाओं से न केवल भिन्न है बल्कि अत्यधिक गहरी है। उसके इतिहास संबंधी चिंतन का तात्कालिकपरिप्रेक्ष्य रुसो था वह किन्ही संदर्भों में रुसो से भी सहमत था और किन्ही में असहमत, काण्ट वर्तमान के धरातल केपीछे अतीत का आकलन करता है इसके विपरित रुसोप्राकृतिक अवस्था केपरिकल्पित अतीत के धरातल से इतिहास का आकलन करता है। काण्ट समकालीन सांस्कृतिक मनुष्य की ओर से संपूर्ण इतिहास का विश्लेषण करता है। सांस्कृतिक मानव मनुष्य की सर्जनात्मकता की अभिव्यक्ति है।

काण्ट के इतिहास दर्शन का दूसरा लक्षण है कि सांस्कृतिक मानव के विवेचन के उपरांत कुछ तथ्य उभरते हैं ये है संयोगात्मक एवं गौण ये तथ्य सभ्यता के ऊपरी कलेवर है।

तीसरा लक्षण यह है कि मनुष्य के अहंकार और स्वार्थी वृत्तियों के नाते जो संघर्ष होता है उसमें उनकी अंतर्निहित क्षमताएँ जागृत होती है। ये अपनी विषमपरिस्थितियों से उन्ही क्षमताओं के बलपर जूझते हैं फलस्वरुप सभ्यता तथा संस्कृति का विकास होता है।

काण्ट ने मनुष्य से यह अपेक्षा की है वह अपनी उपलब्धियों का निरंतर विश्लेषण करता रहे तथा सभ्यता के बाहरी कलेवर एवं मनुष्य के आभ्यान्तरिक नैतिक स्वरुप का अंतर समझता रहे। काण्ट का मानना है कि स्वतंत्रता के विस्तार का बोध मनुष्य का नैतिक विकास है। नैतिक विकास का अर्थ है अपरिवर्तनशील शाश्वत नैतिक नियमों के बोध का विकास। इन दृष्टियों से इतिहास मनुष्य के तात्विक स्वरुप का विकास है। यह एकपीढ़ी की नही और न तो एक व्यक्ति की उपलब्धि है। यह उपलब्धि मानवप्रजाति की है। इतिहास काण्ट के लिए शुभत्व का विकास हैपर यह विकास इतिहास के ऊपरी धरातलपरपरिलक्षित नही होता है।

इतिहास की उपलब्धियाँ मनुष्य को आशान्वित करती है यह सही है कि इतिहास में युद्ध होते हैं जिसके भयंकरपरिणाम होते हैं। काण्ट की धारणा थी कि आशावादिता का अधिष्ठान अनुभव नही है अनुभव से तो निराशा ही हाथ लगती है। आशावादिता का स्रोतप्रागानुभाविक है।

काण्ट का इतिहास दर्शन न निराशावादी है न उन्मोदित आशावादी और न यथासिथतिवादी इतिहास मनुष्य के निरंतर संघर्ष और उसके नैतिक बोध के विकास की गाथा है।पूर्ण आदर्श कभी रुपामित होगा कि नही इसकी मात्र आशा की जा सकती है और उसके निमित मनुष्य समाज में समवेतप्रयास कर सकते हैं।

सारांश : काण्ट के बारे में सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि उसके राजनीतिक विचारप्रगतिशील एवं अपने समय से आगे थे। व्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता, युद्ध

का विरोध और राष्ट्र संघ का विचार बड़े क्रांतिकारी विचार थे। काण्ट को वास्तविक वैज्ञानिक दर्शन काप्रणेता और तथाकथितप्रकृति वैज्ञानिक भौतिकवाद के बहुत से अनुयायियों की अपेक्षा कही अधिकपक्का यर्थाथवादी की संज्ञज्ञ दी। काण्ट सच्चे अर्थों में दर्शन केप्राचीन युग के अंत और आधुनिक विचारधारा के आरंभ का एक महत्वपूर्णप्रतीक है। एक तरफ वह व्यक्ति की स्वतंत्रता कापोषक था व्यक्ति के नैतिक कत्तव्योंपर बल देता है और कहता है कि व्यक्ति अपना उद्देश्य स्वयं है और कभी भी किसी अन्य साध्य का साधन नही माना जा सकता। वह राज्य को सर्वशक्तिमान बना देता है। व्यक्ति को शासन केप्रति विद्रोह का अधिकारप्रदान नही करता।

इस तरह हम कह सकते हैं कि काण्ट ने योजनाबद्ध ढंग से राज्य के विविधपक्षों और उससे संबंधित जिज्ञासाओं का विवेचन किसीपुस्तक में नही किया है। उसने लेख लिखे है तथा उनकी ढेर सारी कृतियाँ उनके जीवन मेंप्रकाशित नही हुई है। उन्होंने राजनीतिक जीवन के तात्विकप्रश्न उठाये हैं। हेनरिक हेन नें काण्ट के राजनीतिक चिंतन को 1789 की फ्रांसीसी राज्य क्रांति का सिद्धान्त कहा है। हबर्ट मार्क्यूस ने अपनीपुस्तक Reson and Revolution में जर्मनप्रत्ययवाद के संबंध में यही धारणाप्रस्तुत की है। काण्ट का राजनीतिक चिंतन उदारवाद औरप्रत्ययवाद का समन्वय है। राज्य नैतिक संस्थान है लेकिन नैतिकता कापूर्ण रुप नही। राज्य को व्यक्ति के नैतिक विकास के लिएपरिस्थितियाँ सुनिश्चित करनी है वेपरिस्थितिया हैं : स्वतंत्र चिंतन, उसकी अभिव्यक्ति उसकेप्रचार–प्रसार की व्यवस्था और न्यायोचित दण्ड विधान। राज्य का कार्य नैतिक विकास की बाधाओं को दूर करना है। राज्य बाधाओं की बाधा है। अप्रत्यक्ष रुप से व्यक्ति के नैतिक विकास कोप्रभावित करता है।प्रत्यक्षतः नही। काण्ट की धारणा थी कि राज्य का कानून नैतिकतापर अधिष्ठित सार्वजनिक न्याय के मापदण्ड के अनुकूल नही भी हो सकता है। इसलिए संभव है कि राज्य से भूल हो सकती है। राज्यपूर्ण संस्था नही है। उपरोक्त धारणाओं के नाते काण्ट को उदारवादी कहा है।

काण्ट के चिंतन केप्रत्ययवादी लक्षण हैं– राज्य का अधिष्ठान नैतिक संकल्प है इसका उद्देश्य व्यक्तियों की स्वार्थपूर्ति नही बल्कि नैतिक स्वायत्तता के अनुरुपपरिस्थितियों का निर्माण है। राज्य की आवश्यकता किसी बाह्यपरिसिथतियों जैसे– संविदा या शक्ति के नाते नही है इसलिए राज्य आकस्मिक नही अनिवार्य है। राज्यअधिकारों का सृष्टा है। व्यक्ति राज्य के विरुद्ध सक्रियप्रतिरोध नही कर सकता। उपरोक्त लक्षणों से स्पष्ट होता है कि काण्ट ने राज्य के 3 लक्षणों को रेखांकित किया जो उसकाप्रत्ययवादी दृष्टिकोण है। काण्ट व्यक्तिवादी नही है। काण्ट के लिए सुख की वृद्धि जीवन का लक्ष्य नही है। काण्ट के लिए व्यक्ति के साध्य होने का अर्थ है नैतिक स्वायत्तता जो उसके जीवन कापरम लक्ष्य है। उसके राजनीतिक चिंतन में आदर्श एवं यथार्थ का महत्व रेखांकित किया गया है। काण्ट ने संस्कृति एवं शिक्षा कोप्रधान साधन माना है। मूल्यपरक राजनीति के लिए इसीलिए वह स्वीकार करता है कि जब तक समाज में नैतिक चेतना का संस्कार

नही होता तब तक वास्तविक सुधार नही हो सकता है। काण्ट क्रांतिकारी नही क्रमिक सुधारों कापक्षधर था। इस तरह काण्टप्रथम स्पष्टप्रत्ययवादी विचारक था।

2.1.11. अभ्यास / बोधप्रश्न

संबन्धितप्रश्न :–

1. काण्ट के लिएप्रज्ञोदय का अर्थ है–
   (अ) परंपराओं का बौद्धिक समर्थन
   (ब) लोकमत का अनुपालन
   (स) अंधविश्वासोंपूर्वाग्रहों से युक्त
   (द) असीमित स्वतंत्रता काप्रयोग
2. काण्ट के राज दर्शन को किस श्रेणी में रखा जा सकता है–
   (अ) उदारवाद
   (ब) समष्टिवाद
   (स) उदारवादीप्रत्ययवाद
   (द) आदर्शवाद
3. काण्ट के अनुसार 'व्यक्ति साध्य है' का अर्थ है ?
   (अ) व्यक्ति की कामनाओं की असीमितपूर्ति के निमित राज्य को कानून बनाना चाहिए।
   (ब) व्यक्ति ने स्वार्थों की रक्षा के लिए राज्य की संरचना की है।
   (स) व्यक्ति अपने सुख के लिए राज्य सत्ता काप्रतिरोध कर सकता है।
   (द) व्यक्ति की स्वायत्तता विवेक सम्मतप्रागानुभाविक नियमों केप्रति सम्मान के नाते आचरण करने में है न किसी बाहरी दबाव के नाते।
4. काण्ट कीपुस्तक का नाम नही है–
   (अ) Critique of Pure reson
   (ब) Judgement
   (स) Critique of Practical reson
   (द) Lectures on the Principals of Political obligation
5. काण्ट का जन्म कब हुआ था–
   (अ) 1624
   (ब) 1724
   (स) 1824
   (द) 1924

1. स 2. द 3. द 4. द 5. ब

लघु उत्तरीयप्रश्न :

1. काण्ट के लिए समान स्वतंत्रता का क्या अर्थ है स्पष्ट करें।
2. काण्ट की दृष्टि में क्यों लोकतंत्र की शासनप्रणाली होनी चाहिए? स्पष्ट करें।
3. मनुष्य की सामाजिक असामाजिकता सभ्यता के विकास में किसप्रकार सहायक है?

4. कोई एक ऐसा कारण बतायें जिसके कारण काण्ट ने विचारों की अभिव्यक्ति और उसकेप्रचारप्रसार का समर्थन किया।
5. काण्ट के नैतिक इच्छा संबंधी विचार को स्पष्ट करें।

दीर्घ उत्तरीयप्रश्न :

1. काण्ट को क्यों उदारवादीप्रत्ययवादी विचारक माना जाता है ? स्पष्ट करें।
2. काण्ट के राजनीतिक चिंतन की अवधारणा को स्पष्ट करें।
3. काण्ट के अनुसार राज्य के औचित्य का आधार और राज्य के लक्षण क्या है।
4. क्रांति औरप्रतिरोधपर काण्ट के विचारों का स्पष्टीकरण कीजिए।
5. काण्ट के अनुसार संप्रभुता के क्या लक्षण हैं? इसकी नैतिक सीमाएँ क्या है?

2.1.12. कठिन शब्दावली–

1. प्रसंविदा सिद्धान्त– समझौता सिद्धान्त
2. स्वायत्तता– स्थानीय स्वशासन का अधिकारी
3. अनुभव सापेक्ष– अनुभव की अपेक्षा करना
4. प्रागानुभाविक–पूर्व अनुभव
5. निशुद्ध–पूर्ण शुद्ध
6. शक्तिपृथक्करण– शक्तियों काप्रथक्करण
7. कृतिया– रचनाएँ
8. आनुभाविक– अनुभव सेप्रापत होने वाला
9. अधिनियम– विधान के अंतर्गत बनाया गया नियम (Act)
10. अधिष्ठान– रहने का स्थान या आधार

2.1.13. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. H.S. Reiss : Kant's Political writing
2. Harward Willians : kant's Politcal Philosophy
3. G.A. Kelly :idealism Politics and History
4. S.M. Seeh: The right of Reason: A study of kants Philosophy and Politics.
5. J.G. Morphy : Kant : The Philosophy of Right
6. R.C.S. Walker Kant
7. William Montgomeny, MC Govesh: from ……. The history and facist Nazi philosophy.
8. आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त – डॉ0वीरकेष्वरप्रसाद सिंह
9. आधुनिक राजनीतिक विचारों का इतिहास– जे0पी0 सूद
10. समकालीन राजनीतिक चिंतन– श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी

इकाई –2 फ्रेडरिक हीगेल के राजनीतिक विचार

इकाई की रुपरेखा

2.2.1. प्रस्तावना
2.2.2. हीगेल का द्वन्दवाद
2.2.3. इतिहास का दर्शन
2.2.4. हीगेल के राज्य संबंधी विचार
2.2.5. हीगेल के स्वतंत्रता संबंधी विचार
2.2.6. हीगेल के युद्ध संबंधी विचार
2.2.7. हीगेल के शासन संबंधी विचार
2.2.8. हीगेलवादी दर्शन की आलोचना
2.2.9. हीगेल का योगदान एवं महत्व
2.2.10. अभ्यास बोध प्रश्न
2.2.11. कठिन शब्दावली
2.2.12. संदर्भ ग्रंथावली

2.2.1. प्रस्तावना

जर्मन आदर्शवादियों में राजनीतिक विचारधारा को सबसे अधिक प्रभावति करने वालों में हीगेल का नाम शीर्षस्थ हैi वह राज्य के सावयव सिद्धान्त का प्रबल समर्थक और वर्तमान इतिहास का उत्कृष्ट विद्वान थाi हीगेल ने अपनी राजनीतिक सिद्धान्तों को एक व्यापक दर्शन प्रणाली के अंग के रुप में विकसित किया हैi हीगेल केवल दार्शनिकों का ही राजा नही बल्कि राजाओं का दार्शनिक भी था उसी कारण उसका प्रभाव व्यावहारिक राजनीति पर बहुत पडाi विस्मार्क नें हीगेल के सिद्धान्तों को व्यावहारिक रुप प्रदान कियाi मैकगर्वन नें लिखा विस्मार्क का शक्ति पर आधारित मानव क्रिया के उच्चतम लक्ष्य के रुप में राष्ट्रीय–राज्य पर बल देना, उसका यह विश्वास कि राज्य केवल व्यक्तियों का समूह मात्र नही है अपितु एक सावयवी पूर्णता हैi उसका लोकतंत्र के विरुद्ध एक सर्वशक्तिमान राजतंत्र तथा नौकरशाही का समर्थन, इन सबका मूल हीगेल के सिद्धान्त में निहित थाi हीगेल अपने युग का दार्शनिक प्रतिनिधि था और दर्शन राज्य की प्रतिष्ठा महत्ता तथा शक्ति को सर्वत्र प्रतिष्ठित करने के लिए उसने ऐसे दार्शनिक तर्क का आधार लिया जिसके अनुसार राज्य एक रहस्यमय उच्च शिखर पर पहुँच जाता हैi हीगेल ने प्रत्येक विषय को तर्क के आधार पर समझने का प्रयास किया और विवेक और ज्ञान को बहुत महत्व दियाi उसके दर्शन का महत्व दो बातों पर निर्भर करता है प्रथम– द्वन्दात्मक पद्धति और द्वद्तीय राज्य का आदर्शीकरणi

जार्ज विल्हैल्म फेड्रिक हीगल
George Wilhelm Fredrich Hegal
(1770-1831 A.D.)

हीगल का जन्म जर्मनी के एक नगर स्तुटगार्ट में सन् 1770 में हुआ थाi वह बर्लिन विश्वविद्यालय में दर्शन का प्रोफेसर थाi उसे जर्मल आदर्शवाद के सिद्धान्तों के विकास को चरम शिखर तक पहुँचाने तथा राज्य की सर्वोच्च सत्ता प्रतिपादित करने का श्रेय प्राप्त हैi उसके पिता जार्ज लुडविग कार्ल यूजिन जो ड्यूक ऑफ वर्टमवर्ग थे' के न्यायालय में रेवेन्यू कार्यालय के सचिव थेi उसकी माँ मारिया मैग्डालेना लूइसा एक अधिवक्ता की पुत्री थीi हीगल 3 वर्ष की उम्र में ही एक जर्मन स्कूल में पढने लगाi १७९३ में उसे स्नातक की उपाधि मिलीi विश्वविद्यालय की शिक्षा ग्रहण करने के बाद हीगल ने नौकरी प्रारंभ कीi १८०१ में जेना विश्वविद्यालय में प्राइवेट डोजेक्ट (वेतन रहित प्रवक्ता) के रुप में नियुक्त हुआi एक सामान्य शिक्षक जेना विश्वविद्यालय का अध्यापक तथा न्यूरेमवर्ग के प्रधानाध्यापक के रुप में अपनी बौद्धिक ख्याति अर्जित की तथा विज्ञान और तर्कशास्त्र पर लिखे गए तीन ग्रंथों के प्रकाशन के बाद वह जर्मनी का महान दार्शनिक समझा जाने लगाi 1816 में हीडेलवर्ग विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र का आचार्य नियुक्त हुआ और अन्तिम समय तक उसी विश्वविद्यालय में सेवा रत रहाi अपने जीवन के प्रारंभिक काल में हीगेल उदारवादी था और इसी कारण उसने फ्रांस की राजक्रांति का स्वागत किया था लेकिन ज्यों ही उसकी आयु बढती गयी वह कट्टर और अनुदार होता गयाi उसकी मृत्यु १८३१ में हुई थीi

हीगेल के अनुसार हर लेखक अपने युग का शिशु हैi इस दृष्टि से हीगेल के विचारों पर समकालीन चिंतन तथा समकालीन इतिहास की छाया स्पष्ट हैi उसने विचारों के इतिहास को ऐतिहासिक परिदृश्य और उसके परिवर्तनों को अपने अभिनव तर्कशास्त्र में समाहित कर प्रस्तुत कियाi इस प्रकार हीगेल के चिंतन में उनका द्वंदवाद तर्कशास्त्र और इतिहास दो महत्वपूर्ण उपागम हैi

द्वन्द का सिद्धान्त उसके समस्त समाज दर्शन में अंतर्निहित हैi हीगेल ने समस्त आधुनिक चिंतन की उसकी समग्रता में नव निर्माण किया हैi हीगेल का दार्शनिक सिद्धान्त और उसके राजनीतिक विचार उसके निम्नलिखित ग्रन्थों में निहित है–

१० कान्स्टीट्यूशन ऑफ जर्मनी (The constitution of Germany 1802)

२द फेनामनौलॉजी ऑफ स्पिरिट (The Phenomenology of Spirit 1806)

३० साइन्स ऑफ लॉजिक (Science of Logic: Three volume 1811, 1812, 1816)

४० द एन्साइक्लोपीडिया ऑफ दी फिलासफिकल साइंसेज (The Encyclopaedia of the Philosophical Sciences 1817)

५० फिलॉसफी ऑफ राइट (Philosophy of rights 1821)

६० फिलॉसफी ऑफ हिस्ट्री (Philosophy of History)

हीगेल के दर्शन का ध्येय आधुनिक चिंतन का पूर्ण रुप से पुनर्निर्माण करना थाi उसके लिए राजनीतिक प्रश्न और विचार महत्वपूर्ण थे लेकिन वे धर्म और इतिहास के तुलना में गौण थेi हीगेल की विचार धारा पर कई स्रोतों तथा तत्वों ने योग दिया' हीगेल के लेखन में विको एवं माण्टेस्क्यू की ऐतिहासिक वृत्ति था काण्ट और फिक्टे की दार्शनिक प्रमुखता के साथ समन्वय हैi उसके उपर प्लेटो और अरस्तू के लेखन का भी प्रभाव हैi हीगेल ने ऐतिहासिक पद्धति को एक विशिष्ट मान्यता दीi सेबाइन के

शब्दों में –"वह ऐतिहासिक विकस के क्रम में ऐसे नैतिक और वैज्ञानिक मूल्य स्तर प्राप्त करने की पद्धति थी जिसके द्वारा इस विकास में विशेष युगों के महत्व को निर्धारित किया जा सकेi ऐतिहासिक पद्धति का अभिप्राय इतिहास के दर्शन से या सांस्कृतिक विकास के एक सामान्य नियम या दिशा को खोजने से था जिसके द्वारा आशा की जाती थी कि बढे हुए और पिछडे हुए लोगों' विकसित और अविकसित सभ्यताओं उन्नत और अयुन्नत जातियों के बीच एक विश्वसनीय रेखा खींची जा सकेगीi" हीगेल का विचार था कि इतिहास में विकास की एक निश्चित प्रक्रिया होती है जिसे विषय वस्तु की उचित व्यवस्था द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता हैi यह नियम सम्पूर्ण समाज के बारे में उतना ही यही है जितना की सभ्यता के किसी विशेष युग के बारे मेंi इस पद्धति से हम विधान, आर्थिक संस्थाओं और दार्शनिक वैज्ञानिक एवं राजनीतिक विचारधाराओं के विकास का अच्छी तरह से पता लगा सकते हैंi

हीगेल के चिंतन में सार्वभौम चेतना केन्द्रीय विषय है उनका मत है कि विश्व की इस एकता में केवल आत्मा तर्क या दैविक मस्तिष्क ही यथार्थ हैi सभी वस्तुएँ इस आत्मा या तर्क की उत्पत्ति हैi इतिहास विश्वात्मा की विकास यात्रा हैi हीगेल के अनुसार तार्किक ही वास्तविक है तथा वास्तविक ही तार्किक हैi

अतः इतिहास वास्तविकता के उपर पडे आवरण को अलग कर हमें सत्य से साक्षात्कार कराता हैi यह यात्रा पूर्व से शुरु होकर प्राचीन यूनान से आगे बढती है और आधुनिक यूरोप में पूर्ण होती हैi हीगेल के अनुसार विकास क्रम में मनुष्य की स्थिति सर्वोपरि है क्योंकि उसमें चेतना आत्मा रहती हैi हीगेल ने राज्य को विश्वात्मा का पार्थिव शरीर तथा पृथ्वी पर विद्यमान ईश्वर कहा हैi राज्य एक नैतिक एवं आध्यात्मिक संस्था हैi

2.2.2. हीगेल का द्वन्दवाद (Hegal's Dialectical Method)

हीगेल ने इपने दार्शनिक और राजनीतिक सिद्धान्तों को द्वन्दात्मक पद्धति की पृष्ठभूमि पर आधारित थाi द्वन्दवाद का विचार उसने यूनान से ग्रहण किया लेकिन यूनानी के द्वन्दवाद और हीगेल के द्वन्दवाद में अंतर हैi सत्य का अन्वेषण करने के लिए सुकरात प्लेटो आदि यूनानी विद्वानों के के द्वारा इसी पद्धति का प्रयोग किया गयाi हीगेल ने उसमें कुछ परिवर्तन किया और इसे वाद–विवाद के स्तर से उठाकर वाद–प्रतिवाद और संवाद के स्तर पर ले जाता है क्योंकि उसका मत था कि मानव विकास कभी सीधी रेखा में नहीं अपितु टेढे–मेढे रास्ते को तय करती हुई अपने विकास पथ पर आगे बढती हैi प्रत्येक वस्तु का मौलिक रुप वाद (Thesis) के रुप में होता है विकसित होने की प्रकृति के कारण धीरे–धीरे यह विकसित होकर अपने निहित अंतविरोधी के कारण अपने विपरीत रुप को जन्म दे है जो उसके प्रतिवाद (Anti Thesis) का रुप ग्रहण कर लेता है विकास की प्रक्रिया अनवरत जारी रहती है अतः प्रारंभ में इन दोनों रुपों में संघर्ष होता है जिससे समन्वय एवं संतुलन स्थापित होता है और वह संवाद के रुप में प्रकट होता हैi यह संवाद वाद प्रतिवाद दोनों के समन्वित रुप होने के कारण इन दोनों से विकास की उच्च स्थिति का द्योतक होता है लेकिन विकास की प्रक्रिया यहाँ आकर रुकती नही वरन् निरंतर जारी रहती है अतः कालान्तर में यह संवाद पुनः वाद में अपने आप को परिवर्तित कर देता है और पुनः अपने प्रतिवाद को जन्म देता है जिससे पुनः संवाद की स्थिति पैदा होती हैi इस तरह वाद–प्रतिवाद संवाद की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती हैi इस प्रक्रिया का उदाहरण इस प्रकार है– हीगेल परिवार को वाद, समाज को

प्रतिवाद और राज्य को संवाद के रूप में देखता है इसी प्रकार खेत में गेहूँ के दोन बोना वाद इसका अंकुरित रूप प्रतिवाद और पौधे का विकसित रूप संवाद हैi हीगेल के द्वन्दवाद की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. इसकी पहली विशेषता यह है कि वह स्वतः प्रेरित और स्वतः संचालित चरित्र की प्रकृति से विभूषित है जिसकी वजह से वह निरंतर प्रगतिगामी हैi उसकी स्वतः संचालित होने की शक्ति का आधार उसमें निहित अन्तः विरोधी संघर्ष की प्रवृत्ति हैi यह संघर्ष निरंतर चलता रहता हैi इस संघर्ष का रूप ही ऐसा है कि पूर्णता प्राप्त होने तक निरंतर संवाद नया वाद बनकर प्रतिवाद को जन्म देने के लिए बाध्य होता हैi
2. दूसरी मुख्य विशेषता इस पद्धति की प्रगति के व्यवस्थित विचार से हैi हीगेल के अनुसार मानव प्रगति को निर्धारित करने वाला तत्व विश्वात्मा का विवेक हैi यह विवेकपूर्ण विश्वात्मा अपने विकास के लिए विभिन्न अवस्थाओं को धारण करती है तथा अपने लक्ष्य की सिद्धि पर उन्हें छोडकर आगे बढ जाती है क्योंकि उसका अन्तिम लक्ष्य आत्मोपब्धि प्राप्त करना हैi
3. हीगेल का यह मत है कि हम एक वस्तु का महत्व उसकी विरोधी वस्तु को देखकर लगा सकते हैं– सुख दुख, प्रकाश अंधकारi हीगेल का सिद्धान्त केवल परिवर्तन नही बल्कि एक व्यवस्थित प्रगति हैi हीगेल का यह दृढ अटल विश्वास है कि विकास की चरम सीमा मनुष्य है विश्व आत्मा ने अब तक जितने भी रूप धारण किये हैं तथा भविष्य में जितने भी रूप धारण करेंगे उन सबमें मनुष्य सर्वोच्च हैi विकास की प्रक्रिया में मनुष्य का अवसान हो रहा है बहुत अधिक बुद्धिसंगत प्रतीत नही होता हैi

द्वन्दवाद पद्धति के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि हीगेल के अनुसार सामाजिक प्रगति विरोधी तत्वों के माध्यम से होती हैi ये विरोधी तत्व आपस में टकराते हैं तथा टकराव से एक नये विचार का जन्म होता हैi राइट का कथन है कि "द्वन्दवाद विशुद्ध तर्क की अत्यंत निराकर धारणा से प्रारंभ होती है और उसकी समाप्ति विचार के अत्यन्त साकार रुप — अपनी पूर्ण व्यापकता तथा साकारता के साथ निरपेक्ष बुद्धि के दर्शन के रूप में होता है"i

डॉयल ने द्वन्दवाद के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "द्वन्दवाद प्रणाली द्वारा हीगेल ने एक ऐसी व्यवस्था को लागू किया है जिसके द्वारा मस्तिष्क विकास की प्रक्रिया का अध्ययन कर सकता हैi हीगेल ने यह भी दर्शाया है कि किसी वस्तु की वास्तविकता उसकी प्रतिकूल वस्तु की तुलना के द्वारा ज्ञात की जा सकती हैi अतः भलाई का अस्तित्व इस लिए है क्योंकि बुराई का अस्तित्व हैi हीगेल प्रथम को वाद दूसरे को प्रतिवाद मानता है यह प्रतिकूलता ही प्रकृति का नियम हैi वह यह भी बतलाता है कि एक बार मस्तिष्क में जब वाद या प्रतिवाद का आभास हो जाता है तो उसका प्रभाव ही अनिवार्य रुप से होता हैi इन दोनों के संघर्ष के परिणाम स्वरूप संवाद का ज्ञान होता है और फिर यह प्रक्रिया इसी प्रकार स्वयं को दोहराती रहती हैi

2.2.3. इतिहास दर्शन

इतिहास से तथ्यों एवं घटनाओं की विकासवादी अनावरणता की प्रक्रिया का बोध होता हैi हीगेल के विचार से– इतिहास केवल यह बिखरे–बिखरे असम्बद्ध खण्डों का विकास नही है अपितु यह एक सप्रमाण विकास है और इसको समझने के लिए उसने द्वन्दात्मक पद्धति का प्रतिपादन कियाi हीगेल का इतिहास दर्शन सामान्य अर्थों में इतिहास लेखन नही हैi उसका उद्देश्य इतिहास की निहित योजना, उसकी बुद्धिपरता, बौद्धिक और नैतिक अनिवार्यता एवं शुभोन्मखी उद्देश्यपरकता का निरूपण थाi हीगेल के लिए इतिहास में निहित विधान को समझना, उसकी अन्तर्ग्रस्थित एकता को पहचानना और जिस लक्ष्य की ओर यह अभिप्रेरित है उसका निर्वचन करना– यह इतिहास दर्शन हैi

हीगेल के अनुसार जो बुद्धिसम्मत है वही यर्थाथ है, जो यर्थाथ है वही बुद्धिसम्मत हैi इतिहास की सभी घटनाएं महत्वपूर्ण नही हैं बहुत कुछ ऐसा है जो इस पृथ्वी पर घटित होता है लकिन वह प्रतिभासिक नही है जो प्रतिभासिक है वह यर्थाथ नही हैi ऐतिहासिक यर्थाथ का महत्व स्थायी हैi यह बाह्य जगत में नही दिखायी पडताi इसका ज्ञान तब होता है जब वह तत्वशास्त्रीय योजना में बंध जाता हैi इसलिए शुभ पर अशुभ का विजय, हिंसा, उत्पीडन, रक्तपात, अन्याय ये सभी इतिहास की अन्तर्निहित योजना के लिए न केवल महत्वपूर्ण बल्कि आवश्यक भी हैi जो कुछ घटित होता है उसे घटित होना था और घटित होना भी चाहिएi यद्यति ऐसे विचार के कारण हीगेल की बडी आलोचना भी हुइ लेकिन यह विचार हीगेल के द्वन्दात्मकता के वाद, प्रतिवाद और संवाद से सम्बद्ध हैi

हीगेल ने विश्वात्मा के विकास को तीन भागों में विभक्त किया जिसमें पहला विभाजन पूर्वी देशों का थाi यह मानव जाति की शैशवावस्था थीi भारत, चीन, ईरान जैसे देश इसमें सम्मिलित हैंi दूसरे विभाजन में यूनान और रोम जेसे देश हैंi यूनान में मानव जाति ने शैशवकाल से युवावस्था में और रोम में प्रौढ अवस्था में प्रवेश कियाi तीसरे विभाजन में विश्वात्मा की चरम अभिव्यक्ति जर्मनी में होगीi यह अन्तिम अवस्था होगी क्यों कि शीघ्र ही जर्मनी एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में अपने को स्थापित करेगाi हीगेल के अनुसार भारत, चीन, यूनान, रोम और जर्मनी तक सभ्यता का जो विकास हुआ उसमें जर्मनी तक आते–आते वह बृद्ध हो गयी और अन्त में उसका शरीर नष्ट हो गयाi इस प्रकार उसकी शारीरिक चेतना का अन्त हो गया लेकिन आत्मिक चेतना का आर्विभाव हुआi इस प्रकार प्राचीन एशिया में केवल एक व्यक्ति स्वतंत्र होता था– राजा या सम्राट, प्राचीन यूनान में कुछ लोग स्वतंत्र होते थे, नगर राज्यों के नागरिक, आधुनिक यूरोप में स्वतंत्रता पूरे समाज में परिव्याप्त हो गयीi राज्य का विकास एशिया में प्रारम्भिक चरण मे था, प्राचीन यूनान में इसका विकास आंशिक रूप से हुआ आधुनिक यूरोप अथवा जर्मनी राष्ट्र में ही आकर राज्य अपने पूर्ण रूप में प्रकट हुआi

परिवारः–

सामाजिक नैतिकता का प्रथम स्थान परिवार में होता हैi परिवार में व्यक्ति को अपने वैयक्तिक स्वार्थ से उपर उठकर लोगां के हित के लिए सोचना और आचरण करना हैi यहाँ उसमें दायित्व की भावना आ जाती हैi हीगेल समाज को मूलतः आर्थिक व्यवस्था मानता हैi यहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने परिवार के भरण पोषण के लिए अन्यों के साथ स्पर्धा में पड जाता हैi हीगेल जिसे समाज कहता है वह हॉब्स की प्राकृतिक अवस्था से भिन्न नही हैi

हीगेल के अनुसार परिवार की विशेषता एकता और आधार प्रेम हैi परिवार के बंधन में ही मनुष्य तात्विक आत्म–चेतना अथवा प्रेम का अनुभव करता हैi यहाँ वैयक्तिक आकाँक्षा की विशिष्टता मानस की सार्वभौमिकता से एकाकार हो जाती हैi यहाँ व्यक्ति "दूसरे" के अस्तित्व में अपना और अपने में दूसरे का अस्तित्व अनुभव करता हैi

समाजः–

परिवारों के विखंडन से समाज का आर्विभाव होता हैi उसमें अभावों या आवश्यकताओं की समग्रता होती हैi प्रत्येक व्यक्ति दूसरों के माध्यम से सन्तोष प्राप्त करता हैi समाज की व्यापकता में वह अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाता हैi स्वार्थ प्रधान लक्ष्यों की पूर्ति के क्रम में मनुष्यों के बीच आत्मनर्नरता का विकास होता हैi एक व्यक्ति की आजीविका, उसका सुख एवं उसकी स्थिति अन्य व्यक्तियों की आजीविका, प्रसन्नता एवं उसकी विधिक स्थिति से सम्बद्ध हो जाती हैi इसी अवस्था को हीगेल लौकिक या बाहरी राज्य कहता है, अर्थात ऐसा समाज जो आर्थिक आवश्यकताओं पर आधारित एवं मानव अवबोध द्वारा कल्पित होता हैi

2.2.5. हीगेल के राज्य सम्बंधी विचार

हीगेल के मतानुसार राज्य विश्वात्मा के आध्यात्मिक पक्ष का द्वन्दात्मक पद्धति के अनुसार होने वाले चरम विकास का प्रतीक हैi वह अपने पूर्ण रूप में विश्वात्मा की अभिव्यक्ति हैi उसका सदस्य बनकर ही व्यक्ति वास्तविक सत्ता और तहत्ता को प्राप्त करता हैi अपने राज्य के प्रति इस दृष्टिकोण के निर्धारण में वह प्लेटो और अरस्तू द्वारा प्रतिपादित विचारों से प्रभावित और प्रेरित हुआ था और उन्हीं के आधार पर उसने यह प्रतिपादित किया था कि व्यक्ति का उच्चतम विकास राज्य में ही सम्भव हैi

राज्य के जन्म के सम्बंध में अपने विचार प्रकट करते हुए वह कहता है कि विश्वात्मा अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त करने के लिए अपने विकास की आवश्यकतानुसार विभिन्न रूप धारण करती है और अपने पूर्ण विकास की महा यात्रा पर अग्रसर होती रहती हैi हमें जड जगत से चेतन जगत तक के असीम विस्तार में उसके विभिन्न रूप दिखाई देते हैंi जड वस्तुएँ वनस्पतियों और पशुओं के विभिन्न रूपों को धारण करती हुई और निरंतर विकास के नये बिन्दुओं का स्पर्श करती हुइ वह मानव–जीवन की अपूर्ण चेतना की स्थिति में पहुँचती हैi यह स्थिति उसके शारीरिक विकास की दृष्टि में सर्वोत्तम स्थिति है अर्थात भौतिक दृष्टि से मनुष्य विश्वात्मा का सर्वोत्तम और अन्तिम विकसित रूप है किन्तु मनुष्य अकेला रहकर अपना पूर्ण विकास करने में समर्थ नही हैi अतः उसके विकास की आवश्यकताओं की पूर्ति के उद्देश्य से विभिन्न सामाजिक संस्थाओं का जन्म होता है जो विश्वात्मा के बाह्य स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती हैi इन सामाजिक संस्थाओं में परिवार सर्वप्रथम है जिसका आधार पारस्परिक प्रेम, सहयोग और त्याग की भावना हैi हीगेल राज्य के विकास में परिवार को वाद (Thesis) की स्थिति प्रदान करता हैi

किन्तु परिवार मनुष्य की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ नही हैi अतः इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य द्वारा परिवार की सीमाओं को भंग किया जाता है और वह परिवार के प्रभाव क्षेत्र से बाहर जाकर अपनी विभिन्न अपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास करता हैi मनुष्य की यह क्रिया समाज को जन्म देती हैi हीगेल ने इसे बुर्जुआ (Bpurgeoise) समाज के नाम से पुकारा है जो राज्य के

विकास में प्रतिवाद (Anti-thesis) की भूमिका का निर्वहन करता है क्यों कि इस समाज में संगठन का आधार परिवार की तरह प्रेम और त्याग के सिद्धान्त नही होते वरन् इसका आधार प्रतिस्पद्धा और संघर्ष के फलस्वरूप व्यक्ति आत्म निर्भर बनने की चेष्टा करता है जिससे उसकी एक सीमा तक उन्नति होती है लेकिन अन्ततः निरंतर चलने वाली प्रतिस्पद्धात्मक संघर्ष प्रक्रिया उसकी प्रगति में बाधक सिद्ध होने लगती हैi अतः उसे मर्यादित करने की आवश्यकता अनुभव होने लगती है जिससे कि प्रेम और सहयोग के पारिवारिक गुणों की मनुष्य जीवन में पुनः स्थापना की जा सकेi इस आवश्यकता की अनुभूति राज्य को जन्म देती है जो संवाद (Synthesis) के रूप में होता है तथा जिसमे परिवार और समाज दोनों के ही गुणों का समावेश होता है और जो इन दोनों से उच्चतर संगठन की स्थिति में होता हैi अतः वह अपने नेतृत्व में समाज में एकता और सामंजस्य की स्थापना करता है और उसे सामाजिक हितो के अनुकूल कार्य करने के लिए प्रेरित करता हैi हीगेल राज्य को एक उच्च जीवधारी (Super Organism) जो विश्वात्मा के बाह्य विकास के चरमोत्कर्ष का प्रतीक हैi उसके अनुसार इससे आगे अब कोई विकास नही होगाi इस लिए वह उसे विभिन्न विशेषणों से अलंकृत करता है और उसे 'पृथ्वी पर ईश्वर का पर्दापण' बताता हैi उसके अनुसार राज्य विश्वात्मा या ईश्वर का पार्थिव रूप है, वह पृथ्वी पर विद्यमान ईश्वरीय विचार है, संसार के संगठन में व्यक्त ईश्वरीय इच्छा है, वह सम्पूर्ण विवेक की अभिव्यक्ति हैi इस तरह हीगेल 'राज्य' को एक दैवी विचार (Divineidea) के रूप में चित्रित करता हैi

हीगेल का आगे कथन है कि राज्य विश्वात्मा की अभिव्यक्ति का सर्वोच्च रूप है, इसलिए उसके हितों में और व्यक्ति के हितों में कोई विरोध नही हैi वह उसकी स्वाधीनता का प्रत्यक्षीकरण है, उसकी विवेकशीलता का मूर्त रूप है तथा उसके परिपूर्ण ज्ञान का साकार प्रतिमा हैi वह उसकी सच्ची, निष्चक्ष एवं निस्वार्थ सामान्य इच्छा का प्रतिनिधित्व करता हैi अतः उसकी सच्ची स्वतंत्रता राज्य के अन्तर्गत ही सम्भव हैi वह अपनी पूर्ण आत्मानुभूति राज्य के घटक के रूप में ही कर सकता हैi अतः राज्य और व्यक्ति के हितो में किसी पारस्परिक विरोध की कल्पनानही की जा सकतीi इस बात का उल्लेख करते हुए प्रोफेसर स्टेक का कथन है कि 'इस प्रकार राज्य केवल स्वयं व्यक्ति है जिसके संयोगात्मक और अनित्य गुणों को मिटाकर और शाश्वत गुणों का समावेश कर, उसका निर्माण किया गयाi व्यक्ति मूल रूप से शाश्वत हैi शाश्वतता उसका मूल तत्व हैi राज्य यथार्थ शाश्वत (The Actual Universal) है और इस प्रकार केवल व्यक्ति का ही यथार्थ एवं साकार रुप हैi राज्य कोई बाह्य शक्ति नही है जो बाह्य रूप से स्वयं को समाज पर थोपती हो और उसके व्यक्तित्व को कुचलती होi इसके विपरीत राज्य स्वयं व्यक्ति है और केवल राज्य में रहकर ही उसके व्यक्तित्व की अनुभूति हो पाती हैi ..... राज्य द्वारा व्यक्ति अपनी आत्मा को अन्तिम रूप से प्राप्त कर लेता हैi नागरिक समाज के सदस्य के रूप में व्यक्ति के हित सामाजिक हित के विरूद्ध हो जाते हैंi अतः जब व्यक्ति अपनी निम्न आत्मा को लोप करके उच्च आत्मा को प्राप्त करता है तो उसके और राज्य के हितों में कोई विरोध नही रह जाता'i

राज्य की नैतिक स्थिति के सम्बंध में अपने विचार प्रकट करते हुए हीगेल का आगे कथन है कि राज्य व्यक्ति के उपर है और एक सर्वोच्च नैतिक समुदाय हैi समस्त नैतिकता के नियम आदि राज्य के अन्तर्गत हैंi अतः वह किसी नैतिकता के नियम अथवा कानून से नियंत्रित और मर्यादित नहीं होताi वह स्वयं नैतिकता का नियामक और निर्माता हैi वही अन्य सभी के लिए नैतिकता के नियमों का निर्णारण

करता हैi अतः नैतिक दृष्टि से वह सर्वोपरि हैi उचित और अनुचित का निर्धारण करने के अधिकार का एक मात्र वही अधिकारी हैi

राज्य को नैतिक दृष्टि से सर्वोच्च मानते हुए हीगेल यह भी प्रतिपादित करता है कि राज्य स्वयं मे एक साध्य है और व्यक्ति से उच्चतर है क्यों कि वह व्यक्ति के विशुद्ध और शाश्वत तत्व का साकार रूप हैi अतः वह पूर्ण है; अपने समस्त अन्य भागों से श्रेष्ठ और व्यापक हैi व्यक्तियों का जो कुछ महत्व है, वह राज्य के कारण ही हैi इस बात की ओर संकेत करते हुए वह अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'इतिहास के दर्शन' (Philosophy of History) में लिखता है कि " व्यक्ति का सारा मूल्य और महत्व और उसकी सम्पूर्ण आध्यात्मिक यथार्थता, जो कुछ उसे उपलब्ध है, वह सब राज्य के माध्यम से सम्भव है"i

अतः इस आधार पर वह इस बात को स्वीकार नही करता कि राज्य के विरूद्ध व्यक्ति के भी कोई अधिकार हो सकते हैंi उसके अनुसार राज्य पूर्ण विकसित सामाजिक नैतिकता का साकार रूप होता हैi अतः व्यक्ति के सिर्फ वे ही अधिकार हो सकते हैं जिन्हें वह उसे प्रदान करता हैi अगर व्यक्ति तथा उसके अधिकारों में संघर्ष हो तों वह व्यक्तियों के अधिकारों का अतिक्रमण कर सकता हैi

हीगेल राज्य को सर्वोच्च मानने के साथ उसे सर्वदा सही और विवेकपूर्ण सामान्य इच्छा का प्रतीक भी मानता हैi इस कारण उसकी इच्छा अर्थात उसके ओदेशों का पालन करना व्यक्ति का परम कर्तव्य हैi अतः उसकी इच्छा का विरोध कभी न्यायोचित नही ठहराया जा सकताi इसलिए हीगेल नागरिको को राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने का अधिकार प्रदान नही करता वरन् उसका निषेध करते हुए उसे एक घृणित कर्म घोषित करता हैi

2.2.6. हीगेल के स्वतंत्रता सम्बंधी विचार

हीगेल की स्वतंत्रता सम्बंधी धारणा व्यक्तिगत न होकर सामाजिक नीतिशास्त्र पर आधारित हैi हीगेल ने इसे भी राज्य की तरह आध्यात्मिक स्वरूप प्रदान किया और यह स्पष्ट किया कि राज्य विश्वात्मा की अभिव्यक्ति हैi अतः जैसा राज्य चाहता है वैसा करने में ही स्वतंत्रता निहित हैi हीगेल के अनुसार राज्य स्वतंत्रता को प्रतिबन्धित करने का नही बढाने का साधन हैi उसका यह भी कथन है कि केवल राज्य मे ही मनुष्य स्वतंत्रता प्राप्त कर सकता हैi मनुष्य समाज की सदस्यता द्वारा जिस स्वतंत्रता का उपभोग करते हैं, वह उस स्वतंत्रता से अधिक सत्य है जिसका उन्होंने अपने कल्पित विधिहीन प्राकृतिक अवस्था को त्यागकर समाज में प्रवेश करते समय, परित्याग किया थाi यह स्वतंत्रता जो केवल समाज मे ही सम्भव है, व्यक्ति के हृदय में स्थित स्वतंत्रता की उदात्त धारणा का बाह्य जगत में प्रत्यक्षीकरण हैi हीगेल की भाषा में – राज्य में व्यक्ति ने अपने बाह्य रूप को पूर्णतः आध्यात्मिक चिंतनमय स्तर तक उन्नति कर लिया हैi

स्वतंत्रता राज्य का विरोध करने में नही, अपितु पूर्ण रूप से राज्य की आज्ञा पालन करने में हैi राज्य स्वयं व्यक्ति की आत्मा का व्यापक रुप है, अतः व्यक्ति और राज्य में कोई विरोध नही हो सकता हैi वस्तुतः राज्य की इच्छा और व्यक्ति की सत्य इच्छा एक ही होती है अतएव राज्य की इच्छा के अनुपालन मे ही व्यक्ति की स्वतंत्रता निहित हैi हीगेल का विचार है कि "पूर्ण राज्य, वस्तुतः वास्तविक स्वतंत्रता का प्रतिरूप होता है"i इस सन्दर्भ में हरिदत्त वेदालंकार ने हीगेल का मत स्पष्ट करते हुए कहा कि–'स्वतंत्रता का अभिप्राय अपनी वैयक्तिक इच्छा के अनुसार कार्य करना हैi मनुष्य स्वार्थी है, उसकी

दृष्टि संकीर्ण हैi उसमे काम, क्रोध, राग–द्वेष और मोह की भावनाएँ उसकी इच्छा को दूषित करने वाली हैं' इन वासनाओं तथा इच्छाओं से प्रेरित होकर कार्य करना स्वतंत्रता नही, अपितु दासता हैi राज्य विश्वात्मा के विकास का चरम रूप है, वह विभिन्न व्यक्तियों की क्षुद्र वासनाओं और संकीर्ण दृष्टि से उपर उठा हुआ हैi अतएव उसकी इच्छा के अनुरूप कार्य करना ही सच्ची स्वतंत्रता है'i हीगेल के अनुसार राज्य सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति हैi वह प्रत्येक व्यक्ति के सद्इच्छा के अनुसार ही कार्य करता है तो वह स्वतंत्र नही हैi वह तभी स्वतंत्र है जब वह अपनी इच्छा से राज्य के आदेशों का पालन करेंi

राज्य और व्यक्ति के उद्देश्य समान हैi राज्य की इच्छा में व्यक्ति की वास्तविक अथवा आदर्श इच्छा निहित रहती हैi इसलिए दोनों में किसी प्रकार का कोई विरोध नही हैi हीगेल का विचार है कि राज्य वास्तविकता का वह स्वरूप है जिसमें व्यक्ति स्वतंत्र होता है, स्वतंत्रता का उपभोग करता है तथा जनहित का कामना करता हैi हीगेल वैयक्तिक स्वतंत्रता के माध्यम से फ्रांसीसी राज्य क्रांति के भूलों को सुधारना चाहता था क्यों कि इस क्रांति में व्यक्तिगत स्वतंत्रता का दुरूपयोग किया गया थाi उसकी दृष्टि में अत्यधिक व्यक्तिवाद जर्मनी के राष्ट्रीय चरित्र का सबसे बडा दुर्गुण हैi जब तक जर्मनी के लोग अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से उपर उठकर एक संगठित राष्ट्र के रूप में कार्य करना प्रारम्भ नही करते, तब तक उनकी स्वतंत्र जर्मन राष्ट्र की कल्पना व्यर्थ हैi

2.2.7. हीगेल के युद्ध सम्बंधी विचार

राष्ट्र राज्य को बनाए रखने के लिए युद्ध अनिवार्य साधन हैi राष्ट्र राज्य अपने हितों के संरक्षण के लिए अपनी इच्छानुसार युद्ध करने के लिए अधिकृत हैंi युद्ध परम उपयोगी एवं लाभदायक है जबकि शांति कायरों का नारा हैi युद्ध मनुष्य में विभिन्न सद्गुणों का विकास करता है, उनके हृदय में विकास, साहस, देशभक्ति, एकता, शूरवीरता और त्याग की भावना जागृत करता हैi युद्ध मानव जाति के नैतिक उत्थान और मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने का एक अनिवार्य साधन हैi जिस प्रकार समुद्र में शांति के समय उत्पन्न होने वाली गन्दगी प्रबल तूफान से नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार मानव समाज की गन्दगी युद्ध से शुद्ध हो जाती हैi युद्ध राज्य को सशक्त और सुदृढ बनाता है और उसके अस्तित्व को स्थायित्व प्रदान करता हैi वस्तुतः युद्ध राज्य को गरिमामण्डित करता हैi

हीगेल का मत है कि समाज के राजनीतिक विकास का अन्तिम शिखर राष्ट्र राज्य हैi इस राष्ट्र राज्य के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए वह युद्ध को एक अनिवार्य साधन मानता है और अपने हितों के संरक्षण के लिए इच्छानुसार युद्ध करने का अधिकार प्रदान करता हैi हीगेल के अनुसार युद्ध ऐसा साधन है जिसके माध्यम से विश्वात्मा अपनी अभिव्यक्ति के लिए किसी राज्य विशेष का चयन करती हैi युद्ध में सफलता प्राप्त करने वाला राज्य ही यह सौभाग्य प्राप्त करता है अर्थात विजयी राष्ट्र विश्वात्मा की अभिव्यक्ति का साधन होता हैi युद्ध मनुष्यों के विभिन्न सद्गुणों जैसे– साहस, देशभक्ति, एकता, शूरवीरता और त्याग का विकास करता हैi बन्दूक और बारूदए एटम बम और हाइड्रोजन बम हीगेल के अनुसार सभ्यता को बढाने वाले आविष्कार हैंi श्लोमों अविनेरी (Shlomo Avineri) की यह धारणा है कि हीगेल ने युद्ध को ऐतिहासिक घटनाक्रम मानकर ब्याख्या की हैi उसने न तो उसे प्रोत्साहित किया है और न ही उसका समर्थनi उसने युद्ध की मात्र तटस्थ ब्याख्या की हैi

दुनिया के इतिहास में युद्ध का बहुत अधिक महत्व हैi हीगेल शीलर के इस विचार से सहमत है कि 'विश्व इतिहास विश्व न्यायालय है'i युद्ध की सफलता युद्ध को न्यायपूर्ण ठहराती है और इस बात का प्रमाण है कि विजयी राज्य विश्व–आत्मा का सच्चा अवतार होता हैi युद्ध व्यक्ति के स्वार्थी अहम का नाश करती है और मानव जाति को पतन के मार्ग से बचाकर क्रियाशील करता हैi युद्ध अतिशय महत्वपूर्ण होता हैi इसके द्वारा जनता का नैतिक स्वास्थ्य साधे रखा जा सकता हैi तेज हवा समुद्र के पानी को सडने से बचाती हैi यदि पानी शान्त और संघर्ष रहित रहेगा तो उसमें भ्रष्टाचार रूपी सडन फैल जायेगीi सफल युद्धों ने गृह संघर्षों को सुलझाया है तथा राज्य की आन्तरिक शक्ति को दृढ किया हैi

कार्ल पॉपर और हैन्स कोहेन (Hans Kohen) जैसे विचारकों का मानना था कि हीगेल उग्र राष्ट्रवादी और सर्वाधिकारवादी विचारक हैi वह युद्धोन्माद का समर्थक है और युद्ध को राज्य का यशस्वी कार्य मानता हैi जब कि सेवाइन, फिण्डले और एफ०एस०नार्थाप (F.S. Narthop) का मानना है कि युद्ध सम्बंधी हीगेल के विचार तत्कालीन परिस्थितियों के दर्पण हैं और उसने युद्ध से सम्बंधित वास्तविक स्थिति का ही वर्णन किया हैi श्लोमों अविनेरी (Shlomo Avineri) और कॉफमैन जैसे दार्शनिक हीगेल को युद्धोन्माद का समर्थक नही मानते हैं अपितु उसके दर्शन को शान्ति व्यवस्था के अनुकूल सिद्ध करते हैंi

2.2.8. हीगेल के शासन सम्बंधी विचारः–

हीगेल ने राज्य के तीन प्रकार के वर्गीकरण का उल्लेख किया है– उत्पीडन तंत्र (Tyranny), लोक तंत्र (Democracy), और वंशानुगत राजतंत्र (Hereditary Monarchy)i उसका मत है कि संविधान आरोपित नही किये जाते अपितु वे देश की संस्कृति एवं वहाँ के निवासियों के जीवन वृत्ति से उद्भूत होते हैंi हीगेल वैधानिक राजतंत्र का समर्थक है उसका मानना है कि उसमें राजतंत्र, कुलिनतंत्र एवं जनतंत्र के गुण विद्यमान हैंi हीगेल भी शासन कार्य को लॉक और माण्टेस्क्यू की तरह तीन भागों में विभाजित करता है लेकिन वह माण्टेस्क्यू के शक्ति विभाजन को स्वीकार नही करता हैi वह व्यवस्थापिका, कार्य पालिका और न्याय पालिका के स्थान पर कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और राजतंत्र के रूप में विभाजित करता हैi राज्य के लिए वह सम्राट को अनिवार्य मानता है क्यों कि सम्राट के अभाव में राज्य में एकता स्थापित नही की जा सकतीi दूसरी तरफ उसका मानना था कि सम्प्रभुता जनता में नही वरन् राजा में निहित है और वही राज्य की इच्छा का प्रतिनिधित्व करता हैi अतः वह वंशानुगत सम्राट होना चाहिए, निर्वाचित राष्ट्रपति नहींi

हीगेल संसदीय विधायिका को स्वीकार करता हैi अभिजात सदन की सदस्यता वंशानुगत और वरिष्ठता तथा भूमिपतियों के गर्त से होनी चाहिए और दूसरे सदन का निर्माण विभिन्न व्यावसायिक ईकाइयों, निगमों, समुदायों और संस्थाओं के द्वारा निर्वाचित व्यक्तियों से होनी चाहिएi हीगेल वयस्क मताधिकार का समर्थन नही करता है और शासन के कार्य में जनता के हस्तक्षेप को अस्वीकार करते हुए कहता है कि शासन का प्रबन्ध कोई महान व्यक्ति कर सकता हैi हीगेल इस बात का प्रबल समर्थक है कि "जिसने लोकमत से घृणा करना नही सीखा है वह कोई महान कार्य नही कर सकता है"i हीगेल प्रादेशिक प्रतिनिधित्व (Territorial Representation) के विरूद्ध थाi व्यक्ति के व्यावसायिक हितों का संरक्षण

आवश्यक है और इसके लिए व्यावसायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था होनी चाहिएi हीगेल का विश्वास प्रादेशिक नही अपितु व्यावसायिक आधार पर गठित संघात्मक राज्य में थाi

हीगेल व्यवस्थापिका की तुलना में कार्य पालिका को अधिक महत्व प्रदान करता है क्यों कि शासन संचालन की समस्त शक्ति कार्यपालिका में ही केन्द्रित हैi " राज्य के संगठन और आवश्यकताओं को समझने में उच्चतम सरकारी अधिकारियों में अधिक गम्भीर और व्यापक दृष्टि होती है"i हीगेल विधायिका में बहसों की गोपनीयता, प्रेस की स्वतंत्रता और सूचना स्वतंत्रता के सिद्धान्तों का समर्थन करता हैi

2.2.9. हीगेलवादी दर्शन की आलोचना–

हीगेल के समर्थकों ने हीगेल को संसार का महानतम दार्शनिक घोषित कर उसे दार्शनिक चिन्तन क्षेत्र में अन्तिम सत्य को प्राप्त करने वाला बताया है और इस दृष्टि से उसकी प्रशंसा के पुल बाँधे हैं किन्तु ठीक इसके विपरित उसके आलोचकों नें उसके द्वारा प्रतिपादित विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों की कटु आलोचना की है और उसे मानव स्वतंत्रता को कुचलने वाला सर्वाधिकारवादी दर्शन का प्रणेता बताकर , मानव जाति का सबसे अधिक अनिष्ट और विनाश करने वाला दार्शनिक घोषित किया हैi उन्होंने विभिन्न दृष्टिकोणों से उसके दर्शन की आलोचना की है जो इस प्रकार है–

1. हीगेल एक सर्वाधिकारवादी राज्य का अन्ध भक्त हैi उसने बार्कर के अनुसार– " राष्ट्र – राज्य को एक रहस्यात्मक स्तर तक पहुँचा दियाi " अतः उसने राज्य को सर्वशक्तिमान बनाकर व्यक्ति की स्वतंत्रता को उसके चरणों में भेंट कर दियाi इस तरह उसने राज्य को पूर्णतः निरंकुश और व्यक्ति के अधिकारों को कुचलने वाला बना दियाi व्यक्ति राज्य की तुलना में एक महत्वहीन वस्तु बन गया जिसका एकमात्र कार्य यह है कि वह " राज्य के अस्तित्व को बनाये रखने के लिएअपना सब कुछ न्यौछावर करने के लिए सदैव तत्पर रहे "i ब्राउन के शब्दों में – " हीगेल द्वारा व्यक्ति का महत्व इस तरह घटा दिये जाने का परिणाम यह हुआ है कि व्यक्ति राज्य का दास बन गया हैi वह उसके लिए सैनिक सेवा करने और युद्धों में रक्त बहाने के लिए विवश हो गया हैi " वेपर ने इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए कहा है कि – "उसने मानव के चरम उत्कर्ष पर बल दिया, लेकिन इसके साथ – साथ मानव अधिकारों को कुचलने वाले भीषण अत्याचारों के युग का प्रारम्भ भी कियाi"
2. हीगेल ने स्वतंत्रता के सिद्धान्त को तोड – मरोडकर इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि वह वास्तविक दृष्टि से परतंत्रता का रूप ग्रहण कर लेता है क्यों कि उसके अनुसार स्वतंत्रता का अर्थ स्वेच्ठा से राज्य के आदेशों का पालन करना है जिसे दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि व्यक्ति राज्य के पराधीन रहकर ही सच्ची स्वतंत्रता का उपभोग कर सकता हैi इस तरह हीगेल राज्य की पराधीनता को ही व्यक्ति की सच्ची स्वतंत्रता सिद्ध करता हैi यह दृष्टिकोण सैद्धान्तिक दृष्टि से कितना ही सही होने पर भी व्यावहारिक दृष्टि से सही नही हो सकता क्योंकि व्यक्ति राज्य का अंश होते हुए भी अपना एक अलग व्यक्तित्व रखता है और उसकी अपनी एक अलग गरिमा हैi अतः अगर उसे पूर्णतः राज्य के अधीन कर दिया जाता है तो निश्चित रूप से

इसका परिणाम उसकी पराधीनता के रूप में प्रकट होगा जो उसके स्वतंत्र अस्तित्व का पूर्णतः नष्ट कर देगाi

3. हीगेल अपनी द्वन्दात्मक पद्धति का प्रतिपादन और विश्व इतिहास की व्याख्या एक विशिष्ट उद्देश्य को ध्यान में रखकर करता हैi उसका यह विशिष्ट उद्देश्य था– जर्मनी का एक सर्वोच्च राष्ट्र के रूप में उत्थानi अतः हम उसके दर्शन को निष्पक्ष और सत्य नही मान सकतेi
4. यूनानी दार्शनिकों प्लेटो, अरस्तू आदि से प्रभावित होकर उनकी तरह ही हीगेल राज्य और समाज मे किसी प्रकार का अन्तर नही करता है और उनको एक – दूसरे का पर्याय मान लेता हैi यह उसकी गम्भीर भूल है क्यों कि जैसा कि हम जानते हैं ये दोनों संगठन एक दूसरे पर आश्रीत होने पर भी अपना अलग–अलग अस्तित्व रखते हैंi अगर दोनों में विद्यमान इस भेद का ध्यान न रखा जाये तो ऐसी स्थिति में जनता का निकृष्ट प्रकार का राज्य की स्वेच्छाचारिता का शिकार हो जाना उसकी स्वतंत्रता का पूर्णतः विनाश हो जाना और राज्य का मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष पर नियन्त्रण स्थापित हो जाना अनिवार्य हैi
5. हीगेल ने तत्कालीन जर्मन राज्य व्यवस्था को आदर्श घोषित कर उसे स्वर्ग के शिखर पर पहुँचा दियाi उसने उसे विश्वात्मा की अभिव्यक्ति का माध्यम बताकर उसके प्रति अन्ध भक्ति प्रकट की जिससे जर्मन जनता में राष्ट्रीय एवं जातीय अहंकार की भावना का विकास हुआ और वह अपनी सर्वोचचता और श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए युद्धोन्मादी होकर निरंकुशता और बर्बरता के मार्ग पर अग्रसर हुईi
6. हीगेल का दर्शन जरूरत से ज्यादा बौद्धिक हैi फलतः वह हमारे सामने एक अनुभवहीन और शुष्क दार्शनिक के रूप में प्रकट होता हैi उसने गलत धारणाओं का शिकार होकर यह प्रतिपादित किया कि– "विवेकशीलता ही वास्तविकता है और वास्तविकता ही विवेकशीलता है " (Rationalis Real and Realis Rational)i अति बौद्धिकता के कारण हीगेल का दर्शन व्यावहारिकता के आधार को खोकर कल्पना जगत की वस्तु मात्र रह गया हैi
7. हीगेल ने राज्य को सर्वोच्च नैतिकता का मूर्तिमान रूप बनाकर उसके कार्यों को अनैतिकता अत्याचार निरंकुशता और छल–कपट के बन्धनों से मुक्त कर दिया है और सर्वोच्च शासन को ईश्वर का अवतार घोषित करके उसकी अन्ध पूजा की व्यवस्था की हैi इस सम्बंध में उसने घोषित किया कि " निरपेक्ष चेतना या विश्वात्मा का साकार रूप होने से उसका मूल्यांकन उन मापदण्डों से नही किया जा सकता जिससे साधारण व्यक्ति का मूल्यांकन किया जा सकता हैi "
8. हीगेल ने राष्टीय आय को राजनीतिक विकास का अन्तिम चरण घोषित करके उसे अन्तर्राष्ट्रीय कानून के नियन्त्रण से मुक्त कर दिया है क्यों कि उसकी दृष्टि में अन्तर्राष्ट्रीय कानून मात्र कुछ परंपराओं के समान है जिन्हें सर्व – प्रभुत्तासम्पन्न राज्य अपनी सुविधानुसार स्वीकार या अस्वीकार करने का अधिकारी हैi अतः उसकी यह मान्यता अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में राज्य को स्वेच्छाचारी आचरण की खुली छूट देकर अराजकता को जन्म देने वाली हैi
9. हीगेल राज्य को पृथ्वी पर ईश्वर का अवतार और विश्वात्मा की अभिव्यक्ति मानकर व्यक्ति को किसी भी स्थिति में उसकी आलोचना या विरोध करने का अधिकार प्रदान नही करता हैi आधुनिक युग मे उसकी इस मान्यता को स्वीकार नही किया जा सकता क्यों कि यथार्थ वादी

दृष्टिकोण से अगर देखा जाय तो बहुत सी बार राज्य के द्वारा ऐसे कार्य किये जाते हैं जो किसी वर्ग विशेष को लाभ पहुँचाने वाले और भेद भाव से पूर्ण होते हैंi अतः सामाजिक हित में कभी – कभी व्यक्ति के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह राज्य के ऐसे भेद भाव पूर्ण कार्यों का विरोध करे और उसे सही रास्ते पर आने के लिए बाध्य करेi

10. हीगेल की यह मान्यता है कि राष्ट्रीय राज्य के उदय के साथ राज्य के विकास का अन्त हो जाता है अर्थात राष्ट्रीय राज्य राजनीतिक विकास का अन्तिम चरण हैi इसके बाद राज्य के रूप में और किसी तरह का परिवर्तन नही होताi

अतः इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए जोड (Joad) का कथन है कि – " मानव जाति में अन्तःनिर्भरता की बढती हुई प्रवृति के कारण राष्ट्रीय–राज्य का विकास अब अतीत काल की वस्तु प्रतीत होने लगा है "i इस आधार पर हम कह सकते हैं कि – 'राष्ट्रीय–राज्य का विकास शनैः – शनैः अन्तर्राष्ट्रीय राज्य के रूप में हो रहा है और इसलिए हीगेल की राष्ट्रीय–राज्य को राज्य के विकास की अन्तिम कडी मानने की बात सिद्धान्ततः गलत सिद्ध हो रही हैi

2.2.10. हीगेल का योगदान और महत्वः– (Contribution &importanace of Hegel)

हीगेल द्वारा प्रतिपादित विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तो की विभिन्न दृष्ट्रिकोणों से आलोचना की गई है और उसके कुप्रभावों का उल्लेख किया गया है लेकिन फिर भी दार्शनिक चिन्तन में उसके द्वारा जो योगदान किया गया है, उसके महत्व को स्वीकार करने से इंकार नही किया जा सकता हैi उसने विविध रूप में दार्शनिक चिन्तन को समृद्ध एवं प्रभावित किया हैi उसके द्वारा किये गए योगदान को निम्न रूप से रेखांकित कर सकते हैं–

1. **प्रतिपादित द्वन्दात्मक पद्धति का सिद्धान्तः**– दोषपूर्ण होते हुए भी उसने पश्चिमी जगत में महान क्रान्ति को जन्म दियाi आधुनिक युग के उदय के साथ होने वाले वैज्ञानिक विकास ने यह सिद्ध कर दिया कि विश्व का संचालन अपरिवर्तनशील और सिथर नियमों के अनुसार नही होता वरन् वह निरंतर परिवर्तनशील एवं गतिशील हैi अतः उसके विकास को पुराने नियमों के अनुसार नही समझा जा सकता हैi हीगेल ने उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए अपनी द्वन्दात्मक पद्धति को प्रस्तुत किया और विश्व मे होने वाले परिवर्तनों को समझने के लिए एक नवीन दार्शनिक साधन प्रदान कियाi उसने विकासवादी प्रक्रिया से प्रगति के विचार पर बल देते हुए यह प्रतिपादित किया कि हम किसी वस्तु के यथार्थ रूप को उसके विरोधी रूप से तुलना करके ही जान सकते हैंi हीगेल की यह पद्धति बाद में बहुत प्रभावपूर्ण सिद्ध हुईi मार्क्स ने उसकी इस पद्धति को भौतिकवादी आधार पर प्रस्थापित कर आधुनिक विश्व को आन्दोलन करने वाली वैज्ञानिक समाजवाद की विचारधारा का निरूपण कियाi
2. **राष्ट्रीय–राज्य का सिद्धान्तः**– हीगेल ने विश्व इतिहास की व्याख्या कर यह सिद्ध किया कि संवाद के रूप में विश्वात्मा अपने पूर्ण आदर्श रूप में राष्ट्रीय–राज्य का रुप धारण करके जर्मनी में प्रकट होगीi उसने राष्ट्रीय–राज्य को राजनीतिक विकास का अन्तिम रूप घोषित कियाi उसके इस विचार से जर्मन जाति में अपनी महानता के प्रति अदम्य आत्मविश्वास की भावना जाग्रत हुई और वह अपने आपको विश्व की सर्वोत्कृष्ट जाति मानने लगीi

हीगेल उग्र राष्ट्रीयता का पैगम्बर थाi इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए मैक्सी का कथन है कि– " वर्तमान युग में पाये जाने वाले राष्ट्रीयता के प्रति उत्कृष्ट सिद्धान्तो का पोषण हीगेल की विचारों में हुआ हैi उस समय उसका तात्कालिक प्रयोजन जर्मनी के राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में आने वाली बौद्धिक बाधाओं का निराकरण करना था किन्तु उसने इससे भी अधिक बडा कार्य कर अपनी रचनाओं के माध्यम से ऐसे सिद्धान्तो को प्रस्तुत किया जिससे न केवल जर्मनी में अपितु अन्य सभी देशों में राष्ट्रीयता को धर्म का रूप दिया जा सकता थाi "

3. **प्रगति का विचार**:– प्रगति का विचार के अनुसार उसने सिद्ध किया कि विश्व इतिहास मानव समाज के निरंतर विकास की प्रक्रिया का इतिहास हैi यह विकास निरंतर उच्चतर और प्रगति की ओर उन्मुख हैi प्रगति के इस विचार ने विधिशास्त्र के क्षेत्र में नवीन विचारधाराओं का सूत्रपात कियाi विधिशास्त्र मे ऐतिहासिक प्रणाली का प्रवर्तक सैविग्नी (Savigny) हीगेल के इस विचार से बहुत प्रभावित हुआ और उसे ग्रहण कर उसने विधिशास्त्र के क्षेत्र में कई नयी मान्यताओं की स्थापना कीi
4. **व्यक्ति और राज्य के सम्बन्ध में आंगिक एकता पर बल**:– व्यक्तिवादी सिद्धान्त के प्राधान्य के कारण यूरोप के दार्शनिक चिन्तन व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों पर बहुत जोर देते थे और राज्य को व्यक्ति की तुलना मे बहुत कम महत्व देते थेi अपनी इस मान्यता के कारण वे राज्य और व्यक्ति के हितों मे उग्र विरोध और संघर्ष की कल्पना करते थेi हीगेल ने इन विचारों के विरूद्ध यूनानी दार्शनिकों से प्रेरित होकर प्रतिपादित किया कि राज्य और व्यक्ति का सम्बंध शरीर और उसके अंगों के समान है और इसलिए उन दोनों के हितों मे न तो किसी प्रकार का विरोध है और संर्घष वरन् इसके विपरित क्यों कि व्यक्ति राज्य का एक अविभाज्य अंग है, अतः वह उसमें रहकर ही अपना चरम विकास कर सकता हैi व्यक्ति राज्य के सम्बंधों के सन्दर्भ में हीगेल द्वारा प्रतिपादित यह विचार आज के युग में काफी महत्वपूर्ण और सर्वमान्य हैi
5. **राजनीति और नैतिकता एक दूसरे के पर्यायवाची**:– उसकी अन्तिम महत्वपूर्ण देन यह है कि मैकियावेली के विरूद्ध उसके द्वारा प्रतिपादित किया गया कि राजनीति और नैतिकता में घनिष्ठ सम्बंध है क्योंकि राज्य सर्वोच्च नैतिकता का प्रतीक है अतः राजनीति नैतिकता का ही दूसरा नाम हैi इस तरह उसने राजनीति और नीतिशास्त्र के बीच विद्यमान पारस्परिक सम्बंधों को स्पष्ट कर यह प्रतिपादित किया कि राजनीति और नैतिकता दोनों एक दूसरे के पर्यायवाची हैंi

उसकी इन विभिन्न देनों का सम्मिलित रूप से उल्लेख करते हुए वेपर के शब्दों में कहा जा सकता है कि " उसने राजनीति को विभिन्न हितों के समन्वय से उँचा उठाया, उसने कानून को कोरी आज्ञा से अधिक उत्कृष्ट वस्तु बनायाi उसका यह सिद्धान्त कम महत्व नही रखता कि राज्य को बनाये रखने में पुलिस कार्य करने वाले संगठन से अधिक उच्च तथा मनुष्य का नैतिक विकास करने का साधन समझा जाना चाहिएi "

2.2.11. सारांश

राजनीतिक दर्शन के क्षेत्र में हीगेल की युग परिवर्तनकारी विचारधारा का विशेष महत्व हैi हीगेल का सिद्धान्त प्रगति पर जोर देता है क्योंकि उनका मत है कि प्रत्येक वस्तु का निरंतर विकास रहता है

जिसके फलस्वरुप वह अधिक उत्कृष्ठ रुप धारण करती चली जाती हैi हीगेल ने राज्य को नैतिकता का साकार रुप मानकर राजनीति और नैतिकता में घनिष्ठ संबंध को उजागर कियाi हीगेल ने अपने द्वन्दवाद के द्वारा ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में एकता स्थापित करने का प्रयास कियाi हीगेल ने अपनी इस पद्धति के द्वारा धर्म और विज्ञान के क्षेत्र की खाई को पाटने का प्रयास किया परिवर्तन की प्रक्रिया को भली–भाँति समझाने का प्रयास किया और भौतिक संसार को यर्थाथ रुप से जानने में सहायता प्रदान कीi उसने राज्य की आंशिक एकता पर जोर देकर व्यक्ति को राज्य का अभिन्न अंग मानकर एवं राज्य के प्रति व्यक्ति के कर्त्तव्य पर बल देकर व्यक्तिवाद का विरोध कियाi वेपर ने लिखा है– 'हीगेल ने राजनीति को विभिन्न हितों के समन्वय से उच्चतर स्थान दियाi उसने कानून को आदेश का प्रतिफल न मानकर उससे श्रेष्ठ स्थान प्रदान कियाi उसने राज्य को शांति स्थापित करने में पुलिस का कार्य करने वाले संगठन से उँचा स्थान प्रदान किया और उसे व्यक्ति का नैतिक विकास करने का साधन मानाi उसने राष्ट्रीय राज्य की भावना के प्रसार में पूर्ण योगदान कियाi उसी की रचना से प्रेरित होकर विस्मार्क नें जर्मनी में एकता की स्थापना की, उसकी रचनाओं के फलस्वरुप न केवल जर्मनी में अपितु संसार के अन्य सभी देशों में राष्ट्रीयता की लहर फैलीi हीगेल के दर्शन से प्रभावित होकर ही फासीवाद ने प्रजातिवाद राष्ट्रवाद नेतृत्व के सिद्धान्त सत्ता पर आधारित शासन और शक्ति की सराहना कीi सेबाइन के अनुसार हीगेल के चिंतन के आधार पर राजनीतिक सिद्धान्त में जिन विविध प्रवृत्तियों का विकास हुआ उसमें से उपर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता हैः विकास की सीधी रेखा असंदिग्ध रुप से हीगेल से मार्क्स के और बाद के साम्यवादी सिद्धान्त की थीi जहाँ द्वन्दात्मक पद्धति जोडने वाली कडी थी मार्क्स ने द्वन्दात्मक पद्धति को हीगेल के दर्शन की युगान्तकारी खोज कहा थाi दूसरे आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के आदर्शवादियों ने इंग्लैण्ड के उदारवाद का जो संशोधन किया था उसमें भी हीगेल का चिंतन एक महत्वपूर्ण तत्व रहा थाi अन्त में इटली में फासिज्म ने अपने प्रारंभिक चरणों में हीगेलवाद से दार्शनिक आधार ग्रहण कियाi हीगेल का चिंतन एक ऐसा बीज था जिसने आगे चलकर १९वीं शदी में सामाजिक दर्शन के पक्ष का प्रभाव डालाi उपर्यक्त विश्लेषण के आधार पर इबेन्सटीन के शब्दों मे निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है 'हीगेल अनेक बातों मे अन्य दार्शनिकों से श्रेष्ठतर है उसने अपनी राजनीतिक व्यवस्था में दर्शन, अध्यात्मशास्त्र धर्म कला, नीतिशास्त्र और राजनीतिक व्यवस्था में दर्शन, अध्यात्मशास्त्र धर्म, कला नीतिशास्त्र और राजनीतिशास्त्र को समाविष्ट किया हैi केवल अपनी व्यापकता के कारण ही उसकी रचनाओं का स्वरुप प्रभावपूर्ण और विश्वकोशीय हैi

निष्कर्षः–

विविध आलोचनाओं के होते हुए भी हीगेल का योगदान कम नही हैi हीगेल ने जिस द्वन्दवाद सिद्धान्त का प्रतिपादन किया उससे यूरोपीय जगत में एक क्रान्ति हुइ और यह विचार विकसित हुआ कि विश्व का संचालन अपरिवर्तनशील और स्थिर नियमों के अनुसार नही होता वरन् वह निरंतर परिवर्तनशील और गतिशील हैi मार्क्स ने इसी पद्धति को भौतिकवादी आधार पर स्थापित कर आधुनिक विश्व को वैज्ञानिक समाजवाद के रूप में निर्धारित कियाi हीगेल का मानना था कि समाज में मानव की स्वतंत्रता सम्पूर्ण हैi व्यक्तिवाद मनुष्य के सामाजिक चरित्र को समाप्त कर देता हैi वहीं वह यह भी स्पष्ट करता है कि मनुष्य समाज से कितना अधिक प्रभावित हैi हीगेल ने विश्व इतिहास की व्याख्या करके यह स्पष्ट किया कि विश्वात्मा अपने पूर्ण आदर्श के रूप में राष्टीय राज्य का रूप धारण करके जर्मनी में प्रकट

होगीi हीगेल उग्र राष्ट्रीयता का पैगम्बर थाi उसका यह विचार न केवल जर्मनी में अपितु अन्य देशों में भी राष्ट्रीयता के धर्म के रूप में स्वीकार किया गयाi हीगेल के चिंतन से अनेक परवर्ती विचारक प्रभावित हुएi उसके अनुयायियों ने उसके सिद्धान्त का और अधिक विकास कियाi इनमें ट्राइट्स्के (Treitschke) तथा बर्नहार्डी (Bernhardi) का नाम प्रमुखता से लिया जाता हैi इटली में हीगेल की विचारधारा को आगस्टोवीरा (Augusto Vera), क्रोशे (Croche) तथा जेन्टिले (Gentile) ने गति प्रदान कियाi इंग्लैण्ड में ग्रीन (green) ब्रैडले (Bradley) एवं बोसांके (Bosanquet) ने आदर्शवाद को धार प्रदान कियाi

2.2.11. अभ्यास बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्नः–

1. 'राज्य पृथ्वी पर ईश्वर का आगमन है' किसने कहा–
   a) मार्क्स
   b) स्पेंसर
   c) ओपनहाइम
   d) हीगेल

2. राज्य सम्बंधी नैतिक धारणा पर कौन सा विचारक विश्वास करता है–
   a) जॉनलॉक
   b) मैकियावेली
   c) बेंथम
   d) हीगेल

3. निम्न में से कौन सा आदर्शवादी विचारक था–
   a) हाब्स
   b) बेंथम
   c) हीगेल
   d) स्पेसर

4. स्वतंत्रता का अर्थ वर्तमान विकल्पों मे से मनपसन्द तरीके का चुनाव नही इसका अर्थ अपने आचरण को निर्धारित नियमों के अनुरूप ढालना हैi
   a) काण्ट
   b) हीगेल
   c) ग्रीन
   d) बोसांके

5. 'दास अपने जीवन में दो गुण अर्जित करता है ज्ञान और आत्मसंयम'–
   a) प्लेटो
   b) अरस्तू
   c) हीगेल

d) फिक्टे

6. नागरिक समाज का अर्थ है–

a) नागरिको का समूह
b) नागरिकों का शासन करने वाला समूह
c) नागरिकों के लिए विधि बनाने वाली व्यवस्थापिका
d) आवश्यकता उत्पादन और पूर्ति से संबंधित व्यवस्था

लघु उत्तरीय प्रश्नः–

a) नागरिक समाज का लक्षण बताइये ?
b) हीगेल की दृष्टि में स्वतंत्रता की विशेषताओं मे से एक विशेषता बताइये?
c) एक कारण बताइये कि क्यों हीगेल के अनुसार राज्य बुद्धि की चित्रलिपि हैi
d) काण्ट और हीगेल के आदर्शवाद में क्या मुख्य अंतर है ?
e) इतिहास दर्शन पर हीगेल के विचारों का मूल्यांकन कीजिएi

दीर्घ उत्तरीय प्रश्नः–

1. काण्ट की तुलना में हीगेल में स्वतंत्रता का अधिक सकारात्मक तथा स्थूल दृष्टिकोण और राज्य का कम व्यक्तिवादी स्वरूप प्रस्तुत किया है (बार्कर) इस कथन की व्याख्या करते हुए स्वतंत्रता राज्य के विषय में हीगेल और काण्ट के विचारों की समीक्षा करेंi
2. राज्य आत्म चेतन नैतिक तत्व है – हीगेल, समीक्षा करेंi
3. 'हीगेल समस्त सर्वाधिकारवादी सिद्धान्तों का जनक है' उसके अनुसार राज्य समाज से किस प्रकार श्रेष्ठ है?
4. हीगेल की द्वन्दवाद की आलोचनात्मक समीक्षा करेंi
5. हीगेल के द्वारा दी गई इतिहास की दार्शनिक व्याख्या का विवेचन करते हुए यह बताइये कि उसने किस प्रकार राज्य का आध्यात्मीकरण किया है और उसने उस से क्या परिणाम निकाले हैं?

2.2.12. कठिन शब्दावली

1. द्वन्दात्मक पद्धति – वाद विवाद तर्क वितर्क द्वारा सत्य पर पहुँचना
2. वाद–किसी भी विषय के सत्य की प्रथम झलक मानव बुद्धि
3. दैवी सत्ता– पृथ्वी पर ईश्वर का अवतरण
4. ऐतिहासिक पद्धति– इतिहास के दर्शन से एक सामान्य नियम खोजना
5. अध्यात्मिक पक्ष– गहनतम मूल्य जिसके साथ लोग जीते हैं
6. सामान्य इच्छा– सबकी इच्छा
7. सर्वाधिकारवादी राज्य– एक ऐसी व्यवस्था जिसमें राज्य के आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, शैक्षिक इत्यादि सभी पक्षों पर राज्य सर्वोपरि होi

8. विश्वात्मा– विचार, आत्मा, विवेक
9. राष्ट्रीय राज्य– उस राज्य को कहते हैं जो राज्य की राजनीतिक सत्ता को उसकी सांस्कृतिक सत्ता में मिला देती है।
10. युद्धोन्माद– युद्ध का उन्माद

2.2.13. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन (प्लेटो से मार्क्स) आर०एन०भगत
2. समकालीन राजनीतिक चिन्तन– प्रो०श्री प्रकाश मणि त्रिपाठी
3. द हिस्ट्री ऑफ पोलिटिकल थियरी 'हिन्दी अनुवाद' – जार्ज एच०सेबाइन
4. पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन– डॉ० बी०आर०पुरोहित
5. Bosanquet (Philosophical theory of the state)
6. Lancaster Masters of Political theory
7. Joad (introduction to modern Political theory
8. W.A.Punni (A history of Political theory)
9. Walter Kavfman- Hegal's Political Philosophy
10. Charls Taylor : Hegal's theory of modern state

इकाई–3 बर्नार्ड बोसांके (1848–1933)

इकाई की रूपरेखा

2.3.1. उद्देश्य
2.3.2. प्रस्तावना
2.3.3. राज्य का सिद्धान्त
2.3.4. बोसांके के दण्ड संबंधी विचार
2.3.5. बोसांके के दर्शन की आलोचना
2.3.6. ग्रीन तथा बोसांके में समानताएँ/असमानताएँ
2.3.7. सारांश
2.3.8. अभ्यास/बोधप्रश्न
2.3.9. कठिन शब्दावली
2.3.10. संदर्भ ग्रंथ सूची

2.3.1. उद्देश्य

आदर्शवादी विचारकों में बोसांके काप्रमुख स्थान है। इस इकाई का अध्ययन करने

के उपरांत आप समझ पायेंगे–

- बोसांके के इच्छा एवं संस्था सिद्धान्त
- बोसांके का राज्य सिद्धान्त तथा राष्ट्रवाद
- बोसांके के दण्ड संबंधी विचार
- बोसांके के चिंतन का मूल्यांकन

2.3.2. प्रस्तावना

अंग्रेज आदर्शवादियों में ग्रीन तथा ब्रेडले के बाद बोसांके का नाम आता है। बोसांके के दार्शनिक विचारोंपरपलेटो, कोट, हीगल, रुसो, ग्रीन के दार्शनिक विचारों काप्रभावपड़ा। अपनी अर्वाचीन मनोवैज्ञानिक खोजों की सहायता से वह ग्रीन के दर्शन को बहुत कुछ सीमा तक हीगल के दर्शन के निकट ले जाता है। उसके सम्बंध में कहा जा सकता है कि– बोसांके अपना दर्शन रुसो तथा ग्रीन सेप्रारंभ करता है तथा हीगल में उसकी चरमपरिणति होती है। वह एक सर्वतोमुखी विचारक तथा लेखक था। बर्नार्ड बोसांके का जन्म 16 जून 1848 को हुआ। उसने हैरो तथा बोलिओल कॉलेज आक्सफोर्ड से शिक्षाप्रदान की जहाँ कि वह वेन्जामिन जोवेट तथा ग्रीन केप्रभाव में आया। 1871 से 1881 तक वह विश्वविद्यालय कालेज में फेलो तथा शिक्षक रहा किन्तु उसे एक शिक्षक के जीवन का सीमित क्षेत्रपसन्द नही आया इसलिए वह लन्दन गया और वहाँ उसने अपने को चैरिटी आर्गनाइजेशन सोसाइटी तथा अन्य समुदायों की ओर से लिखने में लगा दिया। नवीन शदी के आरंभ होने के कुछ हीपाश्चात वह सेण्ट एण्ड्राज कालेज में दर्शन शास्त्र काप्राध्यापक बन गया और 1908 तक इसीपदपर रहा। 1911 और 1912 में उसने एडिनबरा विश्वविद्यालय में Principle ofindividuality and value तथा Value and Destiny ofindividual नामक दोप्रसिद्ध व्याख्यान दिये। 1923 में लंदन में उसका शरीरान्त हो गया।

बोसांके एक सर्वतोन्मुखी विचारक तथा लेखक था। न्याय शास्त्र, सौंदर्य शास्त्र, अध्यात्म शास्त्र तथा राजनीतिक दर्शनपर उसनें लगभग 20पुस्तकेंप्रकाशित कराई। उक्तप्रसिद्ध व्याख्यानों के अतिरिक्त उसकी महत्वपूर्ण रचनाएँ ये हैं–

- Knowledge and Reality
- Logic
- History of Aesthetics
- Social andinternationalideals
- The meeting of extremesin contemporary philosophy
- The Philosphical theory of the state.

बोसांके अपने दर्शन काप्रारंभ रुसो के इच्छा सिद्धान्त से करता है, वह यह मानता है कि व्यक्तियों की यथार्थ इच्छा तथा आदर्श इच्छा में अंतर है। यर्थाथ इच्छा क्षणिकपरस्पर विरोधपूर्ण तथा बुद्धि और तर्क केप्रतिकूल होती है इसके विपरीत आदर्श इच्छा, स्थायी, दूरदर्शितापूर्ण, सामंजस्यपूर्ण तथा बुद्धिसंगत होती है। बोसांके मानता है कि आदर्श इच्छा में कोई एकाकी वस्तु नही है यह अन्य

सामाजिकप्राणियों की आदर्श इच्छाओं से संयुक्त हैऔर समाज के सारेप्राणियों की इन्हीं इच्छाओं के समूह को सामान्य इच्छा कहा जा सकता है। बोसांके के अनुसार राज्य सामान्य इच्छा का ही मूर्तिमान स्वरुप है और वह उसी के द्वारा संचालित होता है। अतः हम राज्य द्वारा शासित होने से सामान्य इच्छा अथवा दूसरे शब्दों में आदर्श इच्छाओं द्वारा शासित होते हैं स्वशासन का यही वास्तविक रुप है।

संस्था सिद्धान्त : बोसांके संस्थाओं को नैतिक विचारों का मूर्त रुप मानता है और उसके संस्था सिद्धान्त की 3 आधारभूत मान्यताएँ हैं–

1. प्रत्येक सामाजिक संस्था मानव मस्तिष्क की एक जटिल मिश्रित क्रियाशीलता है।
2. समुदाय की सामूहिकता व्यक्ति के मस्तिष्क मेंप्रतिबिंबित होती है।
3. समुदायों के अंतर्गतप्रत्येक सदस्य अन्य सदस्योंपर अपने विचारों को लादनें कीप्रवृत्ति रखता है।

बोसांके एक आदर्शवादी था।प्रो0 जे0ए0लिटन ने उसे महानतम ब्रिटिश आदर्शवादी कहकरपुकारा है। एक आदर्शवादी होने के नाते उसने ग्रीन के सिद्धान्तों को अपनायापरन्तु उस उदारवाद को नही बल्कि उन्हेंपूर्णतया हीगलवाद की दिशा में विकसित किया। बार्कर के शब्दों में ग्रीन ने राज्य के ऊपर जो सीमाएँ लगायी थी बोसांके ने उन्हें एकदम दूर कर दिया और कि वह राज्य कीपूर्ण हीगेलवादी धारणा के निकट आ गया।

2.3.3. राज्य का सिद्धान्त

बोसांके अपने राज्य के सिद्धान्त को दार्शनिक कहकरपुकारता है। उनका मानना है कि किसी वस्तु का अध्ययन दार्शनिक है, यदि उसका उद्देश्य उस वस्तु का संपूर्ण रुप में और ज्ञान के लिए ज्ञानप्रापत करना है। इसप्रकार राज्य के दार्शनिक सिद्धान्त के अनुसार राज्य का अपना निजी स्वरुप होता है जो कि स्वयं अपने लिए ही विचार कापात्र है। राज्य के स्वरूपा के अपने विश्लेषण में बोसांके ने कहा कि 'मानव बुद्धि अपनापूर्ण तथा समुचित जीवन बुद्धियों के समाज में ही अथवा एक ऐसे समाज में हीप्रापत कर सकती है जिसमें एक बुद्धि व्यापक हो और समाज केप्रत्येक घटक के जीवन तथा कार्य ने अपने को संगतिवद्ध रुप से यद्यपि विभिन्न रुप से अभिव्यक्ति करती है।' रुसो की सामान्य इच्छा की व्याख्या बोसांके करता है वह कहता है कि समाज के घटकों की बुद्धियाँ तथा इच्छाएँ सामान्य इच्छा में एक अविभाजनीय संपूर्ण में मिल जाती है। राज्य मनुष्य के लिए स्वाभाविक है क्योंकि वह ही मनुष्य केपूर्ण विकास की स्थितियाँ जुटा सकता है। बोसांके ग्रीन से सहमत है कि राज्य केपास अपने उद्देश्य कीप्रापित के जो साधन होते हैं उनके तथा नैतिकता के स्वरुप के कारण राज्य का कार्य एक शुभ जीवन के मार्ग में आने वाली बाधाओं को हटाने तक सीमित है। ग्रीन की भाँति वह इस बातपर जोर देता है कि यद्यपि राज्य के कार्य का तात्कालिक रुप नकारात्मक होता है तथापि अपनी वास्तविक क्रियाओं तथा अंतिम उद्देश्य में वह विधेयात्मक होता है।राज्य के कार्य संबंधी धारणा से बोसांके ग्रीन सेपूर्णतया सहमत है। उसके लिए राज्य ''एकप्रकार

का चर्च मानवता का चर्च बन जाता है उसकी सदस्यता एक महान आध्यात्मिक अनुभव के अतिरिक्त कुछ नही है। संक्षेप में हीगेल की भाँति ही बोसांके के लिए राज्य नागरिक के लिए अंतिम नैतिक शक्ति है उसके नागरिक अंतःकरण का संरक्षक है। राज्य बोसांके के लिए आतंकपूर्ण तथा रहस्यमयी चीज बन जाता है। बोसांके हमारे स्वभाव के उस भाग में जिसपर राज्य की विवशकारी शक्ति काप्रभावपड़ सकता है और उसमें जो कि एक श्रेष्ठतर जीवन में अपनी अनुभूति करने के लिए संघर्ष कर रहा है, विभेद करता है। श्रेष्ठतम जीवन की यहप्रवृत्ति यदि व्यक्तियों में वर्तमान न होती तो एक उत्कृष्ट शिक्षाप्रणाली अच्छा स्थान तथा समुचित वेतन शुभ जीवन के तत्व न होते। दूसरे भाग को समाज की राजनीति विहीन क्रियाओं से स्फुरणप्रापत हो रहा है। बार्कर के शब्दों में– ''राज्य का क्षेत्र यांत्रिक क्रिया का है, उसकी स्फूर्ति का आधार बल है इसकी कार्यपद्धति में कठोरता है उसकी कार्यपद्धति में लचीलापन है।'' वह राज्य कोपाशुबलप्रयोग करने वाला राजनीतिक संगठन मात्र नही समझता, वह उसे एक सामान्य संगठन तथा जीवन का समन्वय समझता है जिसमेंपरिवार से लेकर व्यापार तक तथा व्यापार से लेकर चर्च तथा विश्वविद्यालय तक वे समस्त संस्थाएँ सम्मिलित होती है जो कि जीवन को निर्धारित करती है। इसमें ये सब केवल एक एकत्रीकरण के रुप में सम्मिलित नही होती बल्कि एक ऐसे ढांचे के रुप में होती है जो कि राजनीतिक संगठन को जीवंत अर्थप्रदान करता है जबकि वह स्वयं इससेपारस्परिक सामंजस्यप्रापत करता है जिसकापरिणाम होता हैप्रसरण तथा एक अधिकार की अभिव्यक्ति। तात्पर्य यह है कि राज्य समाज को अपने अंतर्गत सम्मिलत रखता है।

राज्य नैतिक विचार के रुप में : अधिकतर आधुनिकपरिभाषाओं के अनुसार राज्य व्यक्तियों का समुदाय है, समुदायों का समुदाय है। बोसांके के लिए राज्य समस्त नागरिकों की 'बुद्धियों का सामान्य तथ्य' है, अपने घटकों की सर्वव्यापक बुद्धि है। इस विचार के द्वारा वह हीगल की इस धारणा के निकट आ जाता है कि राज्य स्वयं को जानने वाला तथा स्वयं को यर्थाथ करने वाला एक व्यक्ति है। यही उग्र आदर्शवाद है। बोसांके कहते हैं कि एक संसद सरीखी संस्था उन व्यक्तियों का समूह मात्र नही है जो कि एक कमरे में बैठते हैं और वाद–विवाद करते हैं मूलतः वह एक उद्देश्य अथवा भावना है जो कि कुछ बुद्धियों को एक सम्पूर्ण इकाई में एकीकृत करती है।

यह एक सामाजिक बुद्धि है जिसमें कि घटकों की बुद्धियाँ मिलती है यह एक आदर्श तत्व है जो कि सार्वभौमिक रचना होने के नाते तो सामाजिक तत्व है किन्तु अपनी विभिन्नकृत सिथतियों में व्यक्तिगत बुद्धि है। बार्कर के शब्दों में संसद अंतिम रुप से, न तो ईटे है न चूना और न मॉस तथा रक्त यह वह तत्व है जो कि छः सौ बुद्धियों के लिए सामान्य है, यह जैसा कि हम कहते हैं, 'सामान्य बुद्धि' है। बोसांके की धारणा के अनुसार राज्य में वे समस्त संस्थाएँ सम्मिलत हैं जो कि जीवन को निर्धारित करती है। इसलिए बोसांके राज्य को जीवन का संचालक चक्र कहकरपुकारता है।

राज्य के कार्यों की नैतिकता : बोसांके का विश्वास है कि अंततोगत्वा समाज में नैतिकप्रणाली रहती है जो राज्य से स्वतंत्र होती है। दूसरी बात यह है कि वह एक श्रेष्ठ अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की कल्पना करता था जो विश्व भ्रातृत्व की धारणापर आधारित थी। बोसांके किसी ऐसी नैतिकप्रणाली या सत्ता में विश्वास नही करता जो राज्य से स्वाधीन होकर समाज मेंपायी जाती है। उसके लिए राज्य एक संपूर्ण नैतिक जगत का संरक्षक है किन्तु यह संगठन नैतिक जगत के अंतर्गत तत्व नही है। यह कहता है नैतिक संबंधों के लिए संगठित जीवन एक सर्व आवश्यकता है, किन्तु ऐसा जीवन केवल राज्य के अंतर्गत है राज्य तथा अन्य समुदायों के बीच संबंधों मे नही। अतः वह इसपरिणामपरपहुँचता है कि राज्य के कार्यों का इसप्रकार से नैतिक निर्णय नही होना चाहिए जैसा कि व्यक्तिगत कार्यों का। राज्य अधिकारों और कर्तव्यों की उसप्रणाली से बाधित नही हो सकता जिसे वह अपने नागरिकोंपर आरोपित करता है। वह उस सामाजिक नैतिकता से सीमित नही हो सकता जिसे वह कायम रखता है।

राष्ट्र राज्य : यह सामाजिक संगठन का सर्वोच्च रुप है किन्तु यह संपूर्ण मानव जाति एक समुदाय नही है। मानवता एक नैतिक सावयव (Organism) नही है। इसलिए एक संगठित मानवता के आधारपर कोई सच्ची अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता नही हो सकती। इसलिए नैतिक कानून एक राज्य के अंतर्गत घटकोंपर लागू हो सकता है स्वाधीन राज्यों केपरस्पर संबंध उसकीपरिधि से बाहर है। संगठित सामाजिक जीवन के लिए एक ऐसेपथप्रदर्शक तथा मापदंड की आवश्यकता है जो कि उसकी सामयिक क्रियाओं सेपरे है। बोसांके आशा करता है कि राज्य का उद्देश्य एक ऐसे सामाजिक अंतःकरण की दिशा में अग्रसर होगा जो कि सत्यं शिवम् सुन्दरम् कीप्रापित को अपना लक्ष्य समझेगा। वह अरस्तू की इस धारणा से सहमत है कि नागरिक जीवन का अंतिम लक्ष्य तथा मूल तत्व धर्म होना चाहिए और जीवन केपरम मूल्य ही हमारी इच्छाओं को सन्मार्ग की ओर निर्दिष्ट कर सकते है और राष्ट्र भक्ति को स्वच्छ तथा मधुर रख सकते हैं। यदि मानव जाति राष्ट्र के बीच मतभेद की अपेक्षा एकमत होने के लिए अधिक भौतिक आधार खोज सकती है तो हो सकता है कि सुदूर विश्व में एक विश्व व्यवस्था और विश्व राज्य का जन्म हो सके।

2.3.4. बोसांके के दण्ड संबंधी विचार

दण्ड सिद्धान्त के विषय में भी बोसांके के विचार ग्रीन के विचार से अलग हैं और दण्ड में एक विलक्षण सकारात्मक गुण देखता है जो राज्य कार्य के नकारात्मक स्वरुप के सामान्य सिद्धान्त से कुछ भिन्न है। ग्रीन का दण्ड का मूल स्वरुपप्रतिरोधक है किंतु साथ ही साथप्रतिकारात्मक,प्रतिशोधात्मक तथा सुधारात्मक सिद्धान्तों में भेद करना और अन्य को छोड़कर इनमें से केवल किसी एक को सही मान लेना निरर्थक है। दण्ड आक्रमण के विरुद्धप्रतिक्रिया है। बोसांके ग्रीन के दण्ड सिद्धान्त में थोड़ा संशोधन करता है और कहता है कि दंड केप्रतिकारात्मक,प्रतिशोधात्मक तथा सुधारात्मक सिद्धान्तों में भेद करना या अन्य को

छोड़कर उनमें से केवल किसी एक को ही सही मान लेना निराकि है। एक ही साथ दंड काप्रतिकार खतरे काप्रतिरोधन तथा चरित्र को सुधारने काप्रयास होना चाहिए। दंड के तीनो स्वरुप सुधार,प्रतिरोध एक दूसरे से अलग नही किये जा सकते यदि उनकी समुचित व्याख्या की जाए तोप्रत्येक का इतनाप्रसारण हो जाता हे कि उनमें अन्य दो भी सम्मिलत हो जाते हैं। बोसांके की युक्ति का स्वरुप मनोवैज्ञानिक है। वह कहता है कि जब कोई मनुष्य अपराध के लिए दण्डित होता है तो दण्ड का धक्का उसकी चेतना इच्छा को जागृत कर देता है जिससे वह महसूस करने लगता है कि उसके दूसरे के अधिकारोंपर आघात किया है और इसप्रकार अपने वास्तविक स्वरुप में आ जाता है। बार्कर के शब्दों में इसप्रकार दण्ड का अर्थ हो सकता है कि भविष्य में भी न करुँ क्योंकि अपने आप में आ गया हूँ आदतों केपूर्णप्रणाली की मेरी चेतना जागृत हो चुकी है और ऐसी चेतना केपास बोसांके दण्ड में विलक्षण रुप से एक विधेयात्मक गुण देखता है। वह कहता है कि राज्य द्वाराप्रयुक्त शक्ति हमें अपने कर्तव्यों की निरंतर याद दिलाती रहती है। जिन्हें भूलने की हमें स्वयं भी कोई इच्छा नही है किन्तु अपने उत्थान या आलस्य के कारण जिनकापालन हम नही करते, यदि राज्य का आदर्श हमें ऐसा करने के लिए विवश न करे।

2.3.5. बोसांके के दर्शन की आलोचना और मूल्यांकन

बोसांके को ब्रिटिश आदर्शवादी सम्प्रदाय में निश्चित रुप से एक महत्वपूर्ण स्थानप्रापत है। वह अपना दर्शन ग्रीन से आरंभ कर उसकापूर्ण हीगेलवाद की दिशा में कार्य करता है और बोसांके का यहपूर्ण हीगलवाद ही उसे आलोचना कापात्र बना देता है। बोसांके की राज्य संबंधी समस्त धारणा व्यक्ति की यर्थाथ इच्छा और आदर्श इच्छा का यह भेद नितांत अस्वाभाविक है। हॉबहाऊस के अनुसार इच्छा को 'यर्थाथ' और आदर्ष दो अलग–अलग रुपों में मानना शब्दों के साथ खिलवाड़ करना मात्र है। आलोचकों ने बोसांके के इस विचार की आलोचना की है कि राज्य की अपनी एक इच्छा तथा व्यक्तित्व होता है उनका कहना है कि यह विचार स्वीकार कर लेनेपर व्यक्ति राज्य के अधीन हो जाता है। बोसांके ने राज्य को सर्वोच्च समुदाय और नैतिकता कापरम संरक्षक मानकरपूर्ण अनुत्तरदायी बना दिया है उसने राज्य की महत्तापर इतना अधिक बल दिया है कि इससे व्यक्ति और उसकी स्वतंत्रता समापत हो गयी है। आइवर ब्राडन ने लिखा है कि 'राज्य की एक ऐसे सामाजिक संगठन के रुप में धारणा करना जो उसका निर्माण करने वाली व्यक्तिगत संस्थाओं से उच्चतर स्थिति में हो, मूलतः एक अप्रजातांत्रिक धारणा है।'

आगे वे लिखते हैं कि 'यदि सामाजिक संगठन के सिद्धान्त का दृढ़तापूर्वक प्रयोग किया जाए तो उसकापरिणाम होगा राज्य की एक अभूतपूर्व दासता।'

बोसांकेपर उपरोक्त आरोप लगाये जाने का एक कारण यह भी है कि बोसांके राज्य और सरकार में कोई अंतर नही करता है वह व्यावहारिक दृष्टि से उसने व्यक्ति को राज्य में विलिन कर दिया है। यह विचार निश्चित रुप सेप्रतिक्रियावादी तथा मानवीय स्वतंत्रता और संपति का विरोधी है। राज्य और समाज दो भिन्न संस्थाएँ है जिन्हें एक ही मानकर चलना गलत है।

बोसांके की इस आधारपर आलोचना की जाती है कि वह अंतर्राष्ट्रीयवाद में कोई विश्वासप्रकट नही करता है, वह केवल राष्ट्रीय राज्य की कल्पना को ही अपना लक्ष्य मानकर आगे बढ़ता है जो अनुचित है। बोसांके भूल जाता है कि मानवीय सभ्यता, संस्कृति और विकास के साथ कदम आगे बढ़ाते हुए मानव जाति को अपना चरम लक्ष्य अंतराष्ट्रीयता को बनाना होगा। बोसांके का आदर्शवादी दार्शनिकों मं विशिष्ट स्थान है उसके ग्रंथपाण्डित्य के उत्कृष्ट नमूने हैं।

बोसांके की मान्यता है कि व्यक्ति नैतिक स्वतंत्रता कीप्रापित के लिएपूर्णतः अपने को राज्य के अधीन समर्पित कर दे। सामान्य संकल्प के नामपर अत्याचारी तथा दुराचारी शासक भी अपने कोप्रतिष्ठित कर सकता है और यर्थाथ स्वतंत्रता के नामपर व्यक्तियों को उसकी आज्ञापालन करने के लिए बाध्य किया जा सकता है। व्यावहासिक राजनीति में इस विचारधारा केपरिणाम हिटलर और मुसोलिनी के कृत्यों से स्पष्ट होता है अंतर्राष्ट्रीयतावाद सिद्ध होता है।

वस्तुतः बोसांके एक आदर्शवादी विचारक है जिसका चिंतन रुसो, हीगेल एवं ग्रीन कीपरंपरा को आगे बढ़ाता है। ग्रीन के इतिहास के बारे में हीगेल की तत्वमीमांसात्मक संकल्पना को स्वीकार करते हुएइतिहास को ऐसीप्रक्रिया के रुप में मान्यता थी जिसमेंपरम तत्व अपने को सार्थक करता है। ग्रीन के व्यक्ति के महत्व को बढ़ाते हुए यह तर्क दिया था कि राज्य का अस्तित्व व्यक्ति की नैतिक आत्मसिद्धि के साधन के रुप में है। बोसांके ग्रीन की इस विचारधारा को स्वीकार करता है लेकिन उसने नैतिक जीवन में राज्य की भूमिका को महत्वपूर्ण बना दिया। बोसांके रुसो के इस विचारधारा को स्वीकार करता है लेकिन उसने नैतिक जीवन में राज्य की भूमिका को महत्वपूर्ण बना दिया। बोसांके रुसो के इस विचार कि सामुहिक निर्णयों मेंप्रत्येक व्यक्ति कीप्रत्यक्ष भागीदारी है स्वीकार नही करता है और मत व्यक्त करता है कि राष्ट्रवाद की भावना राज्य केप्रतिपूरे समूह की आस्था कोप्रकट करती है। बोसांके अपनी विचारधारा में यह सिद्ध करने काप्रयास किया कि व्यावहारिक मामलों में राज्य सामाजिक चेतना काप्रतिनिधित्व करता है और सामाजिक चेतना और कुछ नही व्यक्ति की नैतिक चेतना का समन्वित रुप है।

2.3.6. ग्रीन तथा बोसांके में समानताएँ

बोसांके ग्रीन का शिष्य था और इन दोनों विचारकों में देश की साम्यता थी तथा काल का भी बहुत अंतर नही था। अतः इन दोनोंविचारको में विचार साम्यता होना स्वाभाविक है। वस्तुतः बोसांके ने अपना दर्शन ग्रीन के सिद्धान्तों से आरंभ किया लेकिन उनका विकासपूर्ण हीगेलवाद की दिशा में किया गया।

समानताएँ :–

1. दोनों ही विचारक राज्य को व्यक्तिवादी दार्शनिकों की भाँति व्यक्तियों का समूह न मानकर एकानुभूति की भावना सेपूर्ण सजीव शरीर मानते हैं तथा सामान्य इच्छा की धारणा को बहुत महत्व देते हैं।
2. दोनों ही राज्य को केवल अनिवार्य और स्वाभाविक वरन् एक नैतिक संवास मानते हैं जिसका उद्देश्य व्यक्तियों का नैतिक विकास करना है।

3. दोनों ही विचारक मानते हैं कि राज्य मनुष्य की स्वाभाविकप्रवृत्तियों का विकास करने के लिए नितान्त आवश्यक है और इस दृष्टि से एकप्राकृतिक संगठन है।
4. दोनों ही विचारको नेपलेटो, अरस्तू के यूनानी दर्शन से तथा रुसो काण्ट हीगेल आदि विचारकों सेप्रेरणा ली।

असमानताएँ :– ग्रीन बोसांके में असमानताएँ भी हैं–

1. इन दोनों में सबसेप्रमुख अंतर व्यक्ति तथा राज्य के बीचपारस्परिक संबंध के विषय में है। ग्रीन राज्य को महत्वपूर्ण मानते हुए भी उसे साध नही समझता है साध्य नही। राज्य व्यक्ति के श्रेष्ठ जीवन और नैतिक विकास का साधन मात्र है किन्तु बोसांके राज्य को साध्य तथा व्यक्ति को साधन समझता है। उसके विचार से राज्य श्रेष्ठ जीवन का साधन नही वरन् उसका साकार रुप है।
2. ग्रीन अपने दर्शन में माननीय स्वतंत्रता कोपर्यापत महत्व देता है, किन्तु बोसांके के दर्शन में मानवीय स्वतंत्रा की उपेक्षा की गयी है। ग्रीन मानता है कि अनेक बार व्यक्ति सामाजिक कल्याण के विषय में राज्य की अपेक्षा अधिक सही विचार रखता है और इसी आधारपर वह व्यक्ति को राज्य के विरोध का अधिकारप्रदान करता है किन्तु बोसांके इससे सहमत नही है। उसका विचार है कि व्यक्ति अपनी स्वार्थ बुद्धि और वासनाओं के कारण अपने ही क्षुद्र स्वार्थों के राज्य के हितों से अधिक महत्वपूर्ण समझता है और वह राज्य के विरोध का कार्य स्वार्थ बुद्धि के आधारपर ही करेगा। बोसांके राज्य को अधिकारों का एकमात्र व्यवस्थापक और नैतिक नियमों का संरक्षक मानता था। इसप्रकार वह राज्य को इतना महत्वपूर्ण स्थान देता है कि व्यक्ति द्वारा राज्य के विरोध की कल्पना भी नही की जा सकती है।
3. ग्रीन तथा बोसांके के दण्ड के विषय में अंत है दोनों दण्ड के निरोधात्मक सिद्धान्त में विश्वास करते हैं किन्तु बोसांके दण्ड के मनोवैज्ञानिकपक्षपर अधिक बल देता है। बोसांके के अनुसार दण्ड के बल भावी अपराधों का निवारण याप्रतिकार करने वाला नही होता वरन् वह अपराधी के अचेतन मनपर गहराप्रभाव डालकर भविष्य में उसे अपराध करने से रोकने वाला होता है।
4. राज्य और नेतिकता केपारस्परिक संबंध के विषय में भी अंतर है। ग्रीन के मतानुसार नैतिक नियम राज्य के ऊपर है और राज्य नैतिक नियमों से बँधे हुए है किन्तु बोसांके राज्य को नैतिकता से ऊँचा स्थानप्रदान करता है और इस सभी नैतिक नियमों से स्वतंत्र मानते हैं। इस संबंध में उसकीप्रसिद्ध उक्ति है कि राज्य नैतिक जीवन का एक तत्व मात्र न होकर समस्त नैतिक विश्व का संरक्षक है।
5. युद्ध के विषय में भी इन दोनों विचारकों की धारणा में अंतर है। ग्रीन युद्ध को किसी भाँति उचित नही मानता है वह युद्ध का कट्टर विरोधी है क्योंकि युद्ध व्यक्तियों को जीवन के अधिकार से वंचित कर देता है।

ग्रीन सभी व्यक्तियों को शाश्वत चैतन्य जगत का अंश मानते है तथा विश्व बन्धुत्व की धारणा को अपनाते है। वह अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कुछ नियमों की सत्ता स्वीकार करता है और राज्यों से इसकेपालन की अपेक्षा करता है किन्तु बोसांके अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में किन्ही नियमों की सत्ता को स्वीकार करते हुए राष्ट्रीय राज्य को ही सर्वोपरि संगठन मानते हैं तथा उसे अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इच्छानुसार कार्य करने कीपूर्ण स्वतंत्रता देते हैं।

इस तरह ग्रीन आदर्शवादी उदारवादी तथा बोसांके उग्रवादी आदर्शवादी था।

2.3.7. सारांश

बोसांके का आदर्शवादी दार्शनिकों में अपना विशिष्ट स्थान है। अपने ग्रंथ (The Philosophical theory of the state) के तृतीय संस्करण में उसने लीग ऑफ नेशन्स का महत्व स्वीकार कर इस बात कापरिचय दिया कि उसका मस्तिष्क नूतन विकासों को समझ सकता था। बोसांके नें यह भी स्पष्ट कर दिया है कि राज्य एक ऐसा संवास है जो हमको अधिकतम सुरक्षाप्रदान कर सकता है और आदर्शवादी विचारधारा ऐसी मानसिक अभिरुचि है जिसमें हम यह विचार नही करते कि वर्तमानपरिस्थितियाँ और संवास क्या है बल्कि यह विचार नही करते कि उन्हें कैसा होना चाहिए। बोसांके के दर्शन का महत्व इसलिए है कि बार्कर नें लिखा है कि ''राज्य का क्षेत्र यांत्रिक क्रिया है। राज्य को सामान्य इच्छा का साकार रुप स्वीकार करने के फलस्वरुप बोसांके नें उसे एक नैतिक विचार (Eticalidea) माना है और निम्नलिखित महत्वपूर्णपरिणाम निकाले हैं–

1. राज्य का शासन सच्चा स्वशासन (Self Government) है क्योंकि राज्य के सभी कार्यों का संचालन सामान्य इच्छा द्वारा होता है जिसका स्पष्ट अर्थ है कि हम किसी दूसरे व्यक्ति की इच्छा से नही वरन् अपनी इच्छा से शासित होते हैं।
2. राज्य और समाज का गहरा संबंध है। राज्य शक्तिपर आधारित एक राजनीतिक संगठन है जिसे समाज की सभी संस्थाएँ विभिन्न कार्यों मेंपूर्ण सहयोग देती है। राज्य को यदि समाज के विराट रुप में देखा जाए तो यह कहना होगा कि वह अनेक समूहों का समूह समुदायों का समुदाय है।
3. राज्य सर्वोच्च अथवा एकमात्र नैतिक विचार और सार्वभौम संस्था है जिसमें समाज की विभिन्न संस्थाओं में मौलिक विचारों का समन्वय होता है। राज्य का दृष्टिकोण एकांगी नही होता।

बोसांके ने राज्य की इच्छा केपालन में व्यक्ति की स्वतंत्रता को निहित माना है। इसप्रकार ग्रीन के समान वह भी इस सिद्धान्तपरपहुँच गया कि व्यक्तिपूर्ण रुप से सामान्य इच्छा से ओतप्रोत है और अपने सच्चे व्यक्तित्व कीपूर्ति समाज का अंग बनकर ही कर सकता है जो सावयवी (organic whole) है। बोसांके ने सामान्य इच्छा को अधिनायकवादी रुप दे दिया है। उसके अनुसार अधिनायक भी सामान्य इच्छा काप्रतिनिधित्व करता है। कोकर ने बोसांके के सिद्धान्त का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि बोसांके का तर्क कुछ इसप्रकार है

कि मनुष्य के सच्चे व्यक्तित्व की सिद्धि उसकी वास्तविक इच्छा की अभिव्यक्ति द्वारा होती है और उसकी वास्तविक इच्छा आवश्यक रुप से सामान्य इच्छा से भिन्न है जिसकी सिद्धि केवल राज्य द्वारा होती है। दूसरे शब्दों में मनुष्य, मनुष्य के रुप में नैतिकप्राणी है।

अतः राज्य श्रेष्ठ जीवन के लिए आवश्यकता सामाजिक अवस्थाओं को कायम रखकरप्रत्येक नैतिक व्यक्ति की इच्छा कीपूर्ति करता है। उसकी स्फूर्ति का आधार बल है उसकी कार्यपद्धति में कठोरता है जबकि समाज का क्षेत्र स्वेच्छापूर्वक सहयोग है उसकी स्फूर्ति का आधार सद्भावना है और उसकी कार्यपद्धति में लचीलापन है। वस्तुतः ब्रिटिश आदर्शवादी विचारधारा के विकास में बोसांके का महत्वपूर्ण स्थान है। वह ग्रीन के विचारों से आरंभ करता है और उन्हें अधिकपूर्ण हीगलवाद की दिशा में विकसित करता है। उसका यहप्रयत्न हाब्स, लॉक बेंथम तथा स्वेंसर के व्यक्तिवाद और उदारवाद के विरुद्ध राज्य की धारणा कोपुर्नजीवित करने का एक संकल्प वप्रयास है।

2.3.8. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :–

1. निम्नलिखित मे से कौन सीपुस्तक बोसांके द्वारा लिखी गयी है ?
   a) Republic
   b) Lectures on English Revolution
   c) Knowledge and Reality
   d) A Grammer of Politics
2. बोसांके अपने राज्य सम्बंधी धारणा काप्रारंभ किस विचार से करता था?
   क. पलेटो के राज्य सिद्धान्त
   ख. रुसो के इच्छा सिद्धान्त
   ग. मार्क्स के राज्य सिद्धान्त
   घ. ग्रीन के राज्य सिद्धान्त
3. यह कथन किस विचारक का है– 'राज्य संगठित नैतिक जीवन का तत्व मात्र न होकर समस्त नैतिक विश्व का संरक्षक है।'
   अ. काण्ट
   ब. हीगेल
   स. ग्रीन
   द. बोसांके
4. बेसांके का जन्म कब हुआ था ?
   a) 1848
   b) 1885
   c) 1892
   d) 1912
5. किस विचारक के बारे में कहा गया है कि वह अपना दर्शन रूसो तथा ग्रीन से आरंभ करता है तथा हीगेल में उसकी चरमपरिणति होती है।

अ. पलेटो
ब. अरस्तू
स. काण्ट
द. बोसांके

लघु उत्तरीयप्रश्न :–

1. बोसांके की कृतियों का वर्णन करें।
2. बोसांके दण्ड के किसपक्षपर बल देते थे स्पष्ट करें।
3. व्यक्ति राज्य केपारस्परिक संबंधों के बारे में बोसांके की क्या धारणा थी?
4. क्या बोसांके अंतर्राष्ट्रीयतावादपर विश्वास करता था स्पष्ट करें।
5. संस्थाएँप्रत्यय (विचार है) बोसांके, समीक्षा करें।

दीर्घ उत्तरीयप्रश्न :–

1. राज्य संगठित नैतिक जीवन का एक तत्व मात्र न होकर समस्त नैतिक विश्व का संरक्षक है। विवेचना कीजिए।
2. बोसांके के दण्ड सम्बंधी सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
3. ग्रीन और बोसांके के विचारों की तुलनात्मक विवेचना कीजिए।
4. युद्ध के विषय में ग्रीन तथा बोसांके के विचार की तुलना कीजिए।
5. राज्य नैतिकता तथा वास्तविक इच्छा के विषय में बोसांके के विचारों की समीक्षा कीजिए।

2.3.9. कठिन शब्दावली

1. क्रियाशीलता– क्रियाभाव
2. प्रतिबिंबित– जिसकीपरछाईपड़ी हो
3. यांत्रिक क्रिया– यंत्र संबंधी कार्य
4. नैतिक सावयव एकानुभूति– एक अनुभव, संवेदना
5. अंतर्राष्ट्रीयवाद– राज्यों के मध्य राजनीति
6. स्फूर्ति– फुर्ती, स्फुरण
7. स्वशासन– स्वराज
8. सार्वभौम संस्था– संपूर्ण भूमि से संबंध रखने वाली संस्था
9. अधिनायकवादी– तानाशाही

2.3.10. संबंधित पुस्तकें

1. समकालीन राजनीतिक चिंतन –प्रो0श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी
2. आधुनिक विचारों का इतिहास – ज्योतिप्रसाद सूद
3. राजनीतिक चिंतन का इतिहास –पुखराज जैन
4. राजनैतिक विचारधाराएँ – के0पी0 सिंह
5. Bosanquet – Philosophical theory of the state
6. Robert H. Marray- Studiesin the English social and political thinkers of the 19th century volii Cambridge w.Heffer
7. i. T. Hophouse : The Methaphysical theory of the state

इकाई–4 टी.एच. ग्रीन के राजनीतिक विचार

इकाई की रूपरेखा

2.4.1. उद्देश्य
2.4.2. प्रस्तावना
2.4.3. ग्रीन का राज्य सिद्धान्त
2.4.3.1 राज्य के कार्य सिद्धान्त
2.4.3.2 राज्य का प्रतिरोध करने का अधिकार
2.4.4. ग्रीन की स्वतंत्रता संबंधी अवधारणा
2.4.5. ग्रीन के अधिकार सम्बंधी सिद्धान्त
2.4.6. संप्रभुता की अवधारणा
2.4.7. सामान्य इच्छा पर ग्रीन के विचार
2.4.8. ग्रीन का दण्ड संबंधी विचार
2.4.9. ग्रीन तथा विश्व बन्धुत्व संबंधी धारणा
2.4.10. ग्रीन के सम्पति संबंधी विचार
2.4.11. ग्रीन एवं हीगेल एक तुलनात्मक अध्ययन
2.4.12. सारांश
2.4.13. अभ्यास / बोध प्रश्न
2.4.14. कठिन शब्दावली
2.4.15. **संदर्भ ग्रंथ सूची**

2.4.1. उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य उदार आदर्शवादी टी०एच०ग्रीन के प्रमुख विचारों को जानना है इसके अध्ययन से आप जान सकेंगे–

1) ग्रीन का राज्य, जिसका आधार शक्ति नही अपितु इच्छा हैi
2) ग्रीन के स्वतंत्रता, अधिकार तथा संप्रभुता की अवधारणा
3) ग्रीन के वे प्रयास जिसके माध्यम से उपयोगितावाद, व्यक्तिवाद उदारवाद व आदर्शवाद में व्यापक संशोधन किये गयेi
4) ग्रीन का हीगेल से तुलना के साथ उसके समग्र चिंतन का मूल्यांकन कर सकेंगेi

2.4.2. प्रस्तावना

थामस हिल ग्रीन ब्रिटिश नवहीगलवादी प्रत्ययवाद के प्रतिनिधि विचारकों मे से एक हैi राजदर्शन में उनके योगदान का समवेत रूप उसकी प्रधान कृति 'राजनीतिक दायित्व के सिद्धान्त' (The Principal of Political Obligation) मे पाया जाता हैi उसके राजदर्शन का नैतिक आधार उसकी कृति नीतिशास्त्र की प्रस्तावना (Aprolegomena to Ethics) में वर्णित हैi इस कृति में नैतिक मानव

के रुप में उपयोगितावाद और सुखवाद की आलोचना की गयी है उसनें राजनीतिक दायित्व के नैतिक आधारों की स्थापना शाश्वत चेतना की आदर्शवादी अवधारणा, चरित्र की पूर्णता की ईसाई अवधारणा और सहजता के काण्टवादी आदर्शों के बीच समन्वय करके किया हैi ग्रीन के महत्व का आकलन करते हुए वेपर नें लिखा है कि ग्रीन की महत्ता इस बात मे है कि उसने अंग्रेजों को एक ऐसी वस्तु प्रदान की जो बेंथम से अधिक संतोषजनक है उसने उदारवाद को एक हित के बजाय एक विश्वास का रूप दिया हैi उसने व्यक्तिवाद को नैतिक तथा सामाजिक एवं आदर्शवाद को सुसभ्य और सुरक्षित बनाया हैi कम से कम अंग्रेज इस कार्य को महत्वपूर्ण नही मानतेi

वस्तुतः एक राजनीतिक विचारक के रूप में ग्रीन का व्यक्तित्व कई रूपों में बिखरा हुआ है उन्हें कोई आदर्शवादी, कोई व्यक्तिवादी तो कोई नैतिकवादी, उदारवादी, समाजवादी एवं रूसो का अनुयायी मानता हैi कुछ लोगों ने उसे ब्रिटिश रूढिवाद का पक्का समर्थक भी कहा हैi किन्तु वास्तविकता यह है कि उनकी विचारधारा का निर्माण अनेक तत्वों के योगदान से हुआ हैi यह मूल्यांकन करने वाले पर निर्भर करता है कि वह किस दृष्टि से उन पर विचार करता हैi

जीवन परिचयः– आदर्शवादी विचारकों में प्रमुख उदारवाद तथा आदर्शवाद में समन्वय स्थापित करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहे ब्रिटिश चिंतक थॉमस ग्रीन का जन्म इंग्लैण्ड के यार्कशायर में बर्किन (Birkin) नामक स्थान पर 7 अप्रैल 1836 को हुआ थाi उसके पिता वलैण्परन ग्रीन पादरी थे और उसके पूर्वजों में आलिवर क्रामवेल जैसे व्यक्तित्व भी थेi 4 वर्श की आयु तक घर पर ही शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त उसका प्रवेश एबी स्कूल में हुआi यहीं वह 5 वर्श तक रहाi ग्रीन ने 1855 ई० में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से सम्बद्ध बेलियोज कालेज में उच्च शिक्षा के लिए नामांकन करायाi यहाँ उसे प्रतिभाशाली विद्वान बेन्जामिन जोवेट का सानिध्य मिला और वह दर्शन की ओर उन्मुख हुआi 1860 ई० में वह उच्च स्तरीय शोध हेतु बेलिपोल कालेज का फेलो चुना गया और उसे ट्यूटर (शिक्षक) के रूप में नियुक्त कर दिया गयाi उसने इतिहास, नीति शास्त्र, दर्शन, तर्कशास्त्र एवं दर्शन के इतिहास (History of Philosophy) का अध्यापन कियाi 1871 ई० में ग्रीन का विवाह चार्लो टी साइमण्ड्स के साथ हुआi १९७८ ई० में वह आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में नैतिक दर्शनशास्त्र का प्रोफेसर बना और जीवन पर्यन्त इसी पद पर कार्यरत रहाi मात्र 46 वर्ष की उम्र में 26 मार्च 1882 को उसका निधन हो गयाi ग्रीन का व्यक्तित्व यदि एक शिक्षक का था तो वह एक व्यावहारिक राजनीतिज्ञ का भी था यद्यति वह नैतिक दर्शन का प्रोफेसर था लेकिन राज्य के राजनीतिक कार्यों के प्रति भी उत्सुक एवं जिज्ञासु थाi आक्सफोर्ड टाउन काउन्सिल के सदस्य के रूप में भी उसकी भूमिका प्रभावी थाi अनुदार दल एवं आत्मसंयम आंदोलन के प्रचार–प्रसार में भी वह क्रियाशील थाi

ग्रीन के जीवन काल में उसकी एक भी पुस्तक प्रकाशित नही हुईi ह्यूम के सिद्धान्तों के बारे में ग्रीन द्वारा की गई टिप्पणियों नें उसके विचारों को प्रकट कर दिया था उसके जीवन काल में भी उसके बिखरे हुए विचारों को पुस्तक का रूप दिया था लेकिन उसे कोई ठोस विचार नही कहा जा सकताi ग्रीन की मृत्यु के बाद उसके द्वारा दिये गये व्याख्यानों को संकलित कर उसे एक पुस्तक के रुप में प्रस्तुत करने का श्रेय उसके शिष्यों को हैi ये पुस्तकें इस प्रकार है –

1. Hume Treatise 1874 Gह्यूमस ट्रीटाइज

2. लिबरल लेजिस्लेशन एण्ड फ्रीडम ऑफ कान्ट्रेक्ट (Libral Legislation and Freedom of Contract)
3. लेक्चर्स ऑन दि प्रिंसिपल ऑफ पोलिटिकल आविलगेशन (lectures on the principal of Political Obligation
4. प्रोलिगोमिना ऑफ दि एथिक्स (Pro Legomina of the Ethics, 1883)

उपरोक्त प्रथम तीनों पुस्तकों के आगे अंकित समय संबंधित वर्ष में उसके ब्याख्यानों में व्यक्त विचारों के कारण हैंi

ग्रीन केवल शैक्षिक विचार–विमर्श तक ही सीमित नही रहा, वरन् उसने व्यावहारिक राजनीति में भी भाग लियाi वह एक ऐसी राजनीति चाहता था जो नैतिक उत्थान के लिए आवश्यक सामाजिक दशाओं का निर्माण करेi सामाजिक–राजनीतिक जीवन में सहभागिता को नागरिकों के आत्म विकास के लिए आवश्यक मानता हैi आत्म विकास के लिए ग्रीन ने व्यक्तिगत प्रयास एवं राजनीतिक प्रयास दोनों को अनिवार्य बतायाi लोगों को शिक्षा प्राप्त करने तथा स्वस्थ रखनें के लिए स्वयं प्रयास करना चाहिए तथा उनके इन कार्य में राज्य द्वारा सहायता दी जानी चाहिएi राज्य लोकशिक्षण तथा लोक स्वास्थ्य के लिए कानून बनाकर लोगों को न्यूनतम मानवीय सहायता उपलब्ध कराएँi यदि राज्य को वास्तव में उदारवादी राज्य बनना है तो उसे सामाजिक आर्थिक क्षेत्र में विरत नही होना चाहिएi ग्रीन ने मताधिकार को व्यापक बनाने शिक्षा एवं स्वास्थ्य के लिए कानून बनाकर लोगों को न्यूनतम मानवीय सहायता उपलब्ध कराएi यदि राज्य को वास्तव में उदारवादी राज्य बनना है तो उसे सामाजिक आर्थिक क्षेत्र में विरत नही होना चाहिएi ग्रीन ने मताधिकार को व्यापक बनाने शिक्षा एवं स्वास्थ्य के लिए अनुदान देने तथा भूमि सुधार कानूनों को लागू करने के सम्बंध में राज्य से माँग की तथा कहा कि राज्य की उपयोगिता इन प्रश्नों के समाधान कराएi यदि राज्य को वास्तव में उदारवादी राज्य बनना है तो उसे सामाजिक आर्थिक क्षेत्र से विरत नही होना चाहिएi ग्रीन ने मताधिकार को व्यापक बनाने शिक्षा एवं स्वास्थ्य के लिए अनुदान देने तथा भूमि सुधार कानूनों को लागू करने के सम्बंध में राज्य से माँग की तथा कहा कि राज्य की उपयोगिता इन प्रश्नों के समाधान पर भी निर्भर करती है उसकी राजनीतिक रूचियां इन प्रश्नों के आस पास ही थी वह इन समस्याओं के समाधान का राजनीतिक प्रयास आजीवन करता रहाi

ग्रीन के विचारों के प्रेरणास्रोतः–

ग्रीन के विचारों पर विभिन्न विद्वानों का प्रभाव परिलक्षित होता हैi उनके विचारों को एक ओर प्लेटो और अरस्तू जैसे यूनानी दार्शनिको ने प्रेरित किया तो दूसरी ओर वह रूसो से भी प्रभावित प्रतीत होता हैi ग्रीन जर्मन आदर्शवादी विचारधारा से भी प्रभावित हैi ग्रीन के उपर हीगेल और काण्ट दोनों जर्मन विचारकों का प्रभाव पडा थाi हीगेल की भाँति ग्रीन भी मानता है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आत्म चेतना सम्पन्न सर्वोच्च शक्ति की कृति हैi उसने यदि जर्मनी के आदर्शवादी विचारकों हीगेल एवं काण्ट से प्रेरणा ग्रहण की तो दूसरी ओर अपने समकालीन परंपरा विरोधियों के आन्दोलन से भी प्रभावित हुए बिना नही रह सकाi इन आन्दोलन का लक्ष्य समाज की प्रचलित बुराइयों को दूर करना थाi इस आन्दोलन के समर्थक व्यक्ति को एक नैतिक प्राणी के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते थेi इसके लिए आवश्यक था कि व्यक्ति को अनैतिक या बुरा बनाने वाली बातों से दूर रखा जाएi घुडदौड मे सट्टा या बाजी लगाना जैसी बुरी आदतों से छुटकारा पाकर ही व्यक्ति सच्ची स्वतंत्रता से युक्त नैतिक जीवन जी सकता हैi ग्रीन को

यह बात बहुत अच्छी लगी तथा इसने इसे आत्मसात कर लिया कि व्यक्ति अपने जीवन के मार्ग में आने वाली बाधाओं को या तो अपनी सद्इच्छा द्वारा दूर करे या उसे राज्य जैसी संस्था के माध्यम से दूर किया जाएi ऐसी सामाजिक बुराइयों को दूर करके ही व्यक्ति सद्जीवन जी सकता है राज्य अपने वास्तविक लक्ष्य तक पहुँच सकता हैi परम्परावादियों के विरूद्ध शुरू हुए नॉन कन्फर्मिस्ट मूवमेन्ट ने यह माँग की थी कि भूमि पर किसी एक या कुछ व्यक्तियों का स्वामित्व नही हो सकता लेकिन पूँजी पर कुछ व्यक्तियों का या एक व्यक्ति का स्वामित्व हो सकता हैi – ग्रीन इस मत से पूरी तरह समहत हैi ऐसा करके वह औद्योगिक पूंजी तथा पूँजीवाद का समर्थक बन जाता हैi

2.4.3. ग्रीन का राज्य सिद्धान्तः–

ग्रीन के राज्य संबंधी विचारों का विवरण उसकी कृति The Principal of Political Obligation में उल्लिखित हैi राज्य प्राकृतिक रुप से विकसित है और इसका एक नैतिक लक्ष्य हैi राज्य चेतना की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है तथा राज्य के सदस्य के रूप में व्यक्ति अपना सर्वोच्च उन्नयन कर सकता हैi राज्य साध्य है व्यक्ति भी साध्य है व्यक्तियों का हित ही राज्य का हित हैi राज्य एक नैतिक एवं जैविक सत्ता हैi ग्रीन ने आदर्श राज्य एवं वास्तविक राज्य में विभेद करते हुए मत व्यक्त किया है कि यह आवश्यक नही है कि वास्तविक राज्य चेतना की अभिव्यक्ति हो और आदर्श राज्य की गुणवत्ता प्रकट करेi नैतिक जीवन जीने योग्य परिस्थितियों के निर्माण को गुरू तक उत्तरदायित्व के निर्वहन में ही राज्य की प्रासंगिकता एवं उपयोगिता हैi

व्यक्ति का जीवन एकाकी नही वरन् सामाजिक हैi वह अकेले नही रह सकता, उसे समाज में अपने ही समान अन्य मनुष्यों के साथ सम्बंध निभाते हुए रहना पडता हैi मनुष्य की जन्म जात वृत्तियां सामाजिक विरासत का ही लाभ उठाकर परिपूर्ण एवं विकसित होती हैi अतः उसे समाज एवं राज्य के नियमों को मानना आवश्यक है क्योंकि सद्गुण युक्त जीवन समाज एवं राज्य में ही संभव है राज्य व समाज से बाहर नहीi ग्रीन मनुशें के बीच किसी भी प्रकार के भेदभाव का अंत कर नैतिक जीवन जीना सभी मनुष्यों का समान अधिकार घोषित करता हैi उसने राज्य को नैतिक जीवन का एक साधन माना हैi उसकी दृष्टि में सार्वजनिक कल्याण और व्यक्ति की नेतिक उन्नति राज्य के समस्त कार्यों का लक्ष्य हैi

ग्रीन नैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य मानता है व्यक्ति को नैतिक स्वतंत्रता तभी प्राप्त होगी जब वह दुर्व्यसनों से मुक्त होकर अपने नैतिक विचारों को क्रियान्वित करेi ग्रीन रूसों के सामान्य इच्छा का भी समर्थन करता है जो अपनी मूल प्रवृति में नैतिक स्वतंत्रता को साकार करती है तथा उसका प्रतीक हैi ग्रीन के अनुसार राष्ट्र के विकास से पृथक कोई चीज नही हो सकताi राज्य का लक्ष्य व्यक्ति का विकास होना चाहिए न कि अपना विकासi सी०एल०वेपर ने कहा था कि "राष्ट्र या समाज या मानव जाति का विकास वस्तुतः व्यक्तियों का विकास है वह राज्य के कार्यों को नकारात्मक मानता है सकारात्मक नहीi राज्य मनुष्यों को नैतिक नही बनाता वह तो उन बाधाओं को दूर करता है जो नैतिक नही बनने देतीi परन्तु इन बाधाओं को दूर करते समय राज्य को इतना क्रियाशील अवश्य रहना चाहिए कि उनका नकारात्मक कार्य भी सकारात्मक लगेi ग्रीन ने लिखा है कि " एथेन्स की दासी का कार्य मालिक की काम वासना की पूर्ति करना है इसे लोग सामाजिकता का कार्य कहते हैंi ऐसी दशा में दासी से यह कहना है कि राज्य तुम्हें स्वतंत्रता प्राप्त करने का अवसर देता है यह मजाक नही तो और क्या है ? राज्य को दासत्व का माध्यम नही स्वतंत्रता का संरक्षक होना चाहिए" ऐसी ग्रीन की

धारणा हैi वह राज्य को असीमित नही मानता उसके कार्यों तथा अधिकारों की सीमायें निश्चित करता हैi प्रत्येक व्यक्ति शाश्वत चेतना का अंग होने के कारण ही राज्य के आदेशों को स्वीकार करता हैi व्यक्ति और राज्य दोनो ही शाश्वत चेतना के अंग हैं दोनों सद्जीवन चाहते हैंi ग्रीन के अनुसार– शक्ति नही बल्कि इच्छा ही राज्य का आधार हैi क्योंकि राज्य के आदेश सामान्य इच्छा पर आधारित है और सामान्य इच्छा व्यक्ति की सद्इच्छाओं का योग हैi एक प्रकार से सामान्य इच्छा और कानून तथा जनता का हित सभी एक हो जाते हैं – कोई विरोध नही रह जाता हैi व्यक्ति की इच्दा ही कानून के रूप में लागू हो जाती है और वह प्रसन्नतापूर्वक कानून का पालन करने लगता हैi

ग्रीन का मत है कि राज्य शाश्वत आत्मचेतना की कृति है और मानव की आत्मचेतना इसी शाश्वत चेतना का एक भाग हैi शाश्वत चेतना का एक भाग हैi शाश्वत चेतना का मूल प्रवृत्ति भी स्वयं का उत्थान करते हुए सबकी भलाई करना हैi सबकी भलाई करने की यह भावना मानव चेतना का लक्ष्य है तथा सम्पूर्ण सामाजिक लौकिक गतिविधियों का प्रेरणास्रोत भी हैi स्वतंत्रता में अधिकारों का विचार छिपा हुआ है और अधिकारों के लिए राज्य आवश्यक हैi

2.4.3.1. राज्य के कार्य सिद्धान्त–

ग्रीन के दर्शन में मनुष्य को नैतिक जीवन योग्य परस्थितियां प्रदान करना राज्य का कार्य माना गया हैi नैतिक जीवन का तात्पर्य है कि व्यक्ति आत्मोन्नति के मार्ग पर आगे बढता हुआ सामाजिक कल्याण के लिए कार्य करेi व्यक्ति के जीवन के नैतिक विकास में आने वाली बाधाओं को दूर करने का कार्य राज्य को करना चाहिएi बार्कर ने लिखा है कि "ग्रीन की धारणा के अनुसार राज्य का कृत्य आवश्यक रूप से नकारात्मक है वह उन बाधाओं को हटाने तक सीमित है जो मानवीय क्षमताओं को वह कार्य करने से रोकती है जो उसे करना चाहिएi

राज्य का कार्य केवल उन बाधाओं को दूर करना है जो मनुष्य को श्रेष्ठ बनने से रोक रही हैi पुनः बार्कर के शब्दों में– ग्रीन के अनुसार राज्य का प्रभावकारी कार्य बाधाओं को दूर करने तक ही सीमित प्रतीत होता है अथवा शासन का कार्य ऐसी दशाओं को बनाए रखना है जिसमें नैतिकता संभव हो सके अर्थात व्यक्ति आत्म आरोपित कर्त्तयों को उचित रूप से निर्वाह कर सकेi यहाँ स्वआरोपित कर्त्तव्य का तात्पर्य है कि अन्तःकरण की आज्ञा के अनुसार कार्य किया जाना चाहिएi व्यक्ति शाश्वत चेतना का अंग होने के कारण नैतिक चेतना से परिपूर्ण रहता है लेकिन बाह्य सामाजिक दशाओं तथा क्षुद्र स्वार्थों के वशीभूत होकर अनैतिक कार्यों के ओर मुड जाता हैi ग्रीन मानता है कि व्यक्ति के बाहरी आचार–विचार को प्रत्यक्ष रूप किसी प्रकार दण्ड की धमकी देकर प्रतिबंधित या नियंत्रित करना सामान्य हित के विरूद्ध हैi व्यक्ति के आचरण की सारी क्रियाएँ सामान्य हित की दृष्टि से स्वाभाविक रूप से चलनी चाहिएi सरकारी प्रतिबन्ध सामान्य हित के स्वाभाविक संचालन मे हस्तक्षेप है और उस क्षमता के विकास में रूकावट है जो अधिकारों के प्रयोग की आवश्यक शर्त हैi अतः राज्य का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप केवल रूकावट दूर करने तक ही सीमित रहना चाहिएi

राज्य के कार्यक्षेत्र को निर्धारित करते हुए ग्रीन अप्रत्यक्ष रूप से यह स्वीकार करता है कि बाह्य वातावरण का मानवीय चेतना पर प्रभाव पडता है और यह प्रभाव सदैव अच्छा ही होगा, यह आवश्यक नही हैi अतः उस समय जब बाह्य वातावरण में व्याप्त बुराइयाँ व्यक्ति के अन्तःकरण या चेतना को प्रदूषित करे तो राज्य का यह कर्त्तव्य या दायित्व बन जाता है कि वह इन बुराइयों को रोके अर्थात बाह्य वातावरण

का परिष्कार करेi वस्तुतः ग्रीन समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करना राज्य का परम दायित्व मानता हैi बार्कर के शब्दों में ग्रीन के अनुसार हमें मनुष्यों को वैसा ही समझना चाहिए जैसा हम उन्हें पाते हैं यदि हम उन्हें अज्ञान, मद्यपान तथा भिक्षुक वृत्ति को दूर करने के लिए हस्तक्षेप करना चाहिएi कोई भी व्यक्ति राज्य के इन कार्यों को अपने प्राकृतिक अधिकार तथा प्राकृतिक स्वतंत्रता में हस्तक्षेप नही मान सकता यद्यपि ये जीवन की बाह्य दशाएँ हैं लेकिन बाह्य होने के बाद भी ये अन्तःकरण को प्रभावित करती है और यदि यह प्रभाव दुष्प्रभाव है तो इसे दूर करना राज्य का परम औचित्य है मुख्य कार्य हैi बार्कर के अनुसार – बाह्य दशाओं के निर्माण और बाधाओं को दूर करने के लिए तथा नैतिक जीवन के मार्ग में बाधक बनने वाली प्रत्येक बात के सम्बन्ध में राज्य का सक्रिय हस्तक्षेप आवश्यक हैi अतः अपनी शक्ति द्वारा राज्य स्वतंत्रता विरोधी शक्तिओं का प्रतिकार करता है और सामान्य हित की प्राप्ति के लिए मानव प्रतिभा को स्वतंत्र करना हैi इससे बढकर राज्य का कोई नैतिक कार्य एवं सकारात्मक लक्ष्य हो ही नही सकताi

ग्रीन सम्पत्ति के विषमता को उचित मानता है तथा चाहता है कि राज्य इसमें कोई हस्तक्षेप न करेi वस्तुतः ग्रीन द्वारा प्रस्तुत राज्य के कार्यों का सिद्धान्त अपने युग की अपेक्षाओं, माँगों के अनुरूप हैi ग्रीन जमींदारी को इसलिए जो समाप्त भी हो रही थी औद्योगिकरण शुरू हो चुका थाi ग्रीन जमींदारों को इसलिए भी समाप्त करना चाहता है कि बेगार करने वाले खेतिहर मजदूरों को वहाँ से मुक्त कराकर उन्हें उद्योग–धन्धों में श्रमिक के रूप में व्यवस्थित किया जा सके, ये सस्ते श्रमिक आद्योगिकरण को गति देने में सहायक होंगेi

ग्रीन का मन्तव्य हैं कि राज्य के अभाव में नैतिक जीवन संभव नही है ग्रीन केवल राज्य को आवश्यक नही बताता वरन् राज्य पर यह भारी कर्त्तव्य भी आरोपित करता है कि राज्य उन सामाजिक बुराईयों को दूर करे जो व्यक्ति को नैतिक बनने से रोक रही हैi वह राज्य का कार्यक्षेत्र निर्धारित करता है और कहता है कि यदि राज्य को एक उपयोगी संगठन बनाना है या राज्य को शाश्वत चेतना को वास्तविक प्रतिनिधि बनकर अपनी भूमिका निभानी है तो उसे उन कार्यों को अवश्य करना होगा जो व्यक्ति जो व्यक्ति के नैतिक विकास के लिए जरूरी हैi ग्रीन ऐसे राज्य का विचार प्रस्तुत करता है जो लोक कल्याण की प्रवृत्ति से परिपूर्ण होi ग्रीन कानून के द्वारा दंड को भी निर्धारित करता है क्योंकि दण्ड व्यक्ति को दुर्व्यसनों एवं बुराइयों से दूर करके उसे सदपथ पर चलने के लिए प्रेरित करता हैi

ग्रीन के सम्पूर्ण सिद्धान्त में व्यक्ति केन्द्रीय बिन्दु है व्यक्ति हित उसका लक्ष्य है इसलिए वह राज्य को शाश्वत चेतना से उद्भूत मानने के बावजूद भी व्यक्ति के हित में बँधा हुआ मानता हैi बार्कर ने ठीक ही लिखा है कि ग्रीन प्लेटोवादी होने की अपेक्षा अरस्तू वादी अधिक है और एक हीगेल वादी की तुलना में काण्ट वादीi ग्रीन द्वारा विवेचित राज्य नैतिकता की व्यवस्था है यह अपने आप में न तो लक्ष्य है और न ही व्यक्तियों के अधिकारों के रक्षण मात्र का उपकरण हैi ग्रीन प्रारंभिक उदारवाद की मान्यताओं से सहमत नही हैi ग्रीन के अनुसार सामाजिक जीवन में नैतिक सहभाग ही आत्म विकास का उत्कृष्टतम स्वरुप है और ऐसे सहभाग की संभावना का निर्माण करना उदारवादी समाज का लक्ष्य हैi वह ईसाई भातृत्व वाद और अरस्तू के नागरिक सिद्धान्त से प्रभावित थाi ग्रीन राज्य के कार्यों को बाधाओं की बाधा कहता है और वह बाधाओं के दूर करने के नाम पर कहीं तक जा सकता हैi इस तरह राज्य व्यक्ति के

नैतिक विकास के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करने के नाम पर सीमित शक्ति संचित कर सकता हैi

2.4.3.2. राज्य का प्रतिरोध करने का अधिकारः–

ग्रीन के अनुसार राज्य का कार्य व्यक्ति द्वारा श्रेष्ठ और नैतिक जीवन के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करना है और इसलिए साधारणतः उसके कार्यों का विरोध नही किया जाना चाहिए लेकिन कभी–कभी देखा जाता है कि राज्य इस लक्ष्य की पूर्ति को ध्यान में रखकर अपने कार्यों का संयोजन नही करता अतः ऐसी स्थिति में व्यक्ति के लिए राज्य के हित में ही उसके कार्यों का विरोध करना आवष्यक हो जाता है दूसरे शब्दों में वह कहता है कि जब राज्य के वास्तविक कानूनों और आदर्श कानूनों में भिन्नता हो तो ऐसी स्थिति में आदर्श कानूनों के अनुकूल सुधार आवश्यक हो जाता हैi दूसरे शब्दों में वह कहता है कि जब तक राज्य के वास्तविक कानूनों में और आदर्श कानूनों में कोई भिन्नता हो तो ऐसी स्थिति में आदर्श कानूनों के अनुकूल सुधार आवश्यक हो जाता हैi अगर समाज की सामान्य चेतना ऐसा अनुभव करे तो व्यक्ति को राज्य के विरुद्ध आवाज उठाने का तथा विरोध करने का अधिकार हैi

2.4.4. ग्रीन की स्वतंत्रता सम्बंधी धारणाः–

ग्रीन स्वतंत्रता को शाश्वत चैतन्य या ईश्वरीय अंश से विभूषित मानव आत्मा का एक आवश्यक गुण मानता हैi यह उसकी आन्तरिक चेतना का प्रतीक हैi अतः स्वतंत्रता मनुष्य की मनुष्यता का आवश्यक तत्व और प्राण हैi यह स्वतंत्रता ही अधिकारों को जन्म देती है और अधिकारों की जननी है और अधिकार राज्य के जन्मदाताi क्योंकि ग्रीन के अनुसार अधिकार वें परिस्थितियाँ हैं जिनमें मानव आत्मा की स्वतंत्रता व्यावहारिक रूप धारण करती है और मानव लोक कल्याण की सिद्धि में अपना योगदान देता हैi ग्रीन की स्वतंत्रता के विचार को बार्कर ने सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करते हुए कहा है कि "मानवीय चेतना के लिए स्वतंत्रता आवश्यक है स्वतंत्रता में अधिकारों का विचार निहित है और अधिकारों की रक्षा के लिए राज्य आवश्यक है"i

ग्रीन के अनुसार स्वतंत्रता दो प्रकार की होती है– आन्तरिक बाह्य स्वतंत्रताi आन्तरिक स्वतंत्रता का प्रयोग करके मनुष्य विषय वासनाओं और बुरी मनोवृत्तियों को वश में करके अपने आपको स्वतंत्र बनाना हैi यह स्वतंत्रता नीति शास्त्र से सम्बंधित है बाह्य स्वतंत्रता जो राजनीतिशास्त्र से सम्बंधित है का अर्थ ऐसी बाह्य परिस्थितियों के निर्माण से है जिसका प्रयोग करके व्यक्ति अपने वास्तविक हित के कार्य को पूर्ण कर सके और अपने आत्म विकास में किसी प्रकार की बाधाओं से जूझना ना पडेi ऐसी परिस्थितियों को उत्पन्न करने वाली स्थितियों को ही अधिकार का नाम दिया जाता है जिनमें मनुष्य को स्वतंत्रता प्राप्त होती हैi अतः इन परिस्थितियों की सुरक्षा की आवश्यकता हैi इस आवश्यकता की पूर्ति राज्य के द्वारा होती है और इस लिए राज्य का जन्म होता हैi इस तरह स्वतंत्रता अंततः राज्य के रूप में जन्म होता हैi इस तरह स्वतंत्रता अंततः राज्य के रूप में प्रकट होते हैं तथा मनुष्य के नैतिक उत्थान का साधन हैi स्वतंत्रता की ब्याख्या करते हुए कहता है कि " स्वतंत्रता एक सकारात्मक वस्तु है जिसका अर्थ ऐसे कार्य करने की या ऐसी सुवधिाओं का उपभोग करने की स्वतंत्रता होती है जो करने या उपभोग करने योग्य होi

ग्रीन की स्वतंत्रता को दो रूपों में देखा जा सकता है–

निश्चयात्मक स्वतंत्रता– ग्रीन स्वतंत्रता के बारे में कहते हैं कि स्वतंत्रता सिर्फ ऐसे कार्यों को करने की सुविधा है जिसके अनुसार मनुष्य विषय वासनाओं से मुक्त होकर अपनी तथा समाज की आत्मिक उन्नति के लक्ष्य को ध्यान में रखकर कार्य करेi इसलिए उसके अनुसार स्वतंत्रता उन सभी कार्यों को करने की स्वतंत्रता है जिससे उसका और समाज का नैतिक कल्याण सिद्ध होता हैi बार्कर ने लिखा है कि – अच्दे कार्यों को करने की प्रेरणा देने वाली सद्इच्छा के आदेशों का पालन करने की स्वतंत्रता ही सच्ची स्वतंत्रता हो सकती हैi

स्वतंत्रता के सकारात्मक रूप की व्याख्या करते हुए वह कहता है कि स्वतंत्रता हस्तक्षेप का अभाव मात्र नही है वरन उसका वास्तविक अर्थ है करने योग्य कार्यों को करने की स्वतंत्रता जिससे व्यक्ति अपना नैतिक उत्थान कर सकेi ग्रीन के अनुसार राज्य को व्यक्ति की स्वतंत्रता का रक्षक माना जाना चाहिए भक्षक नही क्योंकि उसके द्वारा किये जाने वाले कार्यों से व्यक्ति की आत्मोन्नति के अवसर बढते हैंi ग्रीन राज्य को व्यक्ति के आत्मोत्थान का एक सबल और सकारात्मक साधन सिद्ध करता है और कहता है कि राज्य को वे सभी कार्य करने चाहिए जिससे व्यक्ति अपने दुर्बलताओं दुव्यसनों से मुक्त हो सके क्योंकि इनसे मुक्त होने पर ही वह नैतिक उत्थान के मार्ग पर अग्रसर होकर पूर्णता प्राप्त कर सकता है तथा अपने हित के साथ–साथ सामाजिक हित भी सिद्ध कर सकता हैi अगर राज्य इन कार्यों को नही करता है तो व्यक्ति अपनी आसुरी प्रवृत्तियों तथा विषय वासनाओं से मुक्त नही हो सकता और अपने आत्म कल्याण तथा समाज कल्याण के लक्ष्य को प्राप्त नही कर सकताi

ग्रीन ने व्यक्ति और स्वतंत्रता को जो धारणा बेंथम तथा मिल में थी उसको अतिक्रमित कियाi ग्रीन के अनुसार व्यक्ति सामाजिक हे तथा समाज में उसकी स्वतंत्रता वस्तुनिष्ठ शक्ति के रूप में करणीय है उसको संपादित करती हैi

ग्रीन की स्वतंत्रता सम्बंधी अवधारणा के निम्न लक्षण हैं–

1. मनुष्य की मानवीय चेतना बाह्य जगत के पदार्थों की ओर उन्मुख होती है उनके बाह्य जगत मे सभी पदार्थों को प्राप्त करना श्रेयकर नही है कुछ को पाना उचित है कुछ को पाना अनुचित हैi केवल उसी पदार्थ को ग्रहण करना चाहिए जिनको ग्रहण करना उचित होi
2. क्या चयनित करना उचित है क्या चयनित करना अनुचित है इसका संज्ञान विवेक से ही संभव हैi
3. स्वतंत्रता नैतिक संकल्प का गुण होने के कारण राज्य द्वारा किसी पर थोपी नही जा सकती यह नैतिक संकल्प की स्वतः स्फूर्त कामना है इसलिए यह आभ्यान्तरिक हैi
4. स्वतंत्रता एक और तो आभ्यान्तरिक है और दूसरी ओर बाह्य जगत में चयनित कर्म हैi इसलिए इसकी बाह्य अभिव्यक्ति भी है इस रूप में इसके निश्चित स्वरूप हैंi

ग्रीन की स्वतंत्रता का विचार हीगल की स्वतंत्रता की धारणा से गहरा साम्य रखता हैi दोनों ही मनुष्य को तभी सच्चे रूप में स्वतंत्र मानते हैं जबकि वह शाश्वत चैतन्य के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करे और उसके साथ एकाकार हो जाएi ग्रीन काण्ट से स्वतंत्रता का नैतिक स्वरूप ग्रहण करता है और हीगेल से व्यक्ति का ईश्वरीय अंश से एकाकार का भाव और उनसे मिलाकर अपनी स्वतंत्रता की परिभाषा तैयार करता है जो काण्ट के आत्मवाद से और हीगेल के अन्ध राज्यादेश पालन के भाव से मुक्त होi इस मुक्ति के कारण वह इन दोनों की परिभाषाओं से अधिक सार्थक और सार युक्त हैi

2.4.5. ग्रीन के अधिकार सम्बंधी सिद्धान्तः–

ग्रीन के अधिकार सिद्धान्त का महत्व आधुनिक युग के अधिकार सम्बंधी सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में अत्यधिक स्पष्ट हैi लॉक ने प्राकृतिक अधिकार के सिद्धान्त का प्रतिपादन कियाi ये मनुष्य के जन्मजात अधिकार थे ये अपरिवर्तनशील हैi लॉक के विरूद्ध वह यह मानता है कि अधिकारों का अस्तित्व समाज में ही संभव है प्राकृतिक अवस्था मे नही जबकि समाज का अस्तित्व नही थाi ग्रीन अपने मान्यता को स्पष्ट करते हुए कहा है कि "किसी भी व्यक्ति को समाज कल्याण को महत्वपूर्ण बनाने वाले समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त अधिकारों के अतिरिक्त दूसरा कोई अधिकार प्राप्त नही हैi प्राकृतिक अधिकार अर्थात प्राकृतिक स्थिति में अधिकार, अधिकारों के विपरीत है, क्योंकि प्राकृतिक स्थिति समाज की स्थिति नही हैi समाज के सदस्यों के सार्वजनिक कल्याण की भावना के अभाव में अधिकार हो ही नही सकते"i

इस आधार पर अधिकारों की परिभाषा करते हुए यह कह सकता है कि अधिकार व्यक्ति द्वारा अपने नैतिक विकास के लिए समाज से की जाने वाली बाह्य आवश्यक परिस्थितियों की मांग है जिन्हें समाज लोक कल्याण के लिए आवश्यक मानकर व्यक्ति को प्रदान करता हैi अधिकार के दो पक्ष हैं– वैयक्तिक पक्ष के अनुसार अधिकार एक व्यक्ति द्वारा अपने किसी गुण विशेष को स्वतंत्रतापूर्वक विकसित करने की माँग को लोक कल्याण की सिद्धि के लिए आवश्यक मानकर उसे स्वीकार किया जाना हैi अधिकारों के स्वरूप के संबंध में अपने मन्तव्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए ग्रीन कहता है कि 'अधिकार व्यक्ति द्वारा अपने ऐसे उद्देश्य को पूर्ण करने की शक्ति है जिन उद्देश्यों को वह अपने लिए हितकर समझता है तथा समाज यह अधिकार व्यक्ति को इस आधार पर प्रदान करता है कि अधिकार के प्रयोग से समाज का हित सिद्ध होगा'i

लॉक की तरह ग्रीन व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों के विचार से अपनी असहमति प्रकट करता हैi सामाजिक समझौता सिद्धान्त में प्रतिपादकों की प्राकृतिक अधिकारों की धारणा में उसके मत स्पष्ट करते हुए कोकर का कथन है कि ग्रीन ने प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त का खंडन किया अर्थात इस कल्पना का कि मनुष्य कार्य की कुछ स्वतंत्रताओं तथा अपने उपभोग की वस्तुओं में कुछ स्थापित स्वार्थों को लेकर जन्म लेता है अथवा समाज में प्रवेश करने के बाद भी कानूनी तथा नैतिक अधिकारों के रूप में आदर्श बने हुए हैं और समाज में मनुष्य के अधिकार उसी सीमा तक वैध या उचित है जिस सीमा तक वे समाज से पूर्व की अवस्था वाले अथवा प्राकृतिक अधिकारों के अनुकूल सिद्ध किये जा सकते हैंi ग्रीन इस बात को स्वीकार नही करता कि समाज से पूर्व के और समाज से स्वतंत्र भी कोई अधिकार हैi

ग्रीन अधिकारों को जन्मसिद्ध, स्वाभाविक, प्राकृतिक और अविच्छेदनीय नही मानता हैi बल्कि उसे नेतिक मानता है और उसके नैतिक स्वरूप का समर्थन करते हुए ही उन्हे प्राकृतिक घोषित करता हैi प्राकृतिक इस दृष्टि से उसके बिना मनुष्य की पूर्ण उन्नति या आत्मानुभूति जो उसकी नैतिक प्रकृति की अनिवार्य मांग है, पूर्ण होना सम्भव नही हैi अधिकारों की नैतिक व्याख्या करते हुए ग्रीन आगे कहता है कि जब इन नैतिक अधिकारों को कानूनी स्वरूप प्राप्त हो जाता है तो वे वैधानिक अधिकार बन जाते हैंi इस प्रकार ग्रीन अधिकारों के प्राकृतिक रूप को स्वीकार करता है लेकिन सामाजिक समझौता सिद्धान्त के समर्थकों के अनुरूप नहीं वरन् एक भिन्न रूप मेंi

इसके अतिरिक्त ग्रीन एक अन्य अर्थ में भी अधिकारों को प्राकृतिक बताता है और वह अर्थ है उनका आदर्श अधिकारों के रूप मे होनाi उनके अनुसार आदर्श अधिकार ऐसे अधिकार हैं जो सद्भावना के आधार पर सामूहिक रूप से संगठित समाज द्वारा अपने सदस्यों को अनिवार्य रूप से प्रदान किये जाते हैंi ये अधिकार एक समय विशेष मे राज्य स्वीकृत वास्तविक अधिकारों की तुलना में निश्चित रूप से अधिक व्यापक और विशद होते हैं क्यों कि उनका रूप आदर्श होता हैi ग्रीन का मन्तव्य है कि वास्तविक अधिकारों को अधिकाधिक आदर्श अधिकारों के अनुकूल होना चाहिए, क्यों कि ऐसा होना व्यक्ति के उत्तरोत्तर नैतिक उत्थान के लिए आवश्यक हैi

ग्रीन प्रतिपादित करता है कि समाज द्वारा क्रियान्वित होने के लिए उनका कानूनी रूप ग्रहण करना अनिवार्य हैi प्रत्येक समाज को अपने कानूनी अधिकारों को अधिकाधिक आदर्श अधिकारों के अनुकूल बनाने की चेष्टा की जानी चाहिएi एक समाज के प्रगति का मापदण्ड यह है कि उसके कानूनी अधिकार आदर्श अधिकारों के कहाँ तक अनुकूल हैi ग्रीन के अनुसार अधिकारों की प्राप्ति के लिए राज्य आवश्यक हैi ग्रीन का अधिकारों का सिद्धान्त राज्य के अस्तित्व की अनिवार्यता का आधार प्रस्तुत करता है जो स्वतंत्रता को अधिकार विहीन होकर स्वेच्छाचारिता में परिणत होने से बचाता है इस तरह स्वतंत्रता, अधिकार और राज्य के पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट करता है और यह सिद्ध करता है कि इस तरह मानवीय चेतना अन्ततः राज्य के आविर्भाव का कारण बनती हैi इसी बात को बार्कर ने कहा हे कि " मानवीय चेतना स्वतंत्रता को जन्म देती है, स्वतंत्रता में अधिकार निहित है और अधिकार राज्य की माँग करते हैं"i

ग्रीन व्यक्ति को राज्य की अवज्ञा करने का अधिकार इस स्थिति मे प्रदान करता है जब वह महसूस करे कि राज्य के आदेश उसके नैतिक उत्थान में जिसके लिए उसका आविर्भाव हुआ है सहायक सिद्ध नही हो रहे हैं लेकिन ग्रीन कहता है कि व्यक्ति द्वारा इस अधिकार का प्रयोग बहुत ही सतर्कता से किया जाना चाहिएi कोकर के अनुसार– "व्यक्ति राज्य के विरूद्ध ऐसे किन्ही अधिकारों का दावा नही कर सकता जो कल्पित राज्य हीन प्राकृतिक अवस्था में विद्यमान थे और न वह प्रत्येक परंपरागत विशेषाधिकारों या सत्ता को ही ऐसे अधिकार, ऐसी स्वतंत्रता मान सकता है जिसे क्यों कि वह भोगता आ रहा है आगे भी भोगता रह सकता हैi जहाँ नवीन अवस्थाएँ उसके कार्यों के नियमन के लिए नयी आवश्यकताओं को जन्म देती है वहाँ इस प्रकार के नियमन के विरूद्ध व्यक्ति अपने परंपरागत अधिकारों का तर्क नही दे सकता है न इसका निर्णय करने के लिए अपने व्यक्तिगत विचारों को ही सर्वोच्च महत्व दे सकता है कि किसी मामले में राज्य के आदेश का पालन करना उसका कर्त्तव्य है या उलंघन करने का उसका अधिकार हैi किसी को कानून का प्रतिरोध करने का इसलिए अधिकार नही है कि वह कानून उसे किसी ऐसे काम को करने के लिए बाध्य करता है जिसको करने में उसकी इच्छा या बुद्धि उसका अधिकार हैi किसी को कानून का प्रतिरोध करने का इसलिए अधिकार नही है कि वह कानून उसे किसी ऐसे काम को करने के लिए बाध्य करता है जिसको करने में उसकी इच्छा या बुद्धि उसका अनुमोदन नही करती हैi

ग्रीन व्यक्ति को राज्य का प्रतिरोध करने का अधिकार प्रदान नही करता है क्यों कि राज्य के कानून उसके अनुसार समाज की नैतिक चेतना के प्रतीक हैं और उसका प्रतिनिधित्व करते हैंi इस

अधिकार का प्रयोग करने का उसे उसी स्थिति में अधिकार है जब कि उसके प्रयोग से लोक कल्याण की सिद्धि होi

लेकिन प्रश्न यह उठता है कि मनुष्य को इस बात का कैसे ज्ञान हो कि उसका कोई कार्य लोक कल्याण की सिद्धि में सहायक है या नहीi ग्रीन यह कहता है कि मनुष्य इस बात का पता दो तरह से लगा सकता हैi प्रथम तो इस तरह का मनुष्य नैतिक प्राणी होने के साथ – साथ नैतिक चेतना से युक्त होता है और इसलिए इस आधार पर वह यह पता लगा सकता है कि कार्य उसके तथा उसके समाज के अन्य सदस्यों के सामान्य हितों की सिद्धि करने वाला है या नहीi द्वितीय रूप में मनुष्य के विवेक द्वारा निर्मित व समाज में विद्यमान विभिन्न नागरिक संस्थाएँ हैं जिनमें समाज की नैतिकता के मापदण्ड निहित है और इस आधार पर वे मनुष्यों के लिए उचित अनुचित कर्त्तव्यों का निर्माण करने में उसका मार्ग दर्शन करती हैi मनुष्य अपने और राज्य के कार्यों के उन पर होने वाले प्रभावों का मूल्यांकन करके यह पता लगा सकता है कि उसे परिस्थिति विशेष में राज्य की आज्ञा का पालन करना चाहिए या उसकी अवज्ञा करनी चाहिएi इन दोनों आधारों पर अपने कर्त्तव्यों को परखने के बाद ही ग्रीन यह कहता है कि मनुष्य को राज्य का विरोध करने के लिए अधिकार का प्रयोग करना चाहिएi

2.4.6. संप्रभुता की अवधारणाः–

जिस सामाजिक चेतना ने प्राकृतिक अधिकारों की सृष्टि की है वही सामाजिक चेतना राज्य की सत्ता की भी संरचना करती हैi राज्य की सत्ता को ही संप्रभुता से अभिहित किया जाता हैi

ग्रीन के संप्रभुता सिद्धान्त में रूसो और आस्टिन का संयोग परिलक्षित होता हैi ग्रीन राज्य के अस्तित्व और औचित्य को सार्वजनिक संकल्प पर अधिष्ठित मानता है इसलिए राज्य की सत्ता का आधार समाज का सर्वाजनिक संकल्प हैi यह नैतिक आदर्शों की सामाजिक चेतना है यह प्रत्यक्षतः नैतिक लक्ष्य को स्थापित करती है और इसी के निमित्त राज्य की संप्रभुता संरचित की गयी हैi अतः यह कहना अनुपयुक्त नही है कि सामाजिक चेतना अथवा सार्वजनिक संकल्प ही संप्रभु हैi यही वह स्रोत है जिसके नाते राज्य की सत्ता की वैधता प्रमाणित की जा सकती है पर राजनीतिक यथार्थ का परिदृश्य थोडा भिन्न हैi इस यथार्थ के नाते व्यावहारिक जगत में संप्रभु शक्ति का प्रयोग इस बिन्दु पर ग्रीन के ध्यान में इंग्लैण्ड का उदाहरण है– कुछ निश्चित व्यक्ति करते हैंi इन्हें आस्टिन ने निश्चित मानव श्रेष्ठ कहा हैi ग्रीन ने इसको स्वीकार किया हैi वह निश्चित मानव श्रेष्ठ साधारण सभा लार्ड सभा और सम्राट अथवा साम्राज्ञी जैसी स्थिति हो – हैi स्पष्ट है कि ग्रीन ने आस्टिन के संप्रभुता सिद्धान्त को इंग्लैण्ड के सन्दर्भ में स्वीकार किया थाi उसने उन जटिलताओं को नजर अंदाज कर दिया जिसके नाते समीक्षकों ने प्रमाणित किया है कि आस्टिन का सिद्धान्त इंग्लैण्ड की स्थिति पर भी लागू नही नही होतीi

वस्तुतः ग्रीन संप्रभुता सिद्धान्त के सहारे इंग्लैण्ड की संवैधानिक परंपरा और प्रत्ययवाद का संयोग प्रस्तुत कर रहा था स्वतः इंग्लैण्ड में जनता की संप्रभुता और संसदीय संप्रभुता दोनों को वहाँ की संवैधानिक परम्परा में यथोचित स्थान प्राप्त हैi निर्वाचन द्वारा जनता संसद चुनती है अतः जनता राजनीतिक संप्रभु है और संसद निर्वाचित होने के उपरान्त जो कानून बनाती है वह सर्वोपरि है तथा जनता को उसका पालन करना चाहिए, इसलिए संसद विधिक संप्रभु हैi इस तरह रूसो एवं आस्टिन का संयोग

प्रत्ययवाद और इंग्लैण्ड की संवैधानिक परंपरा का संयोग तो है ही यह राजनीतिक संप्रभु तथा विधिक संप्रभु का भी संयोग हैi

2.4.7. सामान्य इच्छा पर ग्रीन के विचारः–

ग्रीन के विचारों में आदर्शवाद के प्रति आग्रह स्पष्ट झलकता है इसका प्रमाण उसका सामन्य इच्छा संबंधी सिद्धान्त हैi वह रूसों की भाँति सामान्य इच्छा सम्बंधी विवेचन प्रारंभ करता है लेकिन उसे अन्त में उदारवादी मान्यताओं के साथ जोड. देता हैi वह रूसो जैसे विचारकों की इस बात के लिए आलोचना करता है कि वे व्यक्ति को राज्य से पृथक करके देखते हैं और इसीलिए एक अमूर्त ढंग के प्राकृतिक अधिकार की चर्चा करते है जो राज्य के बाध्यकारी शक्ति के बाहर हैi वे राज्य के आदेश देने या कानून बनाने संबंधी अधिकारों के बीच संतुलन समन्वय स्थापित करते हैंi ग्रीन न तो प्राकृतिक अधिकारों में विश्वास करता है न ही व्यक्ति और राज्य के बीच पृथककरण की फलतः उसका विश्वास सामाजिक समझौते से भी नही थाi उसनें सामान्य इच्छा संबंधी सिद्धान्त के माध्यम से व्यक्ति और राज्य को एक दूसरे से जोड दिया हैi

ग्रीन का मत है कि शाश्वत चेतना का अंग होने के कारण व्यक्ति में मानवीय चेतना पायी जाती हैi राज्य भी शाश्वत चेतना का ही प्रतीक हैi फलतः व्यक्ति तथा राज्य के बीच किसी प्रकार का संघर्ष होने की संभावना निराधार हैi एक ही सर्वोच्च सत्ता के अंगों के बीच कोई विरोध नही हो सकताi शाश्वत चेतना का अंग होने के कारण व्यक्तियों में सामान्य हित की सामान्य चेतना पायी जाती है और यह चेतना केवल व्यक्तियों के विश्वास की बात नही करती वरन् इसका एक सामाजिक लक्ष्य– सामाजिक कल्याण भी होता हैi राज्य भी सामाजिक लक्ष्य हेतु विकसित एवं स्वाभाविक निकाय है अतएव व्यक्ति एवं राज्य के बीच में संघर्ष की संभावना पैदा ही नही होतीi रूसो की भाँति ग्रीन दो इच्छाओं की बात करता है– वास्तविक या स्वार्थपूर्ण इच्छा (Actual will) तथा यथार्थ या सद्इच्छा (Real will) वास्तविक या स्वार्थपूर्ण इच्छा मनुष्य की वह इच्छा होती है जिसका प्रादुभाव हमारे अपने स्वार्थों के कारण होता हैi यथार्थ सदइच्छा वह इच्छा है जो व्यक्ति के अन्तःकरण की आवाज होती है तथा नैतिक आदेश के रूप में व्यक्ति को सही रास्ते पर चलना सिखाती हैi व्यक्तिगत उत्थान एवं सामाजिक कल्याण ही शाश्वत के अंग के रूप में अपनी भूमिका निभाता हैi

ग्रीन की मान्यता है कि सभी व्यक्तियों में वास्तविक इच्छा तथा यथार्थ इच्छा दोनों पायी जाती हैi अब यह व्यक्ति की रूचियों एवं परिवेश के उपर निर्भर है कि व्यक्ति किस इच्छा के वशीभूत होकर अपना कार्य व्यापार करेगाi ग्रीन के अनुसार समाज के सभी व्यक्तियों में पाई जाने वाली यथार्थ इच्छाओं के योग से सामान्य इच्छा का निर्माण होता हैi यह सामाजिक कल्याण का प्रतीक एवं प्रतिनिधि है तथाराज्य की मूल प्रेरणा भी हैi ग्रीन मानता है कि व्यक्ति स्वाभाविक रूप से अच्छा एवं नैतिक है लेकिन उसकी अपनी कुछ स्वार्थपूर्ण इच्छाएँ भी होतीं हैं तथा कभी – कभी वह ऐसी परिस्थितियों में फँस जाता है कि वह चाहकर भी अच्छा काम नही कर पाता हैi ग्रीन का विचार है कि 'राज्य बाधाओं की बाधा है' तात्पर्य यह है कि राज्य उन स्वार्थपूर्ण प्रवृत्तियों तथा परिस्थितियों के मार्ग बाधा बन कर खडा हो जाता है जो व्यक्ति को अच्छा बनने से रोक रही हैi बार्कर का मत है कि 'सामान्य इच्छा वह दावा है जो यह कहता है कि राजनीतिक कार्य को उत्प्रेरित तथा नियंत्रित करने वाली शक्ति अंतिम रूप से आत्मिक शक्ति

है वह एक सामान्य अन्तःकरण है जो समाज के मंत्रियों तथा अभिकर्ताओं को शक्ति प्रदान करता है कि वह संप्रभु को जन्म देता है जिसका कार्य उन समस्त संस्थाओं को पूर्ण स्फूर्ति तथा पूर्ण सामंजस्य के साथ बनाए रखना है जो अधिकारों तथा कानूनों के साकार रूप हैi

ग्रीन अपने सामान्य इच्छा सिद्धान्त द्वारा यह सिद्ध करना चाहता है कि व्यक्ति अपनी यथार्थ इच्छाओं के वशीभूत होकर ही राज्य का निर्माण करते हैंi ग्रीन के अनुसार राज्य का कर्त्तव्य है कि वह अभावों से ग्रस्त मनुष्यों की सहायता कर उन्हें सामाजिक कल्याण के सरोकारों से जोडे यदि राज्य नें ऐसा नही किया तो ऐसे अभावग्रस्त मनुष्यों की निष्ठा राज्य से समाप्त हो जायेगी और उन्हें राज्य के विरूद्ध षडयन्त्र करने तथा विद्रोह करने में कोई संकोच नही होगाi ग्रीन किसी भी राज्य का आधार सामान्य इच्छा को मानता हैi

ग्रीन रूसो जैसे आदर्शवादियों की भाँति सामान्य इच्छा का प्रारंभ करता हैi रूसो का कथन है कि व्यक्ति को स्वतंत्र होने के लिए बाध्य किया जाए वह राज्य को निरंकुश बना देता है तथा ग्रीन इसी सिद्धान्त के आधार पर राज्य पर यह कर्त्तव्य आरोपित कर देता है कि वह व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में आने वाली बाधाओं को दूर करे तभी उसकी प्रासंगिकता और उपयोगिता होगीi ग्रीन यह तो मानता है कि व्यक्ति शाश्वत चेतना का अंग है शाश्वत चेतना मानवीय चेतना के रूप में व्यक्ति में निहित हैi

2.4.8. ग्रीन का दण्ड सम्बंधी विचारः–

ग्रीन के दण्ड व्यवस्था पर व्यक्ति विचार उसके द्वारा प्रतिपादित राज्यों के कार्यों की सीमा के अन्तर्गत ही आते हैंi राज्य श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने के मार्ग में आने वाली बाधाओं को अपने दण्ड देने के अधिकार का प्रयोग करके दूर करता हैi ग्रीन का कहना है कि अगर कोई व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के उचित अधिकारों का हनन करता है तो राज्य को दण्ड देने के माध्यम से ऐसे व्यक्ति की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त हैi यह राज्य का एक सर्व मान्य अंधकार है जिसका उद्देश्य 'समाज के प्रत्येक सदस्य की नैतिक इच्छा की कार्य करने के लिए आवश्यक स्वतंत्रता को सुरक्षित बनाना हैi राज्य के इस अधिकार की सर्वमान्यता के बावजूद दण्ड के स्वरूप और उद्देश्य के सम्बंध में राजनीतिक चिंतकों मे बडा मतभेद विद्यमान हैi कुछ चिंतक उसका उद्देश्य प्रतिशोधात्मक (Retributive) तो कुछ प्रतिरोधात्मक (Deferent or preventive) और कुछ सुधारात्मक (Reformative) मानते हैंi

दण्ड के उद्देश्य के सम्बंध में ग्रीन इन तीनों सिद्धान्तों में से किसी एक को सही मानकर उसका समर्थन नही करता वरन् कहता है कि उसके तीनो ही उद्देश्य होने चाहिएi इस तरह वह दण्ड के सम्बंध में एक समन्वित सिद्धान्त का समर्थन करता है और कहता है कि दण्ड प्रतिशोधात्मक इस दृष्टि से होता है कि उससे अपराधी के मन में यह भावना उत्पन्न होती है कि दण्ड उसके किये हुए कर्म का ही प्रतिफल हैi प्रतिशोधात्मक वह इस दृष्टि से होता है कि उससे समाज में अपराध के प्रति भय की भावना का संचार होता है जिससे अन्य व्यक्ति अपराध करने की मनोवृत्ति त्याग देते हैं और वह सुधारात्मक इस दृष्टि से होता है और उससे अपराधी के हृदय में अपने आपको सुधारने की भावना जागृत होती हैi दण्ड के इन तीनों उद्देश्यों का समर्थन करते हुए भी वह अन्ततः इसके प्रतिशेधात्मक या निवारात्मक स्वरुप पर ही अधिक जोर देता है क्यों कि उसकी मान्यता है कि दण्ड का ध्येय अधिकारों के उलंघन को रोकना है तथा

अधिकारों और कर्त्तव्यों की उस व्यवस्था को सुरक्षित रखना है जो जीवन के उच्चतम नैतिक आदर्श की प्राप्ति के लिए आवश्यक हैi

ग्रीन के दण्ड के उद्देश्य के सम्बंध में अपना यह सिद्धान्त प्रतिपादित करता है कि उसका उद्देश्य व्यक्ति के नैतिक विकास के लिए आवश्यक स्वतंत्र वातावरण और उपयुक्त परिस्थितियों को बनाये रखना तथा उससे आने वाली बाधाओं को दूर करना है और अपराधी को यह महसूस करवाना है कि दण्ड के रूप में उसे जो सजा मिली है, वह उसका पात्र है और उसका कार्य ही सजा रूप में उसके उपर आ रहा हैi यह कार्य दण्ड के प्रतिशोधात्मक स्वरूप से ही सिद्ध हो सकता है क्यों कि इसके द्वारा व्यक्ति के मन में अपराध के साथ इतना भय स्थापित हो जाता हैi बार्कर का कथन है– " प्रत्यक्ष रूप से दण्ड अधिकारों की विरोधी शक्ति को रोकने वाली एक उन अधिकारों का विनाश है जिन्हें वह सुरक्षित रखता है और जिनका उद्देश्य अपराध का अन्त करना है और अन्त द्वारा उस अधिकार योजना को पुनः स्थापित करना है जिनका उद्देश्य अपराध का अन्त करना है और उसके अन्त द्वारा उस अधिकार योजना को पुनः स्थापित करना है जिसका विरोध किया गया हैi

2.4.9. ग्रीन तथा विश्व बन्धुत्व सम्बंधी विचारः–

ग्रीन राज्य के बारे में केवल व्यक्ति और समाज के दृष्टिकोण से ही नही वरन् अन्य राज्यों के सम्बंधों की दृष्टि से भी विचार करता हैi राज्य की शून्य में स्थित अथवा एक 'एकान्त वादी सर्व शक्तिमान नेतियाथन' के रूप में कल्पना नही की जा सकतीi प्रत्येक राज्य दूसरे राज्य से सम्बंधित होता है और इसे अपने को एक विश्व भातृत्व की धारणा के प्रकाश में उन सम्बंधों का समायोजन करना पडता हैi विश्व बन्धुत्व को स्वीकार करनें के कारण ही ग्रीन 'युद्ध' का विरोध करता है और उसे नृशंस हत्याकाण्ड बताकर जीवन के अधिकार को छीनने वाला कृत्य घोषित कर उसे अनुचित सिद्ध करता हैi

ग्रीन कहता है कि कुछ लोग युद्ध को नैतिक जीवन के लक्ष्य के प्राप्ति के लिए आवश्यक मानकर उसे राज्य का पूर्ण अधिकार घोषित कर सकते हैंi अन्य का प्रतिकार करने के लिए उसे अनिवार्य साधन मानकर उसके प्रयोग को उचित ठहरा सकते हैं लेकिन ग्रीन इसके इस मत से सहमत नही हैi क्यों कि किसी भी हालत में इसका प्रयोग किया जाये वह व्यक्ति के जीवन के अधिकार का हनन करने वाला होता हैi

ग्रीन युद्ध के सम्बंध में विचार प्रकट करते हुए कहता है कि वह एक अपूर्ण राज्य का लक्षण है जो विश्व बन्धुत्व पर आधारित राज्य के पूर्ण रूप के विकास होने पर अनुपयोगी सिद्ध होकर स्वतः समाप्त हो जायेगाi इस तरह हीगेल के विरूद्ध जो युद्ध को हर स्थिति में आवश्यक मानता है, ग्रीन युद्ध को केवल बर्बर आवश्यकता के रूप मे ही स्वीकार करता है और इस दृष्टि से उसके नैतिक अपराध घोषित करते हुए वांछनीय ठहराता है तथा युद्ध के समर्थन में हीगेल द्वारा दिये गए सभी तर्कों का प्रभावपूर्ण ढंग से खंडन करता हैi

इस दृष्टि से वह प्रथम बात यह कहता है कि हीगेल की युद्ध के सम्बंध में यह मान्यता पूर्णतः गलत है कि उसमें सैनिक स्वेच्छा से प्राणों की बलिदान करते हैं क्यों कि सैनिक सेवा में स्वेच्छा से प्रवेश लेकर भी अपने जीवित रहने के अधिकार को अक्षुण्ण रखते हैं इसी में उनका नैतिक उत्थान निहित हैi युद्ध उसके लिए इस अधिकार का हनन करता है और उसके नैतिक विकास को अवरूद्ध बनाता हैi अतः

युद्ध को उचित नही ठहराया जा सकताi दूसरी बात वह यह कहता है कि युद्ध के समर्थन में यह कहना भी गलत है कि उससे मनुष्यों में शूरवीरता और आत्म बलिदान की भावनाओं का विकास होता है और ये निःस्वार्थ भाव से कार्य करने के लिए प्रेरित होते हैंi

युद्ध के विरोध में तीसरी बात यह कहता है कि कुछ लोगों का मत है कि युद्ध से अनेक उपयोगी कार्य और हितकर लक्ष्य सिद्ध होते हैं और अंतिम बात यह है कि युद्ध से व्यक्ति में देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता की भावनाएँ जाग्रत होती हैi ग्रीन कहता है कि यह बात भी सत्य के अनुकूल नही है क्यों कि उससे जो देशभक्ति और राष्ट्रीयता की भावनाएँ पैदा होती है वे दूसरे देश के प्रति हिंसा और द्वेष से परिपूर्ण होती हैi ग्रीन हीगेल की तरह युद्ध को न तो राष्ट्र की सम्पूर्णता का प्रतीक मानता है न आवश्यकi वेपर के अनुसार ग्रीन के युद्ध विषयक विचार उसे हीगेल से अलग करने की सबसे चौडी खाई हैi

2.4.10. ग्रीन के संपत्ति सम्बंधी विचारः–

संविदा की स्वतंत्रता पर ग्रीन ने १८८० में लिकास्तर में दिये गए अपने व्याख्यान में प्रहार किया हैi व्याख्यान का शीर्ष्क था Liberal Legislation and freedom of contract व्याख्यान का सन्दर्भ थाः आयरलैण्ड के काश्तकारों और भूस्वामियों के बीच समझौत का अनुशासनi संपत्ति के बारे में ग्रीन के विचार उदारवादी है न तो वह व्यक्तिगत संपत्ति का उसके सभी रूपों में समर्थक है और न उसका पूर्णतया आलोचकi इस सम्बंध में न तो वह समाजवादी है और न ही व्यक्तिवादीi सर्वप्रथम वह व्यक्तिवादी संपत्ति की संस्था का इस दृष्टि से समर्थन करता है कि वह व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक हैi संपत्ति का अधिकार जीवन के अधिकार का ही पूरक और उसका अनुगमनकर्ता हैi यदि एक व्यक्ति को अपने नैतिक आदर्श की प्राप्ति के लिए स्वतंत्रतापूर्वक प्रयत्न करने का अधिकार हो, तो उसे इसके लिए आवश्यक साधन प्राप्त करने की स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिएi इस प्रकार ग्रीन मानव कल्याण के लिए संपत्ति को नितांत आवश्यक मानता हैi संपत्ति लगाकर कल कारखानें खोलने से हजारों व्यक्तियों को काम तथा वेतन मिलता हैi एक व्यक्ति के पास अधिक पूजी होनें से दूसरे के मार्ग में बाधा नही पहुँचती वह गरीब नही होता क्यों कि पूजी का विस्तार अपरिमित मात्रा में हो सकता हैi श्रमिक भी परिवर्तन और अध्यवसाय से पूजीपति बन सकते हैंi

ग्रीन न केवल संपत्ति वरन संपत्ति की विषमता को भी उचित मानता हैi उसके मतानुसार समाज का कल्याण इसी मे है कि विभिन्न व्यक्ति विभिन्न स्थितियों में रहें और उनके अनुसार ही उसकी संपत्ति एवं आर्थिक दशा भी विभिन्न होi बार्कर के शब्दों में – सामाजिक हित इस बात की माँग करता है कि समाज में विभिन्न व्यक्ति विभिन्न स्थान ग्रहण करेंi विभिन्न स्थान ग्रहण करने के लिए अलग–अलग प्रकार के साधन चाहिए और इस प्रकार संपत्ति का भेद सामाजिक हित मे होता हैi ग्रीन संपत्ति की अत्यधिक स्वतंत्रता या अधिक विषमता का विरोधी था और भू संपत्ति के सम्बंध में तो विशेषतया उसका मत था कि भूमि प्रकृति की देन होने तथा परिमित होने के कारण उसका न्यायपूर्ण वितरण होना चाहिएi

2.4.11. ग्रीन एवं हीगेल एक तुलनात्मक अध्ययनः–

ग्रीन अपने आदर्शवादी विचारों के प्रतिपादन में जर्मन आदर्शवाद के मुख्य प्रतिपादक हीगेल से प्रेरित थाi उसने इंग्लैण्ड में प्रचलित व्यक्तिवाद पर आधारित उदारवादी विचारधारा और जर्मन उग्र आदर्शवाद का समन्वय करने का प्रयास कियाi

अन्तर–

ग्रीन और हीगेल के विचारों में पहला सबसे महत्वपूर्ण अन्तर है कि ग्रीन कुल मिलाकर अपने विचारों में जहाँ व्यक्तिवादी है वहाँ कुल मिलाकर एक राज्यवादी है ग्रीन राज्य को व्यक्ति के नैतिक विकास का एक साधन मानता है किन्तु हीगेल उसे एक साध्यi जो व्यक्ति के लिए पूर्णतः पूज्यनीय अनुकरणीय हैi ग्रीन इस धारणा के विरूद्ध राज्य को पूर्ण महत्व प्रदान करते हुए भी आग्रहपूर्वक यह मान्यता प्रतिपादित करता है कि राज्य आदि विभिन्न संस्थाएँ मनुष्य का नैतिक विकास करने के साधन मात्र हैं, साध्य नहीi अंततः साध्य तो व्यक्ति ही है क्योंकि " राष्ट्र का निर्माण करने वाले व्यक्तियों से अलग राष्ट्रीय जीवन की कोई सत्ता नही होती और किसी भी राष्ट्र या समाज की प्रगति सुधार या विकास का अर्थ इसका निर्माण करने वाले व्यक्तियों के गुणों की वृद्धि के अतिरिक्त कुछ नही हो सकताi हीगेल राज्य को नैतिक विकास की दृष्टि से व्यक्ति के आन्तरिक मामलों मे भी हस्तक्षेप करने का पूर्ण अधिकार देता है और इस तरह उसे व्यक्ति का नैतिक शिक्षक बना देता है जबकि ग्रीन के अनुसार सिर्फ व्यक्ति के नैतिक विकास में आने वाली बाधाओं को दूर करने वाला नौकर मात्र हैi नैतिक शिक्षक तो व्यक्ति स्वयं ही हैi

ग्रीन एवं हीगेल के विचारों का दूसरा महत्वपूर्ण अंतर राज्य के स्वरूप और व्यक्ति द्वारा उसके आदेशों के पालन के सम्बंध में हैi हीगेल राज्य के स्वरूप को निरंकुश मानता है जबकि ग्रीन उसे समान्य इच्छा का प्रतीक और इस लिए व्यक्ति हीगेल की तरह राज्य की शक्ति से आतंकित होकर उसके आदेशों का पालन नही करता वरन् इसलिए करता है कि वह उसकी सामाजिक हित की इच्छाओं को अभिव्यक्त करता हैi ग्रीन कहता है 'राज्य का आधार शक्ति नही इच्छा है'i

उनके विचारों स्वतंत्रता के संबंध में हैi हीगेल यह मानता है कि वास्तविक ही आदर्श है और आदर्श ही वास्तविकता और इसलिए राज्य जो कि एक वास्तविकता है, उसे आदर्श मानकर व्यक्ति को उसके आदेशों का पालन करना चाहिएi ग्रीन नैतिक विकास की दृष्टि से व्यक्ति के लिए करने योग्य कार्यों को करने की सुविधा को ही स्वतंत्रता मानता हैi अतः राज्य अगर इस तरह की व्यवस्था स्थापित करने में सफल हो जिसमें व्यक्ति का अपने नैतिक विकास के लिए आवश्यक कार्यों को स्वतंत्रतापूर्वक कर सके तो ऐसी ही स्थिति उसकी सच्ची स्वतंत्रता की स्थिति प्रकट करती है किन्तु अगर राज्य ऐसी व्यवस्था कायम रखने में असमर्थ होता है तो ऐसी असाधारण स्थिति में ग्रीन व्यक्ति को राज्य का विरोध करने का अधिकार देता हैi

चौथा अंतर युद्ध के संदर्भ में हैi हीगेल जबकि युद्ध को राज्य और व्यक्ति के नैतिक विकास का एक साधन मानकर उसका गुणगान करता हैi ग्रीन उसे व्यक्ति के मौलिक अधिकार को छीनने वाला घोषित करके उसका विरोध करता है और उसे मानवता के विरूद्ध एक नैतिक अपराध घोषित करता हैi दूसरे शब्दों में हीगेल जहाँ राज्य को अपनी आवश्यकता और इच्छानुसार युद्ध करने का निरंकुश

अधिकार प्रदान करता है वहाँ ग्रीन उसे ऐसा कोई निरंकुश अधिकार प्रदान करता है तथा उसे अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता के नियमों से बाँध देता हैi

2.4.12. सारांश

ग्रीन राजनीतिक चिंतन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण दार्शनिक है उसके दर्शन में सत्तावाद, व्यक्तिवाद, आदर्शवाद का अनूठा मिश्रण देखने को मिलता हैi उसने व्यक्ति और राज्य दोनों को समान महत्व देकर आदर्शवाद को अधिक अच्छा बनाया हैi उसने व्यक्तिवाद को नैतिक और सामाजिक आधार प्रदान किया हैi ग्रीन ने राज्य को व्यक्ति का नैतिक विकास करने वाला यंत्र बतायाi इस तरह उसनें राजनीतिक चिंतन को अध्यात्मिक और नैतिक आधार देकर एक सुदृढ रुप प्रदान कियाi उसने आर्थिक जीवन में राज्य के हस्तक्षेप को न्यायोचित ठहराकर इंग्लैण्ड की भावी राजनीतिक सुधारों का मार्ग प्रशस्त कियाi उसने हीगेल के राज्य को साध्य मानने के विचारों का खंडन किया उसने कहा कि व्यक्ति एक साध्य है युद्ध किसी भी स्थिति में अपरिहार्य नही हो सकताi उसने कहा कि राज्य और व्यक्ति में कोई विरोध नही हैi वेपर ने कहा है कि ग्रीन की सबसे बडी देन यह है कि उसने आदर्शवाद और व्यक्तिवाद दोनों के दोषों का संशोधन कियाi व्यक्तिवाद को नैतिक तथा सामाजिक रुप प्रदान किया और आदर्शवाद को परिमार्जित कर एक सभ्य विचार में बदल दियाi ग्रीन ने स्वतंत्रता को नये सिरे से परिभाषित करते हुए कहा कि स्वतंत्रता करने योग्य कार्यों की होती हैi उसने स्वतंत्रता को शाश्वत चेतना के साथ जोडकर इसे एक नैतिक मांग का रुप दिया और इसे मानव चेतना के नैतिक विकास की अनिवार्य परिस्थिति बतायाi ग्रीन नें कहा कि राज्य का प्रमुख कार्य व्यक्ति का नैतिक विकास करना है इसके मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करना राज्य का प्रमुख कार्य उसने कहा कि राज्य को सर्वसाधारण के कल्याण के लिए शिक्षा और सुरक्षा, मद्यपान पर रोक, दोषपूर्ण भूमि व्यवस्था में सुधार आदि कार्य करने चाहिएi ग्रीन ने राज्य पर बाह्य तथा आंतरिक प्रतिबंध लगाकर सीमित प्रभुसत्ता के सिद्धान्त का समर्थन कियाi ग्रीन उन सभी राजनीतिक विचारकों के विचार का खंडन किया जो राज्य के आधार शक्ति को मानते थेi ग्रीन ने कहा कि राज्य का आधार शक्ति नही अपितु इच्छा हैi उसने कहा कि शक्ति पर आधारित राज्य अपूर्ण राज्य होते हैंi

बार्कर के अनुसार ग्रीन एक उँची उडान लेने वाला आदर्शवादी तथा एक ठोस यथार्थवादी भी थाi सेबाइन के अनुसार ग्रीन की मूल धारणा यह थी कि राज्य का लक्ष्य अधिकाधिक व्यक्तिगत स्वतंत्रता का आश्वासन देना नही अपितु सर्वसाधारण के कल्याण के लिए न्यूनतम जीवन स्तर, शिक्षा और सुरक्षा, इत्यादि की परिस्थितियाँ उत्पन्न करना है तथा यह देखना है कि जनसंख्या के अधिकांश भाई इन सुविधाओं से वंचित न रह जाएi इस तरह हीगेलवादी चुनौती को स्वीकार करने वाला एक महत्वपूर्ण दार्शनिक हैi बार्कर, लास्की, लिण्डसे के विचारों पर इसका महत्वपूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता हैi इस तरह ग्रीन ने पूर्ण सत्तावादी राज्य उपयोगितावादी सुखवाद स्पेन्सरवादी व्यक्तिवाद का विरोध करके एक नया राजनीतिक विश्वास कायम किया हैi उसके दर्शन ने परवर्ती राजनीतिक चिंतकों पर गहरा प्रभाव डाला हैi उसके प्रयासों से ही अंग्रजी आदर्शवाद व जर्मन आदर्श का उदारवादी स्वरुप प्रकट हुआ है और कल्याणकारी राज्य का मार्ग प्रशस्त हुआ हैi इस तरह ग्रीन राजनीतिक चिंतन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण व्यक्ति हैi

ग्रीन न तो बेंथम तथा मिल की तरह व्यक्तिवादी है और न ही हीगेल की तरह प्रत्ययवादीi उसके व्यक्तिवादी उदारवाद के मुख्य लक्षण हैं– व्यक्ति एक साध्य हैi साध्य के रूप में समाज में अन्य लोगों के साथ स्वतंत्र होना उसका नैतिक विकास हैi नैतिक बनना व्यक्ति का उत्तरदायित्व है और इसी में व्यक्ति का आत्मविकास हैi ग्रीन के उदारवाद नें व्यक्ति को सामाजिक प्राणी माना है और समाज साध्यों का राज्य है इसलिए व्यक्ति एक नैतिक साम्राज्य हैi उसकी आत्मचेतना सबकी आत्मचेतना को ध्यान में रखकर विकसित होती हैi

व्यक्तिवादी, उपयोगितावादी उदारवाद भी व्यक्ति को साध्य मानता था पर व्यक्ति साध्य होने का अर्थ था कि व्यक्ति अपनी इच्छाओं आकाँक्षाओं और कामनाओं को निर्बाध रूप से पूरा करेi इस प्रकार ग्रीन का उदारवाद उपयोगिवादियों के उदारवाद से भिन्न थाi

ग्रीन का स्वतंत्रता सिद्धान्त व्यक्तिवादी भी है और प्रत्ययवादी भीi इन अर्थों में व्यक्तिवादी है कि स्वतंत्रता व्यक्ति कीशिक्ति हैi इसका स्रोत उसका नैतिक संकल्प है और व्यक्ति ही अपने को स्वतंत्र कर सकता है राज्य नहीi यह सिद्धान्त इसलिए प्रत्ययवादी है कि स्वतंत्रता आत्म निर्धारण (Self determination) है इसलिए यह कामनाओं एवं इच्छाओं का विवेक सम्मत अनुशासन हैi

ग्रीन ने व्यक्ति के जीवन के अधिकार को मौलिक अधिकार माना है यह वैश्विक मानव समाज के सभी सदस्यों को प्राप्त है इस रूप में यह ग्रीन के व्यक्तिवादी अंश की पुष्टिv करता है पर यह अधिकार भी मानवसमाज के सदस्य के रूप में ही प्राप्त होता हैi यह व्यक्ति का एकान्तिक अधिकार नही हैi यह उसके प्रत्ययवाद की पुष्टि करता हैi

ग्रीन के प्राकृतिक अधिकार अथवा आदर्श अधिकारों की योजना स्वीकार की हैi ये अधिकार कानूनी अधिकारों से भिन्न है और उसकी अपेक्षा महत्वपूर्ण हैi राज्य को चाहिए कि प्राकृतिक अधिकारों को कानूनी रूप प्रदान करेi इस प्रकार ग्रीन के उदारवाद ने लॉक की तरह कानूनी अधिकार के समानान्तर प्राकृतिक अधिकार की व्यवस्था की हैi लॉक के लिए प्राकृतिक अधिकार की संख्या ३ हैi ग्रीन के अनुसार प्राकृतिक अधिकार परिवर्तनशील हैi इनकी संख्या निर्धारित नही हैi ग्रीन के लिए प्रतिरोध का अर्थ है राज्य की सत्ता द्वारा संरचित अन्यायपूर्ण कानून अथवा अन्यायपूर्ण परिस्थिति की समाप्ति के लिए प्रयत्नशील होनाi यह हिंसात्मक नहीi

ग्रीन के लिए राज्य नैतिक संस्थान है किन्तु नैतिकता का पूर्ण रूप नही हैi राज्य को नैतिक संस्थान मानने से ग्रीन पुराने उदारवादियों से भिन्न है पर राज्य को नैतिकता का पूर्ण रूप न मानने से वह कठोर प्रत्ययवादियों से भी भिन्न है – खासतौर से हीगेल सेi ग्रीन के संशोधित उदारवाद में व्यक्तिवाद और प्रत्ययवाद दोनों के अंश हैi ग्रीन ने कहा कि जितना राज्य का हस्तक्षेप नही होगा उतना व्यक्ति के लिए कल्याणकारी होगा और न तो उसने यह कहा है कि संपूर्ण जीवन का नियंत्रण राज्य करेंi राज्य के कार्यक्षेत्र से संबंधित ग्रीन के विचार के संशोधित उदारवाद हैi ग्रीन ने राज्य की संप्रभुता पर नैतिक सीमाएँ लगायी हैi संप्रभु बहुत से काम नही कर सकता हैi ग्रीन ने राज्य की संप्रभुता पर नैतिक सीमाएँ लगायी हैi संप्रभु बहुत से काम नही कर सकताi राज्य के अंतर्गत स्थित संवासों को वह नष्ट नही कर सकताi युद्ध करना उसका वैशिष्ठ्य नहीi अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में ग्रीन नें उसे नैतिक दायरे के भीतर बाँधा हैi

वस्तुतः ग्रीन के राजनीतिक दर्शन जितना प्रत्ययवादी परंपरा के प्रति समर्पित है उतना ही इंग्लैण्ड की संविधानवादी, व्यक्तिवादी उदारवादी परंपरा के प्रति भीi इनको संयुक्त करने की प्रक्रिया में ग्रीन ने

प्रत्ययवाद और उदारवादी दोनों में परिवर्तन कियाi उसके चिंतन नें आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के माध्यम से इंग्लैण्ड में प्रत्ययवादी परंपरा की श्रंखला आरंभ कीi

2.4.13. अभ्यास/ बोध प्रश्न–

वस्तुनिष्ठ प्रश्नः

1. स्वतंत्रता को मानव चेतना की विशेषता किसने बताया–
   a. जे०एस० मिल
   b. लास्की
   c. ग्रीन
   d. बोसांके
2. राज्य का आधार शक्ति नही अपितु इच्छा है– यह किसने कहा ?
   a. काण्ट
   b. हीगेल
   c. ग्रीन
   d. बोसांके
3. ग्रीन के सिद्धान्तों में किन विचारों का मिश्रण मिलता है–
   a. तत्वमीमांसा
   b. नीतिशास्त्र दर्शन
   c. राजनीतिक दर्शन
   d. उपरोक्त सभी का
4. Lectures on the Principal of Political obligation किसकी रचना है–
   a. मैकाइबर
   b. लास्की
   c. ग्रीन
   d. बर्क
5. 'युद्ध अनिवार्य नही वरन् एक विपत्ति है जिसका कारण शासकों की महत्वकाँक्षा है जो अविकसित राज्यों का लक्षण है' किसने कहा है–
   a. माक्र्स
   b. ह्यूम
   c. ग्रीन
   d. ग्रोशियस

लघु उत्तरीय प्रश्नः

1. ग्रीन के राजदर्शन के क्या स्रोत थे?
2. ग्रीन ने राज्य का क्या कार्य बताया है?
3. ग्रीन की मुख्य रचनाओं का नाम बताइए?

4. युद्ध के विषय में ग्रीन के विचार व्यक्त करें¡
5. दण्ड के सिद्धान्त के विषय में ग्रीन के विचार व्यक्त करें¡

दीर्घ उत्तरीय प्रश्नः

1. 'मानवीय चेतना स्वतंत्रता चाहती है स्वतंत्रता में अधिकार का भाव निहित है और अधिकार अपने अस्तित्व के लिए राज्य की माँग करते है' – इस कथन के आलोक मे उसकी स्वतंत्रता संबंधी विचार को बताइए¡
2. 'शक्ति नही अपितु इच्छा की राज्य का आधार है' ग्रीन के इस कथन की व्याख्या कीजिए¡
3. ग्रीन के अनुसार अधिकारों का विधि तथा नैतिकता से क्या संबंध है¡
4. ग्रीन के राज्य विषयक विचारों की व्याख्या करें¡
5. राजनीतिक चिंतन के इतिहास में ग्रीन के योगदान की विवेचना कीजिए¡

2.4.14. कठिन शब्दावली–

1) रुढिवाद– परंपरागत बातों को मानते चले आने का सिद्धान्त
2) शाश्वत चेतना– सनातन ज्ञान, सनातन स्मृति, निरन्तर चेतना
3) सद्जीवन– अच्छा जीवन
4) उन्मुख– उत्सुक, जिसका मुख उस ओर हो
5) संज्ञान– जानना, समझना, एक ऐसी बौधिक प्रक्रिया जिसमें विचारों के द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाता है¡
6) तादात्म्य– तल्लीनता
7) प्रतिरोध– रोक, प्रतिबंध
8) प्रतिशोधात्मक का अर्थ– बदला लेना, प्रतिकार
9) प्रतिशोधात्मक– प्रतिबंध लगाने की शक्ति

2.4.15. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन – ओ०पी०गाबा
2. प्रमुख राजनीतिक विचारक– प्रो०श्री प्रकाश मणि त्रिपाठी
3. आधुनिक विचारों का इतिहास– ज्योति प्रसाद सूद
4. टी०एच०ग्रीन–लेक्चर्स ऑन द प्रिंसिपल ऑफ पोलिटिकल आब्लीगेशन (हिन्दी अनुवाद)
5. पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन – डॉ० बी०आर०पुरोहित
6. पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन प्लेटो से माक्र्स– आर०एम०भगत
7. Ernest Barker: English Political Thought (1847-1914)
8. अर्नेस्ट बार्कर इंग्लैण्ड का राज्य दर्शन (हिन्दी अनुवाद 1847-1814)
9. W.M. Mcgovenn- From Luther to Hitler
10. M. Richter : The Politics of conscience: T.H. Green & his age.

खंड-3 मार्क्सवादी चिन्तन

इकाई-1 मार्क्सवाद का उदय : कार्ल मार्क्स के राजनीतिक विचार

इकाई की रूपरेखा

3.1.1 उद्देश्य कथन

3.1.2 प्रस्तावना – परिचय

3.1.2.1. कार्ल मार्क्स का परिचय

3.1.2.2. कार्ल मार्क्स की प्रमुख रचनाएँ

3.1.3 कार्ल मार्क्स की द्वंद्वात्मक पद्धति एवं द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धान्त

3.1.3.1. हीगल का द्वंद्ववाद

3.1.3.2. द्वन्द्ववाद का प्रयोग

3.1.3.3. मार्क्स द्वारा प्रतिपादित द्वन्द्ववाद की विशेषताएँ

3.1.3.4. हीगल तथा मार्क्स : तुलनात्मक अध्ययन

3.1.4 मार्क्स का वैज्ञानिक समाजवाद का सिद्धान्त

3.1.4.1. प्रारम्भिक समाजवाद का स्वरूप

3.1.4.2. व्यवहारिक समाजवाद का प्रतिपादन

3.1.5 मार्क्स का इतिहास सम्बन्धी दर्शन

3.1.5.1. इतिहास की भौतिकवादी या अर्थशास्त्रीय व्याख्या

3.1.5.2. मार्क्स के अनुसार भौतिक परिस्थितियाँ

3.1.5.3. भौतिक परिस्थितियों के परिवर्तन से समाज व्यवस्था में परिवर्तन

3.1.5.4. सामाजिक विकास की प्रमुख अवस्थाएँ

3.1.5.5. ऐतिहासिक भौतिकवाद – एक रेखाचित्र

3.1.6 वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त

3.1.6.1. मार्क्सवाद के अनुसार वर्ग विभाजन

3.1.6.2. वर्ग संघर्ष का प्रकार

3.1.6.3. सामाजिक विकास का सिद्धान्त

3.1.6.4. सर्वहारा वर्ग की तानाशाही

3.1.6.5. वर्ग संघर्ष सिद्धान्त की आलोचना

3.1.7 मार्क्स का आर्थिक दर्शन

3.1.7.1. अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त

3.1.7.2. मार्क्स का पूँजीवादी व्यवस्था का विश्लेषण

3.1.7.3. समाजवादी व्यवस्था की मार्क्सवादी विवेचना

3.1.7.4. साम्यवादी व्यवस्था की व्याख्या

3.1.8 मार्क्स का राज्य सम्बन्धी दर्शन

3.1.8.1. राज्य की उत्पत्ति

3.1.8.2. राज्य का स्वरूप व उसका उद्देश्य
3.1.8.3. सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व
3.1.9 मार्क्स का परिवार, धर्म तथा राष्ट्र सम्बन्धी दर्शन
3.1.9.1. परिवार
3.1.9.2. धर्म
3.1.9.3. राष्ट्रवाद
3.1.10 मार्क्स का मानववादी चिन्तन
3.1.10.1. प्रकृतिवाद तथा मानववाद
3.1.10.2. मानववाद की संकल्पना
3.1.10.3. वर्ग-संघर्ष और मानववाद
3.1.10.4. अलगाव की संकल्पना
3.1.10.5. स्वतन्त्रता की संकल्पना
3.1.11 मार्क्सवाद का मूल्यांकन
3.1.11.1. एक विचारधारा के रूप में सत्य प्राप्त करने का दावा निरर्थक
3.1.11.2. मार्क्सवाद क्रान्ति को बढ़ावा देता है
3.1.11.3. सर्वहारा के अधिनायकतंत्र की स्थापना के दुष्परिणाम
3.1.11.4. मार्क्सवाद के आशानुरूप वर्ग चेतना का विकास न हो पाना
3.1.12 पाठ सार/सारांश
3.1.13 अभ्यास-प्रश्न
3.1.14 कठिन शब्दावली
3.1.15 संदर्भ-ग्रन्थ-सूची

3.1.1 उद्देश्य कथन

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात छात्र-

1. कार्ल मार्क्स के व्यक्तित्व तथा कृतित्व की जानकारी प्राप्त कर सकेंगेi
2. कार्ल् मार्क्स द्वारा प्रतिपादित द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की व्याख्या कर सकेंगेi
3. कार्ल मार्क्स के वैज्ञानिक समाजवाद के सिद्धान्त को समझ सकेंगेi
4. मार्क्स के ऐतिहासिक चिन्तन के अन्तर्गत ऐतिहासिक भौतिकवाद तथा वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त को विश्लेषित कर सकेंगेi
5. मार्क्स के सम्पूर्ण आर्थिक चिन्तन को व्याख्यायित कर सकेंगेi
6. मार्क्स के राजनीतिक चिन्तन से परिचित हो सकेंगेi
7. मार्क्स की मानववादी अवधारणा से अवगत हो सकेंगेi
8. सम्पूर्ण मार्क्सवाद की आलोचनात्मक व्याख्या कर सकेंगेi

3.1.2 प्रस्तावना

3.1.2.1. कार्ल मार्क्स का परिचय

कार्ल्स मार्क्स का जन्म पश्चिमी प्रशा में 1818 में यहूदी माता पिता से हुआ थाi पिता का नाम हर्शेल

मार्क्स था जो वकालत करते थेi कार्ल मार्क्स एक प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक, अर्थशास्त्री, इतिहासकार, राजनीतिक सिद्धान्तकार, समाजवादी पत्रकार एवं वैज्ञानिक समाजवाद के प्रणेता के रूप में पूरी दुनिया में विख्यात हैंi मार्क्स के बाल्यकाल में ही उनके माता-पिता ने तत्कालीन जर्मन सरकार की यहूदी विरोधी नीतियों से तंग आकर ईसाई धर्म स्वीकार कर लियाi 17 वर्ष की आयु में मार्क्स बॉन विश्वविद्यालय में कानून की शिक्षा प्राप्त करने चले गये किन्तु अगले ही वर्ष कानून का अध्ययन छोड़ दिया और बर्लिन विश्वविद्यालय से दर्शन तथा इतिहास का अध्ययन करना प्रारम्भ कर दियाi वहॉ वह हीगल के विचारों से बहुत ज्यादा प्रभावित हुएi सन् 1881 में उन्होंने जेना विश्वविद्यालय से डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि प्राप्त किया तथा उसी विश्वविद्यालय में नियुक्ति प्राप्त करने का प्रयास किया किन्तु अपने उग्र तथा क्रान्तिकारी विचारों के कारण उन्हें विश्वविद्यालय में प्राध्यापक का पद प्राप्त न हो सकाi अपने पसन्द के कार्यक्षेत्र में जगह न बना पाने के कारण उन्हें मजबूरी में अपने जीवन की धारा को बदलना पड़ा तथा उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में इतिहास, दर्शनशास्त्र, राजनीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र इत्यादि विषयों का गहन अध्ययन करने के बाद वह 1943 में समाजवादी अध्ययन के लिए पेरिस चले गयेi वहॉ वे प्रूधों बाकूनिन और मेजिनी आदि प्रख्यात व्यक्तियों के सम्पर्क में आएi वहीं पर वे फ्रेड्रिक एंगेल्स के सम्पर्क में भी आएi आर्थिक समस्याओं पर दोनों के विचार इतने समान थे कि वे आजीवन साहचर्य सूत्र में बँध गयेi मार्क्स सिद्धान्तों की रचना करते रहे तथा एंगेल्स उनके प्रचार तथा समाजवाद के संगठन की शिक्षा में प्रयत्नशील रहेi

पेरिस में प्रशा की सरकार के विरुद्ध एक लेख लिखने के कारण प्रशा की सरकार की प्रार्थना पर फ्रांस की सरकार ने मार्क्स को निर्वासित कर दियाi तत्पश्चात् ब्रुसेल्स पहुँचकर एंगेल्स की मदद से साम्यवाद के प्रचार-प्रसार में लग गएi 1848 में फ्रांस में राज्य क्रान्ति छिड़ गई, इसलिए वह फ्रांस वापस लौट आएi इसके बाद वह साम्यवादी गतिविधियों को तेज करने के इरादे से जर्मनी लौट गएi वहां उन्हें देशद्रोह के मुकदमें का सामना करना पड़ा किन्तु वह बरी हो गयाi अन्तत: वह एक निर्वासित व्यक्ति के रूप में लंदन में आकर बस गए और वहीं पर उनकी मृत्यु भी हो गईi

3.1.2.2 मार्क्स की प्रमुख रचनाएँ

मार्क्स ने अनेक ग्रन्थों की रचना की, किन्तु उसके दो ग्रन्थों को अमर ख्याति प्राप्त हुईi मार्क्स के दो इतिहास प्रसिद्ध क़तियों के नाम हैं- कम्युनिस्ट मैनीफेस्टो (**Communist Manifesto**) **1948** और दास कैपीटल (**Das Capital**) 1967i इन कृतियों के माध्यम से उसने तत्कालीन समाजवाद में दो गुणों का समावेश करके नई विचारधारा की नींव रखी-

प्रथम- उसने स्वप्नदर्शी समाजवाद को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया अर्थात् उसने 'इतिहास के दर्शन' के आधार पर समाजवाद के विकास की व्याख्या की और उसे साम्यवाद के लक्ष्य तक पहुँचाने के साधनों पर प्रकाश डाला,

द्वितीय- उसने सर्वहारा समाजवाद का प्रतिपादन किया अर्थात् जहॉ उसके समकालीन समाजवादी दरिद्रता तथा अन्याय से पीड़ित समाज के पुनर्निर्माण की योजना प्रस्तुत कर रहे थे, वहॉ मार्क्स ने औद्योगिक क्रान्ति से पैदा होने वाली परिस्थितियों में श्रमिक वर्ग को नई चेतना देकर साम्यवादी समाज की स्थापना की नींव रखीi स्वप्नदर्शी समाजवादियों की योजनाएँ पूँजीपतियों के ऐच्छिक सहयोग अथवा हृदय परिवर्तन की सम्भावनाओं पर आश्रित थीं जिन्हें साकार करने का कोई मार्ग उनके पास नहीं था : मार्क्स ने सर्वहारा वर्ग को पूँजीपतियों के विरुद्ध संघर्ष की प्रेरणा देकर और सफलता का मार्ग दिखाकर व्यावहारिक योजना प्रस्तुत कीi

- **Anintroduction of the criticism of the Hegel's Philosophy of Right**
- **Holy Family**
- **Poverty of Philosophy**
- **Critique of Political Economy**
- **Value, Price and Profit**
- **Class Struggle of France**
- **Goatha Programme Revolution and Counter Revolution**

मार्क्स के अन्य ग्रन्थ निम्नलिखित हैं-

3.1.3. मार्क्स की द्वन्द्वात्मक पद्धति एवं द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धान्त

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मार्क्स के सम्पूर्ण दर्शन का आधार स्तम्भ हैi यदि इसे मार्क्स के सम्पूर्ण चिन्तन की कुंजी कहा जाय तो अत्युक्ति न होगीi भौतिक शक्तियॉ किस प्रकार से सक्रिय होकर सामाजिक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करती हैं, मार्क्स इसकी व्याख्या द्वन्द्वात्मक पद्धति के माध्यम से देता हैi मार्क्स ने इस द्वन्द्वात्मक पद्धति को महान दार्शनिक हीगल से ग्रहण किया है और इसके लिए वह हीगल का ऋणी हैi किन्तु इस पद्धति के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि मार्क्स ने केवल हीगल की पद्धति को अपनाया, उसके सार तत्व को उसने उस रूप में ग्रहण नहीं कियाi उसने हीगल के द्वन्द्ववाद के सारतत्व को पूरी तरह से बदल दियाi मार्क्स हीगल से इस दृष्टि से भिन्न है कि हीगल ने द्वन्द्वात्मक आदर्शवाद को अपने अध्ययन के केन्द्रबिन्दु के रूप में चुना किन्तु मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का निरूपण कियाi मार्क्स ने ऐतिहासिक विकास में भी भौतिकवादी शक्तियों की भूमिका को पहचानकर समाजवाद को भी वैज्ञानिक आधारशिला पर स्थापित करने के ध्येय से द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का निरूपण कियाi

3.1.3.1. हीगल का द्वन्द्ववाद

हीगल के अनुसार समाज की प्रकृति गतिशील है और यह निरन्तर परिवर्तनों से गुजरती रहती हैi हीगल के सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया अथवा विकास का क्रम कुछ निश्चित नियमों के अनुसार चलता है, यह केवल ऐतिहासिक घटनाओं का लेखा मात्र नहीं हैi हीगल के अनुसार विकास अथवा सामाजिक परिवर्तन की प्रकिया 3 अवस्थाओं से गुजरकर पूर्णता प्राप्त करती हैi ये अवस्थाएँ हैं- वाद (**Thesis**), प्रतिवाद **(Antithesis)**, संवाद **(Synthesis)**i हीगल का मानना है कि सर्वप्रथम मस्तिष्क में एक विचार जन्म लेता है जिसे वाद कहते हैंi वाद अन्तर्विरोधों से मुक्त होता है किन्तु पूर्णत: सत्य नहीं होता हैi वाद स्वभावत: अस्थिर भी होता है क्योंकि केवल सत्य ही स्थाई अथवा स्थिर हो सकता हैi वाद के पूर्ण सत्य न होने के कारण उसका विपरीत रूप अर्थात् प्रतिपक्ष अथवा प्रतिवाद स्वयं ही अस्तित्वमान हो जाता हैi चूंकि प्रतिवाद वाद का नितान्त विरोधी विचार होता है इसलिए प्रतिवाद भी सत्य के निकट नहीं होता है और अस्थिर होता हैi वाद तथा प्रतिवाद निरन्तर एक दूसरे के विरोधी नहीं बने रहते हैंi उसके मध्य तनाव की स्थिति उत्पन्न होती हैi इनके मध्य टकराव के कारण इन दोनों के असत्य अंश नष्ट हो जाते हैं और सत्य के अंश एक दूसरे के साथ जुड़कर तृतीय पक्ष संवाद को जन्म देते हैंi संवाद का जन्म वाद और प्रतिवाद के परस्पर विरोधी विचारों से होता हैi अत: उसमें वाद तथा प्रतिवाद दोनो के तत्व विद्यमान होते हैं किन्तु संवाद का स्वरूप दोनों से ही भिन्न होता है और वह इन दोनों की अपेक्षा सत्य के अधिक निकट होता हैi वाद का अस्तित्व प्रतिवाद को जन्म देता है और इन दोनों का टकराव संवाद की

रचना करता है**i** इस प्रकार से विकास का एक चक्र-पूर्ण होता है**i** इस चक्र के पूर्ण होने पर जिस संवाद की रचना होता है वह भी पूर्ण रूप से सत्य नहीं होता**i** अत: विकास क्रम यहां पर भी रुकता नहीं और संवाद ही नए वाद का रूप ग्रहण कर लेता हैं इस प्रकार से पुन: वही प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है**i** यह प्रक्रिया तब तक वाद, प्रतिवाद एवं संवाद के इसी क्रम में संचालित होती रहती है जब तक पूर्ण सत्य की स्थिति प्राप्त न हो जाए**i**

3.1.3.2. द्वन्द्ववाद का प्रयोग

यद्यपि कि मार्क्स द्वन्द्व को ही विकास प्रक्रिया का आधार मानता है, परन्तु उसका प्रयोग वह हीगल की तुलना में बिल्कुल अलग तरीके से करता है**i** मार्क्स ने द्वन्द्ववाद का प्रयोग विचारों के क्षेत्र में न करके भौतिक क्षेत्र में किया है**i** हीगल जहॉ विचार को द्वन्द्ववाद का मूल तत्व समझता है, वहीं दूसरी ओर मार्क्स पदार्थ को द्वन्द्ववाद का मूल तत्व समझता है**i** इस प्रकार से मार्क्स आदर्शवादी न होकर भौतिकवादी है**i**

मार्क्स के शब्दों में "मनुष्य के मस्तिष्क द्वारा प्रतिबिम्बित और विचार के रूप में परिवर्तित भौतिक संसार ही मेरा आदर्श है**i**" मार्क्स के अनुसार समस्त अस्तित्व में हर पल, हर जगह चल रहे, अन्तर्विरोधों का नाम ही द्वन्द्व है और किसी भी तत्व का विकास भी इसी द्वन्द्व में अन्तर्निहित है**i** द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद इस मूल धारणा को लेकर चलता है कि इस विश्व का आधार भौतिक पदार्थ है**i** वह अन्तर्विरोधी प्रवृत्तियों द्वारा स्वत: विकसित होता है और कभी-कभी भिन्न रूप भी धारण कर लेता है**i** वाद, प्रतिवाद तथा संवाद के माध्यम से इसे गति मिलती है**i** मार्क्स ने इसे मानव इतिहास का शाश्वत तथा अटल नियम माना है क्योंकि यह स्वयं प्रकृति का नियम है इसलिए अपरिवर्तनीय नियम है**i** मार्क्स के अनुसार पूँजीपति वर्ग एक वाद है, सर्वहारा वर्ग प्रतिवाद है तथा दोनों के संघर्ष द्वारा उत्पन्न वर्गविहीन समाज संवाद है**i** मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का अन्तिम लक्ष्य वर्गविहीन समाज की स्थापना करना है जिसमें न कोई वर्ग-भेद होगा और न कोई शोषण**i** यह अन्तिम अवस्था संवाद है जो किसी प्रतिवाद को जन्म नहीं देगा**i** वर्गविहीन समाज की स्थापना के साथ वर्ग-संघर्ष की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया समाप्त हो जाएगी**i**

3.1.3.3. मार्क्स द्वारा प्रतिपादित द्वन्द्ववाद की विशेषाताएँ

कार्ल मार्क्स द्वारा जिस द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की व्याख्या की है उसके आधार पर उसकी निम्नलिखित विशेषताएँ बताई जा सकती हैं-

3.1.3.3.1. विश्व के अवयवी स्वरूप का प्रतिपादन- कार्ल मार्क्स के द्वारा विश्व की व्याख्या एक ऐसे सावयव के रूप में की गयी है जिसके सभी अंग तथा वस्तुएँ आपस में एक दूसरे से सम्बद्ध होती हैं**i** विश्व समस्त वस्तुओं का संग्रह या ढेर मात्र नहीं है वरन् एक समग्र इकाई है जिसकी समस्त वस्तुएं अन्योन्याश्रित हैं**i** स्टालिन ने कहा है- "द्वन्द्ववाद विश्व को ऐसी वस्तुओं व प्रवृत्तियों का आकस्मिक पुंज नहीं मानता, जो एक दूसरे से असम्बद्ध, पृथक व परस्पर स्वतन्त्र हो, वरन् वह ऐसी सुसम्बद्ध एकता तथा पूर्ण समग्रता मानता है जिसमें वस्तुएँ व प्रवृत्तियॉ अवयवों की तरह परस्पर सुसम्बद्ध अन्योन्याश्रित व प्रभावित होती हैं**i**"

3.1.3.3.2. विश्व निरन्तर गतिशील है- मार्क्स के अनुसार समस्त मानव सभ्यता में गतिशीलता का गुण पाया जाता है, इस प्रवृत्ति के कारण सदैव ही कुछ नवीन चीजें विकसित होती हैं**i** इसी गतिशील प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हुए एन्जेल्स कहता है- छोटी से छोटी वस्तु से लेकर बड़ी से बड़ी वस्तु तक, बालू के कण से लेकर सूर्य तक, अवयव से लेकर मनुष्य तक सम्पूर्ण प्रवृत्ति में, अस्तित्व में आने व विलीन होने की प्रक्रिया, लगातार चलने वाला उतार चढ़ाव तथा परिवर्तन अनन्त स्थिति तक चलती

रहती है**i**

3.1.3.3.3. विश्व में परिवर्तनों का गुणात्मक रूप- मार्क्स की मान्यता है कि विकास के क्रम में वस्तुओं के स्वभाव एवं गुणों में महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं**i** इसी कारण एक वस्तु कभी-कभी पूर्ण रूप से परिवर्तित होकर पूर्णत: नवीन रूप धारण कर लेती है**i**

3.1.3.3.4. परिवर्तनों का क्रम सरलता से जटिलता की ओर होता है- मार्क्स की द्वन्द्ववादी व्याख्या के अनुसार विकास तथा परिवर्तन की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल है**i** विकास तथा परिवर्तन कभी भी सरल रेखीय नहीं होते हैं, ये टेढ़े-मेढ़े तथा घुमावदार हैं**i** इसके अतिरिक्त विकास व परिवर्तन स्वरूप भी धीरे-धीरे सरल से जटिल होता जाता है**i**

3.1.3.3.5. परिवर्तनों के कारण विश्व में होने वाले रूपान्तर आकस्मिक होते हैं- मार्क्स की द्वन्द्ववादी प्रक्रिया के अनुसार विकास के क्रम में जो छोटे-छोटे परिवर्तन होते हैं वे आकस्मिक व क्रान्तिकारी रूप से वैश्विक रूपान्तर को जन्म देते हैं**i** दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि वैश्विक रूपान्तरण की प्रक्रिया कभी भी एक सोची-समझी रणनीति के अधीन न होकर आकस्मिक तथा क्रान्तिकारी रूप में चलती है**i**

3.1.3.4. हीगेल तथा मार्क्स : तुलनात्मक अध्ययन

विवेच्य विषय	**हीगल का विचार**	**मार्क्स का विचार**
दाशर्निक आधार	चेतन (आदर्शवाद)	जड़वाद (भौतिकवाद)
विकास की प्रकृति	द्वन्द्वात्मक	द्वन्द्वात्मक
प्रगति का माध्यम	राष्ट्रों का संघर्ष	वर्गों का संघर्ष
विकास का चरम लक्ष्य	राष्ट्र–राज्य का वर्चस्व	वर्गहीन तथा राज्यहीन समाज

3.1.4. मार्क्स का वैज्ञानिक समाजवाद का सिद्धान्त

आधुनिक युगीन विचारधारा का उदय औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप हुआ**i** औद्योगिक क्रान्ति ने उत्पादन के साधनों में तो परिवर्तन किया ही साथ ही उसने सामाजिक व्यवस्था में भी आमूलचूल परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त किया**i** 19वीं सदी में व्यक्तिवाद का प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया था कि सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था का संचालन ही व्यक्तिवाद पर आधारित हो गया**i** व्यक्तिवादी सिद्धान्त ने 'अहस्तक्षेप की नीति' (विशेषत: आर्थिक क्षेत्र में) (**Laissez Faire**) के कारण स्वाभाविक रूप से पूँजीवादी व्यवस्था को जन्म दिया पूँजीपतियों के द्वारा उत्पादन तथा वितरण के साधनों पर पूर्णरूप से नियंत्रण स्थापित कर लिया गया जिससे सम्पूर्ण समाज दो वर्गों पूँजीपति वर्ग तथा श्रमिक वर्ग में बँट गया**i** अल्पसंख्यक पूँजीपति वर्ग उत्पादन के समस्त साधनों का स्वामी था इसलिए अपने स्वामित्व के माध्यम से बहुसंख्यक श्रमिक वर्ग का शोषण करता था**i** श्रमिक वर्ग के पास स्वामित्व के नाम पर कुछ भी नहीं था और वे अपने जीवनयापन के लिए पूरी तरह से अपने श्रम पर ही निर्भर थे और साथ ही वे पूँजीपतियों की दयादृष्टि पर भी आश्रित थे**i** धीरे-धीरे मजदूर वर्ग की इन समस्याओं पर कुछ चिन्तकों का ध्यान आकर्षित हुआ**i**

3.**1.4.1. प्रारम्भिक समाजवाद का स्वरूप**

प्रारम्भ में समाजवादियों का स्वरूप अत्यन्त काल्पनिक था**i** प्रारम्भिक समाजवादियों में राबर्ट ओवन, सेंट साइमन, प्रूधो, चार्ल्स फोरियर आदि विचारकों के नाम उल्लेखनीय हैं**i** ये विचारक आर्थिक विषमता

के स्थान पर समाज में धन के न्यायोचित वितरण पर तो बल देते थे किन्तु उन्होंने विषमता के कारणों पर प्रकाश नहीं डाला और उत्पादन विधियों के साथ विषमता के सम्बन्धों पर भी वे मौन ही रहेi उन्होंने सामाजिक प्रगति के नियमों को समझने का प्रयास नहीं कियाi इतना ही नहीं प्रारम्भिक समाजवादियों ने परिवर्तित परिस्थितियों की व्याख्या भी प्रस्तुत नहीं की तथा विद्यमान अवस्था में सुधार लाने के लिए किसी स्पष्ट एवं व्यावहारिक दर्शन का भी उनके चिन्तन में सर्वथा अभाव थाi वेपर के शब्दों में "उन्होंने सुन्दर गुलाब के फूलों की कल्पना तो की, किन्तु गुलाब के वृक्षों के लिए कोई जमीन तैयार नहीं कीi" मार्क्स का मानना था कि दार्शनिकों का कार्य जगत् का विश्लेषण करना नहीं है वरन् उनका कार्य जगत को बदलना हैi

3.1.4.2. व्यावहारिक समाजवाद का प्रतिपादन

स्वप्नलोकीय समाजवाद को वास्तविकता के धरातल पर उतारने का कार्य मार्क्स ने कियाi मार्क्स ने एक वैज्ञानिक की भॉति ऐसे तथ्यों का विश्लेषण किया और सामाजिक प्रगति के लिए एक व्यावहारिक मार्ग खोज निकालाi मार्क्स ने समाजवाद को एक अस्पष्ट तथा भावुक पृष्ठभूमि से निकालकर एक स्पष्ट तथा वैज्ञानिक रूप प्रदान कियाi समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए उसने 'विश्व के मजदूरों एक हो जाओ' का नारा देते हुए क्रान्ति के लिए मजदूरों को प्रोत्साहित किया तथा क्रान्ति का आह्वान कियाi श्रमिक वर्ग को संगठित करने के उद्देश्य से सन् 1864 में उसने प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ की स्थापना में अपना योगदान दियाi इस प्रकार मार्क्स प्रथम समामजवादी चिन्तक था जिसने विद्यमान व्यवस्था की सैद्धान्तिक व्याख्या तो कही ही साथ ही उसने आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों को बदलने हेतु एक व्यावहारिक मार्ग भी बतायाi प्रो. जोड के अनुसार- "मार्क्स प्रथम समाजवादी लेखक है जिसके कार्यों को वैज्ञानिक कहा जा सकता हैi उसने अपने वांछित समाज का चित्रण ही नहीं किया है वरन् वह उन परिस्थितियों का भी विस्तृत वर्णन करता है, जिसके माध्यम से इस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता हैi"

मार्क्स ने सैद्धान्तिक पहलुओं के साथ-साथ व्यावहारिक पक्ष को जो महत्व दिया, उसके कारण वह वर्तमान राजनीतिक चिन्तन पर, अन्य समाज वैज्ञानिकों की तुलना में अधिक प्रभाव डाल सकाi मार्क्स अपने वैज्ञानिक विश्लेषण के माध्यम से इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन किये बिना शोषण का अन्त नहीं किया जा सकता हैi शोषण के लिए सम्पत्ति के निजी स्वामित्व को जिम्मेदार ठहराते हुए मार्क्स ने कहा कि शोषण का अन्त तभी हो सकता है जब उत्पादन एवं वितरण के साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व एवं नियन्त्रण होगाi

उक्त विवेचन से सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि समाजवाद को एक व्यावहारिक आन्दोलन का रूप देने में मार्क्स का योगदान अविस्मरणीय हैi इसी कारण कार्ल मार्क्स को वैज्ञानिक समाजवाद तथा साम्यवाद के प्रणेता की संज्ञा देते हुए लास्की ने कहा है कि "किसी भी पहलू से हम उसे देखें, कार्ल मार्क्स का चिन्तन सामाजिक दर्शन के इतिहास में स्वयं एक युग हैi उसके विषय में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि उसने साम्यवाद को अस्त-व्यस्त रूप में पाया तथा उसने उसे एक आन्दोलन बना दियाi उसके द्वारा साम्यवाद को एक दर्शन तथा गति प्रदान की गयीi"

3.1.5 मार्क्स का इतिहास सम्बन्धी दर्शन

इतिहास अथवा ऐतिहासिक घटनाक्रम को देखने से सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि मानव समाज सदैव ही बदलता आया हैi मानव समाज की जो स्थिति 2000 वर्ष पूर्व थी वह स्थिति 1000 वर्ष पूर्व नहीं रही और जो स्थिति 1000 वर्ष पूर्व थी वह स्थिति वर्तमान समय में नहीं रह गयी हैi सामाजिक जीवन सदैव ही परिवर्तनों से ग्रसित रहा है, यह बात अलग है कि ये परिवर्तन कभी बहुत धीरे-धीरे हुए तो कभी बहुत

शीघ्रता से हुए**i** ऐतिहासिक घटनाक्रमों को देखने से यह भी पता चलता है कि कभी-कभी एक साधारण सा परिवर्तन भी अत्यन्त लम्बे समय में हो पाया और कभी-कभी अत्यन्त क्रान्तिकारी परिवर्तन अचानक हो गये हैं**i** ऐसे में दार्शनिकों के समक्ष यह यक्ष प्रश्न सदैव ही बना रहा कि ये सामाजिक परिवर्तन क्यों होते हैं तथा उनका रहस्य क्या है? यह प्रश्न प्रत्येक देशकाल में समय-समय पर विद्वानों एवं दार्शनिकों के समक्ष उपस्थित होता रहा, तो विभिन्न समयों पर इसके उत्तर भी अलग-अलग रूप में दिए गये**i** बहुत समय तक तो ईश्वरीय इच्छा को इन परिवर्तनों का कारण माना जाता रहा फिर चाहे वह पाश्चात्य जगत रहा हो या प्राचीन हिन्दू दर्शन, सभी इस बात से सहमत थे**i** वर्तमान समय में भी सभी प्रकार के परिवर्तनों के पीछे ईश्वरीय इच्छा के तत्व को स्वीकार करने वाले लोग कम नहीं हैं**i** विचारवाद के सन्दर्भ में हीगल सार्वभौमिक आत्मा के तत्व को विश्व का मूल मानता है तथा उसका मत था कि विश्वात्मा की योजना के अनुसार ही समाज के विकास की प्रक्रिया में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते हैं**i** एक अन्य धारणा के अनुसार ये विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते हैं**i** एक अन्य धारणा के अनुसार ये विभिन्न प्रकार के परिवर्तन महापुरुषों, समाज सुधारकों व राजनीतिज्ञों आदि के प्रयत्नों का परिणामस्वरूप हुए हैं**i** मार्क्स ने इन सब प्रकार के मतों को अवैज्ञानिक बताते हुए अस्वीकार कर दिया तथा सामाजिक विकास के इतिहास की व्याख्या वैज्ञानिक ढंग से द्वन्द्ववाद के आधार पर की है जिसे इतिहास की भौतिकवादी या अर्थशास्त्रीय व्याख्या या ऐतिहासिक भौतिकवाद कहा जाता है**i**

3.1.5.1. इतिहास की भौतिकवादी या अर्थशास्त्रीय व्याख्या (ऐतिहासिक भौतिकवाद)

मार्क्सवाद के अन्तर्गत ऐतिहासिक भौतिकवाद को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के पूरक सिद्धान्त के रूप में मान्यता दी जाती है**i** इसे इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या या इतिहास की आर्थिक व्याख्या भी कहा जाता है**i** जहॉं द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मार्क्सवाद का दार्शनिक आधार प्रस्तुत करता है वहीं ऐतिहासिक भौतिकवाद उसका अनुभवमूलक आधार प्रस्तुत करता है**i** मार्क्स द्वारा प्रतिपादित ऐतिहासिक भौतिकवाद से तात्पर्य है कि मानव समाज के विकास का इतिहास किसी दैवी परिस्थितियों के कारण नहीं वरन् भौतिक व आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार होता है**i** इतिहास के किसी भी युग में समाज के आर्थिक सम्बन्ध समाज की प्रगति का रास्ता तैयार करते हैं और वे राजनीतिक कानूनी, सामाजिक, बौद्धिक और नैतिक सम्बन्धों का स्वरूप निर्धारित करने में सबसे बढ़कर प्रभाव डालते हैं**i** समाज के आर्थिक सम्बन्धों से तात्पर्य है- ऐसे सम्बन्ध जिनसे बँधकर स्त्री-पुरुष अपने जीवन के निर्वाह के लिए साधनों को एकत्रित करते हैं**i** अन्य शब्दों में अपनी भौतिक जरुरतों की संतुष्टि के लिए अपेक्षित वस्तुओं के उत्पादन, वितरण तथा विनिमय की व्यवस्था करते हैं**i** उक्त के बारे में यह भी कहा जा सकता है कि किसी राष्ट्र या समाज के बारे में यह भी कहा जा सकता है कि किसी राष्ट्र या समाज के विकास की प्रकिया में आर्थिक तत्वों जिनमें उत्पादन, वितरण एवं विनिमय सम्मिलित हैं, की भूमिका सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण होती है**i** आर्थिक तत्वों की प्रधान भूमिका होने का तात्पर्य यह नही है कि कानून, धर्म, साहित्य, विज्ञान, कला, संस्कृति इत्यादि जैसे तत्व समाज की प्रगति में कोई महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन नहीं करते हैं**i** किन्तु ये तथ्य ध्यातव्य हैं कि अन्य सभी तत्वों की भूमिका आर्थिक तत्व के साथ जुड़ी हुई रहती है और उसके आश्रित के रूप में सक्रिय होती है**i** A Contribution of the Critique of Political Economy (1809) की प्रस्तावना में मार्क्स ने लिखा है कि हीगल के विधि-दर्शन की समीक्षा के पश्चात् वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि कानूनी सम्बन्धों या शासन प्रणालियों के स्वरूप को न तो स्वयं समझ जा सकता है और न ही मानव मन की तथाकथित प्रगति के सन्दर्भ में बल्कि उनकी जड़ों को जीवन की भौतिक परिस्थितियों में ही ढूँढ़ा जा सकता है**i** संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि

मनुष्य सामाजिक स्तर पर जो उत्पादन करते हैं, उसके कारण वे एक-दूसरे के साथ निश्चित सम्बन्धों के सूत्र में बँध जाते हैंi ये सम्बन्ध अनिवार्य होते हैं और स्वाभाविक भी, इस कारण मनुष्यों का इस पर कोई वश नहीं चलता हैi इन उत्पादन सम्बन्धों का स्वरूप उनकी भौतिक उत्पादन शक्ति के विकास की निश्चित अवस्था के अनुरूप ढल जाता हैi इन उत्पादन सम्बन्धों के विभिन्न हिस्सों के योग से समाज की आर्थिक संरचना अस्तित्व में आती है और यही आर्थिक संरचना कानूनी तथा राजनीतिक अधिरचनाओं की आधारशिला के रूप में कार्य करती हैi अन्य राष्ट्रों में यह भी कहा जा सकता है कि भौतिक जीवन की उत्पादन प्रणाली मानव जीवन की सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक प्रक्रियाओं के सामान्य रंग रूप को निर्धारित करती हैi

भौतिक जीवन की उत्पादन प्रणाली मनुष्य के जीवन के विभिन्न पहलुओं को निर्धारित ही नहीं करते वरन् उत्पादन प्रणाली में होने वाले प्रत्येक परिवर्तन के साथ वे सामाजिक सम्बन्धों में भी निरन्तर परिवर्तन लाते रहते हैंi उदाहरण के लिए जब उत्पादन कार्य हाथ की चक्की से होता था उस समय सामंत वर्ग अस्तित्व में आया और जैसे-जैसे उत्पादन का कार्य भाप की चक्की या ऊर्जा द्वारा स्वचालित मशीनों से होने लगा वैसे ही पूँजीपति या उद्योगपति वर्ग का आविर्भाव हुआi इस प्रकार से सामाजिक इतिहास को ध्यान में रखते हुए मार्क्स ने कहा है कि तकनीकी के विकास में सर्वप्रथम उत्पादन की प्रणाली में परिवर्तन आता हैi तत्पश्चात् सामाजिक सम्बन्धों में भी उसी प्रकार के परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लग जाते हैंi मार्क्स आगे कहता है कि पुरानी व्यवस्थाओं के अन्दर भी अनेक सामाजिक तथा राजनीतिक आदर्शों के निर्माण कर लिए जाते हैं किन्तु नवीन व्यवस्था के आने पर वे आदर्श अपनी प्रतिकूलता के कारण अपना महत्व खो देते हैंi पुरानी व्यवस्था के बन्धन में जकड़े हुए व्यक्ति के अन्दर नवीन चेतना का उदय होता है और वह व्यक्ति पुराने बन्धनों को तोड़कर आजाद हो जाता है और नवीन परिस्थितियों के अनुसार नवीन व्यवस्था का सूत्रपात करता हैi

ऐतिहासिक भौतिकवाद की व्याख्या की दृष्टि से मार्क्स ने आधार और अधिरचना के मध्य अन्तर करने को अनिवार्यता दी हैi आधार और अधिरचना के बीच के अन्तर को भवन के रूपक द्वारा ठीक तरह से समझा जा सकता हैi जिस प्रकार से भवन के दो हिस्से होते हैं, प्रथम, नींव जिसे हम आधार कह सकते हैं और द्वितीय उस नींव पर टिका हुआ सम्पूर्ण ढांचा जिसे अधिरचना कहा जा सकता हैi ठीक इसी प्रकार उत्पादन प्रणाली या समाज की आर्थिक संरचना को समाज का आधार या नींव मानते हैं ओर समाज के कानूनी ढॉंचे तथा सामाजिक चेतना की विभिन्न अभिव्यक्तियों यथा- धर्म, नैतिक आदर्श, सामाजिक प्रथाएँ, साहित्य, कला तथा संस्कृति आदि को अधिरचना या ऊपरी ढॉंचे की श्रेणी में रखा जाता हैi अत: सामाजिक विकास के दौरान उत्पादन प्रणाली में जो भी परिवर्तन होते हैं उनके कारण अधिरचना के विभिन्न हिस्सों में उसी के अनुरूप परिवर्तन हो जाते हैंi

3.1.5.2. मार्क्स के अनुसार भौतिक परिस्थितियॉं

भौतिक परिस्थितियों को सामाजिक जीवन के अस्तित्व एवं विकास के आधार के रूप में निरूपित करने के पश्चात मार्क्स ने इस बात की भी व्याख्या की कि भौतिक परिस्थितियों से क्या तात्पर्य है? सामान्य तौर पर तो भौगोलिक दशाएँ, जनसंख्या, भूमि आदि को ही भौगोलिक परिस्थितियों के रूप में चित्रित किया जाता है कि मार्क्स की धारणा इस सामान्य धारणा से अलग हैi मार्क्स के अनुसार उक्त भौतिक परिस्थितियों में वह क्षमता नहीं होती है कि वे सामाजिक विकास की प्रक्रिया में निर्णायक भूमिका अदा कर सकेंi अपने मत को मार्क्स और मजबूती प्रदान करते हुए कहता है कि देशों की भौगोलिक परिस्थितियों में तो हजारों वर्षों तक कोई भी परिवर्तन नहीं होता है यद्यपि उनकी सामाजिक

परिस्थितियों में आमूलचूल परिवर्तन आ जाता है**i** इस कारण मार्क्स भौतिक परिस्थितियों में केवल उन्हीं पहलुओं को सम्मिलित करता है जो सामाजिक विकास की प्रक्रिया में निर्णायक सिद्ध होती हैं**i** इस प्रकार मार्क्स सामाजिक विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण भौतिक परिस्थितियों में उत्पादन की विधि, उत्पादन के साधन, समाज की उत्पादक शक्ति तथा उत्पादन सम्बन्धों को ही माना है**i** इनका विवेचन निम्नलिखित है-

3.1.5.2.1. **उत्पादन की विधि-** इस सम्बन्ध में मार्क्स का मत है कि मानव जीवन की 3 मूलभूत आवश्यकताएँ होती हैं- भोजन, वस्त्र तथा आवास**i** इनके बिना व्यक्ति अपने अस्तित्व को बनाए रख पाने में सक्षम नहीं होगा**i** अत: इन वस्तुओं को जुटाना और इनका उत्पादन करना मनुष्य के जीवन के लिए आवश्यक है**i** इन वस्तुओं का उत्पादन जिस विधि से होता आया है उससे समाज के विकास की गति का निर्धारण होता है**i**

3.1.5.2.2. **उत्पादन के साधन-** मानव जीवन के लिए आवश्यक प्रत्येक वस्तु के उत्पादन के लिए कुछ साधनों की आवश्यकता होती है**i** उदाहरणार्थ- खेती के लिए भूमि, बीज, औजार आदि की आवश्यकता होती है**i** इसी प्रकार वस्त्र बनाने के लिए कुछ उपकरणों यथा हथकरघा या आधुनिक मशीनों की आवश्यकता होती है**i** मनुष्य की तृतीय आवश्यकता, आवास के निर्माण के लिए भी मिट्टी, ईंट, लोहा, सीमेण्ट आदि की आवश्यकता होती है**i** मार्क्स का मत है कि उत्पादन के उक्त साधनों का समाज के विकास की गति पर निर्णायक प्रभाव पड़ता है**i**

1.5.2.3 उत्पादन की शक्तियॉं- उत्पादन के उपरोक्त साधनों के निर्माण के लिए तथा उनका प्रयोग करने के लिए मानवशक्ति या श्रम की आवश्यकता होती है**i** श्रम के बिना केवल उत्पादन के साधनों से ही उत्पादन सम्भव नहीं है**i** उत्पादन की प्रक्रिया में श्रम का महत्व इतना अधिक है कि उसे मार्क्सवाद के अनुसार सब भौतिक मूल्यों की सृजक तथा इतिहास की निर्माणक शक्ति माना जाता है**i** रूसी लेखक बरीस दात्स्यूक ने लिखा है- "लोग न केवल मशीनों, विभिन्न औजारों और यन्त्रों का निर्माण करते हैं, बल्कि उन्हें चलाते और इस्तेमाल भी करते हैं**i** केवल आदमी ही ज्ञान, उत्पादन, अनुभव और काम की दक्षता का वाहक है, इसलिए मेहनतकश जन-समुदाय पृथ्वी पर तमाम भौतिक मूल्यों का सृजनकर्ता और इतिहास का सच्चा निर्माता है**i**"

3.1.5.2.4. **उत्पादन सम्बन्ध** – उत्पादन सम्बन्धों से इस बात का संकेत मिलता है कि मनुष्य किन सम्बन्धों से बँधे हैं**i** अर्थात् कौन सा वर्ग उत्पादन के साधनों का स्वामी होने के कारण प्रभुत्वशाली वर्ग है और कौन सा वर्ग अपनी श्रम शक्ति के बल पर जीवन निर्वाह करने को विवश है और इसलिए पराधीन वर्ग की स्थिति में है**i** इस तरह से स्वामी और दास, जमींदार तथा किसान, पूँजीपति और कामगार के पारस्परिक सम्बन्ध उत्पादन-सम्बन्धों के उपयुक्त उदाहरण हैं**i**

3.1.5.3. **भौतिक परिस्थितियों के परिवर्तन के परिणामस्वरूप सामाजिक व्यवस्था में होने वाले परिवर्तन**

मार्क्स के अनुसार उक्त भौतिक परिस्थितियां भी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के नियम के अनुसार बदलती रहती है**i** उत्पादन की शक्तियों का विकास मन्दगति से होता है परन्तु जब उनका स्वरूप पूर्ण रूप से बदल जाता है तब प्रचलित उत्पादन सम्बन्ध उन शक्तियों को संभालने में असमर्थ सिद्ध होते हैं**i** ऐसी स्थिति में उत्पादन की शक्तियों तथा उत्पादन सम्बन्धों में संघर्ष पैदा होता है और इस संघर्ष में उत्पादन की शक्तियॉं एक झटके में पुराने उत्पाद सम्बन्धों को तोड़कर नये उत्पाद सम्बन्धों को जन्म देती हैं**i** यही कारण है कि ऐतिहासिक विकास के क्रम में प्रत्येक सामाजिक परिवर्तन के लिए क्रान्ति अनिवार्य है**i**

मार्क्स के ही शब्दों में क्रान्ति सामाजिक परिवर्तन का अनिवार्य माध्यम है**i**

3.**1.5.4**. **सामाजिक विकास की प्रमुख अवस्थाएँ**

मार्क्स एवं एंजिल्स ने अब तक के सामाजिक विकास पर दृष्टिपात करते हुए प्रतिपादित किया कि उत्पादक शक्ति व उत्पादन सम्बन्धों के अनुरूपता की दृष्टि से यह सामाजिक विकास निम्न 4 महत्वपूर्ण अवस्थाओं से गुजर चुका है-

3.1.5.4.1. **आदिम साम्यवाद** – मार्क्स के अनुसार सामाजिक विकास की प्रथम अवस्था आदिम साम्यवादी व्यवस्था थी**i** इस अवस्था में उत्पादन के ढंग बहुत ही सरल तथा सीधे-सादे होते थे**i** मनुष्य फल-फूल तथा जानवरों का मांस खाकर अपना पेट भरते थे**i** फलों को इकट्ठा करना, मछली पकड़ना और वन्य-पशुओं का शिकार करना आदि उनके मुख्य व्यवसाय होते थे**i** इन व्यवसायों के करने के लिए साधनों के रूप में वे केवल पत्थर के मामूली औजार तथा धनुष बाण तक ही सीमित थे**i** उस समय लोगों के बीच उत्पादन के सम्बन्ध उक्त भौतिक परिस्थितियों के अनुकूल थे**i** उस समय व्यक्तिगत सम्पत्ति का जन्म नहीं हुआ था**i** प्रकृति के प्रत्येक वस्तु पर सबका अधिकार था और प्रत्येक अपनी आवश्यकतानुसार प्राप्त कर लेता था**i** समाज में पूर्ण समानता थी**i** कोई अन्तर्विरोध नहीं था**i** इस प्रकार यह पूर्व साम्य की अवस्था थी**i**

3.1.5.4.2. **दास युग-** मार्क्स के अनुसार सामाजिक विकास की दूसरी अवस्था दास व्यवस्था थी**i** धीरे-धीरे भौतिक परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ**i** पत्थर के औजारों के स्थान पर लोग धातु के औजारों का प्रयोग करने लगे**i** धीरे-धीरे कृषि तथा पशुपालन जैसे व्यवसायों का प्रारम्भ हुआ**i** इन नवीन व्यवसायों का प्रारम्भ हुआ**i** इन नवीन व्यवसायों के कारण प्रचलित उत्पादन प्रणाली में भी परिवर्तन हो गया**i** कृषि के आविष्कार के कारण भूमि के स्वामित्व तथा स्थाई निवास का प्रचलन प्रारम्भ हो गया**i** स्वामित्व का जन्म होने के कारण कुछ लोगों ने भूमि के एक बड़े-हिस्से पर कब्जा करके उसे अपने स्वामित्व में ले लिया**i** ऐसे में जिन व्यक्तियों के पास भूमि नहीं थी उनको भू-स्वामियों ने अपना दास बनाकर उनसे बलपूर्वक कार्य कराना प्रारम्भ कर दिया**i** इस प्रकार सम्पूर्ण समाज दो वर्गों के स्वामी तथा दास में विभक्त हो गया**i** स्वामी वर्ग ने दास वर्ग का शोषण करना प्रारम्भ कर दिया**i** इस तरह से आदिम साम्यवाद की साम्यावस्था नष्ट हो गई और समाज शोषक तथा शोषित में बँट गया**i** मार्क्स के मतानुसार सामाजिक विकास के क्रम में जो यह व्यवस्था आयी उसका कारण वे उत्पादन सम्बन्ध थे जो समाज के कालक्रम से उत्पन्न हुए**i** साथ ही उस व्यवस्था के अनुसार ही उस काल के राजनीतिक संगठन स्थापित हुए कानून बने तथा दर्शन तथा साहित्य की रचना हुई**i**

3.**1.5.4.3**. **सामन्तवाद-** कालान्तर में भौतिक परिस्थितियों में और परिवर्तन हुए जिसमें उत्पादन के उपादानों में भी परिवर्तन आ गये**i** अब केवल भूमि ही उत्पादन का मुख्य साधन बन गयी**i** कृषि के अतिरिक्त भी भूमि आधारित व्यवसायों का चलन बढ़ गया**i** अत: जीवनयापन की दृष्टि से भूमि का महत्व इतना बढ़ गया कि उसके बड़े भाग पर एकाधिकार करने की प्रवृत्ति का जन्म हुआ**i** ऐसे में समाज के सबसे शक्तिशाली व्यक्ति ने एक बहुत बड़े भूखंड पर अपना अधिकार जमा लिया**i** तत्पश्चात् उसने उस भूखंड को अपेक्षाकृत छोटे-छोटे क्षेत्रों में बॉटकर कम शक्तिशाली व्यक्तियों को देने लगा**i** जो सामन्त या जागीरदार कहलाए**i** उस भूमि के स्वामित्व के बदले में सामन्त ने राजा को कर देना स्वीकार किया**i** सामन्तों ने अपनी-अपनी भूमि के टुकड़ों को पुन: टुकड़ों में बॉटकर छोटे किसानों को बांट दिया जो उस पर वास्तविक कृषि कार्य करते थे**i** इस प्रकार समाज में एक नयी व्यवस्था का आविर्भाव हुआ जिसे

सामन्ती व्यवस्था कहा जाता है।

कृषि की उपज का अधिकांश भाग सामन्तों को ही प्राप्त होता था। आर्थिक दृष्टि से किसानों की स्थिति दासों से ज्यादा बेहतर नहीं थी परन्तु सामाजिक दृष्टि में अब इतना अन्तर अवश्य ही आ गया था कि दास के ऊपर स्वामी का जितना वर्चस्व होता था, कृषकों को जमीन का मालिक नहीं समझा जाता था। इस प्रकार स्पष्ट है कि परस्पर दो विरोधी वर्ग-शोषक और शोषित का अस्तित्व इस युग में भी बना रहा।

3.1.5.4.4. पूँजीवादी युग- सामन्त युग के पश्चात जो समय आया उसमें उत्पादन का स्वरूप औद्योगिक हो गया। वस्तुओं का उत्पादन अब मात्र घरेलू उपयोग के लिए नहीं किया जा रहा था बल्कि उत्पादन का कार्य अतिरिक्त विनिमय या व्यापार की दृष्टि से भी होने लगा था। इसलिए इसे उद्योग या व्यापार का युग कहा गया। अधिक उत्पादन होने के कारण उत्पादन साधनों के स्वामी अतिरिक्त लाभ होने लगा। उत्पादन कार्य में ओर तेजी लाने के उद्देश्य से व्यापारियों ने मजदूरी के बदले एक निश्चित वेतन पर कार्य कराना प्रारम्भ किया। मजदूर वर्ग के व्यक्ति साधनहीन थे, उनके पास श्रम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। अत: उन्हें अपने श्रम को ही अत्यन्त कम वेतन पर उद्योगपतियों के हाथों बेचने को मजबूर होना पड़ा। कारीगरों एवं मजदूरों के श्रम का लाभ उठाते हुए उद्योगपति बहुत बड़ी पूँजी के मालिक हो गए और श्रमिकों का शोषण बदस्तूर जारी रहा।

विज्ञान के अत्यधिक विकास हो जाने के उपरान्त उद्योगों में मशीनों का उपयोग बढ़ने लगा तथा श्रमिकों और कारीगरों का महत्व और भी कम होने लगा। अब श्रमिकों तथा कारीगरों को अपने श्रम को और कम मूल्य पर बेचने को विवश होना पड़ा। श्रमिक वर्ग की दशा और भी शोचनीय हो गयी। अब समाज श्रमिक तथा पूँजीपति बुर्जुआ में विभाजित हो गया। मार्क्स का मत है कि पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत राजनीतिक संस्थाओं, कानून, सामाजिक मूल्य, नैतिकता, कला, साहित्य तथा दर्शन आदि का निर्माण भी ऐसे रूप में हुआ कि जिससे पूँजीवादी हितों की साधना सम्भव हो सके।

3.1.5.4.5. समाजवाद या सर्वहारा वर्ग की तानाशाही- मार्क्स का मत था कि पूँजीवाद में पूँजीपतियों तथा श्रमिकों में निरन्तर संघर्ष चलेगा क्योंकि पूँजीपति मजदूरों का निरन्तर शोषण करते हैं। मजदूर आपस में संगठित हो जाते हैं, क्योंकि वे इस बात के प्रति सतर्क हो जाते हैं कि सम्पूर्ण उत्पादन कार्य हमारे ही श्रम से हो रहा है किन्तु उस उत्पादन का सम्पूर्ण लाभ पूँजीपति ले रहा है। ऐसे में दबी हुई विद्वेष की भावना एक विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लेती है और मजदूर वर्ग पूँजीपति वर्ग के विरुद्ध संघर्ष करने के इरादे से संगठित हो जाता है। मार्क्स मजदूर वर्ग को क्रान्ति करने के लिए प्रेरित करते हुए कहता है कि मजदूरों! तुम्हारे पास खोने के लिए अपनी बेड़ियों के सिवाय कुछ नहीं है ओर जीत के लिए पूरा विश्व पड़ा है। इसलिए दुनिया के मजदूरों एक हो जाओ मार्क्स की मान्यता है कि इस संघर्ष में मजदूरों की शक्ति के आगे पूँजीवादी साम्राज्य टिक नहीं पाएगा ओर विनष्ट हो जायेगा और समस्त व्यवस्था पर सर्वहारा वर्ग या श्रमिकों का नियंत्रण स्थापित हो जायेगा। यह एक संक्रमण काल होगा। सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व उस वक्त तक रहेगा जब कि पूँजीवाद का पूर्णरूपेण विनाश नहीं हो जाएगा। मार्क्स इसे समाजवाद का नाम भी देता है।

3.1.5.4.6. साम्यवादी युग- मार्क्स ने भविष्यवाणी की कि साम्यवादी युग अन्तिम युग होगा। इस युग में किसी प्रकार का वर्ग संघर्ष नहीं होगा क्योंकि पूँजीवाद के विनाश के पश्चात समाज में एकमात्र श्रमिक वर्ग ही अस्तित्व में रहेगा। साम्यवादी युग में वर्गविहीन तथा राज्यविहीन समाज की स्थापना होगी। मार्क्स राज्य को एक शोषणकारी संस्था के रूप में देखता है, अत: वह साम्यवादी युग में राज्य की भी

आवश्यकता महसूस नहीं करता**i** इस व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार कार्य करेगा तथा प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार प्राप्त होगा**i**

उक्त 6 सामाजिक अवस्थाओं की विवेचना करने के उपरान्त मार्क्स कहता है कि ऐतिहासिक क्रम की प्रत्येक अवस्था चाहे वह कितनी भी खराब क्यों न हो, अपनी पिछली अवस्था से उत्तम होती है, क्योंकि वह विकास के लक्ष्य के अधिक निकट होती है**i** इसीलिए मार्क्सवाद को प्रगतिवादी सिद्धान्त कहा जाता है**i** मार्क्स का मत है कि प्रगति ऐतिहासिक प्रक्रिया का अनिवार्य परिणाम है**i** उसे कोई नहीं रोक सकता**i** पर यदि उत्पीड़ित वर्ग अपनी वर्गचेतना से प्रभावित होकर एक सुदृढ़ संगठन बनाकर संघर्ष करे तो वर्ग-संघर्ष में जल्दी विजयी हो सकता है**i** इस प्रकार से प्रगति की गति को बढ़ाया जा सकता है**i**

3.**1.5.5**. **ऐतिहासिक भौतिकवाद = एक रेखाचित्र**

समाज

आधार		**अधिरचना**	
उत्पादन प्रणाली		(कानूनी तथा राजनीतिक संरचना, धर्म, नैतिक आदर्श, सामाजिक प्रथाएं, साहित्य, कला, संस्कृति इत्यादि)	
उत्पादन की शक्तियॉ		सामाजिक विन्यास	परस्पर विरोधी वर्ग
		दास प्रथा समाज	स्वामी और दास
उत्पादन के साधन श्रम शक्ति		सामंती समाज	जमींदार तथा किसान
(यंत्र और उपकरण)	(मानवीय ज्ञान तथा निपुणताएं)	पूँजीवादी समाज	पूँजीपति तथा कामगार

3.1.6. **वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त**

मार्क्सवाद के अन्तर्गत वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त ऐतिहासिक भौतिकवाद का पूरक सिद्धान्त है**i** मार्क्स एवं एंगेल्स ने ऐतिहासिक परिवर्तन की प्रक्रिया में वर्ग संघर्ष की भूमिका पर विशेष बल दिया**i** वर्ग संघर्ष का अर्थ है- दो परस्पर विरोधीवर्गों का संघर्ष और जैसा कि हमने देखा कि मार्क्स द्वारा प्रतिपादित सामाजिक विकास की सभी अवस्थाओं में, ऐसे दो वर्गों का अस्तित्व रहा है, जिनके हित परस्पर विरोधी रहे हैं**i** केवल साम्यवादी अवस्था में ही परस्पर विरोधी वर्गों का अभाव रहा है**i** इस वर्ग संघर्ष में सदैव ही एक पक्ष का उत्पादन के साधनों पर प्रभुत्व रहा जिसके कारण उन्होंने दूसरे पक्ष का मनमाने ढंग से शोषण किया**i** उत्पादन के साधनों पर अपना प्रभुत्व रखने वाले धनवान वर्ग का आकार छोटा ही होता है किन्तु वह अपनी आर्थिक शक्ति के इर्द-गिर्द राजनीतिक शक्ति का ताना-बाना बुन लेता है**i** इस प्रकार साधन सम्पन्न धनवान वर्ग प्रभुत्वशाली स्थिति ग्रहण कर लेता है और साधनहीन निर्धन वर्ग को वह पराधीनता की ओर धकेल देता है**i**

3.1.6.1. वर्ग-विभाजन

मार्क्सवाद के अनुसार वर्ग विभाजन

वर्ग

धनवान वर्ग	**निर्धन वर्ग**
(उत्पादन साधनों का स्वामी)	(जीवन निर्वाह के लिए श्रम की क्षमता पर आश्रित)
प्रभुत्वशाली वर्ग	पराधीन वर्ग

वर्ग संघर्ष

3.1.6.2. वर्ग-संघर्ष के प्रकार

मार्क्स एवं एंगेल्स की प्रसिद्ध कृति कम्युनिस्ट मेनीफेस्टो (1848) के अनुसार "अब तक के समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास रहा है**i** स्वतंत्र जन और दास, कुलीन तथा सामान्य जन, जमींदार और किसान, ठेकेदार और मिस्त्री, प्रतिष्ठानों के मालिक एवं कारीगर, एक शब्द में कहा जाय तो शोषक और शोषित निरंतर ही एक दूसरे के दुश्मन रहे हैं**i** वे कभी गुप्त रूप से तो कभी खुलेआम लगातार आपस में लड़ते रहे हैं और इस संघर्ष का अन्त हर बार या तो समाज के क्रान्तिकारी पुनर्निर्माण में होता रहा है या फिर दोनों ही संघर्षरत वर्गों के विनाश में होता रहा है**i**" मार्क्स का मानना है कि इतिहास स्वयं इस बात का साक्षी रहा है कि हम युग में धनवान वर्ग ने निर्धनों पर अत्याचार किये हैं इसलिए हमारा इतिहास वर्ग संघर्षों का इतिहास रहा है**i** यह वर्ग संघर्ष उस समय तक निरन्तर जारी रहेगा जब तक कि कामगार वर्ग पूँजीपति वर्ग का विनाश करके शासन की बागडोर स्वयं अपने हाथों मं नहीं ले लेता है**i** पूँजीवाद के विनाश के पश्चात उत्पादन के साधनों पर सभी का स्वामित्व स्थापित हो जाएगा, सभी कामगार बन जाएँगे ओर एक वर्गविहीन, शोषणविहीन तथा वर्ग संघर्ष से विहीन समाज का उदय होगा**i**

3.1.6.3. सामाजिक विकास का सिद्धान्त

मार्क्स के सामाजिक विकास सिद्धान्त के अनुसार प्राचीन दास-प्रथा के अन्तर्गत सेवक और स्वामी दो परस्पर विरोधी वर्ग थे, सामंती प्रथा के अन्तर्गत इस तरह के विरोधी वर्गों के रूप में जमींदार तथा किसान सामने आए**i** आधुनिक युग का पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत कामगार वर्ग तथा पूँजीपति वर्ग विरोधी वर्गों के रूप में प्रकट होते हैं**i** मार्क्स के अनुसार आधुनिक औद्योगिक क्रान्ति के युग में वर्ग संघर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है**i** उसका विचार है कि पूँजीवादी समाज में वर्गों का विभेदीकरण अत्यन्त प्रखर और स्पष्ट हो जाता है, ऐसे में शोषित वर्ग में एक वर्ग चेतना का संचार होता है**i** वर्ग चेतना के कारण वर्ग संघर्ष की अधिकत तीव्र हो जाता है**i** मार्क्स अपने तर्कों के सहारे आगे बढ़ता है और कहता है कि पूँजी पर आधारित उत्पादन प्रणाली में प्रतिस्पर्धा एक अलग स्तर पर पहुँच जाएगी तथा पूँजी भी कुछ इने-गिने बड़े पूँजीपतियों के हाथों में सिमटकर रह जाएगी**i** मध्यम स्तर के पूँजीपति भी भयंकर प्रतिस्पर्धा में बड़े पूँजीपतियों के हाथों पराजित होकर स्वयं ही श्रमिक वर्ग के साथ मिल जाएँगे**i** इससे कामगार का आकार बढ़ता चला जाएगा तथा पूँजीपतियों के वर्ग का आकार संकुचित होता चला जाएगा**i** पूँजी के अत्यधिक प्रवाह तथा श्रम के उच्चतम स्तर के कारण उत्पादन में बहुत वृद्धि हो जाएगी किन्तु श्रमिकों की आर्थिक स्थित इतनी कमजोर हो जाएगी कि उस बने हुए माल को खरीदने की उनकी

क्षमता ही नहीं रह जाएगी**i** ऐसे में विदेशी बाजार खोजने के लिए तकनीकी और उन्नत परिवहन तथा संचार साधनों का विकास किया जाएगा ताकि पूँजीपति लोग अपने माल को उन बाजारों में खपा सकें**i** ऐसे में सचेत कामगार वर्ग संगठन की सुदृढ़ता तथा अपने आन्दोलन के विस्तार हेतु इन साधनों का प्रयोग करने लगेगा**i**

इस प्रकार पूँजीपति और सर्वहारा वर्गों के बीच सीधे संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी**i** अपनी विशाल संख्या और सुदृढ संगठन बल के कारण सर्वहारा वर्ग मुट्ठी भर पूँजीपतियों को धराशाई कर देगा**i** सर्वहारा वर्ग की विजय के पश्चात उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व स्थापित हो जाएगा तथा पूँजीपतियों को भी कामगार बन जाने के लिए विवश कर दिया जाएगा**i** ऐसा होने के बाद समाज के सभी सदस्य कामगार बन जायेंगे और दूसरों के श्रम पर परजीवियों की भॉति जीवित रहने वाले वर्ग का अन्त हो जाएगा**i** इस तरह वर्ग विभेद मिट जाएगा**i** अंतत: एक वर्गविहीन समाज का उदय होगा**i**

3.**1.6.4**. **सर्वहारा की तानाशाही**

मार्क्स का तर्क है कि अब तक का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिस वर्ग ने संघर्ष करके शोषणकर्त्ताओं से सत्ता-छीनी कालान्तर में वह स्वयं ही शोषणकर्ता बन गया**i** यही कारण है कि अब तक जितनी भी क्रान्तियॉ हुई उनसे शोषण से मुक्त समाज का उदय नहीं हो पाया**i** परन्तु पूँजीपति तथा सर्वहारा वर्ग के बीच जो क्रान्ति होगी उसका स्वरूप अन्य सभी क्रांन्तियों से भिन्न होगा, क्योंकि इस क्रान्ति में शोषक वर्ग का अस्तित्व ही सदैव के लिए मिट जाएगा और वर्गविहीन समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त होगा**i** यहॉ एक बात दृष्टव्य है कि मार्क्सवादी धारणा में राज्य को भी शोषण करने का एक यंत्र माना गया है, इसलिए साम्यवादी क्रांन्ति के पश्चात विरोधी वर्गों का ही नहीं बल्कि स्वयं राज्य का भी अस्तित्व मिट जाएगा**i** अत: साम्यवादी समाज वर्गविहीन तथा राज्यविहीन होगा**i**

मार्क्सवादी धारणा के अनुसार साम्यवाद की स्थापना से पूर्व एक संक्रमणकालीन अवस्था को पार करना होगा जिसमें उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व स्थापित करके पूँजीवाद के अन्तिम अवशेषों को भी मिटाना होगा**i** मार्क्स ने इस संक्रमणकालीन अवस्था को समाजवाद की संज्ञा दी है**i** समाजवादी अवस्था के समय सर्वहारा वर्ग की तानाशाही होगी**i** ऐसा समाजवादी समाज पूर्ववर्ती बुर्जआ संसदीय लोकतंत्र की तुलना में कहीं अधिक लोकतंत्रीय होगा क्योंकि सच्चा लोकतंत्र ऐसे समाज में नहीं पनप सकता जो पूँजीवादी व्यवस्था की तरह दो विरोधी वर्गों में बँटा हो**i** इस प्रकार अन्तत: समाजवाद की छत्रछाया में ही साम्यवाद का उदय होगा**i** यह एक ऐसा समाज होगा जहॉ प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार कार्य करेगा और अपनी आवश्यकतानुसार प्राप्त करेगा**i**

3.1.6.5. **वर्ग-संघर्ष सिद्धान्त की आलोचना**

वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की जाती है-

3.1.6.5.1. **सामाजिक जीवन का मूल तत्व सहयोग है, संघर्ष नहीं-** वर्ग संघर्ष का इतिहास हमें यह बताता है कि मानव जीवन का इतिहास संघर्षों का इतिहास रहा है**i** किन्तु वास्तव में सदैव संघर्षों ने ही मानव जीवन को आगे नहीं बढ़ाया वरन् मानव जीवन का आधार सहयोग, दया, प्रेम, स्नेह, सहानुभूति, परोपकार, त्याग आदि भी रहे हैं**i** यदि संघर्ष ही सामाजिक जीवन का मूल आधार होता तो मानव जीवन कभी का समाप्त हो गया होता**i** आर्थिक क्षेत्र में उत्पादन को बढ़ाने के लिए मिल मालिक व मजदूर आपसी सहयोग के आधार पर कार्य करते हैं**i**

3.**1.6.5.2**. **विभिन्न सामाजिक वर्गों के मध्य संघर्ष का आधार केवल आर्थिक नहीं है-**मार्क्स संघर्षों के लिए केवल आर्थिक कारकों को ही उत्तरदायी मानता है, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है**i** संघर्षों के लिए अनेक सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक कारण भी जिम्मेदार होते हैं**i**

3.1.6.5.3. **समाज में दो से अधिक वर्ग होते हैं-** वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त के अनुसार समाज के केवल दो ही वर्ग होते हैं**i** किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है**i** प्रत्येक समाज में मुख्य रूप से 3 वर्ग तो निश्चित रूप से होते हैं- उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग, निम्न वर्ग**i** मध्यम वर्ग प्रत्येक समाज में अहम होता है किन्तु मार्क्स ने मध्यम वर्ग पर कोई ध्यान नहीं दिया**i**

3.**1.6.5.4**. **वर्गों के निर्माण का आधार मात्र आर्थिक नहीं होता-** समाज में वर्गों के निर्माण में यद्यपि आर्थिक तत्व विशेष रूप से बहुत महत्वपूर्ण होता है लेकिन मात्र आर्थिक तत्वों के आधार पर ही वर्गों का निर्माण नहीं होता है**i** धर्म, संस्कृति तथा राजनीति विभिन्न वर्गों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं**i**

3.1.6.5.5. **वर्गीयता से राष्ट्रीयता की भावना अधिक प्रबल होती है-** मार्क्स के अनुसार प्रत्येक देश तथा काल में वर्गीयता की प्रबल भावना पायी जाती है**i** अधिकांशत: यह देखने को मिलता है कि राष्ट्रीयता की भावना वर्गीयता की भावना से कहीं अधिक प्रबल होती है**i** राष्ट्रवादी भावना के कारण अनेक संकटापन्न अवसरों पर परस्पर विरोधी वर्गों ने सहयोग के आधार पर कार्य किया है**i** द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्व जर्मनी व इटली में राष्ट्रीयता की भावना मुख्य रूप से प्रबल पाई गयी**i** स्टालिन द्वारा मातृभूमि के नाम पर द्वितीय विश्व युद्ध में जनता से सहयोग करने हेतु अपील की**i**

3.1.6.5.6. **वर्ग संघर्ष के पश्चात क्रान्ति तथा क्रान्ति के बाद सर्वहारा वर्ग की तानाशाही की स्थापना आवश्यक नहीं है-** कार्ल मार्क्स निश्चित रूप से यह मानकर चलता है कि वर्ग विभेद के कारण वर्ग संघर्ष का जन्म होगा और यह वर्ग संघर्ष एक दिन साम्यवादी क्रान्ति में परिवर्तित हो जाएगा और इसके बाद सर्वहारा वर्ग की विजय होगी तथा उसी की तानाशाही स्थापित हो जाएगी**i** पूँजीवाद पूर्ण रूप से धराशाई हो जाएगा**i** मार्क्स यह सब कल्पनात्मक रूप से कहता है**i** ये सभी चीजें इसी क्रम में तथा इसी प्रकार से घटित होंगी इस सम्बन्ध में बहुत अधिक संदेह है**i**

3.1.6.5.7. **क्रान्ति बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा ही सम्भव है-** कार्ल मार्क्स ने एक सशक्त शासन पद्धति के विरुद्ध जिस रूप में क्रान्ति करने का आह्वान किया है उस रूप में क्रान्ति कर आसान कार्य नहीं है**i** किसी क्रान्ति को सफल बनाने के लिए एक सोची समझी रणनीति तथा एक उपयुक्त समय का चुनाव करना बहुत आवश्यक है**i** क्रान्ति को सफल रूप देना एक उच्च स्तर की बौद्धिकता का कार्य है और इसलिए यह कार्य केवल बुद्धिजीवियों द्वारा ही किया जा सकता है, जनसाधारण के द्वारा नहीं**i**

3.1.6.5.7. **वर्ग संघर्ष एवं क्रान्ति ही पूँजीवाद के दोषों को दूर करने का एकमात्र उपाय नहीं है-** कार्ल मार्क्स का विश्वास है कि पूँजीवाद के दोषों को दूर करने का एकमात्र उपाय वर्ग-संघर्ष तथा साम्यवादी क्रान्ति ही है**i** इस विचार को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता है**i** कानून द्वारा पूँजीवादी व्यवस्था में सुधार करके भी बिना क्रान्ति के भी इसे दोष-मुक्त किया जा सकता है**i**

वर्ग संघर्ष की समीक्षा करते हुए प्रो. कैर्यू हण्ट ने लिखा है- "मार्क्स का यह विचार कि मनुष्य के समस्त झगड़े वर्ग-संघर्ष से उत्पन्न होते हैं**i** यद्यपि आम लोगों को यह विश्वास दिलाने में कि उनका दुर्भागय पूँजीवादी व्यवस्था के कारण है, जो सर्वहारा वर्ग की विजय के साथ समाप्त हो जाएगा, युक्ति महत्व रखती है लेकिन एक वैज्ञानिक धारणा के रूप में मिथ्या है**i**"

3.1.7. मार्क्स का आर्थिक दर्शन

मार्क्स के इतिहास सम्बन्धी दर्शन के विवेचन में हमने देखा कि ऐतिहासिक विकास का मुख्य आधार वह उन भौतिक परिस्थितियों को मानता है जिनका सम्बन्ध सामाजिक जीवन के आर्थिक पहलू से होता है। दूसरे शब्दों में, आर्थिक परिस्थितियों को वह इतिहास की गति की चालक शक्ति मानता है। इन्हीं कारणों से उसने अपने समय की पूँजीवादी व्यवस्था का अति सूक्ष्म अध्ययन करके कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। ये सिद्धान्त निम्न वर्णित हैं।

3.1.7.1. अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त

मार्क्सवाद के अन्तर्गत ऐतिहासिक भौतिकवाद तथा वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त, मार्क्सवाद का समाज-वैज्ञानिक सिद्धान्त मार्क्सवाद का आर्थिक प्रस्तुत करता है। साथ ही साथ अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त वर्ग संघर्ष के तार्किक आधार का भी संकेत देता है। अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त पूँजीवाद के अन्तर्गत कामगारों के शोषण की प्रकृति को स्पष्ट करता है।

3.1.7.1.1. उत्पादन के तत्व

अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त के अनुसार वस्तुओं का सामान्य सामाजिक सार तत्व श्रम ही होता है। हालांकि यदि परम्परागत अर्थशास्त्रीय सिद्धान्तों की ओर रुख किया जाय तो उनके अन्तर्गत उत्पादन के चार तत्वों के बारे में बताया गया है जो उत्पादन प्रक्रिया में महती भूमिका निभाते हैं। ये तत्व हैं- भूमि, श्रम, पूँजी तथा संगठन। मार्क्स के मतानुसार उत्पादन के इन 4 तत्वों में से भूमि, पूँजी तथा संगठन के अन्दर वास्तविक रूप में उत्पादन की किसी भी प्रकार की क्षमता मौजूद नहीं होती है। ये तीनों तत्व उन्हीं चीजों का पुनरुत्पादन ही करते हैं जो कुछ भी इनमें लगाया जाता है। उत्पादन का चतुर्थ तत्व श्रम ही एक ऐसा तत्व है जो समाज के लिए मूल्य का सृजन करता है। मूल्य के उत्पादन में, उत्पादन के तीन तत्वों पूँजी, भूमि तथा संगठन का महत्व श्रम के इन तत्वों के साथ मिलने पर ही होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि श्रम के अभाव में उत्पादन के अन्य तीन तत्वों का कोई वास्तविक महत्व नहीं है। वे तीन तत्व उसी समय उत्पादन कार्य में महत्वपूर्ण सिद्ध होते हैं जिस समय श्रम का तत्व उनके साथ मिलकर उत्पादन कार्य में प्रभावशाली भूमिका का निर्वहन करने लगता है। अत: श्रम ही मूल्य का यथार्थ स्रोत है।

3.1.7.1.2. मूल्य के विभेद

मार्क्स अपने अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए वस्तु के दो प्रकार के मूल्य बताता है। प्रथम उपयोग मूल्य तथा द्वितीय विनिमय मूल्य। उपयोग मूल्य का निर्धारण उपयोग तथा आवश्यकता के आधार पर किया जाता है। जैसे-प्यासे व्यक्ति के लिए पानी का उपयोग मूल्य निश्चित रूप से बहुत अधिक होता है जबकि ठीक उसी समय एक अन्य व्यक्ति के लिए जो प्यास का अनुभव नहीं कर रहा है पानी का उपयोग मूल्य कुछ भी नहीं है। इसके विपरीत विनिमय मूल्य की बात उस समय उत्पन्न होती है जिस समय उस वस्तु को बाजार में बेचा जाता है। विनिमय मूल्य उस मूल्य को कहा जाता है जिस मूल्य पर क्रेता उस वस्तु को विक्रेता से खरीदता है। किसी वस्तु का विनिमय या आपेक्षिक मूल्य कितना होना चाहिए- यह उस वस्तु के उत्पादन में लगाए गये श्रम की गुणवत्ता तथा मात्रा पर निर्भर है। अत: वस्तुओं के आपेक्षिक मूल्य का निर्धारण इस आधार पर किया जाता है कि उनमें कितना-कितना श्रम लगा है, सार्थक हुआ है या नियत किया गया है। किसी वस्तु के उत्पादन की प्रक्रिया का विश्लेषण करते हुए उसमें लगाए गए श्रम का पूरा परिणाम शुरू से मापना चाहिए। यथा- कच्चा माल निकालने से लेकर उसे तैयार माल का रूप देने तक। इसके अतिरिक्त उत्पादन की प्रक्रिया में प्रयुक्त ऊर्जा के साधनों को जुटाने, संयंत्र तथा भवन निर्माण के कार्य में लगे हुए श्रम को भी उसी श्रम के साथ जोड़ देना चाहिए। श्रम

की अधिक वस्तुपरक माप के लिए समाज की वर्तमान स्थिति उत्पादन की सामाजिक परिस्थितियों तथा कामगारों की औसत निपुणता को भी ध्यान में रखना चाहिए।

3.1.7.1.3. श्रमशक्ति का मूल्य

मार्क्स का मत है कि श्रम शक्ति भी एक प्रकार का पण्य है जिसकी बाजार में अन्य वस्तुओं की भॉंति ही कीमत लगाई जाती है। बाजार में श्रम को भी खरीदा तथा बेचा जाता है। मजदूरों को अपने भरण-पोषण तथा जीवन निर्वाह के लिए कुछ वस्तुओं की आवश्यकता होती है। परन्तु मनुष्य अवस्था के ढलने पर जर्जरित हो जाता है तथा कार्य करने योग्य नहीं रह जाता, उसकी जगह पर नए लोगों की आवश्यकता होती है। इसलिए अर्थव्यवस्था को मजदूरों के परिवारों का भी भरण-पोषण करने के लिए यह भी जानना या पता करना जरूरी हो जाता है कि श्रम शक्ति के उत्पादन, विकास, रख-रखाव और उनका निरन्तर प्रवाह बनाए रखने में भी जो खर्च करता है, उसका मूल्य कितना है।

पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत मजदूरों के कार्य करने की क्षमता का अधिकतम दोहन किया जाता है परन्तु मजदूरी, तो उसे उतनी ही दी जाती है जिससे वह अपना तथा अपने परिवार का भरण पोषण कर सके। यदि कल्पना की जाय कि एक मजदूर को अपने परिवार का सही तरह से भरण-पोषण करने के लिए 6 घण्टे कार्य करने की आवश्यकता पड़ती है। अब यदि उस मजदूर से 6 घण्टे ही मजदूरी कराई जाती है तथा उस कार्य के अनुपात में ही उसे भुगतान कर दिया जाता है। इस तरह कार्य और मजदूरी का अनुपात बराबर होने के कारण शोषण का प्रश्न ही नहीं पैदा होता है। किन्तु जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि अन्य वस्तुओं की तरह श्रम भी एक पण्य, जिसे अन्य वस्तुओं की तरह ही बाजार में बेचा जाता है तथा उसकी कीमत लगायी जाती है। अत: बाजार के सामान्य नियम के अनुसार मॉंग और पूर्ति में उतार चढ़ाव के साथ ही श्रम की कीमत भी घटती बढ़ती रहती है। जब बाजार में कार्य करने वाले श्रमिकों की संख्या बढ़ जाती है तो श्रम की कीमत कम हो जाती है। श्रम की कीमत कम होने का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि मजदूर को अपने परिवार के भरण-पोषण को जारी रखने के लिए कार्य के घण्टों में वृद्धि करनी पड़ती है। श्रम की कीमत कम होने पर माना कि मजदूर को 6 घण्टे के बदले 10 घण्टे कार्य करना पड़ रहा है, तो वह 4 घण्टे का अतिरिक्त श्रम कर रहा है। इस अतिरिक्त कार्य के फलस्वरूप वह अतिरिक्त उत्पादन कार्य भी करता है किन्तु श्रम की कीमत गिर जाने के कारण श्रमिक को पहले वाला ही पारिश्रमिक दिया जाता है तथा अतिरिक्त उत्पादन से प्राप्त होने वाले सम्पूर्ण लाभ को पूँजीपति स्वयं अपने पास ही रख लेता है। मार्क्स के अनुसार यह अतिरिक्त मूल्य श्रमिकों को मिलना चाहिए किन्तु कारखाना मालिक उस लाभ को श्रमिकों को नहीं देता है और यही श्रमिक के श्रम की चोरी है। श्रमिकों के श्रम की चोरी ही पूँजीपतियों का लाभ है। अतिरिक्त लाभ के एकत्रीकरण से ही पूँजी का निर्माण होता है। मार्क्स के अनुसार पूँजी की परिभाषा है, "अतिरिक्त मुनाफे को प्राप्त करने क लिए लगाए गए उत्पादन के समस्त साधनों का योग।" इस तरह से पूँजी श्रम का शोषण है।

3.1.7.1.4. पूँजीवादी शोषण की रूपरेखा

मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद के अन्तर्गत मजदूर वर्ग का शोषण एक कपोल कल्पना नहीं है, वरन् एक ऐसी सच्चाई है जिसे वैज्ञानिक रीति से प्रमाणित भी किया जा सकता है। चूँकि पूँजीवाद शोषण का एक स्वाभाविक यंत्र है, इसलिए शोषण का अन्त करने के लिए पूँजीवाद का समूल नाश करना जरूरी है।

मार्क्सवाद की मान्यता है कि समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति के लिए श्रम करने की अनिवार्य व्यवस्था होगी। मार्क्स के शब्दों में, "जो श्रम नहीं करेगा उसे खाने को भी नहीं

मिलेगाi" इस प्रकार से दूसरों के श्रम पर पलने वाला कोई नहीं रहेगाi समाजवादी व्यवस्था में पूँजीवादी व्यवस्था की तरह श्रमिकों के श्रम की चोरी नहीं की जाएगी बल्कि श्रमिकों को उनके श्रम की पूर्ण कीमत दी जाएगीi समाजवादी उत्पादन व्यवस्था में उत्पादित मूल्य का कुछ हिस्सा सामाजिक सेवाएं प्रदान करने के लिए तथा समाज के तकनीकी विकास के लिए अलग से रखना जरूरी होगाi चूंकि समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादन का सम्पूर्ण लाभ स्वयं मजदूर वर्ग को ही प्राप्त होगा इसलिए सामाजिक व्यवस्थाओं के नाम पर कटौती को अतिरिक्त मूल्य की श्रेणी में नहीं जाना चाहिएi इस प्रकार से पूँजीवादी व्यवस्था की शोषण की परम्परा सामाजिक उत्पादन प्रणाली के अन्तर्गत खत्म हो जाएगीi

3.1.7.1.5. अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त की आलोचना

मार्क्स द्वारा प्रतिपादित अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की जाती है-

1. उत्पादन प्रणाली में एकमात्र श्रम का महत्व नहीं होता है- मार्क्स के द्वारा उत्पादन के परम्परागत तत्वों में श्रम को ही अत्यधिक महत्व दिया गया है, जबकि अन्य तत्वों को गौण महत्व दिया गया हैi जबकि वास्तव में श्रम के अतिरिक्त भूमि, पूँजी, कच्चा माल, प्रबन्ध तथा जोखिम का भी उत्पादन में बहुत महत्व होता हैi

2. पूँजीपतियों का लाभ केवल श्रमिकों का श्रम ही नहीं है- पूँजीपतियों का लाभ केवल श्रमिकों का श्रम ही नहीं है वरन् उसमें पूँजीपति का अपना श्रम तथा उसके द्वारा उठाये गये जोखिम का भी महत्व होता हैi श्रमिकों को उनका पारिश्रमिक देने के अतिरिक्त भी पूँजीपति के पास अनेक खर्चे होते हैंi जैसे कि कारखानों में सुधार, मशीनों की घिसावट, बेकारी के बीमे, बोनस टैक्स आदिi इन समस्त व्यय के बाद बचे मूल्य को ही अतिरिक्त मूल्य कहा जाता हैi

3. मानसिक श्रम की उपेक्षा- मार्क्स ने उत्पादन कार्य में श्रमिक के शारीरिक परिश्रम को ही सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण माना हैi यद्यपि यह सत्य भी है कि उत्पादन कार्य में शारीरिक श्रम की महत्ता बहुत अधिक है किन्तु किसी वस्तु के निर्माण में तकनीकी ज्ञान, प्रबन्ध पटुता, कार्य कुशलता तथा निर्मित उत्पाद को बेचने के लिए बाजार की खोज करने हेतु बहुत अधिक मानसिक श्रम की आवश्यकता होती हैi किन्तु मार्क्स ने मानसिक श्रम को पूर्णतया उपेक्षित समझा हैi

4. अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त में अस्पष्टता- उक्त सिद्धान्त के अन्तर्गत मूल्य और दाम आदि शब्दों का प्रयोग अस्पष्ट रूप से किया गया हैं इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरों की संख्या जिस अनुपात में घटती-बढ़ती है उसी अनुपात में मुनाफा भी घटता-बढ़ता हैi इसमें किसी प्रकार की कुशलता, प्रबन्ध योग्यता, संगठन आदि का प्रभाव नहीं पड़ताi अत: मार्क्स के अनुसार वास्तव में मूल्य क्या है? यह निश्चित करना कठिन कार्य हैi

5. अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त में अनेक असंगतियाँ पायी जाती हैं- यह सिद्धान्त अनेक गम्भीर विरोधाभासों से ग्रसित हैi उदाहरणार्थ- एक ओर तो मार्क्स का यह कहना है कि कच्चा माल, कारखानों तथा मशीनों से कोई अतिरिक्त मूल्य प्राप्त नहीं होता हैi तो दूसरी ओर उसका कहना है कि पूँजीपति अपनी पूँजी को अधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से पुन: नए उद्योग में लगाता हैi जब श्रम के अतिरिक्त अन्य साधनों से उत्पादन कार्य में कोई वृद्धि नहीं होती है तो पूँजीपति अपनी पूँजी पुनर्निवेशित क्यों करता है?

6. अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त के अन्तर्गत आर्थिक पक्ष को महत्व न देते हुए मजदूरों की दशा को अधिक प्रचारित किया है- मार्क्स का सर्वोपरि उद्देश्य श्रमिकों की दशा में सुधार करना था और इसलिए उसने श्रमिकों की दशा का वर्णन करते हुए विश्व का ध्यान इस ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न किया है**i** यही कारण है कि आर्थिक नीति निश्चित करते समय भी वह श्रमिकों की दशा को ही मस्तिष्क में रखता है इसलिए आर्थिक पक्ष की सशक्त और तर्कसंगत व्याख्या नहीं कर पाता है**i** कैर्यू हण्ट ने कहा है कि "मार्क्स का यह अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त किसी भी रूप में मूल्य का सिद्धान्त नहीं हैं यह वास्तव में शोषण का सिद्धान्त है जिसके द्वारा यह दिखाने की चेष्टा की गई है कि साधन सम्पन्न वर्ग सदैव ही साधनहीन वर्ग के श्रम पर जीवित रहता है**i**"

3.1.7.2. मार्क्स द्वारा पूँजीवादी व्यवस्था का विश्लेषण

अपने आर्थिक सिद्धान्तों के आधार पर मार्क्स ने पूँजीवादी व्यवस्था का अत्यन्त तर्कपूर्ण व वैज्ञानिक विश्लेषण करके उसकी कुछ विशेषताओं का प्रतिपादन किया है, जो निम्नवत् हैं-

3.1.7.2.1. लाभ के लिए उत्पादन

मार्क्स के मतानुसार पूँजीवादी व्यवस्था की उत्पित्त औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप हुई है**i** इसमें जो उद्योगपति होते हैं वे उत्पादन के साधनों का प्रयोग निजी लाभ कमाने के उद्देश्य से करते है**i** अत: पूँजीवादी व्यवस्था पूर्णत: लाभ के दृष्टिकोण पर आधारित है न कि समाज के कल्याण हेतु समर्पित है**i**

3.1.7.2.2. दो परस्पर विरोधी वर्गों का अस्तित्व

मार्क्सवाद के अनुसार पूँजीवाद में उत्पादन के लिए दो बातों की आवश्यकता होती है**i** प्रथम, इसके अन्तर्गत कुछ ऐसे लोग होने चाहिए जिनके पास बड़े-बड़े औद्योगिक संस्थानों को चलाने के लिए पर्याप्त पूँजी हो**i** द्वितीय, उन संस्थानों में काम करने के लिए श्रमिक होने चाहिए**i** इस प्रकार पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन कार्य करने के लिए दो वर्गों-पूँजीपति तथा श्रमिकों का अस्तित्व होना बहुत आवश्यक होता है**i**

मार्क्स का मत है कि पूँजीपति तथा श्रमिक वर्ग के हित परस्पर विरोधी हैं**i** पूँजीपति का हित लाभ कमाना ही होता हैं लाभ कमाने के उद्देश्य से वह विविध उपायों को काम में लाता हैं वह मजदूरों के काम के घण्टे अधिक रखता है, मजदूरी कार्य के अनुपात में कम देता है**i** ज्यादा समय तक कार्य कराने के कारण अतिरिक्त उत्पादन होता है जिससे पूँजीपति को अतिरिक्त लाभ भी होता है**i** अतिरिक्त लाभ को पूँजीपति अपने व्यापार में ही पुनर्निवेशित कर देता है, जिससे उसका व्यापार और उन्नत होकर अधिक उत्पादन तथा अधिक लाभ उत्पन्न करता है**i** पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजीपति उस स्थिति में होता है जहाँ पर वह कम से कम वेतन देकर अधिकाधिक काम कराता है**i** इस प्रकार वह श्रमिकों का अत्यधिक शोषण करने लगता है**i** इस शोषण के फलस्वरूप श्रमिकों में पूँजीपति के विरुद्ध वैमनस्य की भावना बढ़ती चली जाती है जिससे अन्तत: सम्पूर्ण समाज दो भागों में बँट जाता है**i**

3.1.7.2.3. पूँजी की निरन्तर वृद्धि

पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजीपति अधिकाधिक उत्पादन के द्वारा अतिरिक्त मूल्य प्राप्त करता है**i** पूँजीपति उस अतिरिक्त मूल्य में से श्रमिक को कुछ भी नहीं देता है तथा उस अतिरिक्त मूल्य को पुन: अपने व्यापार में निवेश कर देता है जिससे वह और अतिरिक्त मूल्य प्राप्त करता हैं इस प्रकार से यह क्रम निरन्तर चलता रहता है तथा पूँजी में वृद्धि होती रहती है**i**

3.1.7.2.4. अति उत्पादन का संकट

पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजीपति अधिकाधिक लाभ कमाने के लिए प्रेरित हुआ है इसलिए उसका ध्यान अधिकाधिक उत्पादन पर होता है। इस प्रक्रिया में पूँजी तथा उत्पादन दोनों में वृद्धि होती है। अधिक पूंजी वृद्धि के कारण पूँजीपति उस पूँजी को नई तथा आधुनिक मशीनों में खर्च करके उत्पादन प्रणाली को आधुनिक बनाने का प्रयास करता है। इस मशीनीकरण का एक दुष्प्रभाव यह होता है कि श्रमिकों की आवश्यकता में कमी आती है। इस तरह पूँजी वृद्धि तथा मानव श्रम की आवश्यकता में कमी का प्रभाव दो बिल्कुल विपरीत दिशाओं में होता है। इससे एक ओर तो उत्पादन में वृद्धि होती है वहीं दूसरी ओर माल को खरीदने की क्षमता रखने वाले लोग कम हो जाते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि मानव श्रम का स्थान मशीनों द्वारा ले लिए जाने के कारण बहुत सारे श्रमिक बेरोजगार हो जाते हैं मार्क्स का मत है ऐसी दशा में जब उत्पादन बढ़ता है किन्तु उपभोक्ताओं की क्रय शक्ति में कमी आती है तो ऐसी स्थिति को ही अति उत्पादन का संकट कहा जाता है। इस उत्पादन संकट को कम करने हेतु पूँजीपति उत्पादन कम कर देता है, जिससे उसे और भी अधिक श्रमिकों को कार्यमुक्त करना पड़ता है। बेरोजगारी का स्तर ऊपर जाने के कारण क्रय शक्ति का और ह्रास होता है। इस प्रकार अति उत्पादन के दुष्चक्र का दुष्प्रभाव समाज के लिए बिल्कुल वैसा ही है जैसा कि महामारी का होता है। मार्क्स ने इस सम्बन्ध में कम्युनिस्ट मेनीफेस्टो में लिखा है, "इन संकटों से अति उत्पादन की एक ऐसी महामारी उत्पन्न हो जाती है, जो दूसरे युगों में विसंगतिपूर्ण प्रतीत होती है।"

3.1.7.2.5. पूँजीपतियों की प्रतियोगिता

मार्क्स के अनुसार पूँजीवादी व्यवस्था की अन्य विशेषता पूँजीपतियों की आपसी प्रतिस्पर्धा है। इस प्रतिस्पर्धा में छोटे पूँजीपति बड़े पूँजीपतियों के मुकाबले ठहर नहीं पाते हैं। इसका कारण यह है कि बड़े पूँजीपति अपने विशाल संसाधनों के कारण अपने माल को सस्ते दामों पर भी बेचने की स्थिति में रहते हैं किन्तु छोटे पूँजीपतियों के पास सीमित संसाधन होते हैं जिससे वे अपने माल को सस्ता नहीं बेच पाते हैं। फलत: छोटे उद्योगपतियों का उद्योग समाप्त हो जाता है और धीरे-धीरे समाज की सम्पूर्ण सम्पत्ति बहुत थोड़े ही लोगों के हाथों में केन्द्रित हो जाती है।

3.1.7.3. समाजवादी व्यवस्था की मार्क्सवादी विवेचना

पूँजीवादी व्यवस्था में पाये जाने वाले अन्तर्द्वन्द्वों के परिणामस्वरूप जिस समाजवादी व्यवस्था के आगमन होने की बात मार्क्स ने कही है, उसके विषय में मार्क्स ने बहुत अधिक विस्तार से तो कुछ नहीं बताया है क्योंकि यह व्यवहारवादी चिन्तक था और कल्पनात्मक ढंग से कुछ कहने में यकीन नहीं करता था। मार्क्स का मत था कि समाज का विकास कुछ निश्चित वस्तुगत नियमों के अनुसार होता है। उसमें कल्पनाओं तथा सद्भावनाओं के आधार पर नहीं बनाया जा सकता है। फिर भी पूँजीवाद के बाद जिस समाजवादी व्यवस्था के आने की बात कही गयी है, उसकी निम्नलिखित विशेषताएं होंगी-

3.1.7.3.1. उत्पादन के साधनों का सामाजिक स्वामित्व

समाजवादी व्यवस्था में उत्पादन के समस्त साधनों का स्वामित्व सामाजिक होगा। कारखाने, खानें, मशीनें, जहाज तथा रेलें आदि सब साधन सामाजिक सम्पत्ति माने जाएँगे। उनका प्रयोग भी समस्त समाज के कल्याणार्थ किया जाएगा न कि किसी विशेष वर्ग के कल्याण के लिए उनका उपयोग किया जाएगा।

3.1.7.3.2. नियोजित उत्पादन

समाजवादी उत्पादन व्यवस्था में उत्पादन के समस्त साधनों तथा मानव श्रम का प्रयोग एक पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार किया जाएगा, जिससे कि आर्थिक जीवन से अनावश्यक प्रतियोगिता तथा उससे उत्पन्न होने वाले दुष्परिणाम दोनों का अन्त हो जाएगा**i**

3.1.7.3.3. योग्यतानुसार कार्य तथा कार्यानुसार वेतन के आधार सूक्त का अनुपालन

समाजवादी व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति से उसकी क्षमतानुसार ही कार्य लिया जाएगा तथा उसके कार्य के अनुसार ही उसे भुगतान किया जायेगा**i** समाजवाद के सम्बन्ध में समान धारणा यह है कि इस पद्धति में वस्तुओं का वितरण बिल्कुल समान होता है**i** परन्तु मार्क्स का मत है कि समाजवाद का उक्त मन्तव्य नहीं है**i** मार्क्स का मानना है कि समाजवादी ढॉंचा पूर्णतया नई नींव पर खड़ा नहीं किया जा सकता है**i** समाजवादी ढॉंचा उन्हीं परिस्थितियों पर खड़ा किया जा सकता है जो पूँजीवाद से विरासत में मिलती है**i** मार्क्स की मान्यता है कि पूँजीवादी व्यवस्था में वितरण की जो व्यवस्था होती है, उसके परिणामत: कुछ लोगों को अत्यधिक तथा कुछ लोगों को अत्यन्त ही कम मिलता है**i** किन्तु समाजवादी वितरण का आधार "प्रत्येक से उसकी क्षमतानुसार कार्य तथा प्रत्येक को उसके कार्य अनुसार वेतन होगा**i**" अर्थात समाजवादी व्यवस्था में वितरण समान न होकर औचित्यपूर्ण होगा**i** उसका मानना है कि इससे शोषण समाप्त हो जाएगा क्योंकि समाजवादी व्यवस्था में कोई भी व्यक्ति परजीवियों की भॉंति किसी और के श्रम पर निर्भर नहीं रहेगा, वरन् प्रत्येक को अपने जीवन निर्वाह के लिए श्रम करना ही होगा**i**

3.1.7.4. साम्यवादी व्यवस्था की व्याख्या

समाज की व्यवस्था के विकास के सन्दर्भ में मार्क्स ने जिन स्तरों का उल्लेख किया है, उनमें से उसका आदर्श वह साम्यवादी व्यवस्था है**i** मार्क्स के अनुसार इस व्यवस्था की स्थापना- समाजवाद की संक्रमणकालीन व्यवस्था के पश्चात होगी**i** मार्क्स के अनुसार पूँजीवादी व्यवस्था के ध्वंस के पश्चात उसके ध्वंसावशेषों को हटाने तथा साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना हेतु एक आधार तैयार करने का कार्य समाजवाद द्वारा ही किया जाएगा**i** समाजवादी व्यवस्था में सर्वहारा वर्ग की कार्य तानाशाही स्थापित होने के बाद पूँजीवाद के सब दोषों को समाप्त कर दिया जाएगा**i** तत्पश्चात् साम्यवादी व्यवस्था का आगमन होगा जो निम्नांकित विशेषताओं से युक्त होगा-

3.1.7.4.1. योग्यतानुसार कार्य तथा आवश्यकतानुसार प्राप्ति मुख्य वितरण सूत्र होगा

मार्क्स के मतानुसार समाजवादी व्यवस्था में मनुष्य की उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन इतना अधिक हो सकेगा कि उनका वितरण कार्य के अनुसार किया जाना आवश्यक नहीं होगा**i** इसके विपरीत साम्यवादी व्यवस्था में सम्पूर्ण समाज एक परिवार की भॉंति एक ईकाई के रूप में संगठित होगा जिसमें सब सदस्य अपनी-अपनी योग्यतानुसार कार्य करेंगे किन्तु सभी सदस्य अपनी आवश्यकतानुसार वस्तुएं प्राप्त कर सकेंगे**i**

3.1.7.4.2. वर्गविहीन तथा राज्यविहीन समाज

साम्यवादी व्यवस्था के सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह होगी कि इसमें न तो वर्ग होंगे और न ही राज्य**i** इसके पीछे मार्क्स का तर्क है कि राज्य शोषण करने का एक यंत्र है जिसका प्रयोग शोषणकर्ता शोषितों का शोषण करने के लिए करता है**i** साम्यवादी व्यवस्था में वर्गभेद समाप्त हो जाएगा जिससे शोषण का भी अन्त हो जाएगा**i** शोषण की समस्या समाप्त होने पर राज्य की कोई आवश्यकता ही नहीं रहेगी**i** उस अवस्था में न तो सेना होगी, न पुलिस, न न्यायालय और न कारागार होंगे**i** इस तरह साम्यवादी

व्यवस्था वर्गविहीन तथा राज्यविहीन व्यवस्था होगी।

3.1.7.4.3. मार्क्सवाद का विश्व्यापी विस्तार तथा अन्तर्राष्ट्रीय अशान्ति तथा युद्ध का अन्त

मार्क्स का विश्वास है कि मार्क्सवाद धीरे-धीरे सम्पूर्ण विश्व में अपना प्रभाव जमा लेगा। अत: उस समय जब अधिकांश देशों में मार्क्सवाद फैल जाएगा तब युद्ध का हमेशा-हमेशा के लिए अन्त हो जाएगा। मार्क्स का विश्वास था कि जब सभी देशों में साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना हो जाएगी तब किसी भी देश में कोई भी ऐसा वर्ग नहीं रहेगा जिसे युद्ध द्वारा दूसरे देशों को जीतकर अपना उपनिवेश स्थापित करने से कोई लाभ हो। मार्क्सवादी व्याख्या के अनुसार युद्धों का मुख्य कारण, पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत अधिकाधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से अपेक्षाकृत पिछड़े राज्यों में अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए प्रतियोगिता तथा होड़ है। किन्तु साम्यवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना हो जाने के बाद पूँजीवादी प्रतियोगिता तथा होड़ का अन्त हो जाएगा। इस प्रकार मार्क्स ने सामाजिक अवस्थाओं के इतिहास का प्रारम्भ आदिम साम्यवादी युग से प्रारम्भ कर उसका अन्त भी साम्यवाद से ही किया है।

मार्क्स की उक्त व्याख्या की आलोचना करते हुए इतना ही कहा जा सकता है कि उसकी ऐतिहासिक व्याख्या का इतिहास में कहीं पर भी जिक्र नहीं मिलता है। अत: यह व्याख्या अप्रमाणिक है। इसके अतिरिक्त उसकी साम्यवादी युग की कल्पना नितान्त काल्पनिक ही है क्योंकि ऐसे साम्यवादी समाज की स्थापना आधुनिक प्रतियोगी युग में सम्भव ही नहीं है।

3.1.8 मार्क्स का राज्य सम्बन्धी दर्शन

मार्क्स की जिन विचारधाराओं या उसके विचार के जिन पहलुओं का विवेचन अब तक किया गया उससे इतना तो नितान्त स्पष्ट हो जाता है कि मानव विकास के इतिहास की चालक शक्ति सदैव ही आर्थिक कारक रहे हैं। मार्क्स के राजदर्शन पर भी इसकी स्पष्ट छाप देखी जा सकती है।

3.1.8.1. राज्य की उत्पत्ति

राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मार्क्स पहले से प्रचलित सभी मतों का जोरदार तरीके से खंडन करता है। मार्क्स अरस्तू के इस विचार से सहमत नहीं है कि राज्य मनुष्य की सामाजिक प्रवृत्ति का स्वाभाविक परिणाम है तथा मार्क्स राज्य को एक प्राकृतिक संस्था मानने के पक्ष में भी नहीं है। मार्क्स राज्य की उत्पत्ति के दैवी सिद्धान्त से भी इत्तेफाक नहीं रखता है। वह राज्य को सामाजिक रूप से किए गये समझौतों का भी परिणाम नहीं मानता है। अपने सभी पूर्व सिद्धान्तों की भॉति ही मार्क्स राज्य की उत्पत्ति के पीछे भी भौतिक तथा आर्थिक कारणों की भूमिका को मानता है। मार्क्स अपनी बात को प्रमाणित करने के उद्देश्य से ऐतिहासिक तर्क प्रस्तुत करते हुए कहता है कि आदिम साम्यवादी युग में राज्य का अस्तित्व ही नहीं था क्योंकि उस समय समाज के सभी लोगों के आर्थिक हितों के मध्य किसी प्रकार का टकराव नहीं था। उस समय की समाज व्यवस्था स्वचालित थी। उसे राज्य की आवश्यकता ही नहीं थी।

इसके पश्चात् शनै:-शनै: सामाजिक स्थितियॉ बदल गईं और साथ ही साथ आर्थिक दशाओं में भी आमूल परिवर्तन आ गया। जो खेती तथा पशुपालन आदिम साम्यवादी युग में जीविका चलाने का साधन थी, अब वह लोगों का व्यवसाय बन गयी। क्योंकि व्यक्तियों के मन में व्यक्तिगत सम्पत्ति का बीज उगने लगा था। इसी काल में दास व्यवस्था ने भी जन्म लिया। कुछ लोगों ने अधिक भूमि तथा संसाधनों पर अपना अधिकार कर लिया जिससे कुछ लोग साधनविहीन रह गए। सम्पत्तिवान लोग आगे चलकर स्वामी बन गये एवं साधनहीन लोग दास बन गये। इस प्रकार समाज स्वामी तथा दास के रूप में दो वर्गों में विभाजित हो गया। दोनों वर्गों के हित भी परस्पर विरोधी ही थे। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न वर्ग ने अपने

हितों की पूर्ति करने के लिए ऐसी व्यवस्था की स्थापना की जिनसे उनके अधिकार अक्षुण्ण बने रहेi अपने हित साधन के लिए ही उन्होंने पुलिस, न्यायालय, कारागार तथा सेना आदि की व्यवस्था कीi मार्क्स का मत है कि यहीं से राज्य नामक संस्था अस्तित्व में आईi मार्क्स का मत है कि राज्य की स्थापना किसी समाज कल्याण के उद्देश्य से नहीं की गयी वरन् राज्य की स्थापना का एकमात्र उद्देश्य साधन सम्पन्न वर्ग का साधनहीन वर्ग पर प्रभुत्व कायम रखना थाi

3.1.8.2. राज्य का स्वरूप व उसका उद्देश्य

मार्क्स की मान्यता है कि राज्य का स्वरूप सदैव ही एक वर्ग प्रधान तथा शोषण प्रधान संस्था का रहा हैi दास व्यवस्था के युग में राज्य की उत्पत्ति जिस रूप में हुई थी, राज्य का वही रूप प्रत्येक युग में चलता रहा तथा वर्तमान समय में भी बहुत हद तक उसी स्वरूप में हैi दास व्यव्सथा के युग में साधन सम्पन्न वर्ग ने साधनहीन दासों का शोषण कियाi सामन्तवादी युग में भी आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न सामन्तों ने, आर्थिक रूप से विपन्न कृषक वर्ग का शोषण किया क्योंकि राज्य के समस्त साधनों का स्वामित्व सामन्तों के ही हाथों में थाi पूँजीवादी व्यवस्था के दर्शन भी राज्य के सभी साधनों पर पूँजीपति वर्ग का अधिकार रहा जिसके बल पर उसने श्रमिकों का शोषण किया तथा अपने हितों की पूर्ति करता रहाi यद्यपि कि इस दौरान अनेक देशों में प्रतिनिध्यात्मक प्रजातंत्रीय शासन प्रणाली की स्थापना हुई जिसके विषय में यह माना जाता है कि इस प्रणाली में सम्पूर्ण शक्ति जनता में निहित होती हैi स्वयं जनता ही अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से स्वयं पर शासन करती हैi किन्तु मार्क्स के अनुसार वास्तविकता इससे अलग हैi व्यवहार में प्रतिनिध्यात्मक लोकतन्त्र, लोकतन्त्र न होकर धनिकतंत्र हैi क्योंकि सत्ता बागडोर वस्तुत: धनी लोगों, उनके अभिकर्ताओं एवं पक्षधरों के हाथों में हैi यदि कभी ऐसी सम्भावना बन भी जाए कि प्रतिनिधिक संस्थाओं पर जनता के वास्तविक प्रतिनिधियों का अधिकार हो जाए तो भी यदि वे संस्थाएँ पूँजीपतियों के हितों के विरुद्ध चली जायें तो पूँजीपति वर्ग षड्यंत्र व शक्ति के द्वारा किसी न किसी प्रकार से उन्हें समाप्त कर देता हैi इस प्रकार मार्क्स राज्य को एक पक्षपाती संस्था के रूप में देखता है जो केवल शक्तिशाली वर्ग के हित में संलग्न रहता हैi मार्क्स के शब्दों में "सब विशिष्ट कालों में राज्य केवल शासक वर्ग का राज्य होता है तथा सब समयों में उसका रूप आवश्यक रूप से एक यंत्र का होता है जो पीड़ित व शोषित वर्ग को दबाए रखता हैi" चूंकि वह राज्य को शोषण का एक यंत्र मानता है इस कारण से वह उस अवस्था को आदर्श मानता है, जिसमें राज्य के अस्तित्व की आवश्यकता ही न रहेi ऐसी अवस्था को वह साम्यवाद का नाम देता हैi

3.1.8.3. सर्वहारा वर्ग का अधिनायक तन्त्र

सामान्य तौर पर मार्क्स राज्य को एक त्याज्य संस्था मानता है किन्तु उस अवस्था तक पहुँचने के लिए जहॉं राज्य संस्था का त्याग किया जा सके, वह राज्य को एक साधन के रूप में प्रयोग करने के लिए राज्य संस्था को ग्रह्य मानता हैi दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि मार्क्स सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतंत्र को संक्रमणकालीन समाजवादी अवस्था की एक आवश्यकता के रूप में माना जाता हैi मार्क्सवादी मान्यता के अनुसार साम्यवादी क्रान्ति के पश्चात् समाज की आर्थिक तथा राजनीतिक सभी शक्तियॉं सर्वहारा वर्ग के हाथों में आ जायेगीi समाजवाद की इस संक्रमणकालीन व्यवस्था के दौरान सर्वहारा वर्ग के द्वारा अपनी तानाशाही से पूँजीवाद के समस्त ध्वंसावशेषों को मिटाया जाएगाi पूँजीवादी व्यवस्था का समूल उन्मूलन किया जाएगाi उक्त कार्य के अतिरिक्त समाजवादी व्यवस्था के दौरान उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण करके, वितरण की समाजवादी व्यवस्था तैयार करके, सार्वजनिक

शान्ति व व्यवस्था स्थापित करके साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना हेतु एक समृद्ध आधार तैयार करना भी समाजवादी समाज का ही कार्य होगा।

3.1.9 मार्क्स का परिवार, धर्म तथा राष्ट्र सम्बन्धी दर्शन

मार्क्स की मान्यता है कि परिवार, धर्म तथा राष्ट्र का भी असली रूप आर्थिक परिस्थितियों के अनुकूल ही निर्धारित होता है। इस सम्बन्ध में उसके विचार निम्न वर्णित हैं-

3.1.9.1. परिवार

मार्क्स के अनुसार परिवार संस्था का आरम्भ व्यक्तिगत सम्पत्ति की धारणा के साथ हुआ है। परिवार की आवश्यकता ही उस समय अनुभव की गयी जब व्यक्ति द्वारा अपनी मृत्यु के बाद अपने उत्तराधिकारी के बारे में सोचा गया। जब व्यक्ति ने उस धन को अपनी सन्तान को दिया गया तो वे एक परिवार के बन्धन में बँध गये। मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद में परिवार का बंधन सम्पत्ति के व्यक्तिगत लाभ के कारण है। मार्क्स तो परिवार के सम्बन्ध यहाँ तक भी कहता है कि सर्वहारा वर्ग में अब भी पारिवारिक बन्धन का महत्व उतना नहीं है, जिस रूप में यह बन्धन पूँजीवादी वर्ग में पाया जाता है। इसका कारण यह है कि सर्वहारा वर्ग के पास अपनी आने वाली पीढ़ी को देने के लिए अपनी समस्याओं के अतिरिक्त अधिक कुछ होता नहीं है। परिवार का एक विकसित रूप पूँजीपतियों में ही मिलता है। मार्क्स तथा एंजिल्स परिवार को भी शोषण का ही एक यंत्र समझते हैं। मार्क्स के अनुसार पूँजीपति परिवारों में जो परिवार की पवित्रता की बात की जाती है, वह एक कोरा ढोंग है। इस वर्ग के लोग स्त्रियों को एक विलासिता की वस्तु समझते हैं।

मार्क्स के अनुसार साम्यवाद में परिवार प्रथा का स्वरूप पूँजीवाद की तरह नहीं होगा। अर्थात् विवाह का आधार पारस्परिक प्रेम होगा, उसे किसी भी प्रकार का धार्मिक अथवा नैतिक महत्व नहीं दिया जाएगा। इस प्रश्न पर मार्क्स के विचार पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हैं परन्तु सांकेतिक रूप से मार्क्स का अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि प्रेम के आधार पर विवाह के बन्धन में बँधकर स्त्री-पुरुष एक साथ रहने के लिए स्वतंत्र होंगे और यदि कभी उन्हें ऐसा प्रतीत होगा कि अब उनके बीच प्रेम नहीं रह गया है तो वे एक दूसरे से पृथक होने क लिए पूर्ण रूप स्वतंत्र होंगे, कोई धार्मिक तथा नैतिक बन्धन उन्हें पृथक होने से नहीं रोकेंगे।

3.1.9.2. धर्म

मार्क्स धर्म को पूँजीपतियों के हाथों में शोषण का एक यंत्र समझता है। पूँजीपति वर्ग यह चाहता है कि श्रमिक वर्ग बिना कोई प्रश्न पूछे श्रम करते रहने को ही अपना धर्म समझे। मार्क्स के अनुसार धर्म एक अफीम है, जिसके नशे में लोग जीवन की कटु वास्तविकता को भूले रहते हैं। मार्क्स के अनुसार धर्म से किसी भी प्रकार की मानसिक शान्ति नहीं मिलती है, बल्कि ये सब बातें एक छलावा मात्र हैं। मार्क्स के अनुसार ईसाई धर्म के सिद्धान्त लोगों के मन में कायरता, अधीनता तथा आत्मग्लानि की भावना भरते हैं। ये सभी भावनाएं सर्वहारा वर्ग के हितों के विपरीत है। मार्क्स के अनुसार धर्म नैतिकता को नहीं वरन् शोषण तथा वर्ग भेद को बढ़ावा देता है।

3.1.9.3. राष्ट्रवाद

मार्क्स राष्ट्रवाद की उस अवधारणा का कटु आलोचक रहा है जिसका समर्थन पूँजीवादी राष्ट्रों द्वारा किया जाता रहा है। उसके अनुसार पूँजीवादी राष्ट्रों में प्रचलित राष्ट्रवाद की धारणा अत्यन्त संकुचित है। उसके अनुसार विश्व को विरोधी वर्गों में बॉट देने वाला राष्ट्रवाद, राष्ट्रवाद नहीं हो सकता है। मार्क्स का मत है कि जब पूरे विश्व में पूँजीवाद का अन्त हो जाएगा तथा साम्यवाद की स्थापना हो

जाएगी तो एक राष्ट्र द्वारा उग्र राष्ट्रीयता की भावना के अन्तर्गत दूसरे राष्ट्रों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने की भावना समाप्त हो जाएगीi इस प्रकार क्षुद्र राष्ट्रीयता पर आधारित देशीय सीमाएँ खत्म हो जायेंगी क्योंकि साम्यवाद राष्ट्रीय सीमाओं से परे की वस्तु हैi मार्क्स का कथन था कि 'मजदूरों का कोई देश नहीं होता हैi' उनका प्रसिद्ध नारा विश्व के मजदूरों एक हो जाओ इसी धारणा पर आधारित हैi

3.1.10. मार्क्स का मानववादी चिन्तन

समकालीन मार्क्सवाद के अन्तर्गत मार्क्सवाद के मानववादी पक्ष पर बल दिया जा रहा है जिसका लक्ष्य मानव को सच्ची स्वतन्त्रता दिलाना हैi

मार्क्स के मानववादी चिन्तन का सर्वोत्तम विवरण मार्क्स की एक प्रारम्भिक कृति 'इकॉनॉमिक एण्ड फिलॉसॉफिकल मैनुस्क्रिप्ट्स ऑफ 1844' के अन्तर्गत मिलता हैi क्योंकि इन पांडुलिपियों को मार्क्स ने अपनी युवावस्था में लिखा था इसलिए इन्हें तरुण मार्क्स (यंग मार्क्स) की कृति मानकर मार्क्स के प्रौढ़ चिन्तन से पृथक किया जाता हैi तरुण मार्क्स के शब्दों में "साम्यवाद का अर्थ है निजी सम्पत्ति तथा मानवीय पराएपन का नितान्त उन्मूलन और स्वयं मानव के लिए मानवीय प्रकृति का यर्थाथ विनियोजनi अत: यह स्वयं मनुष्य की वापसी है- एक पूर्ण तथा सचेतन वापसी जिसमें पूर्ववर्ती विकास की समस्त सम्पदा को आत्मसात् कर लिया जाता हैi" साम्यवाद पूर्ण विकसित प्रकृतिवाद के रूप में मानववाद है और पूर्ण विकसित मानववाद के रूप में प्रकृतिवाद हैi

3.1.10.1. प्रकृतिवाद तथा मानववाद

प्रकृतिवाद मानव जीवन की वह स्थिति है जहॉ मनुष्य स्वयं प्रकृति का ही एक हिस्सा होता है तथा प्रकृति के ही निर्विकार नियमों से बँधा होता हैi इसके विपरीत मानववाद वह स्थिति है जब मनुष्य भौतिक प्रकृति तथा सामाजिक जीवन के नियमों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेता है, जिसकी सहायता से वह सामाजिक नव-निर्माण की क्षमता विकसित कर लेता हैi इस दशा में मनुष्य प्रकृति का दास नहीं रह जाता है बल्कि वह अपनी नियति का नियंता बन जाता हैi

मार्क्स की मान्यता है कि पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत मनुष्य एक यंत्र मात्र बनकर रह गया है, उसका मानव स्वरूप कहीं खोकर रह गया है तथा वह प्रकृति से भी बहुत दूर हो गया हैi साम्यवाद उस खोए हुए मनुष्य को वापस लाता है और प्रकृति के साथ उसके टूट चुके निश्ते को पुन: जोड़ता हैi साम्यवाद समस्त सभ्यता को ही ध्वस्त नहीं करता है बल्कि वह पूँजीवाद के अमानवीय प्रभाव को ही नष्ट करता है तथा सांस्कृतिक विकास के कल्याणकारी तत्वों को सुदृढ़ करता हैi यह मानव प्रेम तथा साहचर्य का सिद्धान्त हैi

3.1.10.2. मानववाद की संकल्पना

मार्क्स ने अपनी प्रारम्भिक कृतियों में साम्यवाद का अत्यंत मोहक चित्र खींचा है परन्तु परवर्ती कृतियों में उसने साम्यवाद को वैज्ञानिक कठोरता के साथ प्रस्तुत किया हैi अपनी आरम्भिक कृतियों में मार्क्स, मानव की खोई हुई स्वतंत्रता को पुनर्स्थापित करने के उद्देश्य से निजी सम्पत्ति के उन्मूलन का समर्थन करता है, किन्तु वह इस बात का सुझाव नहीं देता है कि यह उन्मूलन कैसे सम्भव किया जाएगाi अपनी परवर्ती कृतियों The communist manifesto, Critique of Political Economy, the Capital के अन्तर्गत उसने उक्त लक्ष्य की सिद्धि के लिए वर्ग संघर्ष तथा साम्यवादी क्रान्ति का यंत्र दिया हैi उसने इन यंत्रों का सुझाव ऐतिहासिक शक्तियों के वैज्ञानिक विश्लेषण के पश्चात दिया है कोरी

मानववादी धारणा के आधार पर नहीं**i**

3.1.10.3. वर्ग-संघर्ष और मानववाद

जॉन ल्यूइस ने 'Marx**i**sm and the Open M**i**nd (1976) के अन्तर्गत वर्ग संघर्ष को भी एक मानववादी सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश की है- "मार्क्सवादी वर्ग संघर्ष की वकालत नहीं करते हैं बल्कि वे उसके अस्तित्व को मान्यता भर देते हैं**i** वे इसे जारी रखना नहीं चाहते वरन् इसका अन्त करना चाहते हैं**i** परन्तु ऐसा उसी समय सम्भव है जब सामाजिक आर्थिक सहयोग की पुनर्स्थापना तथा शोषण का अन्त कर दिया जाय**i** मार्क्स का विश्वास था कि पूँजीवाद के पूर्ण विकास के परिणामस्वरूप इतिहास में पहली बार ऐसा सम्भव हो गया है**i**" उक्त का तात्पर्य यह है कि मार्क्स ने वर्ग संघर्ष् पैदा करने की कोशिश नहीं की वरन् उन्होंने तो अपने विश्लेषण के द्वारा बस इस तथ्य को मान्यता भर दी है कि वर्ग संघर्ष युगों से चला आ रहा है**i** निजी सम्पत्ति के जन्म के बाद से समाज में धनाढ्य तथा निर्धन दो वर्गों का उदय हुआ तथा उनके मध्य संघर्ष का जन्म हुआ जो आज भी उसी रूप में जारी है**i** वर्ग संघर्ष को वह एक अस्वस्थ तथा विकृत समाज का लक्षण मानते हैं**i** अत: सामाजिक अन्याय को मिटाने तथा मनुष्य की स्वतंत्रता को पुन: स्थापित करने के लिए वर्ग संघर्ष का अन्त करना जरूरी है**i** परन्तु ऐतिहासिक तथ्य स्वयं ही इस बात की पुष्टि करते हैं कि सुलह-समझौते के शान्तिपूर्ण तरीकों से इस वर्ग-संघर्ष का अन्त होने वाला नहीं है, क्योंकि धनाढ्य वर्ग को समझा-बुझाकर उन्हें अपने विशेषाधिकारों को छोड़ देने के लिए तैयार नहीं किया जा सकता है**i** यही कारण है कि समाज में फैली हुई सामाजिक आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए उत्पादन के साधनों का सामाजीकरण करने एवं अनिवार्य श्रम के नियम को लागू करने के लिए क्रान्ति ही एकमात्र मार्ग है जिसके द्वारा इन कार्यों को किया जा सकता है**i** मार्क्स तथा एंजेल्स का विश्वास था कि मानव स्वतंत्रता तथा सुख-शान्ति केवल उत्पादन की तर्कसंगत प्रणाली के अन्तर्गत ही स्थापित की जा सकती है**i** आधुनिक औद्योगिक विकास ने उस युग की भूमिका तैयार कर दी है जहॉ मानव की संतुष्टि के लिए उत्पादन को उच्चतम सीमा तक बढ़ाया जा सकता है**i** मार्क्स ने औद्योगिक युग की दो विशेषताओं की ओर संकेत किया है- (**i**) प्रौद्योगिक उन्नति, (**ii**) पूँजीवादी उन्नति**i**

मार्क्स का मानना है कि प्रौद्योगिक उन्नति का विकास किया जाना चाहिए क्योंकि यह उत्पादन की शक्तियों में सहायता देती है तथा भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है**i** जबकि पूँजीवाद का विनाश किया जाना चाहिए क्योंकि यह कामगारों के शोषण तथा पूँजीपतियों का खजाना भरने का ही साधन मात्र है**i**

साम्यवाद का मार्क्सवादी दृष्टिकोण मानव की सामाजिक प्रकृति में विश्वास करता है**i** साम्यवादी समाज के लिए मार्क्स ने एक नियम का प्रतिपादन किया- "प्रत्येक से उसकी क्षमतानुसार तथा प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार ऐसे निमय का सुझाव मानववाद में अडिग आस्था रखने वाला कोई व्यक्ति ही दे सकता है**i** जॉन ल्यूइस ने स्पष्ट किया है- "मार्क्सवाद मानववाद का उच्चतम विकास है**i** यह ऐसी अवस्था है जिसमें मानवीय उन्नति तथा मानवीय पराधीनता के युगों पुराने अन्तर्विरोध का अन्त हो जाता है**i** यह उत्पीड़ित वर्ग का अन्तिम तथा एकमात्र ऐसा विद्रोह है जिसमें सफलता सम्भव है**i** इसकी उत्पत्ति अमानवीय परिस्थितियों के विरुद्ध विद्रोह से हुई है तथा इसका लक्ष्य मनुष्य की खोई हुई मानवता को

खोजना है**i** मानववाद का सार तत्व यही है**i** अत: मार्क्सवाद मानववाद का समकालीन रूप है**i**"

3.1.10.4. अलगाव की संकल्पना

अलगाव/पराएपन की संकल्पना मार्क्स की Economic and Philosophic Manuscripts of 1844 का विषय है**i** मार्क्स ने अपनी परवर्ती कृतियों की भॉति इन पाण्डुलिपियों में भी पूँजीवाद की तीव्र आलोचना की है तथा साम्यवादी समाज की स्थापना करने का सुझाव दिया है**i** परन्तु इन पाण्डुलिपियों की विशेष बात यह है कि मार्क्स ने इनमें पूँजीवाद की जो आलोचना की है उसका आधार मुख्यत: पूँजीवाद के अमानवीयकारी प्रभाव रहे हैं**i** मार्क्स का मत है कि पूँजीवाद के दुष्प्रभाव के कारण श्रमिक के मन में अलगाव या पराएपन की भावना पनपती है**i** मार्क्स का तर्क है कि "पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत मनुष्य में अपनापन नहीं रह जाता; वह अपनी रचना से, प्रकृति से, अपने समाज से यहॉ तक कि अपने आप से भी पराया हो जाता है**i** अत: उस व्यक्ति में अपनेपन की वापसी के लिए पँजीवाद का अन्त करना जरूरी है**i**

3.1.10.4.1. अलगाव के स्तर

मार्क्स ने पूँजीवादी समाज के अन्तर्गत पराएपन के 4 स्तरों की पहचान की है-

(क) पराएपन के प्रथम स्तर पर मनुष्य अपनी रचना के साथ अपनापन अनुभव नहीं कर पाता है**i** इसका कारण है कि पूँजीवादी व्यवस्था में श्रमिक ये यह नहीं पूछा जाता है कि किन वस्तुओं का और कैसे उत्पादन किया जाए? उसका काम उसे रचनात्मक संतोष नहीं दे पाता है**i** उदाहरण के लिए सामंतवादी युग में भले ही शोषण था किन्तु जब श्रमिक अपने द्वारा पूर्ण रूप से बनाई गई कमीज किसी को पहने हुए देखता था तो उसे कार्य संतोष मिलता था**i** वह अपनी रचना के साथ अपनापन महसूस करता था**i** इसके विपरीत पूँजीवादी युग में अधिकतर कार्य मशीनों से होने के कारण वह अपनी रचना का सुख तथा अपनापन महसूस नहीं पाता है**i**

(ख) पराएपन के द्वितीय स्तर पर मनुष्य प्रक़ति से ही पराया हो जाता है**i** प्रकृति से उसका तारतम्य टूट जाता है**i** ऐसी दशा में मनुष्य प्रकृति का रसास्वादन नहीं कर पाता है**i** उदाहरणार्थ जिस प्रकार किसान अपने कार्य से अपने परिश्रम से जब फसल उगाता है तो वह अपनी लहलहाती हुई, हरियाली से भरी हुई फसल को देखकर झूम उठता है, उस प्रकार की प्रसन्नता एक कारखाने के मजदूर के लिए दुर्लभ है**i** वह भी मशीनों के सम्पर्क में रह-रहकर स्वयं एक मशीन का पुर्जा बनकर रह जाता है**i**

(ग) पराएपन के तृतीय स्तर पर व्यक्ति पारस्परिक साहचर्य या अपनेपन की भावना को खो देता है**i** पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली में प्रतियोगिता का स्तर इतना उच्च हो जाता है कि श्रमिक अपने साथी श्रमिकों से भी हार्दिक सम्बन्ध नहीं रख पाता है**i** इसका कारण है कि प्रतिस्पर्धा के कारण एक व्यक्ति की हानि दूसरे का लाभ बन जाता है**i** जिससे हितों में टकराव उत्पन्न होता है**i** उदाहरण के लिए यदि एक मजदूर बीमार पड़ जाता है तो खाली बैठे मजदूर को कार्य मिल जाता है**i** इन्हीं कारणों से व्यक्ति या श्रमिक अपने वर्ग से भी पराया हो जाता है**i**

(घ) अन्तिम स्तर पर पूँजीवाद के प्रभाव के कारण व्यक्ति कहीं न कहीं स्वयं को भी खोने लगता हैं वह अपने मानव जीवन के उद्देश्य को ही भूलने लगता है तथा वह अपने आप से भी पराया होने लगता है**i** पूंजीवाद के प्रभाव के कारण विवशता का ऐसा साम्राज्य खड़ा हो जाता है जो व्यक्ति के जीवन को पाशविक अस्तित्व का विषय बना देता है**i** व्यक्ति अपने जीवन के अन्य पक्षों यथा साहितय, कला, संस्कृति आदि चीजों में काई रुचि नहीं ले पाता है जो कि व्यक्ति के मानवीय तथा रचनात्मक प्रवृत्ति को प्रतिबिम्बित करती है**i** व्यक्ति के जीवन का एकसूत्रीय लक्ष्य केवल धन कमाकर अपने अस्तित्व को

बनाए रखने तक ही सीमित हो जाता है**i** इस तरह से श्रमिक अपनी मानवीयता को खोकर स्वयं से भी दूर हो जाता है**i** मार्क्स के अनुसार ऐसा नहीं कि केवल श्रमिक वर्ग ही स्वयं से दूर होता है**i** उसका मानना है कि स्वयं पूँजीपति भी निरन्तर इस चिन्ता में लगा रहता है कि कैसे उसका व्यापार उन्नति करे कैसे वह और अधिक लाभ कमाए? इस चिन्ता में उसके पास जो साधन है उनका भी वह स्वतंत्रता पूर्वक उपभोग नहीं कर पाता है**i** इस प्रकार पूँजीपति भी पूँजी का दास बनकर अपनी स्वतंत्रता को खो देता है**i**

3.1.10.5. स्वतंत्रता की संकल्पना

एक मानववादी दर्शन के नाते मार्क्सवाद मूलत: मानव स्वतंत्रता का दर्शन है**i** मार्क्सवाद का प्रमुख लक्ष्य प्रभुत्व तथा पराधीनता की परिस्थितियों को समाप्त करते हुए व्यक्ति को स्वतंत्र कराना है**i** मार्क्स के अनुसार स्वतंत्रता का तातपर्य मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की संतुष्टि मात्र नहीं है, हालांकि यह संतुष्टि उसकी आवश्यक शर्त है**i** परन्तु मानव के लिए उन परिस्थितियों का निराकरण भी जरूरी है जो मनुष्य को अमानुषिक जीवन जीने के लिए विवश कर देती है, जो उसे अपने सहचरों और स्वयं से भी पराया बना देती है**i** अत: पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का अन्त करके समाजवादी व्यवस्था की स्थापना द्वारा मानव की स्वतंत्रता की पुनर्स्थापना करना मार्क्स की प्रमुख शर्त है**i**

मार्क्सवादी चिन्तन के अन्तर्गत स्वतन्त्रता की समस्या को मार्क्सवादी वैज्ञानिक चिन्तन से भी समझ सकते हैं**i** इस वैज्ञानिक चिन्तन के अन्तर्गत विवशता तथा स्वतंत्रता में अन्तर किया जाता है**i** एंगेल्स ने इस अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहा कि जहॉ तक मनुष्य का जीवन प्रकृति के अनिवार्य और अपरिवर्तनीय नियमों द्वारा अनुशासित होता है वहॉ तक मनुष्य विवशता का जीवन जीता है**i** एंगेल्स के अनुसार स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य अपनी विवशता को भूलकर स्वप्नलोक में विचरण करे**i** मनुष्य प्रकृति के निमयों को बदल नहीं सकता है न ही उन्हें नियंत्रित कर सकता है**i** मनुष्य केवल इन नियमों का वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करके, उनका प्रयोग अपने उद्देश्यों को पूरा करने हेतु कर सकता है**i** इस प्रकार स्वतंत्रता का यही अर्थ है कि जिन नियमों के सम्मुख हम विवश हैं, उनकी वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त करके उन्हें निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति का साधन बना सकें**i** उदाहरण के लिए ज्वार का ज्ञान न होने पर हम स्वयं को खतरे में डाल सकते हैं, किन्तु वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त कर हम ज्वारीय ऊर्जा का प्रयोग ऊर्जा के उत्पादन में कर सकते हैं**i** इस प्रकार वैज्ञानिक ज्ञान के द्वारा हम अपनी विवशता को ही स्वतंत्रता में परिवर्तित कर सकते हैं**i**

एंगेल्स ने अपनी विश्लेषण से यह परिणाम निकाला कि पूँजीवाद की मुख्य पहचान विवशता है**i** यहॉ एक बात दृष्टव्य है कि एंगेल्स औद्योगिक प्रणाली के विरोध में नहीं है, क्यांकि वह तो उत्पादन तकनीक को विकसित करके उत्पादन को बढ़ाती है तथा मानव की भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करती है**i** पूँजीवाद का मुख्य दोष यह है कि यह उत्पादन प्रणाली पर या उत्पादन के साधनों पर मुट्ठी पर पूँजीपतियों का प्रभुत्व स्थापित कर देता है**i** पूँजीपतियों का उद्देश्य सामाजिक संतुष्टि को बढ़ाना न होकर व्यक्तिगत लाभ को बढ़ाना होता है**i** पूँजीपतियों के समक्ष भी प्रतिस्पर्धा का सामना करने की चुनौती होती है**i** इस प्रतिस्पर्धा के कारण उन्हें अपने माल को कम मूल्य पर बेचना पड़ता है**i** इसलिए उनकी भी यह विवशता होती है कि वे उत्पादन लागत को कम करें**i** उत्पादन लागत को कम करने के उद्देश्य से वे श्रमिकों का पारिश्रमिक कम कर देते हैं तथा उनका शोषण करते हैं**i** उत्पादन की समस्त नीतियॉ भी सम्पन्न उपभोक्ताओं को ध्यान में रखकर बनाई जाती हैं**i** ये नीतियॉ जनसाधारण के जीवन को सुखी करने के लिए नहीं बनायी जाती हैं**i** अत: यदि इस विवशता का अन्त करना है तो पूँजीवाद का अन्त करके समाजवाद की स्थापना करनी होगी**i** समाजवाद की स्थापना होने के पश्चात् मानव समाज विवश

नहीं रह जाएगा बल्कि वह सच्ची स्वतंत्रता को प्राप्त कर लेगा क्योंकि उत्पादन तथा वितरण के साधनों पर सम्पूर्ण समाज का नियंत्रण स्थापित हो जाएगा।

3.1.11 मार्क्सवाद का मूल्यांकन

मार्क्सवाद की एक विचारधारा के रूप में पाश्चात्य जगत में कटु आलोचना की जाती है। हालांकि पाश्चात्य देशों की पूँजीवादी मानसिकता का पुट उनकी आलोचना में अधिक दिखाई पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे मार्क्स की आलोचनाओं से अपनी नजरें फेर लेते हैं, क्योंकि वे पूँजीवाद की बुराईयों को देखने के ही इच्छुक नहीं हैं। इसलिए उनकी आलोचनाओं में तथ्यात्मकता कम दिखती है। हालांकि मार्क्सवाद भी बुराइयों से मुक्त नहीं हैं और पाश्चात्य आलोचनाओं को बिल्कुल निरर्थक मान लेना ठीक नहीं होगा। मार्क्सवाद की प्रमुख आलोचनाएँ निम्न वर्णित हैं-

3.1.11.1. एक विचारधारा के रूप में सत्य प्राप्त करने का दावा निरर्थक

मार्क्सवाद के विरुद्ध प्रमुख आक्षेप यह है कि यह एक ऐसी विचारधारा बन गयी है जिसने सत्य को प्राप्त कर लेने का दावा किया है, जो ठीक नहीं है। कार्ल् पॉपर ने अपनी कृति The Open Society andits Enemies (1945) के अन्तर्गत मार्क्सवाद को मुक्त समाज का दुश्मन कहा है। उनका तर्क है कि यह व्यक्ति की स्वतन्त्रता को छीन लेता है तथा उसके व्यक्तितत्व के विकास में बाधक है। हालांकि कार्ल पॉपर का यह आक्षेप बहुत ठोस नहीं है। ऐसा इसलिए है कि क्योंकि एक मुक्त समाज के बारे में कार्ल पॉपर की कल्पना देखने में भले ही मोहक लगे किन्तु वास्तविकता तो यही है कि ऐसे मुक्त समाज में धनवान तथा निर्धन वर्ग के बीच की खाई को भरने के लिए कोई व्यवस्था नहीं है। सच्चाई तो यह है कि जब तक समाज धनवान तथा निर्धन वर्ग में बँटा रहेगा तब तक नागरिक तथा राजनीतिक परिवर्तन सामाजिक विषमता का अन्त नहीं कर सकते हैं। जब तक समाज दो वर्गों में बँटा रहेगा तब तक नागरिक तथा राजनीतिक संस्थाएं भी धनवान का ही पक्ष लेती रहेंगी क्योंकि वह समाज का एक प्रभावशाली तथा प्रभुत्वशाली वर्ग है और निर्धन वर्ग की दशा जस की तस बनी रहेगी।

3.1.11.2. मार्क्सवाद क्रान्तियों को बढ़ावा देता है

मार्क्सवाद पर एक आक्षेप यह भी लगाया जाता है कि वह क्रान्ति का सन्देश देकर हिंसा को बढ़ावा देता है। मार्क्सवाद वर्ग संघर्ष को इतना प्रचारित कर देता है कि वर्ग सहयोग की सभी सम्भावनाएँ ही धूमिल हो जाती हैं। मार्क्स सर्वहारा वर्ग की तानाशाही के लक्ष्य को हमारे सम्मुख रखकर अधिनायकवाद की ही पुष्टि करता हैं जिसमें व्यक्ति स्वातंत्र्य तथा सम्पत्ति की सुरक्षा दोनों ही खतरे में पड़ जाती है। सन् 1970 के दशक में कुछ यूरोपीय देशों में यूरो साम्यवाद के नाम से एक नव-मार्क्सवाद का जन्म हुआ। यूरो-साम्यवाद का मार्क्सवादी सिद्धान्त में पूर्ण विश्वास था किन्तु यूरो-साम्यवादियों को चिरसम्मत मार्क्सवाद के तौर तरीकों में विश्वास न था। वे साम्यवाद के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उत्तरदायी लोकतंत्रीय संस्थाओं का समर्थन करते थे, क्रान्तिकारी संस्थाओं का नहीं। चिर सम्मत मार्क्सवादी यूरो-साम्यवादियों को मार्क्सवाद का प्रतिनिधि नहीं मानते थे। उनका मत था कि ये मार्क्सवाद का स्वरूप विकृत करने का एक षड्यंत्र है। किन्तु सत्य यही है कि मार्क्सवाद स्व्यमेव ही त्रुटिपूर्ण था और उसकी त्रुटियां बहुत तेजी से सबके सम्मुख प्रकट हुई और देखते ही देखते सन् 1991 तक सोवियत संघ रूस तथा पूर्वी यूरोपीय साम्यवादी देशों में साम्यवाद का पतन हो गया।

क्रान्ति के सम्बन्ध में मार्क्सवाद की आलोचना करने से पहले यह जान लेना अनिवार्य है कि मार्क्सवाद के अनुसार क्रान्ति व अधिनायकतंत्र साम्यवाद को स्थापित करने के साधन मात्र हैं, साध्य नहीं

हैंi क्रान्ति तथा अधिनायकतंत्र को एक सीमा तक हम साधन के रूप में उचित ठहरा सकते हैं क्योंकि समाज की समस्त सम्पत्ति को अपनी जेब में रखने वाले पूँजीपति इस सम्पत्ति के अधिकार को तब तक नहीं छोड़ेंगे जब तक निर्धन वर्ग एक शक्तिशाली संगठन बनाकर उन्हें ऐसा करने के लिए विवश नहीं कर देगाi इस प्रकार एक तात्कालिक साधन के रूप में कुछ सीमा तक इसे उचित ठहरा सकते हैंi किन्तु यदि सर्वहारा के अधिनायकतंत्र के अन्तर्गत सत्ताधारी वर्ग अपने विरोधियों को नष्ट करने के उद्देश्य से इस हिंसा तथा दमन का सहारा लेते हैं तो यह मार्क्सवाद का अनुचित प्रयोग होगाi दुर्भाग्य से भूतपूर्व सोवियत संघ रूस, जनवादी चीन गणराज्य तथा पूर्वी यूरोपीय देशों में कुछ हद तक मार्क्सवाद का उक्त विकृत रूप ही देखने को मिला है, जो निंदनीय हैi

3.1.11.3. सर्वहारा के अधिनायकतंत्र की स्थापना के दुष्परिणाम

मार्क्सवाद के अन्तर्गत साम्यवादी समाज की कल्पना अत्यन्त सुमधुर प्रतीत होती है किन्तु वास्तव में यह इतनी भी सुमधुर नहीं हैi सत्य तो यह है कि व्यवहार के धरातल पर यह सर्वहारा के अधिनायकतंत्र या वास्तविक अधिनायकतंत्र की स्थापना करता हैi सोवियत संघ रूस तथा चीन में साम्यवादी क्रान्तियों के परिणामस्वरूप जो भी व्यवस्थाएं अस्तित्व में आईं उन्होंने जीवन के सभी आयामों में चाहे जितनी भी प्रगति की हो किन्तु उनकी ऊपरी चमक के पीछे छिपा हुआ कड़वा सत्य यही है कि वहां के नागरिक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जैसे मूलभूत अधिकारों से भी वंचित रहे हैंi मार्क्सवादी सिद्धान्त के अनुसार तो सोवियत शासन-प्रणाली का अधिनायकतंत्रीय स्वरूप अस्थाई होना चाहिए था किन्तु वहां पर आर्थिक तथा सांस्कृतिक गतिविधयों के बढ़ते हुए केन्द्रीकरण ने राज्य के लुप्त हो जाने की प्रक्रिया को ही बहुत पीछे धकेल दिया हैi सोवियत संघ तथा साम्यवादी चीन में चुनाव तो होते रहे हैं किन्तु एकमात्र साम्यवादी दल का ही अस्तित्व होने के कारण जनता के समक्ष विकल्पहीनता की विकट स्थिति हैi इसलिए इन देशों में चुनाव तथा चुनाव प्रणाली महज औपचारिकता बनकर रह गये हैंi इन साम्यवादी देशों में राजनीतिक शक्ति का स्तूप इतना अधिक ऊँचा उठ चुका है कि इससे वर्गहीन समाज की कल्पना ही मिट्टी में मिल चुकी हैi साम्यवादी देशों की ये काली तथा कड़वी सच्चाईयॉं जब तक अभिव्यक्ति की आजादी पर नियंत्रण के कारण परदे के पीछे रहीं तब तक साम्यवाद का दायरा बढ़ता रहाi किन्तु 1985 में जब से सोवियत संघ रूस में ग्लॉसनास्त या खुलेपन की नीति को अपनाया गया तभी से वहॉं से साम्यवाद के पतन का दौर प्रारम्भ हो गयाi

3.1.11.4. मार्क्सवाद के आशानुरूप वर्ग चेतना का विकास न हो पाना

मार्क्सवाद की इस आधार पर आलोचना की जाती है कि मार्क्स ने सर्वहारा वर्ग के लिए जिस वर्ग चेतना की बात की थी वह कभी पूर्ण रूप से विकसित ही नहीं हो पाईi रूस और चीन में प्रारम्भ में तो क्रान्ति की व्यवहारिक आवश्यकताओं को भॉंपते हुए क्रान्ति का नेतृत्व गिने-चुने लोगों के हाथों में केन्द्रित कर दिया गया, जिसका दुष्परिणाम व्यक्ति पूजा के रूप में उभर कर सामने आयाi मार्क्सवादी इस दुष्प्रभाव के बारे में अंजान न थे किन्तु उन्हें विश्वास था कि समाजवादी अर्थव्यवस्था तथा शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत जब चेतना का विकास होगा तब व्यकित प्रतिद्वन्द्विता के आधार पर हिंसा तथा दमन की कोई गुंजाइश ही नहीं रह जाएगीi किन्तु विडम्बना तो यही है कि 7 दशकों तक समाजवादी शिक्षा तथा प्रचार के बावजूद उनके संजातीय महत्वाकांक्षाओं को मिटाया नहीं जा सकाi यही वह मूल कारण रहा जो भूतपूर्व सोवियत संघ के विघटन का कारण बनाi भूतपूर्व सोवियत संघ के अतिरिक्त पूर्वी यूरोपीय देशों, हंगरी, पोलैण्ड, पूर्वी जर्मनी, बग्लेरिया, चेकोस्लाविया तथा रूमानिया में भी समाजवादी प्रणाली का त्याग कर दिया गयाi

मार्क्सवाद की उक्त आलोचनाओं तथा विश्व के कुछ देशों में साम्यवाद के पतन के कारण हमें यह मान लेने के लिए जल्दबाजी हीं दिखानी चाहिए कि यह विचारधारा अब लोकप्रिय नहीं रही या अप्रासंगिक हो चुकी है**i** हमें एक बात दृष्टिगत रखनी चाहिए कि मार्क्सवाद एक संवैधानिक प्रणाली के रूप में जितना भी विफल रहा हो किन्तु विचारधारा की कसौटी पर यह उतना विफल नहीं हुआ है**i** मार्क्सवाद यथार्थ के धरातल पर अपनी उन मान्यताओं को लेकर अधिक असफल हुआ जो कालान्तर में मानव स्वभाव के परिवर्तन की उम्मीदों पर टिकी हुई थीं**i** क्योंकि यथार्थ के धरातल पर यह समाजवाद मानव स्वभाव को परिवर्तित नहीं कर सका**i**

मार्क्सवादियों को यह भी उम्मीद थी कि यदि आर्थिक शक्तियों को राजनीतिक तथा अधिकारतंत्रीय शक्तियों से पृथक कर दिया जाए तो वह मनुष्य के चरित्र को पतनोन्मुख नहीं कर सकेगी**i** किन्तु यथार्थ में मार्क्सवादियों की यह आशा भी व्यर्थ सिद्ध हुई**i** इन सब विफलताओं के बावजूद भी मार्क्सवाद एक विचारधारा के रूप में सार्थक हैं यह विचारधारा इस रूप में सार्थक है कि इसने उत्पीड़ित वर्ग की स्वतंत्रता का संदेश दिया**i** यह विचारधारा इस रूप में सार्थक है कि इसने अलगाव तथा पराधीनता की परिस्थितियों की आलोचनात्मक विश्लेषण के लिए एक उपकरण प्रदान किया**i** यह समाजवादी विचारधारा इस रूप में सार्थक है कि यह पीड़ित मानवता के लिए मुक्तदायिनी शक्ति है**i** हालांकि इस रूप में इसे अभी अपनी क्षमता को सिद्ध करना शेष है**i**

मार्क्सवाद की विश्व को सबसे बड़ी देन यह है कि इसने वर्गपरक आधार पर समाज का विश्लेषण प्रस्तुत करके उन मान्यताओं पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया जिनके कारण निहित स्वार्थों को बढ़ावा मिलता है**i** मार्क्सवाद ने उदारवाद को भी यह चुनौती दी कि जब तक हमारा समाज निजी सम्पत्ति के स्वामित्व के आधार पर दो विपरीत वर्गों में बँटा रहेगा तब तक कोरी राजनीतिक स्वतंत्रता का कोई मूल्य नहीं है**i**

उक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि मार्क्सवाद एक प्रगतिवादी दर्शन है, जो कि सामाजिक स्तर पर हो रहे अन्याय को समाप्त करने तथा साम्य पर आधारित एक वर्गहीन तथा राज्यहीन समाज की स्थापना करने के लिए प्रतिबद्ध है**i**

3.1.12 पाठसार

मार्क्स की सम्पूर्ण विचारधारा का ज्ञान उसके दो सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थों कम्युनिस्ट मैनीफेस्टो तथा कैपीटल से प्राप्त होता है**i** सर्वप्रथम तो मार्क्स पर हीगल के द्वन्द्वात्मक पद्धति का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है**i** द्वन्द्वात्मक पद्धति को मार्क्स ने हीगल से ग्रहण किया, और अपने समस्त चिन्तन का केन्द्र बिन्दु बना दिया**i** मार्क्स ने द्वन्द्ववाद का प्रयोग हीगल की तरह विचारों के क्षेत्र में न करके भौतिकवाद के क्षेत्र में किया**i** ऐसा इसलिए क्योंकि मार्क्स इस समस्त संसार को चेतन वस्तुओं का परिणाम नहीं मानता है**i** वह इस विश्व के निर्माण में भौतिक (जड़) चीजों के महत्व को स्वीकार करते हुए कहता है कि "मनुष्य के मस्तिष्क द्वारा प्रतिबिम्बित और विचार रूप में परिवर्तित भौतिक संसार ही मेरा आदर्श है**i**"

मार्क्स ने अपने परम उद्देश्य साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना के क्रम में समाजवाद को एक प्रमुख चरण माना है**i** मार्क्स की प्रमुख विशेषता यह है कि उसने समाजवाद की स्थापना के सम्बन्ध में वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया**i** वह अपने से पूर्व के समाजवादियों की भांति काल्पनिक समाजवादी नहीं था**i** मार्क्स ही वह प्रथम विद्वान था जिसने पूर्व के स्वप्नलोकीय समाजवाद को वास्तविकता के धरातल पर ला खड़ा किया**i** उसने सिर्फ साम्यवादी क्रान्ति के रूप में एक व्यवहारिक मार्ग भी प्रशस्त

कियाi

मार्क्स ने अपने ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धान्त द्वारा मानव समाज के विकास के क्रम को स्पष्ट किया हैi इस सिद्धान्त में उसने यह स्पष्ट किया कि मानव समाज का विकास पारस्परिक आर्थिक सम्बन्धों के परिणामस्वरूप हुआ हैi उसने स्पष्ट किया कि किसी राष्ट्र या समाज के विकास की प्रक्रिया में आर्थिक तत्वों का सर्वाधिक योगदान रहा हैi मार्क्स ने सामाजिक विकास को 4 अवस्थाओं-आदिम साम्यवाद, दास युग, सामन्तवाद तथा पूँजीवाद में बॉटा हैi मार्क्स ने अपने ऐतिहासिक भौतिकवाद के पूरक सिद्धान्त के रूप में वर्ग संघर्ष का विचार भी रखाi मार्क्स ने ऐतिहासिक विकास के क्रम में वर्ग संघर्ष की भूमका पर बल देते हुए कहा है कि मानव समाज का इतिहास वर्ग संघर्षों का इतिहास रहा है क्योंकि समाज विकास के प्रत्येक स्तर पर दो परस्पर विरोधी वर्गों का अस्तित्व रहा हैi मार्क्स का मत है कि केवल साम्यवाद ही समाज विकास का वह स्तर है जहॉ परस्पर विरोधी वर्गों का परस्पर अभाव होता हैi ऐसा वर्ग विहीन साम्यवादी समाज ही मार्क्स का स्वप्न थाi

मार्क्स ऐतिहासिक विकास का मुख्य आधार उन भौतिक परिस्थितियों को मानता है जिनका सम्बन्ध आर्थिक पहलू से होता हैi वह आर्थिक परिस्थितियों को इतिहास की चालक शक्ति मानता हैi इस कारण उसने अपने समय की पूँजीवादी व्यवस्था का गहन विश्लेषण करके अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जिसमें अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त प्रमुख हैi इन सिद्धान्त का मुख्य बल इस बात पर रहा कि वास्तव में पूँजीपति मानव श्रम से ही उत्पादन कार्य करता है क्योंकि श्रम ही एकमात्र वह वस्तु है जो उत्पादन की क्षमता रखती हैi पूँजीवाद से उत्पादित वस्तुओं को बेचकर खूब लाभ कमाता हैi वह मजदूरों से अतिरिक्त श्रम भी कराता है, किन्तु वह न तो उस श्रमिक को अतिरिक्त पारिश्रमिक देता है और न ही अतिरिक्त उत्पादन का लाभ ही उन्हें हस्तान्तरित करता हैi इस प्रकार न मजदूरों का पूर्ण शोषण करता हैi

जहॉ तक मार्क्स के राजदर्शन का प्रश्न है, मार्क्स राज्य को शोषण का एक यंत्र तथा पूँजीपतियों के हाथों की कठपुतली मानता हैi मार्क्स एक ऐसे साम्यवादी समाज की स्थापना करना चाहता है जो वर्गविहीन होने के साथ-साथ राज्यविहीन भी होi इस प्रकार मार्क्स राज्य संस्था का बिल्कुल पक्षधर नहीं हैi

मार्क्स के समस्त चिन्तन से उसके घोर मानववादी होने का प्रमाण मिलता हैi मार्क्स ने पूँजीवादी समाज में व्यक्ति को पूँजीपतियों के गुलाम के रूप में देखाi मार्क्स का मत है कि पूँजीवाद के जहर ने मानव मन पर ऐसा प्रभाव डाला है कि मानव चरणवार तरके से क्रमश: अपनी रचना से, प्रकृति से, पारस्परिक साहचर्य से और अन्तत: स्वयं से ही पराया हो चुका हैi व्यक्ति अपने अस्तित्व तथा अपने जीवन के अन्तिम लक्ष्य को ही भूलता जा रहा हैi इसलिए मार्क्सवाद का लक्ष्य मानव को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त कर स्वतंत्रता की ओर अग्रसारित करना हैi

3.1.13. अभ्यास/बोध प्रश्न

3.1.13.1. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. मार्क्स ने द्वन्द्ववाद की प्रेरणा किससे ली?
   (क) लेनिन (ख) ट्राटस्की
   (ग) हीगल (घ) स्टालिन
2. मार्क्स उत्पादन के किस साधन को सर्वाधिक महत्व देता है?
   (क) पूँजी (ख) श्रम

(ग) भूमि (घ) मशीनें

3. मार्क्सवादियों की बाइबिल किस पुस्तक को माना जाता है?
   (क) कम्युनिस्ट मैनीफेस्टो (ख) पावर्टी ऑफ फिलॉसफी
   (ग) क्रिटीक ऑफ पोलिटिकल इकोनॉमी (घ) दास कैपिटल
4. कम्युनिस्ट मैनीफेस्टो का प्रकाशन वर्ष क्या है?
   (क) 1848 (ख) 1850
   (ग) 1867 (घ) 1868
5. मार्क्स ने किस कारक को सामाजिक विकास का मूल माना है-
   (क) सामाजिक (ख) धार्मिक
   (ग) राजनीतिक (घ) आर्थिक

3.1.13.2. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मार्क्स को वैज्ञानिक समाजवादी क्यों कहा जाता है?
2. सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद से मार्क्स का क्या तात्पर्य है?
3. मार्क्स के क्रान्ति सम्बन्धी विचारों का वर्णन कीजिए**i**
4. मार्क्स की राज्य सम्बन्धी अवधारणा को स्पष्ट कीजिए**i**
5. मार्क्स द्वारा प्रतिपादित 'अलगाव की अवधारणा' का विवेचनात्मक मूल्यांकन कीजिए**i**

3.1.13.3. विस्तृत उत्तरीय प्रश्न-

1. "मैंने हीगल के दर्शन को सिर के बल खड़ा पाया और उसे पैरों के बल खड़ा कर दिया**i**" मार्क्स के इस कथन की व्याख्या करते हुए मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद तथा हीगल के द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त की तुलना कीजिए**i**
2. "मार्क्स का सम्पूर्ण राजनीतिक दर्शन द्वन्द्ववाद के सिद्धान्त पर आधारित है**i**" इस कथन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए**i**
3. "मानव जाति का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है**i**" मार्क्स के इस कथन का मूल्यांकन कीजिए**i**
4. "मार्क्स का अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त आर्थिक सत्य की अपेक्षा सामाजिक और राजनीतिक महत्व का नारा है**i**" इस कथन के आलोक में मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य सिद्धान्त का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए**i**
5. मार्क्स के अनुसार "सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद" का क्या महत्व है? वह राज्यविहीन समाज की स्थापना में किस प्रकार सहायक है?

3.1.14. कठिन शब्दावली

1.14.1 द्वन्द्ववाद – द्वन्द्ववाद की मान्यता का सार तत्व यह है कि विश्व के निर्माण में जड़ वस्तुओं में प्राय: संघर्ष होता है जिससे विश्व का विकास होता है**i** द्वन्द्ववाद की प्रक्रिया तीन चरणों वाद-प्रतिवाद तथा संवाद के माध्यम से संचालित होती है**i**

1.14.2 भौतिकवाद – भौतिकवादी मान्यता के अनुसार विश्व की उत्पत्ति व उसके विकास के मूल में पदार्थ अथवा जड़ (भौतिक) वस्तुएं हैं**i** विश्व के विविध दृश्य गतिमान पदार्थ के ही विविध रूप हैं**i**

1.14.3 अलगाव- इस संकल्पना की मूल मान्यता यह है कि पूँजीवाद के प्रभाव के कारण श्रमिक स्वयं अपनी रचना, प्रकृति, अपने सम्बन्धियों तथा स्वयं अपने आप से अलग होता जा रहा है**i**

1.14.4 साम्यवाद- इस विचारधारा के समर्थक ऐसी समाज व्यवस्था स्थापित करना चाहते हैं जिसमें निजी सम्पत्ति का कोई स्थान न हो**i** इससे वर्गभेद मिट जाएगा और प्राय: सभी पुरानी संस्थाएं और मान्यताएं यहॉ तक कि राज्य भी लुप्त हो जाएगा**i**

3.1.15. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. दधीच, नरेश (2015), समसामयिक राजनीतिक सिद्धान्त, जयपुर, रावत पब्लिकेशन्स, आई.एस.बी.एन. 978-81-316-0678-0 (एच.बी.)
2. गाबा, ओमप्रकाश, 2007, राजनीतिक विचारक विश्वकोश, दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, आई.एस.बी.एन. 81-7198-022-8
3. सिंघल, सुरेशचन्द्र, 2005, आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, आगरा, नवरंग ऑफसेट प्रिंटर्स, आई.एस.बी.एन. 81-85778-83-3
4. गाबा, ओमप्रकाश, 2012, पाश्चात्य राजनीतिक विचारक, दिल्ली, मयूर पेपर बैक्स, आई.एस.बी.एन. 81-7198-181-X
5. नारायण, इकबाल, 2001, आधुनिक राजनीकि विचारधाराएं, जयपुर, ग्रन्थ विकास
6. गाबा, ओमप्रकाश, 2014, राजनीति-सिद्धान्त की रूपरेखा, दिल्ली, मयूर पेपरबैक्स, आई.एस.बी.एन. 81-7198-092-9
7. जैन, पुखराज, 2012, पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तक, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
8. मार्क्स, कार्ल, 2014, कम्यूनिस्ट मैनीफेस्टो, न्यूयार्क इण्टरनेशनल पब्लिशर्स कम्पनी, आई.एस.बी.एन. 10-0717802418, आई.एस.बी.एन. 978-0717802418.
9. मार्क्स, कार्ल, 2016, दास कैपीटल, नई दिल्ली, फिंगर प्रिन्ट पब्लिशिंग, आई.एस.बी.एन. 10-8175994142.
10. कुमार, अशोक, 2015, मार्क्सवाद के मूलभूत सिद्धान्त, दखल प्रकाशन, आई.एस.बी.एन. 978-93-84159-17-7, आई.एस.बी.एन. 13 : 978-8175994140.
11. https://em-m.wikipedia.org/wiki/karl-marx

इकाई-2 लेनिन के राजनीतिक विचार

इकाई की रूपरेखा

3.2.1 उद्देश्य कथन
3.2.2 प्रस्तावना – परिचय
3.**2.2.1**. **लेनिन का जीवन परिचय**
3.**2.2.2**. **लेनिन की प्रमुख रचनाएँ**
3.1.3. **व्यावहारिक मार्क्सवाद – लेनिनवाद**
3.**2.3.1**. **मार्क्सवादी राज्य की स्थापना**
3.**2.3.2**. **प्रजातांत्रिक केन्द्रीकरण पर बल**
3.**2.3.3**. **लेनिन का क्रान्ति सम्बन्धी विचार**
3.**2.3.4**. **लेनिन का साम्राज्यवाद सम्बन्धी विचार**
3.**2.3.5**. **लेनिन के राज्य सम्बन्धी विचार**
3.2.4. **लेनिन तथा मार्क्सवाद**
3.2.5. **विचारधारा की भूमिका पर लेनिन के विचार**
3.2.6. **लेनिन की राज्य सम्बन्धी व्याख्या**
3.**2.6.1**. **संक्रमणकालीन समाजवादी राज्य की स्थापना**
3.**2.6.2**. **संक्रमणकालीन समाजवादी राज्य के कार्य**
3.**2.6.3**. **राज्य का अन्त तथा मुक्त साम्यवाद का उदय**
3.2.7. **लेनिन की साम्यवादी दल सम्बन्धी अवधारणा**
3.**2.7.1**. **पूँजीवादी युग में साम्यवादी दल की भूमिका**
3.**2.7.2**. **चेतना के भेद तथा उनका विकास**
3.**2.7.3**. **क्रान्ति के पश्चात साम्यवादी दल की भूमिका**
3.2.8. **लेनिन की लोकतंत्रीय केन्द्रवाद की अवधारणा**
3.2.9. **लेनिन का साम्राज्यवाद सम्बन्धी विचार**
3.2.10. **लेनिन का क्रान्ति (परिवर्तन) सिद्धान्त**
3.**2.10.1**. **मार्क्स के क्रान्ति सिद्धान्त में संशोधन**
3.**2.10.2**. **लेनिन द्वारा क्रान्ति की अनिवार्यता पर बल**
3.**2.10.3**. **राज्य के विलुप्त होने की व्याख्या**
3.**2.10.4**. **क्रान्ति करने की पद्धति एवं कला**
3.**2.10.5**. **पेशेवर क्रान्तिकारी का विचार**
3.**2.10.6**. **क्रान्ति में साम्यवादी दल की भूमिका**
3.**2.10.7**. **क्रान्ति हेतु पूँजीवाद के चरम विकास की आवश्यकता नहीं**

3.2.10.8. **क्रान्ति के विषय पर मार्क्स तथा लेनिन में विभेद**
3.2.10.9. **लेनिन के क्रान्ति सिद्धान्त का महत्व**
3.2.11. लेनिन का समाजवादी कार्यक्रम तथा साम्यवाद की स्थापना
3.2.11.1. **समाजवादी कार्यक्रम**
3.2.11.2. **प्रति क्रान्तिकारी वर्ग का दमन**
3.2.11.3. **साम्यवाद की स्थापना**
3.2.12 लेनिनवाद का मूल्यांकन
3.1.13 पाठ सार/सारांश
3.1.14 अभ्यास-प्रश्न
3.1.15 कठिन शब्दावली
3.1.16 संदर्भ-ग्रन्थ-सूची

3.2.1 उद्देश्य कथन

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात छात्र-

1. लेनिन के व्यक्तित्व तथा कृतित्व को जान सकेंगेi
2. व्यावहारिक मार्क्सवाद-लेनिनवाद का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगेi
3. मार्क्स राज्य की व्यावहारिक स्थापना के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगेi
4. लेनिन तथा मार्क्सवाद के आपसी सम्बन्धों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगेi
5. मार्क्सवाद तथा लेनिनवाद के मध्य अन्तर की जानकारी प्राप्त कर सकेंगेi
6. लेनिन की क्रान्ति सम्बन्धी अवधारणा की विवेचना कर सकेंगेi
7. लेनिन द्वारा स्थापित साम्यवादी दल की भूमिका का विश्लेषण कर सकेंगेi
8. साम्राज्यवाद की लेनिनवादी व्याख्या कर सकेंगेi
9. लेनिन के समाजवादी कार्यक्रम से परिचित हो सकेंगेi
10. लेनिन के साम्यवादी राज्य को समझ सकेंगेi
11. लेनिनवाद की आलोचनात्मक व्याख्या कर सकेंगेi

3.2.2. प्रस्तावना / परिचय

3.2.2.1. जीवन परिचय

ब्लादिमीर इलियच उल्यानोव जिन्हें व्यापक रूप से लेनिन के नाम से जाना जाता है, का जन्म सन् 1870 में सिंविर्स्क में एक अमीर मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ थाi लेनिन को एक रूसी साम्यवादी क्रान्तिकारी, राजनीतिज्ञ तथा राजनीतिक सिद्धान्तकार के रूप में ख्याति प्राप्त हैi लेनिन रूस की बोल्शेविक क्रान्ति के अग्रगण्य नेता के रूप में विख्यात हैंi लेनिन 1917-1924 तक सोवियत रूस की और 1922-1924 तक सोवियत संघ की सरकार के प्रमुख के पद पर आसीन रहेi लेनिन के प्रशासनिक काल में पहले रूस में तत्पश्चात् संयुक्त सोवियत संघ भी रूसी कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा नियंत्रित एक-पक्ष साम्यवादी राज्य बन गयाi यद्यपि विचारधारागत रूप से लेनिन बिल्कुल मार्क्सवादी थे किन्तु उनके राजनीतिक सिद्धान्त व्यापक तौर पर लेनिनवाद के नाम से जाने जाते हैंi

लेनिन एक उच्च मध्यमवर्गीय परिवार में जन्मे थेi उनके पिता विद्यालयों के निरीक्षक थेi लेनिन के पिता लोकतंत्रात्मक विचारों से प्रेरित थेi लेनिन की माता भी एक सुशिक्षित महिला थींi सन् 1887 में अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त कई पुत्र-पुत्रियों वाले परिवार का समस्त भार लेनिन की माता पर आ गयाi

लेनिन और उनके भाई-बहन प्रारम्भ से ही क्रान्तिकारी विचारों के अनुयायी बनते चले गयेi लेनिन के बड़े भाई अलेक्जेण्डर को जार की हत्या के षड्यंत्र में शामिल होने के आरोप में फॉसी दे दी गईi

लेनिन ने बहुत ही उच्च योग्यता के साथ स्नातक की उपाधि प्राप्त कीi तत्पश्चात् लेनिन ने 1887 ई. में कजान विश्वविद्यालय में विधि का अध्ययन करने के उद्देश्य से विधि विभाग में प्रवेश लियाi लेकिन लेनिन कजान विश्वविद्यालय से अपनी विधि की पढ़ाई पूर्ण नहीं कर सके क्योंकि उनके क्रान्तिकारी विचारों के कारण तथा एक क्रान्तिकारी प्रदर्शन में हिस्सा लेने के कारण उन्हें विश्वविद्यालय से निष्कासित कर दिया गयाi तत्पश्चात् 1889 में वे समारा चले गये जहॉ उन्होंने स्थानीय मार्क्सवादियों की एक मंडली का गठन कियाi 1891 में उन्होंने सेंट पीटर्सबर्ग विश्वविद्यालय से विधि की परीक्षा में उपाधि प्राप्त करके समारा में ही वकालत करना प्रारम्भ कर दियाi इसके बाद वे 1893 में सेंट पीटर्सबर्ग गये और वहीं अपना निवास स्थान बना लियाi शीघ्र ही वे वहॉ मार्क्सवादियों के सर्वमान्य नेता बन गयेi यहीं पर लेनिन की मुलाकात क्रुप्सकाया नाम की एक महिला से हई जो श्रमिकों में क्रान्ति का बीज बोने में संलग्न थीi 1895 में लेनिन को उनके विचारों के कारण बन्दीगृह में डाल दिया गयाi सन् 1897 में उन्हें तीन वर्ष के लिए साइबेरिया के एक स्थान पर निर्वासित कर दिया गया क्योंकि उन पर देशद्रोह का आरोप लग गया थाi कुछ समय बाद ही नाडेज्दा कुप्सकाया को भी श्रमिकों को क्रान्ति हेतु उकसावा देने के कारण उसी स्थान पर निर्वासित कर दिया गयाi अपने निर्वासन काल में ही लेनिन ने क्रुप्सकाया से शादी कर लीi अपने निर्वासन काल में ही लेनिन ने 30 पुस्तकें लिखींi इन्हीं पुस्तकों में से एक पुस्तक 'रूस में पूँजीवाद का विकास" थीi इस पुस्तक में उन्होंने मार्क्सवादी सिद्धान्तों के आधार पर रूस की आर्थिक उन्नति के विश्लेषण का प्रयत्न कियाi यही वह समय था जब लेनिन ने श्रमिकों या सर्वहारा वर्ग के एक दल का गठन करने की योजना बनाईi सन् 1900 में जब लेनिन का निर्वासन काल खत्म हो गया तो उन्होंने इस्क्रा (चिंगारी) नामक समाचार पत्र का सम्पादन शुरू कियाi इस कार्य में लेनिन के साथ श्रमिकों की मुक्ति हेतु प्रयत्न करने वाले वे रूसी मार्क्सवादी भी थे जिन्हें जारशाही के अत्याचारों से उत्पीड़ित होकर देश के बाहर रहना पड़ रहा थाi सन् 1902 में लेनिन ने एक पुस्तक लिखी जिसका शीर्षक था- "व्हाट इज टू बी डन" इस पुस्तक में लेनिन ने इस बात पर जोर दिया कि क्रान्ति का नेतृत्व ऐसे अनुशासित दल के हाथों में होना चाहिए जो मुख्य रुप से क्रान्ति के प्रति ही समर्पित होi सन् 1903 में रूसी श्रमिकों के समाजवादी लोकतंत्र दल का द्वितीय सम्मेलन हुआi इस सम्मेलन में यह दल दो भागों- बोल्शेविक तथा मेंशेविक में बँट गयाi

सन् 1905-1907 के दौरान रूप की प्रथम क्रान्ति के समय जनसाधारण को उभारने तथा लक्ष्य की ओर अग्रसर करने में लेनिन ने बोल्शेविकों के कार्य का निर्देशन किया तथा अवसर मिलते ही पुन: रूस वापस आ गयाi किन्तु प्रथम रूसी क्रान्ति के विफल हो जाने पर लेनिन को पुन: देश से निर्वासित होना पड़ाi

जनवरी 1912 में सर्वरूसी दल का सम्मेलन प्राग में हुआi लेनिन के निर्देश पर सम्मेलन ने क्रान्तिकारी समाजवादी लोकतंत्र दल से मेनशेविकों को बाहर निकाल दिया गयाi इस सम्मेलन के

पश्चात लेनिन ने स्वयं को दल के पत्र प्रावदा का संचालन करने तथा चतुर्थ राज्य ड्यूमा के बोल्शेविक दल का निर्देशन करने में व्यस्त रखा।

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान लेनिन के नेतृत्व में रूसी साम्यवादियों ने सर्वहारा वर्ग की अन्तर्राष्ट्रीयता का तथा साम्राज्यवादी युद्ध के विरोध का झण्डा ऊपर उठाया। युद्धकाल के दौरान लेनिन ने मार्क्सवादी विचारधारा को और आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया। लेनिन ने अपनी पुस्तक साम्राज्यवाद (1916) में साम्राज्यवाद का विश्लेषण करते हुए बताया कि वह पूँजीवाद के विकास का चरम स्तर और आखिरी मंजिल है। लेनिन ने उन परिस्थितियों पर भी प्रकाश डाला जो साम्राज्यवाद के विनाश को अनिवार्य बना देती है। विश्वयुद्ध के दौरान लेनिन ने स्विटजरलैण्ड में शरण ली थी और वहीं से अनेक कठिनाईयों के बावजूद अपने दल का संघटन तथा एकसूत्रीकरण जारी रखा। फरवरी-मार्च 1917 में रूस में क्रान्ति का आरम्भ होने पर वह रूस लौट आए। उन्होंने क्रान्ति की व्यापक तैयारियों का संचालन किया तथा श्रमिकों एवं सैनिकों की बहुसंख्यक सभाओं में भाषण देकर उनकी राजनीतिक चेतना को बढ़ाने का कार्य किया।

जुलाई 1917 में सत्ता क्रान्तिविरोधियों के हाथ में चली गई। इस समय बोल्शेविक दल ने अपने अग्रगण्य नेता लेनिन के अज्ञातवास की व्यवस्था की। इसी कालखंड में लेनिन ने राज्य तथा क्रान्ति (स्टेट एण्ड रिवाल्यूशन) नामक पुस्तक लिखी। लेखन के अतिरिक्त लेनिन ने गुप्त रूप से अपने दल के संघटन तथा क्रान्ति की तैयारियों के लिए निदेशन करने का कार्य जारी रखा। अक्टूबर 1917 में क्रान्तिविरोधियों की कामचलाऊ सरकार का तख्तापलट कर दिया गया। अन्तत: 7 नवम्बर 1917 को लेनिन की अध्यक्षता में साम्यवादी सोवियत सरकार की स्थापना कर दी गयी।

सोवियत सरकार का प्रमुख बनते ही लेनिन ने शान्ति की स्थापना पर बल देना प्रारम्भ कर दिया। शान्ति बहाली के प्रयत्नों के अन्तर्गत लेनिन ने जर्मनी से सन्धि कर ली। शान्ति बहाली के अतिरिक्त लेनिन ने वास्तविक साम्यवाद की स्थापना की दिशा में भी महत्वपूर्ण फैसले लिए। लेनिन ने बड़े जमींदारों से भूमि छीनकर समस्त भू-सम्पत्ति पर राष्ट्र के स्वामित्व की स्थापना कर दी। बैंकों तथा परिवहन के साधनों के राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। नवस्थापित सोवियत प्रजातंत्र की रक्षा के लिए लेनिन ने लाल सेना का गठन किया। बाहरी देशों के हस्तक्षेपों तथा गृहकलह से जूझते हुए, अपने दल तथा सोवियत जनता का मार्गदर्शन करते हुए 24 जनवरी 1924 को लेनिन का देहावसान हो गया।

3.2.2.2. लेनिन की प्रमुख रचनाएँ

लेनिन ने अपने जीवन में अनेक पुस्तकें लिखीं तथा पत्र आदि का भी सम्पादन किया। लेनिन की महत्वपूर्ण पुस्तकों का विवरण निम्नलिखित है-

(1) दि स्टेट एण्ड रिवोल्युशन (The State and Revolution**)**- 1917 में लेनिन द्वारा लिखी गयी यह पुस्तक उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। अपनी इस रचना के माध्यम से लेनिन ने समाज में राज्य की भूमिका के महत्व को बताया है। साथ ही उन्होंने (साम्यवादी क्रान्ति) श्रमजीवी वर्ग की क्रान्ति की आवश्यकता पर देते हुए कहा कि क्रान्ति के माध्यम से सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को स्थापित करने के लिए सामाजिक लोकतंत्र के सिद्धान्त बहुत ही अपर्याप्त मात्रा में हैं। अपनी इस रचना में लेनिन ने राज्य को बहुत ही सरल शब्दों में परिभाषित करते हुए कहा है कि राज्य शक्ति का एक विशिष्ट संगठन है। यह एक क्रान्ति का संगठन है जिसका कार्य कुछ वर्गों को दबाकर सर्वहारा का अधिनायकत्व स्थापित कराना है।

इस प्रकार 'राज्य तथा क्रान्ति' को राज्य पर लिखा गया एक श्रेष्ठ ग्रन्थ माना जाता है। इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए ल्युसियो कोलेटी ने इस ग्रन्थ को "राजनीतक सिद्धान्त के क्षेत्र में लेनिन का

महानतम योगदान" की संज्ञा दी है।

(2) इम्पीरियलिज्म द हाइयेस्ट स्टेज ऑफ कैपिटालिज्म (imperialism the highest state of capitalism (1946)**)** – ब्लादिमीर लेनिन ने अपने इस ग्रन्थ में साम्राज्यवाद को पूँजीवाद का उच्चतम स्तर माना है। लेनिन ने अपनी इस कृति के अन्तर्गत तत्कालीन विश्व स्थिति का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि पूँजीवाद अब एक नए दौर में पहुँच चुका है जो इसकी अन्तिम अवस्था भी हैं लेनिन के अनुसार पूँजीवाद के दौर में उत्पादन कार्य घरेलू आवश्यकताओं से कहीं अधिक हो रहा है। बैंकों तथा औद्योगिक उत्पादन संघों के मिल जाने से वित्त पूँजीवाद का विकास हो रहा है और इस पूँजी का निवेश तथा निर्यात उन देशों में हो रहा जो अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाएँ हैं। इस तरह की परिस्थितयों में समाज का वर्ग विभाजन अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है। सम्पूर्ण विश्व का एक बहुत बड़ा हिस्सा अत्यन्त शक्तिशाली पूँजीवादी राज्यों के शोषण का शिकार बन गया है। इस प्रकार पूँजीवाद के युग में पहुँच गया है जिसमें इसका स्वरूप सैन्यवादी, परोपजीवी, उत्पीड़नकारी तथा पतनोन्मुख हो गया है।

(3) व्हाट इज टू बी डन (Whatis to be done**)**(1902)**-** लेनिन ने अपनी एक प्रचार पुस्तिका में यह तर्क दिया है कि श्रमिक वर्ग अपने नियोक्ता से मजदूरी, कार्य के घण्टों तथा इसी प्रकार के अन्य मुद्दों पर सामान्य आर्थिक संघर्ष करके स्वत: ही राजनीतिक नहीं बनेगा। इसलिए श्रमिक वर्ग को मार्क्सवाद के मार्ग पर लाने के लिए लेनिन मार्क्सवादियों से एक राजनीतिक दल के निर्माण का आग्रह करता है। लेनिन का आग्रह है कि इस दल में ऐसे समर्पित कार्यकर्ताओं की फौज होनी चाहिए जो मार्क्सवादी राजनीतिक विचारों को श्रमिकों के बीच भरने तथा उन्हें इस विचारधारा को आत्सात कराने का कार्य कर सके।

(4) द डेवलपमेण्ट ऑफ कैपिटालिज्म इन रशिया (The Development of Capitalismin Russia (1899)**)-** यह लेनिन की बहुत ही प्रारम्भिक कृति है। लेनिन ने अपनी इस कृति को साइबेरिया में अपने निर्वासन काल के दौरान लिखा था। कृति में लेनिन को एक मुख्य मार्क्सवादी सिद्धान्तकार के रूप में स्थापित कर दिया।

(5) द प्रोलेटिरियन रिवोल्यूशन एण्ड द रनीगेड कॉटस्की (The Proletarian Revolution and the Renegade Kautsky (1918)**)** – अक्टूबर, नवम्बर 1918 में लेनिन द्वारा लिखी गयी यह कृति बोल्शेविक वाद के बचाव में अनेक तर्क प्रस्तुत करती है। क्योंकि उस समय उदारवादी मार्क्सवाद के बौद्धिक नेता कार्ल कॉटस्की ने बोल्शेविकवाद की आलोचना की।

(6) 'लेफ्ट विंग' कम्युनिज्म : एन इनफेन्टाइल डिसॉर्डर ("Left Wing" Communism : Aninfentile Disorder (1920)**)** – लेनिन द्वारा 1920 में लिखित इस कृति द्वारा बोल्शेविकवाद के उन मिश्रित आलोचकों को जवाब देने के उद्देश्य से लिखी गयी है जो उस समय स्वयं को वाम मार्क्सवाद की विचारधारा के प्रस्तावक मानते थे।

3.2.3. व्यावहारिक मार्क्सवाद – 'लेनिनवाद'

वर्तमान शताब्दी में मार्क्सवादी चिन्तनधारा के सबसे बड़े नेता व सिद्धान्तकार रूस के बी.आई. लेनिन हैं। लेनिन को एक मेधावी सिद्धान्तकार तथा कार्यकुशल व्यक्ति का अद्वितीय संयोग कहा गया है। लेनिन की विचारधारा के अध्ययन हेतु हमें जो चीज आकर्षित करती है, वह यह कि लेनिन ने मार्क्सवादी विचारों के आधार पर एक राज्य की स्थापना की और मार्क्स के आदर्श को प्राप्त करने की कोशिश की। लेनिन अपने प्रयोग में सफल भी रहा। लेनिन द्वारा स्थापित राज्य लगभग उसी स्वरूप में 70 वर्षों तक चलता रहा जिस रूप में लेनिन ने उसे स्थापित किया था। लगभग 70 वर्षों के उपरान्त नव उदारवादी

विचारधारा के प्रभाव के कारण लेनिन का प्रयोग असफल हुआ। अब सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि लेनिन ने कार्ल मार्क्स के विचारों को साकार रूप प्रदान करने के लिए उसके विचारों में कुछ मौलिक संशोधन कर दिए ताकि उसे अपने देश पर लागू किया जा सके। लेनिन के अनुयायी उसकी व्याख्याओं को शास्त्रीय मार्क्सवाद का समयानुकूल रूपान्तरण मानते हैं किन्तु लेनिन के आलोचक इस रूपान्तर को मार्क्सवाद का तोड़ा मरोड़ा रूप मानते हैं।

3.2.3.1. मार्क्सवादी राज्य की स्थापना

रूस में जिस समय लेनिन ने अपनी क्रान्ति प्रारम्भ की उसकी स्थितियॉ मार्क्स के अनुसार सामन्तवादी परिस्थितियॉ थीं। मार्क्स के ही विचारों के अनुरूप ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धान्त के अनुसार ऐतिहासिक विकास के क्रम में सामंतवाद के पश्चात् पूँजीवाद का आगमन होना था और तत्पश्चात् साम्यवाद का। किन्तु इसके उलट लेनिन सीधे सामन्तवाद से साम्यवाद की ओर देश को ले जाना चाहता था। इस कार्य को करने के लिए लेनिन ने मार्क्सवादी साम्यवाद में कुछ संशोधन कर दिए जो उसके जीवन के व्यावहारिक अनुभवों पर आधारित थे। इन संशोधनों के आधार पर ही लेनिन 1917 में रूसी क्रान्ति को सफलतापूर्वक अंजाम तक पहुंचा पाए तथा विश्व का प्रथम साम्यवादी राज्य की स्थापना कर सके। साम्यवादी राज्य में राजनीतिक दल की भूमिका बहुत ज्यादा अहम थी, इसी कारण लेनिन ने राजनीतिक दल के संगठन, कार्य और विचारधारा के सैद्धान्तिक पक्ष पर काफी कुछ लिखा है। व्हाट इज टू बी डन नामक अपने ग्रन्थ में लेनिन ने राजनीतिक आन्दोलन के विकास में अपने राजनीतिक दल की भूमिका की विवेचना करते हुए अन्य क्रान्तिकारी समूहों की कार्यविधि की कटु आलोचना की है। अन्य सभी विचारधाराओं के विरुद्ध उसकी आलोचना का आधार यह था कि वे श्रमिक वर्ग के नेतृत्व को सही तरह से न तो परिभाषित कर पाए और न ही व्यवहार में लागू कर पाए। लेनिन का आक्षेप था कि पूर्ववर्ती विचारधाराओं में सामन्तवाद तथा धनिक वर्ग के विरुद्ध संघर्ष में जिस प्रकार के नेतृत्व की आवश्यकता होती है, उसका अभाव था। लेनिन ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि केवल उसका दल ही इस नेतृत्व को प्रदान करने में समर्थ है। बाद में घटित हुए घटनाक्रम ने इस बात को सिद्ध भी कर दिया। अपनी पुस्तक में लेनिन ने अपने दल के कार्यक्रमों, नीतियों तथा विचार को भी विवेचित किया। लेनिन का मानना था कि एक सफल राजनीतिक दल के लिए यह आवश्यक है कि उसकी उपस्थिति राष्ट्रीय स्तर पर होनी चाहिए।

3.2.3.2. प्रजातांत्रिक केन्द्रीकरण पर बल

क्रान्ति की सफलता के पश्चात् लेनिन ने स्वयमेव ही अपनी उक्त पुस्तक में दिए गये विचारों को अधिक महत्व नहीं दिया। क्योंकि लेनिन ने अब अपना मार्ग बदल दिया था। यह नया मार्ग राजनीतिक दल के प्रजातांत्रिक केन्द्रीकरण का था जिसे 1906 में लेनिन के दल ने स्वीकार किया था। 1905 की असफल क्रान्ति के पश्चात् बोल्शेविक तथा मेन्शेविक के मध्य मतभेद प्रारम्भ हो गए और धीरे-धीरे लेनिन निरंकुशवादी प्रवृत्तियों को प्रदर्शित करने लगा जो लेनिन के अनुसार राजनीतिक विचारधारा के सफल क्रियान्वयन के लिए आवश्यक थी। लेनिन के प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त के अनुसार एक राजनीतिक दल में निर्णय प्रक्रिया का स्वरूप प्रारम्भ में प्रजातांत्रिक होना चाहिए। इसमें सबसे निचले स्तर पर पार्टी के नीतिगत निर्णयों को करने से पूर्व स्वतंत्र एवं खुली बहस होनी चाहिए, जिसमें सभी प्रकार के मतों को उचित स्थान दिया जाए। इस प्रकार से लिए गये सभी मतों को ध्यान में रखकर उससे ऊपरी स्तर पर राजनीतिक दल में प्रतिवेदन दिया जाए। इस प्रकार प्रत्येक स्तर पर उन निर्णयों का परीक्षण हो और अन्त में वह केन्द्रीय समिति के पास पहुँचे। केन्द्रीय समिति में राष्ट्र, विचारधारा और सामूहिक

हितों को ध्यान में रखकर जो भी निर्णय किया जाए उसे राजनीतिक दल के सभी स्तरों पर कठोरता से लागू किया जाएi प्रजातांत्रिक केन्द्रीकरण सिद्धान्त के अनुसार केन्द्रीय समिति द्वारा एक बार निर्णय हो जाने के बाद उस पर किसी प्रकार की टीका टिप्पणी की इजाजत नहीं होतीi केन्द्रीय समिति के निर्णय के पश्चात् उसको राजनीतिक दल का विचार और नीति मानकर उसके क्रियान्वयन का कार्य संगठित रूप से किया जाता हैi इस प्रकार प्रजातांत्रिक केन्द्रीकरण में निर्णय प्रक्रिया का प्रारम्भ तो प्रजातांत्रिक तरीके से होता है किन्तु निर्णय करने के पश्चात् इसका क्रियान्वयन तानाशाही पूर्ण तरीके से होता हैi प्रजातांत्रिक केन्द्रीकरण की धारणा के पीछे लेनिन का विचार यह था कि प्रजातांत्रिक दल होने से निर्णयों का क्रियान्वयन सही तरीके से नहीं हो पाता, इसलिए निर्णयों के क्रियान्वयन में कठोरता बरतनी आवश्यक हैi

3.2.3.3. लेनिन की क्रान्ति सम्बन्धी विचार

लेनिन ने अपनी क्रान्ति सम्बन्धी विचारधारा को भी नवीन तरीके से प्रस्तुत किया हैi लेनिन ने अपनी पुस्तक स्टेट एण्ड रिवोल्युशन में क्रान्ति के महत्व, उसके कार्यक्रम तथा क्रान्ति के संचालन में राजनीतिक दल की भूमिका को विवेचित किया हैi लेनिन के क्रान्ति सम्बन्धी विचार ट्रॉटस्की से बिल्कुल अलग हैंi लेनिन का मत है कि बुर्जुआ आन्दोलन होने के साथ ही समाजवाद के लिए प्रयास आरम्भ हो जाने चाहिएi लेकिन ट्रॉटस्की की आलोचना इस वजह से करता है कि उसने ऐतिहासिक युग की विभिन्नताओं को नहीं समझi ट्रॉटस्की ने यूरोप तथा रूस की स्थित को समान समझ जबकि वास्तव में यूरोप में बुर्जुआ क्रान्ति पहले ही हो चुकी थी जबकि रूस में बुर्जुआ क्रान्ति होने का समय अब आया थाi

3.2.3.4. लेनिन का साम्राज्यवाद सम्बन्धी विचार

लेनिन ने साम्राज्यवाद पर भी अपना विचार व्यक्त कियाi लेनिन का मत था कि साम्राज्यवाद पूँजीवाद की अन्तिम अवस्था है और साम्राज्यवाद ने पूँजीवाद के चरित्र को बदल दिया हैi लेनिन का मत है कि साम्राज्यवाद के कारण पूँजीवाद अब एकाधिकार पूँजीवाद बन गया हैi लेनिन साम्राज्यवाद सम्बन्धी अपने विचारों मे ब्रिटिश उदारवादी, हॉब्सन, इल्फर्डी तथा बुखारिन से प्रभावित हुआi लेनिन का मानना है कि अति उत्पादन, विकासशील देशों में बाजार की खोज तथा पूँजी के निवेश के कारण साम्राज्यवाद को बल मिला हैi लेनिन ने क्रान्ति की आवश्यकता में साम्राज्यवाद की दोषपूर्ण नीतियों की भूमिका को बहुत महत्वपूर्ण माना हैi लेनिन के अनुसार साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों के कारण ही प्रथम विश्वयुद्ध हुआ और यदि क्रान्ति न की गई तो रूस जैसे देश अराजकता के शिकार हो जायेंगेi

3.2.3.5. लेनिन के राज्य सम्बन्धी विचार

लेनिन ने स्टेट एण्ड रिवोल्युशन में अपने राज्य सम्बन्धी विचारों को व्यक्त किया हैi लेनिन ने इस पुस्तक को क्रान्ति के बाद राज्य की भूमिका के बारे में बुखारिन के साथ विवाद के पश्चात लिखा थाi बुखारिन मार्क्सवादी विचारधारा का समर्थक होने के नाते मानता था कि श्रमिक क्रान्ति के पश्चात राज्य को समाप्त हो जाना चाहिएi किन्तु लेनिन बुखारिन से असहमति रखते हुए कहता है कि क्रान्ति के बाद भी राज्य की आवश्यकता खत्म नहीं हो जाती हैi क्रान्ति के पश्चात राज्य संस्था की आवश्यकता शोषक का शोषण करने के लिए हैi लेनिन राज्य की परिभाषा शोषण के एक यंत्र के रूप में करता हैi लेनिन ने राज्य का चित्रण एक ऐसी शक्तिमूलक संस्था के रूप में किया है जिसका कार्य हिंसा के बल पर एक विशेष वर्ग का दमन करना हैi लेनिन का मत है कि क्रान्ति के बाद राज्य के विघटन की सम्भावनाएँ बहुत

प्रबल हो जाती हैं किन्तु फिर भी लेनिन राज्य को बनाये रखने के पक्ष में था**i** लेनिन का मत है कि राज्य की प्रकृति को बदलना तो सम्भव नहीं है किन्तु उसके उद्देश्य को अवश्य बदला जा सकता है**i** इसलिए लेनिन क्रान्ति के पश्चात शोषक वर्ग का शोषण करने के लिए राज्य की निरन्तरता को बनाए रखना चाहता है**i** लेनिन मानता है कि राज्य शोषक वर्ग का शोषण तभी कर सकता है जब क्रान्तिकारी दल राज्य पर नियंत्रण स्थापित करके उसे ऐसा करने के लिए विवश कर दे**i** लेनिन ने व्यवहार में ऐसा करने का प्रयत्न भी किया**i** कालान्तर में राजनीतिक दल और राज्य में अन्तर करना ही असम्भव हो गया**i**

3.2.4. लेनिन तथा मार्क्सवाद

लेनिन के विचारों के मूल में मार्क्सवाद होने के कारण हम लेनिन के विचारों का मार्क्सवाद के आधार पर परीक्षण कर सकते हैं**i** एक दृष्टिकोण के अनुसार लेनिन को एक सच्चा तथा कट्टर मार्क्सवादी माना जाता है, जिसने एक सच्चे अनुयायी की तरह अपने गुरु के सिद्धान्तों की व्याख्या की तथा उसका अनुकरण किया**i** एक अवसर पर लेनिन ने इस बात को स्वयं ही स्वीकार किया है कि "स्पष्ट दिखाई देने वाले सत्य की उपेक्षा किए बिना और बुर्जुआ प्रतिक्रियावादी झूठ के फंदे में फँसे बिना, आप मार्क्सवादी दर्शन के किसी भौतिक विचार को हटा नहीं सकते क्योंकि यह ऐसा है मानो कोई इस्पात का ठोस पिण्ड हो**i**" इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए स्टालिन ने बलपूर्वक कहा कि लेनिन ने न तो मार्क्सवाद के किसी सिद्धान्त का खंडन किया और न ही उसने मार्क्सवाद के भण्डार में कोई नया सिद्धान्त जोड़ा**i** स्टालिन ने लेनिनवाद के महत्वपूर्ण सूत्रों की ओर संकेत किया है-

(1) लेनिनवाद मार्क्सवाद का समयानुकूल रूपान्तरण है**i** 19वीं सदी की समकालीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में मार्क्स तथा एंजिल्स ने जो कुछ भी कहा, 20वीं सदी के अप्रत्याशित घटनाक्रम के सन्दर्भ में लेनिन ने उसकी व्याख्या की**i**

(2) लेनिनवाद, मार्क्सवाद का व्यावहारिक रूप है क्योंकि मार्क्स तथा ऐंजिल्स के सिद्धान्तों को लेनिन ने व्यावहारिक रूप प्रदान किया**i**

(3) लेनिनवाद विशेषत: रूस की विचित्र परिस्थितियों में मार्क्सवाद का क्रियान्वयन है**i**

लेनिन के बारे में स्टालिन की उक्त धारणाएँ लेनिन के उन आलोचकों को सन्तुष्ट न कर सकीं जो लेनिन को एक ऐसे कुशल नेता तथा चतुर सिद्धान्तकार के रूप में देखते थे जिसने अपनी इच्छानुसार अपने गुरु का अनुसरण किया और जहाँ उसे ऐसा लगा कि अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए किसी प्रकार के संशोधन की आवश्यकता है वहाँ अपने गुरु के विचारों में संशोधन कर दिया**i** हैलोवेल ने इस दिशा में तीन निष्कर्ष प्राप्त किये हैं-

(1) मार्क्सवाद का आग्रह इस बात पर है कि एक सफल समाजवादी क्रान्ति अत्यधिक उन्नत पूँजीवादी देश में ही की जा सकती है**i** किन्तु लेनिन ने मार्क्सवादी विचारधारा के ठीक विपरीत समाजवादी क्रान्ति को रूस-जैसे पिछड़े देश में कृषक वर्ग के माध्यम से सम्भव कर दिखाया**i** क्रान्ति के पश्चात की स्थिति पर मार्क्स का मत था कि क्रान्ति के तत्काल बाद भूमि का सामूहिकीकरण किया जाना चाहिए**i** किन्तु यहाँ भी लेनिन मार्क्स के विपरीत अपना तर्क प्रस्तुत करते हुए कहता है कि समाजवादी क्रान्ति लाने के लिए कृषक वर्ग के असन्तोष का प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है**i** लेनिन ने एक तकनीक के रूप में कृषकों को यह विश्वास करने हेतु प्रोत्साहित किया कि क्रान्ति के उपरान्त वे व्यक्तिगत रूप से भूमि के मालिक बन जाएँगे**i** इसके अतिरिक्त लेनिन सफल क्रान्ति हो जाने के बाद भी थोड़े समय के लिए कृषकों में इस भावना को बनाए रखना चाहता है कि वे ही भूमि के व्यक्तिगत मालिक हैं**i**

(2) मार्क्स बहुत हद तक साम्राज्यवाद को ठीक मानता था। हालांकि मार्क्स की ऐसी धारणा के पीछे साम्राज्यवाद की कोई अच्छाई नहीं थी बल्कि साम्राज्यवाद के प्रति सकारात्मक धारणा की जड़ में मार्क्स का यह विश्वास छिपा था कि साम्राज्यवाद के द्वारा पूँजीवाद सम्पूर्ण विश्व भर में शीघ्र ही फैल जाएगा जिससे समाजवाद को जल्दी से लाया जा सकेगा। मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद की व्याख्या के अनुसार समाजवाद की स्थापना पूँजीवाद के पश्चात् ही की जा सकती थी। इसीलिए मार्क्स साम्राज्यवाद का समर्थक था। इसके विपरीत लेनिन का विश्वास था कि राष्ट्रवादी विद्रोहों को प्रोत्साहन दिया जाए चाहे उनका स्वरूप समाजवादी हो या नहीं क्योंकि पूँजीवाद के विरुद्ध सभी पक्षों का सहयोग लाभदायक होता है, चाहे वे पक्ष सही रूप में सर्वहारा हों या नहीं। लेनिन की सर्वोच्च इच्छा यह थी कि रूस में सफल क्रान्ति की जाए और यदि इस लक्ष्य को पूर्ण करने के लिए मार्क्सवादी सिद्धान्त का त्याग करना पड़े अथवा उसे संशोधित करना पड़े तो लेनिन मार्क्सवाद की बलि चढ़ाने अथवा उसे संशोधित करने के लिए भी तैयार था।

(3) मार्क्स एवं लेनिन सर्वहारा वर्ग की भूमिका की व्याख्या के सन्दर्भ में भी परस्पर भिन्न विचार रखते हैं। मार्क्स के अनुसार जैसे-जैसे पूँजीवाद के अन्तर्विरोध अधिकाधिक स्पष्ट तथा संकटपूर्ण बनेंगे सर्वहारा वर्ग अधिक चेतनायुक्त तथा जुझारू बनेगा। लेनिन का मत मार्क्स के मत से अलग है। लेनिन के अनुसार यदि सर्वहारा वर्ग को अकेला छोड़ दिया जाए उसमें केवल श्रमिक संघ की मानसिकता ही विकसित होगी। लेनिन मानता है कि जब तक श्रमिक वर्ग को इस चेतना के प्रति बाहर से संवेदनायुक्त न बनाया जाए तब तक वह वर्ग संघर्ष की असामंजस्यपूर्ण स्वभाव वाली समाजवादी चेतना को विकसित करने के योग्य नहीं होगा। यहाँ लेनिन मार्क्सवाद का प्रत्यक्ष खंडन करते हुए कहता है कि सर्वहारा वर्ग को समाजवादी चेतना से सम्पन्न किया जाना है, संगठित किया जाना है, क्रान्ति में उसका नेतृत्व करना है, इन समस्त प्रयोजनों की सिद्धि का एकमात्र उपकरण उसका साम्यवादी दल है।

उक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि लेनिन द्वारा मार्क्सवाद में संशोधन अपने गुरु के विचारों को समयानुकूल बनाया गया संस्करण तथा किसी विशेष उद्देश्य के लिए अपने गुरु की शिक्षाओं में चतुराईपूर्वक हेर-फेर करना अथवा दोनों की भाँति दिखाई पड़ता है। यही कारण है कि लेनिन पर सावधानीपूर्ण अवसरवाद का आरोप लगाया जाता है, जो पूरी तरह निराधार नहीं है। इस सन्दर्भ में सेबाइन ने उचित ही लिखा है- "लेनिन का मार्क्सवाद अपने गुरु के सिद्धान्त के रुढ़िवादी पालन की कट्टर अभिव्यक्ति तथा साथ ही जहाँ परिस्थितियाँ इसके संशोधन की माँग करती हों, वहाँ उन बिन्दुओं पर पूरी छूट के साथ उसमें परिवर्तन दोनों की विसंगति प्रस्तुत करता है।"

लेनिन ने मार्क्स तथा एंजिल्स के विचारों को व्यावहारिक रूप प्रदान कर विश्व को एक नई वस्तु प्रदान की। लेनिन नि:सन्देह रूप से एक श्रेष्ठ सिद्धान्तकार, एक महान युक्तिकार तथा एक कुशल नीतिज्ञ था। इसी कारण वह शास्त्रीय मार्क्सवाद को उचित रूप में मार्क्सवाद लेनिनवाद के नाम से जाना जाता है। यह उचित ही कहा गया है कि- "मार्क्स का यह कथन कि समाजवादी समाज की स्थापना केवल किसी उच्च रूप में सभ्य तथा औद्योगीकृत देश में की जा सकती है। लेनिन द्वारा मार्क्सवाद को रूस में स्थापित करने के बावजूद खंडनीय है। फिर चाहे यह कहा जाए कि उसका मार्क्सवाद दोगला है, फिर भी जो कुछ उसने रूस तथा विश्व को दिया है कोई उसके महत्व को कम नहीं कर सकता है।

3.2.5. विचारधारा की भूमिका पर लेनिन के विचार

लेनिन द्वारा विचारधारा की भूमिका के प्रश्न पर जो विचार व्यक्त किये गये हैं उन विचारों के मूल में कहीं न कहीं मार्क्स के इसी बिन्दु पर व्यक्त किये गये विचार छिपे हैं। इसलिए हमें विचारधारा के

प्रश्न पर पहले मार्क्स के विचारों को समझना आवश्यक है। विचारधारा के प्रश्न पर मार्क्स ने निम्नलिखित विचार प्रस्तुत किए-

विचारधारा की भूमिका पर मार्क्स के विचार- मार्क्स ने सर्वप्रथम विचारधारा को परिभाषित करते हुए कहा है कि विचारधारा उन विचारों का समुच्चय है जिन्हें प्रभुत्वशाली वर्ग अपने शासन की वैधता को स्थापित करने के उद्देश्य से सम्पूर्ण समाज के लिए मान्य बना देता है। अत: इतिहास के प्रत्येक दौर में जब भी धनवान वर्ग सत्तारूढ़ होता है तो वह कानून, धर्म, नैतिकता आदि के माध्यम से निजी सम्पत्ति की रक्षा के सम्बन्ध में अत्यन्त ही सकारात्मक विचार जनता के मन और मस्तिष्क में स्थापित कर देता है, जिससे जनता उस धनवान वर्ग की सम्पत्ति का विरोध न करे। अथवा उस सत्ता को ही अपने लिए सर्वाधिक उपयुक्त अथवा वैध मान ले। विचारों के उपरोक्त समुच्चय तर्क या विवेक पर आधारित नहीं होते हैं बल्कि धनवान वर्ग की स्वार्थपूर्ति के उद्देश्य मात्र से तर्कसंगत विचारों के रूप में जनता के मन में अंकित कर दिए जाते हैं। जनता भी उस विचार की तर्कसंगतता की परख किए बिना ही उसे आत्मसात कर लेती है। यही कारण है कि मार्क्स ने विचारधारा को मिथ्या चेतना की संज्ञा दी है। विचारधारा की आवश्यकता के सम्बन्ध में मार्क्स कहता है कि विचारों की आवश्यकता चिरस्थाई नहीं होती है। बल्कि विचारधाराएँ केवल उसी समय तक ही आवश्यक होती हैं जब तक कि धनवान वर्ग समाज को अनेक वर्गों में बॉटकर अपनी सत्ता को कायम रखना चाहता है अथवा अपनी सत्ता को चलाते रहना चाहता है। मार्क्स का मत है कि बुर्जुआ वर्ग के ठीक विपरीत सर्वहारा या कामगार वर्ग को अपनी सत्ता को अस्तित्वमान रखने के लिए किसी मिथ्या चेतना की नहीं बल्कि उपयुक्त वर्ग चेतना की ही आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त बुर्जुआ वर्ग विचारधारा के आधार पर समाज में बॉटे रखने का प्रयत्न करता है किन्तु सर्वहारा वर्ग को सामाजिक वर्ग विभाजन की आवश्यकता भी नहीं रहती है। यही कारण है कि जब सर्वहारा वर्ग सत्तारूढ़ होता है तो वह समाज को बॉटकर रखना ही नहीं चाहता है। इस प्रकार क्योंकि सर्वहारा वर्ग को स्वयं को छिपाने के लिए अथवा अच्छाई का ढोंग करने के लिए किसी मिथ्या चेतना की आवश्यकता नहीं रहती इसलिए सर्वहारा वर्ग के लिए विचारधारा का भी कोई महत्व नहीं है।

विचारधारा की आवश्यकता पर लेनिन के विचार- मार्क्स तो सर्वहारा वर्ग के लिए विचारधारा की कोई आवश्यकता नहीं समझता किन्तु लेनिन मार्क्स के विचारों से सहमति नहीं रखता। लेनिन ने 1902 में प्रकाशित अपनी कृति 'व्हाट इज टू बी डन' के अन्तर्गत यह तर्क दिया कि सर्वहारा वर्ग को भी विचारधारा की आवश्यकता है। इसके पीछे लेनिन का मुख्य तर्क यह था कि किसी भी वर्ग को उसके स्वयं के लक्ष्य की ओर लगातार प्रेरित करने तथा लक्ष्य को पूर्ण करने के लिए उपयुक्त कार्यक्रम तथा नीतियों का सुझाव देने के लिए एक स्पष्ट तथा संगठित विचारधारा की आवश्यकता होती है। लेनिन ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि जिस प्रकार पूँजीपति के लिए पूँजीवादी विचारधारा जरूरी है, उसी प्रकार सर्वहारा वर्ग के लिए साम्यवादी विचारधारा नितान्त आवश्यक है। यदि सर्वहारा वर्ग के पास स्वयं की कोई सुदृढ़ विचारधारा नहीं होगी तो वे अपने उद्देश्यों में कभी भी कामयाब नहीं हो पाएँगे। इसके अतिरिक्त यह भी सम्भव है कि वे पूँजीवादी विचारधारा से प्रभावित होकर अपना मार्ग भटक जाएँ। इस प्रकार लेनिन ने इस बात पर बहुत बल दिया कि पूँजीवादी विचारधारा से संघर्ष करने के लिए तथा सर्वहारा का अधिनायकत्व स्थापित करने के लिए एक सुदृढ़ साम्यवादी विचारधारा का विकास तथा प्रचार-प्रसार नितान्त आवश्यक है।

3.2.6. लेनिन की राज्य सम्बन्धी व्याख्या

लेनिन ने राज्य के बारे में अपने विचारों का आरम्भ मार्क्स तथा एंजिल्स की भॉति राज्य को एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के शोषण तथा दमन का उपकरण मानने के साथ किया है। किन्तु लेनिन का मुख्य

योगदान सफल समाजवादी क्रान्ति के उपरान्त राज्य की प्रकृति तथा पूर्णतया मुक्त मानव के जीवन की प्रत्याभूति के लिए अंतत: इसके लोप में देखा जाना चाहिए। लेनिन के अनुसार क्रान्ति के बाद बुर्जुआ शासन को उखाड़ कर फेंक दिया जाएगा तथा उसके स्थान पर श्रमिकों का एक अर्द्ध-राज्य स्थापित किया जाएगा। लेनिन का मत है कि यह नया राज्य आवश्यक रूप से वर्गविहीन संगठन होगा तथा यह नवीन राज्य श्रमिक वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करेगा। श्रमिक वर्ग का प्रतिनिधि होने के कारण राज्य निर्दयतापूर्वक सभी प्रतिक्रियावादी तथा क्रान्तिविरोधी शक्तियों का दमन करेगा। जनवरी 1918 में लेनिन ने घोषणा की कि "बोल्शेविकों को इस पुराने, मूर्खतापूर्ण, बर्बर, घृणित तथा निराशाजनक पूर्वाग्रह को छोड़ देना चाहिए कि केवल धनवान ही राज्य का प्रशासन चला सकते हैं क्योंकि प्रत्येक साधारण कार्यकर्ता, जो पढ़ने लिखने में सक्षम है, संगठन का कार्य कर सकता है। इस प्रकार के लोगों का विशाल जन समूह मौजूद है।"

3.2.6.1. संक्रमणकालीन समाजवादी राज्य की स्थापना

पूँजीवादी राज्य के विनाश के पश्चात 'अर्द्ध अथवा संक्रमणकालीन राज्य' के रूप में 'नए राज्य' (समाजवादी राज्य) का निर्माण होगा। समाजवादी राज्य में सम्पूर्ण राजनीतिक सत्ता सर्वहारा वर्ग के हाथों में निहित होगी। लेनिन भी अन्य मार्क्सवादियों की भाँति राज्य को शोषण के यंत्र के रूप में परिभाषित करता है। लेनिन का मत है कि क्रान्ति के बाद अस्तित्व में आए हुए राज्य की भी प्रकृति-शोषण करने की ही रहेगी। किन्तु समाजवादी राज्य में राज्य सभी प्रतिक्रियावादी तथा क्रान्तिविरोधी शक्तियों का दमन करने का कार्य करेगा। अर्थात समाजवादी राज्य में राज्य शोषक वर्ग का ही दमन करेगा। इस प्रकार से सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद स्थापित होगा। सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतंत्र की घोषणा करने में तो लेनिन, मार्क्स तथा एंजिल्स का कट्टर समर्थक है किन्तु क्रान्ति के सफल होने के बाद तुरन्त ही राज्य को खत्म करके अराजकतावाद की स्थापना करने सम्बन्धी मार्क्सवादी चिन्तन का लेनिन ने खंडन किया है। लेनिन ने कहा है कि "सर्वहारा के अधिनायकवाद के नये संक्रमणकालीन राज्य को पूर्ववर्ती राज्य से वर्ग संगठन तथा दमन का उपकरण होने की अनिवार्य विशेषता को बनाए रखने हेतु स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं सीखना है। परन्तु वास्तविकता तो यही है कि जैसे ही सर्वहारा के अधिनायकवाद को एक राज्य होने की मान्यता मिल जाएगी, उसी समय स्वतंत्रता का वंचन हो जाएगा। यदि राज्य का अस्तित्व होगा तो स्वतन्त्रता नहीं होगी और यदि स्वतंत्रता का अस्तित्व होगा तो राज्य नहीं होगा।"

3.2.6.2. संक्रमणकालीन समाजवादी राज्य के कार्य

संक्रमणकालीन समाजवादी राज्य की अपनी अवधारणा को लेकर लेनिन आगे बढ़ता है और कहता है कि सर्वहारा का अधिनायकवाद युद्ध का अन्त नहीं है बल्कि यह एक भिन्न लक्ष्य तथा भिन्न स्वरूप के साथ उसी की निरन्तरता है। लेनिन का विश्वास है कि राज्य अब अपने शत्रुओं को कुचलने तथा उनका समूल नाश करने हेतु कृत संकल्प हो अपने शत्रुओं के साथ युद्ध में लीन हो जाएगा। राज्य अपने शत्रुओं का विनाश इस प्रकार से करेगा कि वे कभी भी उसके विरोधी के रूप में उभर ही न सकें। किन्तु यहाँ पर एक तथ्य ध्यान रखने योग्य यह है कि राज्य के समस्त कार्यों का लक्ष्य स्वयं अपना अन्त करने के लिए ही होगा। इस प्रकार का राज्य वास्तव में सर्वहारा का प्रजातंत्र होगा। यह राज्य प्रशासन के प्रत्येक स्तर पर श्रमिकों की भागीदारी को उनके स्वतंत्र तथा स्वैच्छिक संघों के माध्यम से सुनिश्चित करेगा। ऐसा राज्य प्रत्येक प्रकार के शोषण को प्रतिबन्धित करते हुए उन समस्त सामाजिक व आर्थिक बुराइयों को दूर करेगा जिनका अस्तित्व बुर्जुआ राज्य में होता है। लेनिन के राज्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण

विशेषता यह है कि राज्य अपनी समस्त शक्तियों का प्रयोग साम्यवादी दल के माध्यम से ही करता है। इसके अतिरिक्त साम्यवादी दल का संविधान उस राज्य को मजदूरों तथा परिश्रम करने वालों का राज्य घोषित करेगा। इसलिए लेनिन ने कहा है कि सोवियत प्रजातंत्र विश्व के बुर्जुआ प्रजातंत्र से करोड़ों गुना अधिक प्रजातांत्रिक है। "संसदीय प्रजातंत्र के सिद्धान्त की यह पहली खुली व प्रबल अभिव्यक्ति है।'

3.2.6.3. राज्य का अन्त तथा मुक्त साम्यवाद का उदय

अन्त में लेनिन ने कहा है कि राज्य की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि यह अपने अन्त की दिशा में निरन्तर कार्य करेगा। क्योंकि समाजवादी राज्य को अन्तत: लुप्त ही होना है। समाजवादी राज्य के अन्त के पश्चात मुक्त साम्यवाद का उदय होगा। यह एक ऐसा साम्यवादी राज्य होगा जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमतानुसार कार्य करेगा तथा अपनी आवश्यकतानुसार प्राप्त करेगा। साम्यवाद के आगमन तथा राज्य के अन्त पर प्रकाश डालते हुए 'ग्रे' ने कहा है कि "बुर्जुआ राज्य के मलबे पर सर्वहारा के अधिनायकवाद की स्थापना उस बिन्दु का प्रतिनिधित्व करती है जहाँ से, सिद्धान्त रूप में, राज्य का लोप शुरू होना चाहिए। राज्य के लुप्त होने के साथ ही वर्गों का लुप्त होना भी आरम्भ हो जाता है तथा वर्गों के क्रमिक लोप के साथ राज्य तथा वास्तव में स्वयं दल का भी अन्त हो जाता है।"

निष्कर्षत: लेनिन के मतानुसार- "सर्वहारा के अधिनायकवाद के रूप में राज्य साम्यवाद नहीं है, वह संक्रमणकाल है जिसमें राज्य का लोप हो रहा है।"

3.2.7. लेनिन की साम्यवादी दल सम्बन्धी अवधारणा

मार्क्स ने यह विचार प्रस्तुत किया था कि पूँजीवाद जब अपने चरम स्तर पर पहुँच जाएगा उस समय सम्पूर्ण सर्वहारा वर्ग के अन्दर वर्ग चेतना का संचार होगा। वर्ग चेतना के कारण श्रमिक वर्ग आपस में मिलकर एक दृढ़ संगठन का निर्माण कर लेगा। संगठन के निर्माण के उपरान्त श्रमिक वर्ग अपने विशाल तथा सुदृढ़ संगठन के बल पर पूँजीपति वर्ग को धराशाई कर देगा। चूँकि लेनिन एक व्यावहारिक राजमर्मज्ञ थे इसलिए उन्होंने यह अनुभव कर लिया कि सम्पूर्ण सर्वहारा वर्ग एक बहुत बड़ा वर्ग है और सम्पूर्ण वर्ग को सचेत और संगठित होने में बहुत ज्यादा समय लगेगा और इस कार्य में बहुत सी बाधाएँ भी आएँगी। लेनिन का मत है कि पूँजीपति कभी मजदूर नेताओं को तरह-तरह के प्रलोभन देकर तो कभी कामगार वर्ग को छोटी-छोटी रियायतें देकर क्रान्ति के मार्ग से विमुख करने को तत्पर होंगे। अत: क्रान्ति के शक्तियों को सक्रिय करने के लिए सर्वहारा वर्ग के अधिकाधिक सचेत, समर्थ तथा सूझ-बूझ वाले सदस्यों को आगे आना चाहिए और क्रान्ति की बागडोर संभाल लेनी चाहिए। लेनिन ने क्रान्ति जैसे महत्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करने के लिए रूस में स्वयं ही ऐसे संगठन की नींव रखी जिसे उसने साम्यवादी दल का नाम दिया। लेनिन ने श्रमिकों के दल (साम्यवादी दल) की भूमिका के महत्वपूर्ण विषय के बारे में लेनिन ने ऐसी व्याख्या प्रस्तुत की जिसकी मार्क्स तथा एंजिल्स ने कल्पना तक नहीं की थी और न ही उतने प्रबल रूप में समर्थन किया था। लेनिन ने श्रमिक वर्ग के हरावल दस्ते के रूप में साम्यवादी दल की भूमिका पर विशेष बल दिया है। लेनिन के अनुसार दल ही श्रमिक वर्ग को विचारधारा की शिक्षा देगा, मजदूरों को संगठित करेगा, क्रान्ति की योजना तैयार करेगा और क्रान्ति के पश्चात समाजवादी ढंग से शासन चलाएगा। लेनिन ने साम्यवादी दल के नेतृत्व को 'सर्वहारा वर्ग की अग्रपंक्ति' (Vangaurd of the Proletariat) की संज्ञा दी है।

3.2.7.1. पूँजीवादी युग में साम्यवादी दल की भूमिका

लेनिन के अनुसार पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत भी समाज दो वर्गों में विभाजित होता है। जिसमें एक वर्ग पूँजीपतियों का होता है तथा दूसरा वर्ग सर्वहारा श्रमिकों का होता है। पूँजीवादी व्यवस्था

में सामाजिक-आर्थिक सम्बन्ध परस्पर प्रतिस्पर्धा पर आधारित होते हैंi प्रतिस्पर्धा के कारण प्रतिस्पर्धी राजनीतिक दल अस्तित्व में आते हैं और ये अपने-अपने वर्ग के हितों को ही बढ़ावा देते हैंi इन विभिन्न दलों में केवल साम्यवादी दल ही सर्वहारा वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व करता हैi पूँजीवादी व्यवस्था में साम्यवादी दल की भूमिका की विवेचना करते हुए लेनिन कहते हैं कि पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजीवादी दल सत्तारूढ़ होते हैं और इसलिए वहॉं साम्यवादी दल प्रमुख विपक्ष की भूमिका निभाता हैi विपक्ष की भूमिका निभाने के अतिरिक्त साम्यवादी दल का कार्य जनसाधारण में साम्यवादी विचारधारा का प्रचार करना भी हैi साथ ही साथ साम्यवादी दल क्रान्तिकारी संघर्ष को आगे बढ़ाकर पूँजीवादी व्यवस्था को धराशाई करने का बीड़ा उठाता हैi

लेनिन के मतानुसार पूँजीवादी समाज में परस्पर प्रतिस्पर्धी दल इसलिए पनपते हैं क्योंकि वे परस्पर विरोधी वर्गों के परस्पर विरोधी हितों का प्रतिनिधत्व करते हैंi साम्यवादी समाज में ऐसी किसी प्रतिस्पर्धा की गुंजाइश ही नहीं होगी, इसके बावजूद वहॉं साम्यवादी दल इसलिए आवश्यक होगा ताकि वह पूँजीवाद विरोधी संघर्ष में अग्रिम पंक्ति की भूमिका संभाल सकेi साम्यवादी दल उन समस्त कार्यों को सम्पन्न करेगा जो वस्तुत: क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग को सम्पन्न करना चाहिएi लेनिन का यह भी विचार है कि सर्वहारा वर्ग में चेतना केवल बाहर से ही लाई जा सकती है, आन्तरिक आर्थिक संघर्ष के परिणामस्वरूप उनमें चेतना का विकास नहीं किया जा सकता हैi

3.2.7.2. चेतना के भेद तथा उनका विकास

लेनिन ने सर्वहारा वर्ग में विकसित होने वाली चेतना के दो रूप बताए हैं-

(i) मजदूर संघ चेतना

(ii) सामाजिक लोकतंत्रीय चेतना

लेनिन के अनुसार मजदूर संघ की चेतना, चेतना का वह रूप है जो मजदूरों को बहुत आसानी से तथा स्वाभाविक ढंग से प्राप्त जो जाएगी किन्तु सामाजिक लोकतंत्रीय चेतना, चेतना का वह जटिल स्वरूप है जिसे विकसित करना साम्यवादी दल का ही कार्य हैं लेनिन साम्यवादी दल को इस कारण से भी महत्वपूर्ण मानता है, क्योंकि उसे डर है कि उन्नत पूँजीवादी अवस्था में पूँजीपति कुछ मजदूर नेताओं को पैसे का लालच देकर खरीद लेते हैंi मजदूर संघ भी पूँजीपतियों से छोटी-छोटी रियायतें प्राप्त करने में अपनी शक्ति को लगा देते हैं और अपने मूल लक्ष्य को ही भूल जाते हैंi इसलिए एक ऐसे दल का अस्तित्व आवश्यक हो जाता है जो सर्वहारा वर्ग को लगातार पूँजीवाद को उखाड़ फेंकने की दिशा में उत्प्रेरित रखेi

3.2.7.3. क्रान्ति के पश्चात साम्यवादी दल की भूमिका

लेनिन ने क्रान्ति होने के पश्चात भी, साम्यवादी दल की भूमिका के बारे में अपनी रचनाओं में लिखा हैi लेनिन के अनुसार सफल समाजवादी क्रान्ति हो जाने के बाद पश्चात साम्यवादी दल ही स्वयं राज्य बन जाएगाi मजदूरों तथा श्रमिकों के राज्य के नाम पर साम्यवादी दल समस्त शक्तियों को अपने हाथों में केन्द्रित कर लेगाi समाजवादी राज्य के आकार को धीरे-धीरे कम किया जाएगा जिससे इसे श्रमिक वर्ग के सर्वोत्तम तत्वों के एकत्रित केन्द्र के रूप में सबसे अधिक सक्रिय सदस्यों के निकाय की तरह रखा जाएगाi साम्यवादी दल ही सर्वहारा के अधिनायकवाद की प्रेरणा शक्ति के रूप में भी कार्य करेगाi

3.2.8 लेनिन की लोकतंत्रीय केन्द्रवाद की अवधारणा

लेनिन के लोकतंत्रीय केन्द्रवाद का विचार लेनिन की दल सम्बन्धी अवधारणा से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैi लेनिन ने दलीय संगठन के सिद्धान्त का निरूपण करते हुए सन् 1905 ई. में प्रथम बार इस शब्दावली का प्रयोग किया थाi लोकतंत्रीय केन्द्रवाद का तात्पर्य यह था कि दल के नेतृत्व का निर्धारण चुनाव के माध्यम से किया जाएगाi अपने चुनाव के पश्चात दल का नेतृत्व सीधे तौर पर सर्वहारा वर्ग के प्रति उत्तरदायी होगाi यदि चुना हुआ नेतृत्व सर्वहारा की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व ठीक तरह से नहीं कर पाता है तो उसे उसके पद से हटाया भी जा सकेगाi लेनिन ने उक्त व्यवस्था को निम्नलिखित शर्तों से युक्त किया है-

(अ) दल के समस्त उच्च तथा निम्न स्तरीय अंगों का गठन चुनाव की रीति से किया जायेगाi

(ब) दल के सभी अंग अपनी-अपनी गतिविधियों के नियमित विवरण अपने-अपने संगठनों को प्रेषित करेंगेi

(स) कठोर दलीय अनुशासन, अनुपालनीय होंगेi साथ ही अल्पमत को बहुमत के निर्णयों को मानना ही पड़ेगाi

(द) उच्चतर अंगों के समस्त निर्णय निम्नतर अंगों के साथ-साथ दल के समस्त सदस्यों हेतु बाध्यकारी होंगेi

साम्यवादी दल से सम्बन्धित लोकतंत्रीय केन्द्रवाद की अवधारणा के अन्तर्गत लेनिन ने दल की निर्णय प्रक्रिया में प्रारम्भिक स्तर पर प्रजातांत्रिक आदर्श को अपनाते हुए खुली बहस तथा विचार-विमर्श करने की छूट प्रदान की हैi प्रारम्भिक स्तर पर दल के प्रत्येक सदस्य को अपना स्वतंत्र विचार रखने की उन्मुक्ति प्राप्त हैi किन्तु समस्त विचार विमर्श के पश्चात केन्द्रीय समिति ने सर्वसम्मति से जो निर्णय कर लिया उसे सम्पूर्ण निष्ठा के साथ लागू किया जाएगाi उसमें किसी भी प्रकार की छूट की गुंजाइश नहीं होगी और न ही उन निर्णयों के कार्यान्वयन में किसी तरह की त्रुटि को सहन किया जायेगाi

3.2.9. लेनिन का साम्राज्यवाद सम्बन्धी विचार

लेनिन ने अपनी पुस्तक इम्पीरियलिज्म, द हाइएस्ट स्टेज ऑफ कैपिटालिज्म में साम्राज्यवाद को 'पूँजीवाद की अन्तिम अवस्था' कहा हैi लेनिन के ही शब्दों में, "साम्राज्यवाद विकास की उस अवस्था में पूँजीवाद है जिसमें एकाधिकारवादी पूँजी तथा वित्तीय पूँजी का प्रभुत्व स्थापित हो चुका है; जिसमें पूँजी का निर्यात प्रभुत्वशाली प्रभाव ग्रहण कर चुका है, जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय न्यासों , द्वारा विश्व का बँटवारा आरम्भ हो चुका है, जिसमें बड़े-बड़े पूँजीवादी देशों द्वारा धरती के प्रदेशों के बँटवारे का कार्य पूर्ण किया जा चुका हैi" लेनिन साम्राज्यवाद के विस्तार की चर्चा करते हुए कहता है कि जब अतिरिक्त श्रम के कारण अतिरिक्त उत्पादन होता है तो उससे अतिरिक्त पूँजी का निर्माण होता हैi पूँजी की अधिकता हो जाने पर माल के साथ-साथ पूँजी का भी निर्यात होने लगता हैi पूँजीपति अपने उत्पाद को खपाने के लिए अपने देश से बाहर निकलकर पिछड़े देशों का रुख करते हैंi इन पिछड़े देशों से उन्हें न्यूनतम मूल्य पर कच्चा माल भी प्राप्त हो जाता है तथा तैयार माल को पुन: खपाने के लिए उन्हीं देशों को बाजार के रूप में भी प्रयोग करने का अवसर मिल जाता हैi इस प्रकार पूँजीपति साम्राज्यवादी शक्ति के द्वारा उन देशों का अत्यधिक आर्थिक शोषण करते हैंi लेनिन ने प्रथम विश्व युद्ध को भी जनयुद्ध के रूप में स्वीकार न करते हुए साम्राज्यवादी युद्ध के रूप में स्वीकार किया हैi लेनिन का मत है कि प्रथम विश्वयुद्ध उन पूँजीवादी देशों के स्वार्थों का परिणाम था जो कच्चा माल प्राप्त करने की होड़ में विश्व के एक बड़े भाग पर अपना

साम्राज्य स्थापित करना चाहते थेi कच्चा माल प्राप्त करने के अतिरिक्त पूँजीवादी राष्ट्र अपने अधीनस्थ राष्ट्रों को ही तैयार माल को बेचने के लिए बाजार के रूप में प्रयोग करना चाहते थेi

लेनिन ने साम्राज्यवाद के विस्तार में पूँजीवाद तथा साम्राज्यवाद के विनाश बीज को भी देखाi लेनिन ने साम्राज्यवाद को पूँजीवाद की उच्चतम तथा अन्तिम अवस्था माना हैi लेनिन के मतानुसार साम्राज्यवाद के विस्तार से स्वाभाविक रूप से पूँजीवाद का भी विस्तार समस्त विश्व में जो जाएगाi पूँजीवादी शोषण को अब वैश्विक स्तर पर पहचान लिया जाएगा जिससे मजदूरों में एक मजदूर संघ की चेतना का विकास होगाi यही चेतना अन्तत: क्रान्ति को जन्म देगीi सर्वहारा वर्ग की विशालता के समक्ष मुट्ठी भर पूँजीपति टिक नहीं पाएँगेi इस प्रकार पूँजीवाद का विनाश हो जाएगा तथा सर्वहारा का अधिनायकवाद स्थापित होगाi

3.2.10 लेनिन का क्रान्ति (परिवर्तन) सिद्धान्त

लेनिन ने अपनी पुस्तक स्टेट एण्ड रेवोल्युशन में लिखा है कि पूँजीवाद का अन्त तथा समाजवाद की स्थापना केवल क्रान्तिकारी साधनों से ही हो सकती हैi लेनिन न केवल एक महान क्रान्तिकारी थे अपितु वे क्रान्ति के सिद्धान्तों की व्याख्या करने वाले एवं क्रान्ति के शास्त्र के महान आचार्य थेi

3.2.10.1. मार्क्स के क्रान्ति सिद्धान्त में संशोधन

मार्क्स अपने जीवन के सायंकाल में ऐसा मानने लगा था कि ब्रिटेन और अमेरिका जैसे उच्च स्तरीय पूँजीवादी देशों में क्रान्ति के बगैर भी धीरे-धीरे समाजवाद की स्थापना की जा सकती हैi एंगेल्स ने मार्क्स की पुस्तक फ्रांस में वर्ग युद्ध (Class Strugglein France) के नवीन संस्करण की भूमिका में यह विचार प्रस्तुत किया था कि समाजवाद को लाने के लिए विद्रोही मजदूरों को गलियों तथा कूचों में लड़ाइयॉ लड़ने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगाi इन्हीं कारणों से उस समय मार्क्स के अनुयायी तथा संशोधनवादी यह मानने लगे थे कि मार्क्स के सिद्धान्तों का प्रचार शान्तिपूर्ण रीति से होना चाहिएi मार्क्स के अनुयायी तथा संशोधनवादी मार्क्स के क्रान्ति सम्बन्धी विचारों में संशोधन की आवश्यकता महसूस कर रहे थेi इस विषय में उन्होंने मार्क्स के 'राज्य के विलुप्त होने' के सिद्धान्त को अपना आधार बनायाi संशोधनवादियों ने इस बात को प्रचारित करना आरम्भ किया कि मताधिकार को अधिक व्यापक बनाते हुए सभी वयस्क लोगों को मत देने का अधिकार देने से, मजदूरों द्वारा उद्योगों को चलाने वाली कम्पनियों में अधिकाधिक हिस्सेदारी खरीदने तथा उद्योगों के प्रबन्ध में भाग लेने से स्पष्टत: क्रान्ति के बगैर भी समाजवाद की स्थापना की जा सकती हैi किन्तु लेनिन संशोधनवादियों के उक्त विचार से कदापि सहमत नहीं थेi इसलिए उन्होंने उक्त संशोधनों का प्रबल रूप से खंडन करते हुए क्रान्ति की अनिवार्यता पर बल दियाi

3.2.10.2. लेनिन द्वारा क्रान्ति की अनिवार्यता पर बल

मार्क्स के पश्चात्यवर्ती मार्क्सवादियों ने तो क्रान्ति के मार्ग में आने वाली बाधाओं से लड़ने के बजाय पलायन का मार्ग अपनाया तथा मार्क्स के क्रान्ति सम्बन्धी चिन्तन में आमूल परिवर्तन कर दियाi किन्तु संशोधनवादियों द्वारा जुटाये गये संशोधनों से लेनिन कदापि सहमत नहीं थेi लेनिन का क्रान्ति पर, अब भी अडिग विश्वास बना हुआ थाi लेनिन का मत था कि मानव का सम्पूर्ण इतिहास विरोधी शक्तियों के संघर्ष के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैi लेनिन ने इस संघर्ष को मानव समाज के लिए अनिवार्य, हितकर एवं नितान्त उचित माना हैi लेनिन का अब भी यही मत था कि साम्यवाद की स्थापना शान्तिपूर्ण ढंग से नहीं अपितु क्रान्ति द्वारा ही की जा सकती हैi

3.2.10.3. राज्य के विलुप्त होने की व्याख्या

मार्क्स सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति के पश्चात् एक वर्ग विहीन तथा एक राज्यविहीन समाज की कल्पना करता है। लेनिन के मार्क्स के राज्य संस्था के लुप्त होने की व्याख्या बिल्कुल अलग ढंग से की है। लेनिन इस सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए कहता है कि इसका अभिप्राय साम्यवादी क्रान्ति के बाद स्थापित होने वाले सर्वहारा वर्ग के राज्य के क्षीण होने से है। लेनिन ने स्पष्ट रूप से कहा है कि इस सिद्धान्त को क्रान्ति होने से पहले के राज्य पर लागू नहीं किया जा सकता है। लेनिन के अनुसार क्रान्ति से पूर्व का राज्य पूँजीपति वर्ग द्वारा मजदूर वर्ग के शोषण पर आधारित है और ऐसे राज्य को केवल क्रान्ति द्वारा ही विनष्ट किया जा सकता है, ऐसे राज्य को लुप्त नहीं किया जा सकता है।

3.2.10.4. क्रान्ति करने की पद्धति एवं कला

लेनिन एक ऐसे विचारक थे जिन्हें सिद्धान्त से ज्यादा व्यवहार में विश्वास था। इसलिए उन्होंने न केवल क्रान्ति की अनिवार्यता पर बल दिया अपितु क्रान्ति करने की पद्धति कला तथा दॉव पेंचों पर भी व्यापक रूप से प्रकाश डाला है। लेनिन ने स्वयं अपनी पद्धति का प्रयोग करते हुए रूस में साम्यवादी क्रान्ति को सफलतापूर्वक सम्पन्न किया। क्रान्ति के कुछ निश्चित सिद्धान्तों की स्थापना करने तथा उन सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने के कारण लेनिन को क्रान्ति के शास्त्र का विश्व में सबसे बड़ा आचार्य माना जाता है। लेनिन ने क्रान्तियों की सफलता के सम्बन्ध में जिन नियमों का प्रतिपादन किया उसके पीछे संसार की अनेक क्रान्तियों का गहन अनुशीलन था। किसी नियोजित तैयारी के बिना की गई सन् 1905 की रूसी क्रान्ति की असफलता ने लेनिन को निरर्थक तथा अनियोजित हिंसा का नितान्त विरोधी बना दिया। सन् 1905 की क्रान्ति की असफलता ने लेनिन को यह सिखाया कि पूरी तैयारी किए बिना केवल जोश में आकर क्रान्ति नहीं करनी चाहिए। लेनिन के अनुसार विरोध करना भी एक कला है तथा इसके कुछ निश्चित नियम होते हैं। इन नियमों में निष्णात व्यक्ति ही एक सफल क्रान्ति को अंजाम दे सकते हैं। ये नियम निम्नलिखित हैं-

- लेनिन के अनुसार क्रान्ति को खेल समझकर या केवल जोश में आकर प्रारम्भ नहीं करना चाहिए। क्रान्ति प्रारम्भ करने से पूर्व खूब सोच-समझकर एक योजना बनानी चाहिए। तत्पश्चात योजनानुसार क्रान्ति को प्रारम्भ करके उसके सफल होने तक निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिए।
- लेनिन ने क्रान्ति के लिए द्वितीय नियम बताते हुए कहा है कि क्रान्तिकारियों को एक निश्चित समय तथा एक निश्चित स्थल पर ही अपनी समूची शक्ति लगानी चाहिए अन्यथा शत्रु अधिक संगठित होकर उस क्रान्ति को दबाने में विलम्ब नहीं करेंगे।
- लेनिन क्रान्ति को सफल बनाने के लिए इतना अधिक प्रतिबद्ध था कि वह इसके लिए सभी प्रकार के साधनों तथा चालों को न्यायसंगत मानता था। इसलिए लेनिन ने तीसरे नियम का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि शत्रु पर उस समय अप्रत्याशित रूप से हमला करना चाहिए जब उसकी सेनाएँ तैयार भी न हों तथा अनेक स्थानों पर बिखरी हुई हों।

3.2.10.5. पेशेवर क्रान्तिकारी का विचार

एबेन्सटाइन, लेनिन की सबसे बड़ी देन पेशेवर क्रान्तिकारी के विचार को मानते हैं। लेनिन ने अपने इस विचार का प्रतिपादन करते हुए परम्परागत मार्क्सवाद से परे एक नई लीक बनाने का कार्य किया। पेशेवर क्रान्तिकारी से लेनिन का अभिप्राय उस व्यक्ति है जिसने क्रान्ति करना तथा इसे सफल बनाना ही अपने जीवन का एकमात्र पेशा या व्यवसाय बना लिया हो तथा क्रान्ति शास्त्र का प्रकाण्ड

विद्वान होi लेनिन ने अपने तर्क को विस्तृत करते हुए कहा है कि जिस प्रकार पुलिस तथा सेना को प्रशिक्षित किया जाता है ताकि वे अपने कार्य को कुशलतापूर्वक कर सकें उसी तरह विरोध करने वाले क्रान्तिकारियों को भी व्यापक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए जिससे वे शत्रुओं की ऑंखों में धूल झोंककर उनके प्रयासों को विफल कर सकेंi अपने दल को कुशलतापूर्वक संगठित कर सकें तथा क्रान्ति से सम्बन्धित सभी कार्यों को सम्पन्न कर सकेंi इस प्रकार जहॉ मार्क्स मजदूर वर्ग को क्रान्ति का वाहक मानता है तो वहीं दूसरी ओर लेनिन ने क्रान्ति को सफल बनाने का सम्पूर्ण भार पेशेवर क्रान्तिकारियों पर डाला हैi लेनिन का विश्वास है कि क्रान्तिशास्त्र की विधा में प्रशिक्षित मुट्ठीभर क्रान्तिकारी हजारों अप्रशिक्षित मजदूरों की अपेक्षा कहीं अधिक कार्य कर सकते हैंi इस प्रकार लेनिन ने क्रान्ति जैसे गम्भीर कार्य को करने के लिए प्रशिक्षित पेशेवर क्रान्तिकारियों पर विश्वास किया हैi

3.2.10.6. क्रान्ति में साम्यवादी दल की भूमिका

लेनिन के पेशेवर क्रान्तिकारी के विचार के सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि लेनिन ने पेशेवर क्रान्तिकारियों को स्वतन्त्र नहीं माना है बल्कि लेनिन ने ऐसे क्रान्तिकारियों के संगठित रूप को साम्यवादी दल का नाम दिया हैi लेनिन का विश्वास है कि साम्यवादी दल ही क्रान्ति का सफल नेतृत्व कर सकता हैi इस सम्बन्ध में यह भी कहा जा सकता है कि जहॉ मार्क्स क्रान्ति के लिए मजदूरों की संख्या पर बल देता है तो वहीं लेनिन संख्या के स्थान पर गुणों को ज्यादा महत्व प्रदान करता हैi लेनिन का आग्रह था कि अप्रशिक्षित मजदूरों की एक बहुत बड़ी संख्या रखने वाले दल की अपेक्षा क्रान्ति के जोश से परिपूर्ण, क्रान्ति के लिए मर मिटने के लिए दृढ़ संकल्पित तथा कठोर दलीय अनुशासन से बँधे हुए क्रान्ति की विधा में प्रशिक्षित क्रान्तिकारियों की थोड़ी संख्या रखने वाला दल कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैi लेनिन ने इस प्रकार के बने हुए संगठन के गुप्त रहने पर बल दिया है ताकि शत्रुओं को चौकन्ना होने का अवसर न मिलेi लेनिन इस प्रकार बनाये जाने वाले दल को ही क्रान्ति का अग्रदूत उसका नेता तथा संगठनकर्ता बताया हैi लेनिन ने उक्त दल के लिए साम्यवादी सिद्धान्तों का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक माना हैi क्योंकि लेनिन के शब्दों में, "लड़ाकू हरावल दस्ते की भूमिका केवल वही पार्टी अदा कर सकती है जो सर्वाधिक उन्नत सिद्धान्तों के अनुसार चलती हैi" लेनिन अपने दल को एक प्रस्तर शिला की भांति सुदृढ़ कठोर तथा अनुशासित रूप देना चाहता था जिससे वह न केवल क्रान्ति का नेतृत्व प्रदान करने में सक्षम हो सके वरन् क्रान्ति को सफल बनाने के लिए आवश्यक किसी भी प्रकार की कठोरता या निर्दयता करने में संकोच न करेi लेनिन के दल की क्रान्ति में भूमिका के सन्दर्भ में उसने जिन तत्वों पर बल दिया है उससे निम्नलिखित महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं-

- कोई क्रान्तिकारी आन्दोलन ऐसे नेताओं के संगठन के बिना टिकाऊ नहीं हो सकता, जो इसकी निरन्तरता को बनाए रखता हैi
- संघर्ष में स्वभावत: सम्मिलित होने वाला जनसमूह, जो आन्दोलन के आधार तथा इसमें भागीदारी का गठन करता है, जितना व्यापक होगा उतना ही किसी भाषणकर्ता के लिए जनता के पिछड़े वर्गों को आकर्षित करना सरल होगाi
- ऐसे संगठन में मुख्यत: ऐसे लोग होने चाहिए जो व्यावसायिक रूप में क्रान्तिकारी गतिविधियों में लगे होंi

3.2.10.7. क्रान्ति हेतु पूँजीवाद के चरम विकास की आवश्यकता नहीं

कार्ल मार्क्स की धारणा थी कि क्रान्ति होने के लिए पूँजीवाद का चरम विकास होना अनिवार्य हैi इसके पीछे मार्क्स की यह धारणा थी कि जब पूँजीवाद अपने चरम पर पहुँच जाएगा तो उस समय वह

स्वयं ही भीषण अन्तर्द्वन्द्वों से ग्रस्त हो जाएगा। इसी अन्तर्द्वन्द्व का लाभ उठाकर सर्वहारा वर्ग क्रान्ति कर देगा। लेनिन, मार्क्स के उक्त विचारों से सहमति नहीं रखता है। लेनिन को अपने साम्यवादी दल तथा दल में शामिल पेशेवर क्रान्तिकारियों पर अटूट विश्वास था। लेनिन के अनुसार क्रान्ति होने के लिए पूँजीवाद का चरम विकास अथवा पूँजीवाद की प्रसव वेदना आवश्यक नहीं थी क्योंकि एक साम्यवादी दल का निर्माण करके तथा उपयुक्त परिस्थितियों का पूरा लाभ उठाते हुए पूँजीवाद के विकास के बिना ही साम्यवादी क्रान्ति को सफल बनाया जा सकता है।

3.2.10.8. क्रान्ति के विषय पर मार्क्स तथा लेनिन में विभेद

सामान्य तौर पर लेनिन को कट्टर मार्क्सवादी माना जाता है। किन्तु लेनिन एक व्यावहारिक मार्क्सवादी था, इसलिए उसने मार्क्स के सिद्धान्तों को व्यावहारिक बनाने हेतु संशोधित कर दिया। क्रान्ति के विषय पर भी मार्क्स तथा लेनिन में भौतिक विभेद दृष्टिगोचर होते हैं जो निम्नलिखित हैं-

- मार्क्स तथा लेनिन के मध्य क्रान्ति के विषय पर प्रथम विभेद यह है कि मार्क्स ने श्रमिकों को क्रान्ति का वाहक माना है तो वहीं लेनिन ने सफल क्रान्ति के लिए पेशेवर क्रान्तिकारियों पर विश्वास जताया है।
- मार्क्स का मत है कि क्रान्ति भौतिक परिस्थितियों का परिणाम होती है किन्तु लेनिन ने विचारों के प्रचार को क्रान्ति का आधार माना है।
- क्रान्ति के विषय में मार्क्स तथा लेनिन के मध्य सबसे बड़ा अन्तर इस बिन्दु पर है कि मार्क्स तथा एंजिल्स ने क्रान्ति करने के लिए शान्तिपूर्ण साधनों पर भरोसा जताया है किन्तु लेनिन ने क्रान्ति को सफल बनाने के लिए शक्ति के प्रयोग को अनिवार्य मानते हुए समस्त साधनों को उचित माना है।
- क्रान्ति के विषय पर मार्क्स तथा लेनिन के अन्तिम विभेद हिंसा के प्रश्न पर हैं मार्क्स के मतानुसार क्रान्तिकारी श्रमिकों के हाथों में इतनी शक्ति होगी कि उन्हें अधिक हिंसात्मक कार्य करने की आवश्यकता नहीं रहेगी। किन्तु मार्क्स के विपरीत लेनिन का मानना था कि क्रान्ति सदैव हिंसापूर्ण साधनों से ही सम्पन्न होती है।

3.2.10.9. लेनिन के क्रान्ति सिद्धान्त का महत्व

लेनिन का क्रान्ति सिद्धान्त कहीं न कहीं मार्क्स के सिद्धान्त से भी अधिक महत्वपूर्ण है। इसका कारण यह है कि मार्क्स अपने क्रान्ति सिद्धान्त को कभी साकार रूप न दे सका। किन्तु लेनिन का सिद्धान्त इस दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है कि उसने अपने सिद्धान्तों पर चलते हुए 1917 में रूस में सफल बोल्शेविक क्रान्ति करने के पश्चात वहां साम्यवादी शासन स्थापित करने में भी सफलता प्राप्त की। इन्हीं कारणों से ही लेनिन को क्रान्ति के महानतम आचार्य की संज्ञा प्रदान की गयी।

3.2.11. लेनिन का समाजवादी कार्यक्रम तथा साम्यवाद की स्थापना

3.2.11.1. समाजवादी कार्यक्रम

लेनिन के अनुसार साम्यवादी क्रान्ति की सफलता के पश्चात साम्यवादी दल का समाजवादी कार्यक्रम प्रारम्भ होगा। इस कार्यक्रम के माध्यम से साम्यवादी दल जन समुदाय को अपना सदस्य बनाकर और उनमें अपनी विचारधारा को प्रचारित करके उन्हें समाजवाद की दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करेगा। लेनिन ने साम्यवादी दल के लिए दो तरह की भूमिकाओं का निर्धारण किया है। पूँजीवाद के काल में साम्यवादी दल प्रमुख विपक्ष की भूमिका निभाएगा। क्रान्ति के पश्चात जब साम्यवादी दल सत्ता संभाल लेगा तब वह सर्वहारा का अधिनायकतंत्र स्थापित करेगा। सर्वहारा के अधिनायक तंत्र की

स्थापना के पश्चात साम्यवादी दल समाजवादी कार्यक्रमों का प्रारम्भ करेगा जिसके अन्तर्गत उत्पादन के समस्त साधनों को सामाजिक स्वामित्व के अन्तर्गत लाया जाएगा**i** साम्यवादी दल अपनी समस्त शक्ति तथा राज्य के संसाधनों का प्रयोग इस प्रकार से करेगा जिससे कि पूँजीवाद के अन्तिम अवशेषों को भी मिटाया जा सके तथा प्रतिक्रान्तिकारी शक्तियों को बलपूर्वक कुचला जा सके**i** समाजवादी कार्यक्रम के अन्तर्गत सभी स्वस्थ व्यक्तियों के लिए श्रम को अनिवार्य बनाकर प्रौद्योगिकी को इतना उन्नत बनाया जाएगा जिससे कि श्रम की उत्पादन क्षमता को उच्चतम स्तर तक पहुँचाया जा सके**i**

3.**2.11.2**. **प्रतिक्रान्तिकारी वर्ग का दमन**

सर्वहारा के अधिनायकतंत्र के अन्तर्गत किसी प्रतिस्पर्धी दल के अस्तित्व को मान्यता नहीं दी जा सकती है**i** लेनिन के मतानुसार यद्यपि की क्रान्ति के पश्चात् पुराना पूँजीपति वर्ग पराजित तथा शक्तिहीन अवस्था में होता है तथापि पूँजीपति वर्ग की ओर से प्रतिक्रान्ति का खतरा लगातार बना रहता है**i** पूँजीपति वर्ग प्रतिक्रान्ति करके पुन: सत्तासीन होने का प्रयत्न कर सकता है**i** ऐसे में साम्यवादी दल का यह कार्य भी होगा कि वह प्रतिक्रान्तिकारी शक्तियों का भी पूर्ण रूप से दमन करके वर्ग भेद को मिटाने का प्रयत्न करे**i**

3.2.11.3. **साम्यवाद की स्थापना**

लेनिन का दृढ़ विश्वास है कि सर्वहारा के अधिनायकतंत्र के अन्तर्गत केवल समाजवाद की ही स्थापना की जा सकती है**i** समाजवाद का एकमात्र ध्येय साम्यवाद की ओर अग्रसर होना है**i** साम्यवाद के अन्तर्गत किसी भी प्रकार के वर्ग का कोई अस्तित्व नहीं होगा**i** अर्थात एक वर्गविहीन समाज का उदय होगा**i** वर्गहीन समाज के निर्माण के बाद धीरे-धीरे क्रमिक रूप से राज्य का अस्तित्व भी खत्म हो जाएगा**i** समाज के राज्यविहीन होने के प्रश्न पर मार्क्स तथा लेनिन के विचारों में महत्वपूर्ण अन्तर पाया जाता है**i** जहॉं मार्क्स क्रान्ति के तुरन्त बाद ही राज्य को समाप्त करने के पक्ष में हैं तो वहीं दूसरी ओर लेनिन क्रमिक रूप से धीरे-धीरे राज्य को खत्म करने के पक्ष में हैं**i** लेनिन ने अपनी कृति "स्टेट एण्ड रिवोल्युशन" (1917) में समाजवादी तथा साम्यवादी व्यवस्थाओं में अन्तर करते हुए कहा है कि समाजवाद के दौर में व्यक्तियों के अधिकारों का निर्धारण सूत्र होगा- "प्रत्येक से अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार तथा प्रत्येक को अपने-अपने आवश्यकता के अनुसार**i**" इसके विपरीत साम्यवाद के दौर में उत्पादन की शक्तियॉं पूर्ण रूप से विकसित हो जाती हैं**i** इसलिए साम्यवाद के दौर में निर्धारण सूत्र होगा- "प्रत्येक से अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार, प्रत्येक को अपने-अपने कार्य के अनुसार**i**" साम्यवाद के दौर में समाज में कोई भी सम्पन्न तथा कोई भी निर्धन नहीं होगा क्योंकि सभी व्यक्ति कामगार ही होंगे**i** इसलिए समाज परस्पर विरोधी वर्गों से रहित हो जाता है**i** साम्यवादी प्रणाली में उत्पादन की नीतियॉं सम्पूर्ण समाज के हित को ध्यान में रखकर बनायी जाती हैं**i** इसलिए इस दौर में सभी कामगारों की सारी आवश्यकताएं पूरी करना सम्भव हो जाता है और प्रतिस्पर्धा की भावना लुप्त हो जाती है**i**

3.2.12 लेनिनवाद का मूल्यांकन

लेनिन की सम्पूर्ण विचारधारा को सम्मिलित रूप से लेनिनवाद के नाम से जाना जाता है**i** लेनिन ने मार्क्सवाद के विभिन्न मुद्दों पर अपने विचार रखे**i** लेनिन कट्टर मार्क्सवादी था इसके बावजूद लेनिन एक व्यवहारवादी मार्क्सवादी भी था**i** यही कारण था कि लेनिन को जहॉं भी मार्क्सवाद को व्यवहार में परिणत करने में कठिनाई महसूस हुई वहीं पर लेनिन ने संशोधन कर दिया**i** यद्यपि कि लेनिन के विचारों में पूर्ण मौलिकता का अभाव है फिर भी उसके विचारों को लेनिनवाद के नाम से जाना जाता है**i**

लेनिन की सर्वप्रथम आलोचना उसके व्यवहारवादी होने के कारण ही दी जाती है क्योंकि लेनिन ने मार्क्सवादी विचारों को व्यवहार में लागू करने के लिए मार्क्सवाद में ही अनेक संशोधन कर दिए**i** इस वजह से कट्टर मार्क्सवादी उसकी आलोचना करते हुए उसके विचारों के मार्क्सवाद का तोड़ा मरोड़ा रूपान्तर कहते हैं**i**

साम्यवादी क्रान्ति करने के लिए, मार्क्स ने उस समय को सर्वाधिक उपयुक्त माना जब पूँजीवाद अपने चरम स्तर पर पहुँच जाए**i** इसके विपरीत लेनिन ने कहा कि साम्यवादी क्रान्ति करने के लिए पूँजीवाद का चरम स्तर पर पहुँचना आवश्यक नहीं है**i** क्योंकि साम्यवादी क्रान्ति पेशेवर क्रान्तिकारियों की सहायता से की जाती है, अत: वे किसी भी समय एक सफल क्रान्ति कर सकते हैं**i** इस प्रकार लेनिन ने क्रान्ति को एक आवश्यकता न मानकर पेशा मान लिया है जो किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है**i**

क्रान्ति के विषय में लेनिन ने अपने विस्तृत विचार व्यक्त किए हैं**i** लेनिन ने क्रान्ति की अनिवार्यता पर बल देते हुए कहा है कि प्रत्येक युग में विरोधी वर्ग का अन्त क्रान्ति के अतिरिक्त किसी अन्य मार्ग से सम्पन्न नहीं किया जा सकता है**i** इस प्रकार क्रान्ति जैसी गंभीर स्थिति को अनिवार्य मानना कहीं न कहीं शान्ति विरोधी होने की ओर संकेत करती है**i** लेनिन की आलोचना इस बात पर भी की जाती है कि उसने क्रान्ति को केवल हिंसक साधनों द्वारा ही सम्पन्न करने पर बल दिया है**i** इस प्रकार लेनिन पर हिंसक प्रवृत्ति रखने का आरोप भी लगाया जाता है**i**

लेनिन की सर्वाधिक आलोचना उसके दल सम्बन्धी विचारों के कारण की जाती है**i** लेनिन कामगार वर्ग के लिए एक ही दल को मान्यता देता है और इस प्रकार साम्यवादी दल के एकाधिकार को मान्यता प्रदान करता है**i** यह साधारण कामगार वर्ग की सूझ-बूझ विवेक, भावनाओं को विशेष महत्व नहीं देता बल्कि सम्पूर्ण कामगार वर्ग की ओर से शक्ति के प्रयोग का अधिकार दल के नेतृत्व को दे देता है**i** जिसे वह 'व्यावसायिक क्रान्तिकारियों की अग्रपंक्ति' की संज्ञा देता है**i** इस व्यवस्था के अन्तर्गत स्वयं कामगार वर्ग के लिए ही अपने विचार व्यक्त करने का कोई अवसर नहीं रह जाता है**i** इस प्रकार वह सर्वहारा के अधिनायकतंत्र के नाम पर साम्यवादी दल के अधिनायकतंत्र की स्थापना कर देता है**i**

लेनिन साम्यवादी दल के अन्दर लोकतंत्रीय केन्द्रवाद को लागू करने की बात करता है**i** किन्तु लोकतंत्रीय केन्द्रवाद की व्यवस्था वास्तव में लोकतंत्रीय कदापि नहीं है**i** हम व्यवस्था के अन्तर्गत दल के निचले अंग, ऊपरी अंगों का निर्वाचन करेंगे परन्तु फिर भी ये उन्हीं के निर्णयों से बंधे होंगे**i** इस व्यवस्था में प्रारम्भिक स्तर पर तो दल के निचले स्तर के सदस्यों को अपनी बात रखने का अवसर अवश्य प्रदान किया जाएगा किन्तु अन्तिम निर्णय केन्द्रीय समिति द्वारा ही लिया जाएगा और केन्द्रीय समिति द्वारा लिया गया निर्णय बाध्यकारी होगा**i** इस प्रकार लेनिन ने अपनी विचारधारा का प्रारम्भ तो लोकतंत्रीय आदर्श के साथ किया है किन्तु अपने विचारों का अन्त साम्यवादी दल की तानाशाही के साथ किया है**i**

3.**2.13**. **पाठसार/सारांश**

लेनिन मार्क्स का एक सच्चा शिष्य तथा कट्टर अनुयायी था**i** लेनिन का जन्म उस दौर में हुआ था जब अनेक संशोधनवादी यह मानने लगे थे कि मार्क्स के सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने में बहुत अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा**i** इसलिए वे मार्क्स के विचारों में संशोधन कर रहे थे**i** ऐसे दौर में लेनिन ने उन संशोधनवादियों की कठोर आलोचना की तथा स्वयं ही मार्क्सवाद को व्यावहारिक रूप देने का बीड़ा उठाया**i** यद्यपि लेनिन ने भी मार्क्सवाद को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं रहने दिया और उसमें स्वयं भी अनेक संशोधन कर डाले किन्तु लेनिन ने मार्क्सवाद में जो भी संशोधन प्रस्तुत किए वे

मार्क्सवाद व्यवहार में परिणत करने हेतु किए न कि मार्क्सवाद के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों से विचलित होकर लिए**i** इस प्रकार से लेनिन केवल सैद्धान्तिक मार्क्सवादी नहीं था अपितु वह एक व्यावहारिक मार्क्सवादी था**i**

लेनिन मार्क्सवादी सिद्धान्तों के उद्देश्यों के प्रति तो पूर्ण रूप से समर्पित था किन्तु उन उद्देश्यों को प्राप्त करने का उसका अपना तरीका था**i** इसलिए हम अनेक स्थानों पर लेनिन को मार्क्स के विपरीत जाते हुए देखते हैं**i** जैसे कि मार्क्स के अनुसार साम्यवादी क्रान्ति करने के लिए पूँजीवाद की प्रसव वेदना आवश्यक थी**i** अर्थात् पूँजीवाद का अपने चरम पर पहुँचना अनिवार्य था, किन्तु लेनिन के अनुसार क्रान्ति कभी भी की जा सकती थी**i** लेनिन का मत था कि क्रान्ति के लिए पूँजीवाद का चरम स्तर पर पहुँचना आवश्यक नहीं है बल्कि सर्वहारा वर्ग का एक संगठित दल के रूप में एक जुट होना आवश्यक है**i** मार्क्स ने जहॉ सर्वहारा वर्ग को क्रान्ति का वाहक माना है तो वहीं लेनिन ने साम्यवादी दल को क्रान्ति का जिम्मा सौंपा है**i** मार्क्स क्रान्ति को शान्तिपूर्ण ढंग से करने का पक्षधर था तो वहीं लेनिन ने क्रान्ति के लिए हिंसा को उपयुक्त माना है**i** मार्क्स जहॉ क्रान्ति के बाद सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतंत्र का समर्थन करता है तो वहीं लेनिन ने सर्वहारा के अधिनायकतंत्र के नाम पर साम्यवादी दल के अधिनायकतंत्र को अपना समर्थन दिया हैं मार्क्स क्रान्ति के तुरन्त बाद ही राज्य को खत्म करने के पक्ष में है किन्तु लेनिन का आग्रह इस बात पर है कि राज्य को शनै:-शनै: समाप्त किया जाय**i** इस प्रकार मार्क्स का कट्टर अनुयायी होने के बावजूद भी लेनिन अनेक मसलों पर मार्क्स के विपरीत विचार व्यक्त करता है**i**

मार्क्स ने विचारधारा के प्रश्न पर अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि विचारधारा की आवश्यकता पूँजीपति वर्ग को ही होती है क्योंकि वे समाज को बॉटकर रखना चाहते हैं किन्तु लेनिन के अनुसार विचारधारा किसी भी व्यक्ति समूह को एक निश्चित दिशा में आगे बढ़ने के लिए लगातार प्रेरित करती है इसलिए सर्वहारा वर्ग को भी साम्यवादी विचारधारा की आवश्यकता होती है**i**

राज्य के प्रश्न पर लेनिन अपना विचार व्यक्त करते हुए प्रारम्भ में मार्क्स का अनुसरण करता है**i** लेनिन भी मार्क्स की भांति राज्य को शोषण का एक यंत्र समझता है**i** लेनिन का मत है कि राज्य की प्रकृति को तो नहीं बदला जा सकता है किन्तु उसके उद्देश्य को बदला जा सकता है**i** इसलिए पूँजीवाद के दौर में जो राज्य सर्वहारा वर्ग का शोषण करता था**i** साम्यवादी युग में वही राज्य पूँजीपतियों का शोषण करेगा**i** पूँजीपतियों का शोषण करते हुए पूँजीवाद के अन्तिम अवशेषों को मिटाने के लिए राज्य का अस्तित्व थोड़े समय के लिए बनाए रखना चाहता था**i**

लेनिन को क्रान्तिशास्त्र का महान प्रवक्ता माना जाता है क्योंकि उसने क्रान्ति पर बहुत ही विशद विचार व्यक्त किये**i** लेनिन के अनुसार पूँजीवाद को धूल में मिलाने के लिए एक सुदृढ़ तथा संगठित क्रान्ति के अतिरिक्त अन्य कोई भी मार्ग उपलब्ध नहीं हैं इस प्रकार लेनिन क्रान्ति की अनिवार्यता में विश्वास रखता है**i** लेनिन बिना सोचे समझे केवल जोश में भरकर क्रान्ति करने को उचित नहीं मानता है**i** लेनिन क्रान्ति के लिए एक व्यापक योजना बनाने तथा उसी योजना के अनुसार आगे बढ़ने में विश्वास रखता है**i** लेनिन क्रान्ति करने के लिए सर्वहारा वर्ग का एक छोटा संगठन बनाकर उसे एक दल के रूप में संगठित करने का सुझाव देता है**i** लेनिन का विचार है कि दल के सदस्यों को क्रान्ति करने हेतु प्रशिक्षित किया जायेगा**i** इस प्रकार लेनिन क्रान्ति को एक साधारण कार्य नहीं मानता है बल्कि वह क्रान्ति का चित्रण एक अत्यन्त उत्कृष्ट कला के रूप में करता है**i**

सफल क्रान्ति होने के पश्चात लेनिन समाजवादी कार्यक्रम प्रस्तुत करता है**i** लेनिन के अनुसार क्रान्ति के पश्चात साम्यवादी दल के माध्यम से सर्वहारा वर्ग का अधिनायकतंत्र स्थापित कर दिया

जाएगा**i** साम्यवादी दल इस दौरान समाजवाद का व्यापक कार्यक्रम चलाएगा जिसके अन्तर्गत उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व स्थापित किया जाएगा, पूँजीवाद के ध्वंसावशेषों को मिटाया जाएगा, सभी लोगों के लिए श्रम को अनिवार्य बनाते हुए वर्ग विभेद को समाप्त किया जाएगा तथा तकनीकी विकास तथा मानव श्रम की सहायता से उत्पादन क्षमता को उच्चतम स्तर पर पहुँचाने का प्रयास किया जाएगा**i**

उक्त समाजवादी कार्यक्रम के कारण यह वर्गविहीन तथा राज्यविहीन साम्यवादी समाज का उदय होगा**i** ऐसे साम्यवादी समाज में सभी व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार कार्य करेंगे तथा अपनी आवश्यकतानुसार प्राप्त करेंगे**i** इस प्रकार अनावश्यक प्रतिस्पर्धा का अन्त हो जाएगा तथा एक स्वस्थ समाज का उदय होगा**i**

3.2.14 अभ्यास/बोध प्रश्न

3.**2.14.1**. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. निम्नलिखित पुस्तकों में से कौन-सी पुस्तक लेनिन द्वारा लिखी गयी है?
   (क) कम्युनिस्ट मैनीफेस्टो (ख) कैपीटल
   (ग) व्हाट इज टू बी डन (घ) होली फेमिली
2. लेनिन की प्रसिद्ध कृति द स्टेट एण्ड रिवोल्युशन कब प्रकाशित हुई थी?
   (क) 1902 (ख) 1905
   (ग) 1915 (घ) 1917
3. 1917 की रूसी क्रान्ति के समय, रूस सामाजिक विकास के किस स्तर पर था?
   (क) साम्यवाद (ख) पूँजीवाद
   (ग) सामन्तवाद (घ) समाजवाद
4. प्रजातांत्रिक केन्द्रीकरण किस विद्वान का मौलिक विचार है?
   (क) मार्क्स (ख) लेनिन
   (ग) एंगेल्स (घ) हेगेल
5. लेनिन साम्राज्यवाद सम्बन्धी अपनी विचारधारा में निम्नलिखित में से किस ब्रिटिश उदारवादी विद्वान से प्रभावित नहीं हुआ था?
   (क) जॉन लॉक (ख) हॉब्सन
   (ग) इल्फर्डी (घ) बुखारिन

3.**2.14.2**. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. लेनिन को व्यावहारिक मार्क्सवादी क्यों कहा जाता है?
2. लेनिन क्रान्ति करने के लिए पूँजीवाद का अपने चरम स्तर होना, आवश्यक क्यों नहीं मानता है?
3. लेनिन के लोकतांत्रिक केन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर प्रकाश डालिए**i**
4. लेनिन के समाजवादी कार्यक्रम की संक्षिप्त समीक्षा कीजिए**i**
5. लेनिन के कृतित्व पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालिए**i**

3.**2.14.3**. विस्तृत उत्तरीय प्रश्न-

1. "लेनिनवाद, मार्क्सवाद का व्यावहारिक रूप है**i**" इस कथन के आलोक में लेनिनवाद की विस्तृत समीक्षा कीजिए**i**

2. लेनिनवाद मार्क्सवाद से किस प्रकार भिन्न है? वर्णन कीजिए**i**
3. "लेनिन क्रान्तिशास्त्र का महानतम आचार्य था**i**" इस कथन के आलोक में मार्क्स के क्रान्ति सम्बन्धी विचारों का वर्णन कीजिए**i**
4. लेनिन की राज्य सम्बन्धी अवधारणा की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए**i**
5. "लेनिन ने सर्वहारा के अधिनायकतंत्र के नाम पर, साम्यवादी दल का अधिनायकतंत्र स्थापित किया है**i**" इस कथन की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए**i**

3.2.15. कठिन शब्दावली

3.**2.15.1**. **सर्वहारा का अधिनायकतंत्र** – मार्क्सवाद के अनुसार वह व्यवस्था जो समाजवादी क्रान्ति के बाद स्थापित किया जाती है**i** इसमें सर्वहारा वर्ग सामाजिक उत्पादन के समस्त साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व स्थापित करके सारी सत्ता का सूत्र संभाल लेता है तथा पूँजीवाद को मिटाने के लिए बल-प्रयोग का सहारा लेता है**i**

3.**2.15.2**. **बोल्शेविकवाद** – रूसी क्रान्ति के पहले रूस की सोशल डेमोक्रेटिक एण्ड लेबर पार्टी के उस धड़े का दृष्टिकोण जिसे 1903 की पार्टी कांग्रेस में बहुमत मिला था**i** रूसी भाषा में बोल्शेविक का अर्थ बहुमत है**i** बोल्शेविक अपनी पार्टी को गिने चुने प्रतिबद्ध व्यावसायिक क्रान्तिकारियों का संगठन बनाना चाहते थे जिनका लक्ष्य जारशाही को हटाकर समाजवादी व्यवस्था की स्थापना करना था**i**

3.**2.15.3**. **साम्राज्यवाद** – साम्राज्यवाद पूँजीवाद की वह उच्चतम अवस्था है जिसमें पूँजी की अधिकता इतनी अधिक हो जाती है कि पूँजीपति के द्वारा अपने देश के बाहर कम विकसित देशों में पूँजी का निर्यात करके उनका आर्थिक शोषण किया जाता है**i** धीरे-धीरे करके ऐसे देशों की शासन प्रणाली को पूँजीपतियों द्वारा हस्तगत कर लिया जाता है**i**

3.2.15.4. **साम्यवादी दल** – साम्यवादी दल सर्वहारा वर्ग के श्रमिकों का एक सुदृढ़ तथा केन्द्रीय संगठन है, जिसका कार्य एक पेशेवर क्रान्तिकारी संगठन के रूप में क्रान्ति का नेतृत्व करने में अग्रणी भूमिका का निर्वहन करना है**i** क्रान्ति के पश्चात साम्यवादी दल को ही समाजवादी कार्यक्रम के माध्यम से साम्यवाद की स्थापना का मार्ग भी प्रशस्त करना है**i**

3.2.15.5. **लोकतंत्रीय केन्द्रवाद** – लोकतंत्रीय केन्द्रवाद वह व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत साम्यवादी दल के सभी सदस्य दल की नीतियों पर विस्तृत चर्चा तो कर सकेंगे परन्तु एक बार जो निर्णय कर लिया जाएगा**i** उसे पूरी निष्ठा के साथ लागू किया जाएगा**i** उसमें किसी भी तरह की छूट की कोई गुंजाइश नहीं होगी**i** तथा उसके कार्यान्वयन में किसी त्रुटि को सहन नहीं किया जाएगा**i**

3.2.16 सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. सिंघल, सुरेशचन्द्र, 2005, आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, आगरा, नवरंग ऑफसेट प्रिंटर्स, आई.एस.बी.एन. 81-85778-83-3
2. गाबा, ओमप्रकाश, 2007, राजनीतिक विचारक विश्वकोश, दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, आई.एस.बी.एन. 81-7198-022-8

3. दधीच, नरेश (2015), समसामयिक राजनीतिक सिद्धान्त, जयपुर, रावत पब्लिकेशन्स, आई.एस.बी.एन. 978-81-316-0678-0 (एच.बी.)

4. गाबा, ओमप्रकाश, 2012, पाश्चात्य राजनीतिक विचारक, दिल्ली, मयूर पेपर बैक्स, आई.एस.बी.एन. 81-7198-181-X

5. नारायण, इकबाल, 2001, आधुनिक राजनीकि विचारधाराएं, जयपुर, ग्रन्थ विकास

6. गाबा, ओमप्रकाश, 2014, राजनीति-सिद्धान्त की रूपरेखा, दिल्ली, मयूर पेपरबैक्स, आई.एस.बी.एन. 81-7198-092-9

7. फाड़िया, बी.एल., 2015, राजनीति विज्ञान, आगरा साहित्य भवन

8. जौहरी, जे.सी., जौहरी, सीमा, 1992, समकालीन राजनीतिक सिद्धान्त, नई दिल्ली, स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्रा. लि. आई.एस.बी.एन. 8120713621

9. वर्मा, विश्वनाथ प्रसाद, 1998, आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, जयपुर, कॉलेज बुक डिपो, आई.एस.बी.एन. 81-85788-71-5

10. लेनिन, बी.आई., 1943, स्टेट एण्ड रिवोल्युशन, न्यूयॉर्क इण्टरनेशनल पब्लिशर्स कम्पनी, आई.एस.बी.एन. 0717801969

11. https://em-m.wikipedia.org/wiki/vladimir-Lenin

इकाई-3 लियो ट्राट्स्की एवं जोसेफ स्टालिन के राजनीतिक विचार

इकाई की रूपरेखा

3.3.1. उद्देश्य कथन
3.3.2. प्रस्तावना
3.3.3. लिओ ट्राटस्की- जीवन परिचय
3.3.4. रचनाएँ
3.3.5. ट्रॉट्स्की का राजनीतिक जीवन
3.3.6. स्थाई क्रांति का सिद्धांत
3.3.7. ट्राटस्की का मूल्यांकन
3.3.8. जोसेफ स्टालिन
3.3.9. स्टालिनवाद
3.3.9.1. स्टालिन का एकदेशीय समाजवाद का सिद्धांत
3.3.9.1.1. विश्व क्रांति के विचार में शिथिलता
3.3.9.1.2. एक व्यक्ति की तानाशाही स्थापित
3.3.9.1.3. स्टालिन द्वारा राज्य सिद्धांत में परिवर्तन
3.3.9.1.4. रूस में राष्ट्रवाद का उदय
3.3.9.1.5. आय की समानता के विचार का त्याग
3.3.9.2. स्टालिन की क्रांति सम्बन्धी धारणा
3.3.10. स्टालिन के कार्य
3.3.10.1. पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण
3.3.10.2. कृषि क्षेत्र में सुधार
3.3.10.3. शिक्षा के क्षेत्र में कार्य
3.3.10.4. सन 1936 का सविंधान
3.3.11. स्टालिन और हिटलर
3.3.12. स्टालिन का मूल्याङ्कन
3.3.13. सारांश
3.3.14. अभ्यास / बोधात्मक प्रश्न
3.3.14.1. दीर्घ उतरीय प्रश्न
3.3.14.2. लघु उत्तरीय प्रश्न
3.3.14.3. बहु विकल्पीय प्रश्न
3.3.14.4. बहु विकल्पीय प्रश्नों के उत्तर
3.3.15. कठिन शब्द
3.3.16. संदर्भ ग्रंथ सूची

3.3.1. उद्देश्य कथन

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप-

3.1.1 लिओ ट्राटस्की के बारे जान जायेंगेi

3.1.2 लिओ ट्राटस्की के राजनीतिक विचारो को जान जायेंगेi

3.1.3 जोसेफ स्टालिन से परिचित हो जायेंगेi

3.1.4 जोसेफ स्टालिन के राजनीतिक विचारों को समझ जायेंगेi

3.3.2. प्रस्तावना

कार्ल मार्क्स की मृत्यु के बाद उसके दर्शन के समर्थक कई गुटों में विभाजित हो गयेi जिन देशो में लोकतान्त्रिक विचार मजबूती से जम चुके थे वहां मार्क्स के अनुनायी उसके कतिपय सिद्धांतो से जैसे इतिहास की भौतिकवादी व्यवस्था,वर्ग- संघर्ष , क्रांति की अपरिहार्यता आदि से आश्वस्त नहीं हुए और उन्होंने मार्क्सवाद को लोकतान्त्रिक ढांचे में ढालना चाहाi मार्क्स के बहुत से समर्थक , सांस्कृतिक और ऐतिहासिक आवश्यकताओं के अनुकूल मार्क्सवाद को ढालने के इच्छुक थे जो मार्क्सवाद के क्रांतिकारी पहलू को अधिक महत्व देना चाहते थेi दूसरी ओर ऐसे भी लोग थे मार्क्सवाद पर शांतिपूर्वक पुनर्विचार कर उसके विकासवादी पहलू पर बल देने का समर्थन करते थेi उग्रपंथी मार्क्सवादी के शांतिपूर्वक पुनर्विचार कर उसके विकासवादी पहलू पर बल देने का समर्थन करते थेi इन विभिन्न विचारो और दृष्टिकोणों के फलस्वरूप मार्क्स के बाद समाजवाद की विभिन्न शाखाएं प्रस्फुटित हुई और दृष्टिकोणों के फलस्वरूप मार्क्स के बाद समाजवाद की विभिन्न शाखाएं प्रस्फुटित हुई और इसके विभिन्न प्रवक्ता हुएi इस अध्याय में हम **लिओ ट्राटस्की** और **जोसेफ स्टालिन** के राजनीतिक विचारो का विस्तार से अध्ययन करेंगे i

3.3.3. लिओ ट्राटस्की - जीवन परिचय

लिओ ट्राटस्की एक यहूदी सफल किसान के पुत्र थे जिनका जन्म 7 नवम्बर 1879 में युक्रेन में हुआ थाi रूसी क्रांति के बाद हुए भीषण गृह युद्ध में विजयी रही लाल सेना की कमान ट्रॉट्स्की के हाथ में ही थीi एक सिद्धांतकार के रूप में स्थायी क्रांति के सिद्धान्त के जरिये उन्होने मार्क्सवादी विमर्श में योगदान कियाi

इसके साथ ही ट्रॉट्स्की ने एक नियम का प्रतिपादन भी किया कि पूँजीवाद के विकास का स्तर सभी जगह एक सा नहीं होता जिसका परिणाम पिछड़े देशों में सामाजिक और ऐतिहासिक विकास के दो चरणों के एक साथ घटित हो जाने में निकलता हैi

बीसवीं सदी के पहले दशक में मार्क्सवादियों के बीच चल रहे बहस-मुबाहिसे के बीच ट्रॉट्स्की की इस सैद्धांतिक उपलब्धि ने रूस जैसे औद्योगिक रूप से पिछड़े देश में क्रांति करने के तर्क को मजबूती प्रदान कीi लेनिन के देहांत के बाद ट्रॉट्स्की ने स्टालिन द्वारा प्रवर्तित एक देश में समाजवाद की स्थापना के सिद्धांत का विरोध किया, लेकिन वे पार्टी के भीतर होने वाले संघर्ष में अकेले पड़ते चले गयेi पहले उन्हें पार्टी से निकाला गया, और फिर सोवियत राज्य के विरुद्ध षडयन्त्र करने के आरोप में देश-निकाला दे दिया गयाi

निष्कासन के दौरान ट्रॉट्स्की ने स्टालिन के नेतृत्व में बन रहे सोवियत संघ की कड़ी आलोचना करते हुए उसे नौकरशाह, निरंकुश और राजकीय पूँजीवादी राज्य की संज्ञा दीi विश्व-क्रांति के अपने सपने को धरती

पर उतारने के लिए उन्होंने चौथे कम्युनिस्ट इंटरनैशनल की स्थापना भी की जिसे कोई खास कामयाबी नहीं मिलीi निष्कासन के दौरान ही मैक्सिको में स्टालिन के एक एजेंट के हाथों उन्हें अगस्त 1940 में जान से हाथ धोना पड़ाi ट्रॉट्स्की के अनुयायियों ने दुनिया के कई देशों में छोटी- छोटी कम्युनिस्ट पार्टियाँ बना रखी हैंi सोवियत शैली के कम्युनिज़म के विकल्प के रूप में उनके विचारों को ट्रॉट्स्कीवाद की संज्ञा मिल चुकी हैi

3.3.4. रचनाएं

सोवियत सीक्रेट पुलिस से बचने के लिए सारी दुनिया में भटकते हुए ट्रॉट्स्की ने निम्न क़िताबे लिखी -

- परमानेंट रेवोल्यूशन (1930),
- रेवोल्यूशन बिट्रेड (1937)
- द हिस्ट्री ऑफ़ रशियन रेवोल्यूशन (1931-33)

इसके अतिरिक्त उन्होंने साम्यवादी सिद्धांतो की व्याख्या के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे जो निम्न है –

- आवर रेवोल्यूशन 1906
- टेररिज्म और कम्युनिज्म 1920
- टूवर्ड्स सोसियालिज्म ऑर कैपिटलिज्म 1925
- इन डिफेंस ऑफ़ मार्किज्म 1939- 1940

3.3.5. ट्रॉट्स्की का राजनीतिक जीवन

बहुत कम उम्र में ही वे मार्क्सवाद के प्रति आकर्षित हुए और भूमिगत राजनीति करते हुए 'ट्रॉट्स्की' का गुप्त नाम अपना लियाi उनके जीवन को तीन भागों में बाँट कर देखा जा सकता हैi पहला हिस्सा वह है जब रूसी मार्क्सवाद के एक स्वतंत्र हस्ताक्षर की तरह वे क्रांतिकारी आंदोलन में भाग लेते हुए पहले लेनिन के नजदीक आये और फिर उनका साथ देने से इनकार कर दियाi दूसरा हिस्सा 1917 से शुरू हो कर 1923 तक चला जब उन्होंने लेनिन के साथ कंधे से कंधा मिला कर सोवियत क्रांति को अग्रगति प्रदान कीi इसके बाद उनके जीवन का तीसरा दौर शुरू हुआ जब उन्होंने क्रांति के लाभों की रक्षा करने के लिए स्तालिनवाद के ख़िलाफ़ अभियान छेड़ाi

बोल्शेविक नेताओं में केवल ट्रॉट्स्की ही ऐसे थे जिन्हें लेनिन का प्रमुख साथी होने के बावजूद उनके अनुयायी के तौर पर नहीं देखा जाता थाi 1903 में रूसी सामाजिक जनवादी मजदूर पार्टी (आरएसडीएलपी) जब बोल्शेविकों और मेंशेविकों में विभाजित हुई, तो ट्रॉट्स्की ने लेनिन का साथ नहीं दियाi शुरुआत में उन्होंने बोल्शेविज्म की यह कह कर निंदा की कि यह तो सर्वहारा की नहीं बल्कि सर्वहारा पर तानाशाही का फॉर्मूला हैi उस समय उन्हें शक था कि लेनिन ,रॉब्सपियरे जैसे षड्यंत्रकारी नेता हैं जिनके कारण रूस का समाजवादी आंदोलन पथभ्रष्ट हो जाएगाi उस समय ट्रॉट्स्की का विचार था कि गुप्त राजनीतिक काम करने वाली पेशेवर क्रांतिकारियों की अनुशासित पार्टी के हाथ में क्रांति की कमान देने से समाजवाद का लक्ष्य नहीं हासिल किया जा सकताi वे एक अधिक लोकतांत्रिक और खुले चरित्र की पार्टी बनाने के पक्ष में थेi 1905 में वे सेंट पीटर्सबर्ग की सोवियत नेता के रूप में उभरेi रूस

की इस पहली सोवियत ने 1905 की क्रांति में प्रमुख भूमिका का निर्वाह किया था, और ट्रॉट्स्की इसे प्रामाणिक लोकतंत्र का नमूना मानते थेi क्रांति विफल हो जाने के बाद ज़ारशाही ने उन्हें गिरफ्तार करके साइबेरिया भेज दियाi ट्रॉट्स्की वहाँ से भाग निकले और अगला दशक उन्होंने यूरोप में बिताया। इस दौरान सांगठनिक रूप से वे मेंशेविकों के साथ रहेi 1917 में वे रूस लौटे तब फरवरी क्रांति के कारण ज़ारशाही का पतन हो चुका थाi अब वे बोल्शेविकों के साथ आ गये क्योंकि उन्हें लगा कि उनके और लेनिन के विचारों में काफी समानता आ चुकी हैi स्वयं लेनिन ट्रॉट्स्की की राजनीतिक और सैद्धांतिक क्षमताओं के प्रशंसक थेi बोल्शेविक पार्टी में ट्राट्स्की का कद तेजी से बढ़ाi उन्होंने विदेशी मामलों के योद्धा के तौर पर जर्मनों के साथ शांति- वार्ता में भाग लियाi फौजी योद्धा के रूप में ट्रॉट्स्की ने लाल सेना के गठन में प्रमुख भूमिका निभायी और गृह युद्ध में उसका शानदार नेतृत्व कियाi इन सफलताओं के कारण ट्रॉट्स्की को लेनिन के सम्भावित उत्तराधिकारियों में एक के रूप में देखा जाने लगाi

लेनिन की ही तरह ट्रॉट्स्की को रूसी सर्वहारा वर्ग की रचनात्मक क्षमताओं में गहरा विश्वास थाi इस विश्वास के आधार में विश्व-पूँजीवाद के अध्ययन से निकली उनकी एक विशेष तरह की सैद्धांतिक समझ थीi उसका का विचार था कि अपने पिछड़ेपन से छुटकारा पाने के लिए किसी देश को उन चरणों से क्रमवार गुजरने की जरूरत नहीं होती जिनसे विकसित देश गुजर चुके होते हैंi इन देशों में पिछड़ेपन के साथ-साथ अगड़ेपन के लक्षण भी उभरते हैंi इस सिद्धान्त के आधार पर विश्लेषण करते हुए ट्रॉट्स्की ने दिखाया कि रूस का अधिकांश भाग पिछड़ा और अविकसित है लेकिन उसमें पश्चिमी प्रभावों ने भी घुसपैठ कर ली हैi कई जगहों पर आर्थिक उत्पादन और संबंधों के विकसित तौर-तरीके अपनाए जाने लगे हैंi औद्योगिक विकास के इन मुकामों ने शहरी केंद्रों में एक अच्छा-खासा सर्वहारा वर्ग और एक पश्चिमीकृत बौद्धिक अभिजन पैदा कर दिया हैi परिणामस्वरूप राजनीतिक प्रतिरोध और सक्रियता के रैडिकल रूप प्रचलित हो गये हैंi चूँकि उद्योगीकरण ऊपर से थोपा गया है इसलिए स्थानीय पूँजीपति वर्ग कमजोर है, लेकिन सर्वहारा वर्ग मजबूत हैi पूँजीवादी वर्ग लोकतांत्रिक क्रांति करने से डरता है और अपनी अक्षमता के कारण अपना ऐतिहासिक दायित्व नहीं निभा पा रहा है, इसलिए यह जिम्मेदारी सर्वहारा वर्ग के कंधों पर आ गयी हैi किसानों को अपने नेतृत्व में लेते हुए उनके साथ मोर्चा बना कर मजदूर वर्ग को सामंतशाही और उसके सभी अवशेषों का उन्मूलन करते हुए समाजवाद की तरफ बढ़ना होगाi

3.3.6. स्थाई क्रांति का सिद्धांत

ट्रॉट्स्की ने अपने सिद्धांत को स्थायी क्रांति का नाम दियाi 1850 में मार्क्स कम्युनिस्ट लीग की जनरल कौंसिल को संबोधित करते हुए इस पद का इस्तेमाल कर चुके थेi ट्रॉट्स्की के मुताबिक प्राक-पूँजीवादी मानसिकता वाले किसान इस क्रांतिकारी प्रक्रिया में मजदूरों का साथ बहुत दूर तक नहीं दे पाएँगेi उनकी दिलचस्पी जमीन का मालिकाना मिल जाने तक ही रहेगीi किसानों के साथ बनाया गया जो मोर्चा क्रांति के लिए रास्ता साफ करता है , वही समाजवाद की रचना में बाधक साबित होगाi इसलिए एक देश में, विशेषतः रूस में, समाजवाद का निर्माण तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक अन्य देशों में भी क्रांति नहीं हो जातीi इसलिए रूस की क्रांति को विश्व-क्रांति, खासकर विकसित देशों में क्रांति के शुरुआती चरण के तौर पर ही देखा जाना चाहिएi दिलचस्प बात यह है कि ट्रॉट्स्की की इन बातों और प्रथम विश्वयुद्ध के बाद लेनिन द्वारा प्रतिपादित कई सिद्धांतों में काफ़ी समानता प्रतीत होती हैi

कुछ ट्रॉट्स्कीवादियों ने यह आरोप भी लगाया है कि 1917 की क्रांति में लेनिन द्वारा ट्रॉट्स्की के ही सिद्धांतों का इस्तेमाल किया गया थाi यह अलग बात है कि ख़ुद ट्रॉट्स्की ने 1917 में लेनिन का नेतृत्व स्वीकार
करने के बाद कभी ऐसा नहीं कहाi

लेनिन की मृत्यु के बाद स्टालिन ने एक देश में समाजवाद के निर्माण की शोधपत्र तैयार कीi इस मामले में बुखारिन जैसे सिद्धांतकार भी स्टालिन के साथ थेi पर ट्रॉट्स्की ने चेतावनी दी कि इस सिद्धान्त पर अमल करने के नतीजे रूस के लिए विनाशकारी निकलेंगेi उन्होंने कहा कि खेती के सामूहिकीकरण का समय अभी नहीं आया हैi ट्रॉट्स्की लेनिन द्वारा स्थापित कोमिंटर्न (कम्युनिस्ट इंटरनेशनल) को सोवियत विदेश नीति के औजार में सीमित कर देने के भी विरुद्ध थेi उनका तर्क था कि सोवियत संघ को उद्योगीकरण और आधुनिकीकरण के रास्ते पर जरूर चलना चाहिए, पर इन उपलब्धियों को समाजवाद का पर्याय नहीं समझा जा सकताi समाजवाद का मतलब है, श्रम की ऊँची उत्पादकता, उसके परिणामस्वरूप बेहतर जीवन-स्तर और अपने पूँजीवाद के सर्वाधिक विकसित रूपों जैसा समाजi यह तभी हो सकता है कि जब सर्वहारा के हाथ में विश्व-अर्थव्यवस्था की बागडोर होi ट्रॉट्स्की का कहना था कि स्टालिन के तहत जो सोवियत व्यवस्था है ,उसे केवल संक्रमणकालीन समझा जाना चाहिएi अभी इस बात की गारंटी नहीं की जा सकती कि इसका विकास समाजवाद में होगा या यह पतित हो कर पूँजीवाद के किसी संस्करण में बदल जाएगीi ट्रॉट्स्की मानते थे कि रूस की नौकरशाही एक नये वर्ग की शक्ल लेती जा रही हैi भले ही सोवियत समाज राजकीय पूँजीवाद की स्थिति में न पहुँचा हो, लेकिन
उसकी स्थिति मजदूरों के एक कमतर राज्य जैसी तो है हीi
ट्रॉट्स्की के विचारों की विशेष बात यह थी कि उनमें मार्क्सवाद को हर समस्या की अचूक औषधि के रूप में देखने की प्रवृत्तियों का विरोध निहित थाi इसी तरह वे मार्क्सवाद के नाम पर कला-साहित्य और ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों को एक विशेष दिशा में धकेले जाने के भी खिलाफ थेi अपने इन रैडिकल विचारों के बावजूद वे पार्टी का बहुमत अपने पक्ष में नहीं कर सकेi पार्टी के भीतर उन्हें एक ऐसे नेता के रूप में देखा जाता था जो संकट आने पर तो करिश्माई नेतृत्व प्रदान कर सकता है, लेकिन पार्टी के भीतर होने वाली रोजमर्रा की उठा-पटक से निबटने में दिलचस्पी नहीं रखता, और जो अपनी बौद्धिक चमक-दमक में अकेला रहना पसंद करता हैi जब ट्रॉट्स्की की उम्मीदों के मुताबिक यूरोप में क्रांति नहीं हुई, तो उन्होंने विश्व-क्रांति का लक्ष्य छोड़ कर केवल एक देश में समाजवाद का निर्माण करने में लग जाने की स्टालिनीय परियोजना को इसका जिम्मेदार ठहरायाi ट्रॉट्स्की ने यह कभी नहीं माना कि स्टालिनकालीन गलतियों की जड़ में पार्टी और राजनीति का लेनिनिस्ट-बोल्शेविक विचार है जिसके कारण एक पार्टी द्वारा संचालित राज्य पूरे समाज को अपना ताबेदार बनाने में कामयाब हो गया हैi दरअसल, ट्रॉट्स्की ने जीवन के तीसरे दौर में निष्कासन भोगते हुए भी 1903 से 1914 के बीच की गयी लेनिन और बोल्शेविकवाद की अपनी कठोर आलोचनाओं को कभी नहीं दोहराया i
सन 1917 तक लेनिन ने इन विरोधी सिद्धांतों में से किसी को स्वीकार नहीं किया बल्कि बीच का मार्ग अपनायाi लेकिन सन 1917 की क्रांति में दोनों व्यक्तियों ने सहयोग कियाi अप्रैल 1917 में रूस से लौटने पर लेनिन ने अपने इस पुराने सिद्धांत को त्याग दिया कि पूंजीवादी क्रांति और श्रमिक क्रांति के बीच तैयारी का कुछ समय बीतना चाहिएi उसने समझ लिया कि जो समाजवादी क्रांति के परिपक्व होने की प्रतीक्षा करता है वह अवसर को हाथ से निकाल देता हैi लेनिन इस समय 'संयुक्त विकास के नियम' से

काफी साम्य रखता था जिसे सन 1905 में ट्राटस्की ने अपने स्थाई क्रांति का सिद्धांत का आधार बनाया थाi

ट्राटस्की का मत था कि "सर्वहारा वर्ग की क्रांतिवादी सर्वोच्चता स्वयं सर्वहारा वर्ग की एक दलीय राजनीतिक सर्वोच्चता की पूर्व कल्पना है ,जिसका एक स्पष्ट कार्यक्रम और दोषमुक्त आंतरिक अनुशासन हैi दल के सदस्य केवल वही होते हैं जो सबसे अधिक वर्ग-चेतनापूर्ण और पूर्ण निष्ठावान होते हैं और दल बहुत सावधानी से सदस्यों का चुनाव करके अपना विस्तार करता हैi" इस प्रकार जैसा कि कोकर ने लिखा है कि "सर्वहारा वर्ग की सामान्य इच्छा का प्रतिनिधित्व तथा उसका कार्यान्वयन हीगल के ढंग से होना चाहिए अर्थात निर्णय तथा सत्ता ऐसे व्यक्तियों के हाथ में होनी चाहिए जो समस्त सर्वहारा की 'वास्तविक इच्छा' को जानने तथा उसे कार्यान्वित करने के लिए बौद्धिक और नैतिक दृष्टि से सर्वथा योग्य है अर्थात ऐसे व्यक्तियों के हाथों में सत्ता होनी चाहिए जो उन अव्यवस्थाओं के कारणों को जिनसे जनता मुक्ति चाहती है ,निदान करने में और उनका समुचित उपचार करने में सबसे अधिक निपुण हैi"

3.3.7. ट्राटस्की का मूल्यांकन

ट्राटस्की सम-सैन्यीकरण का पोषक थाi जब क्रांति के बाद यौद्धिक साम्यवाद कार्यक्रम की स्थिति से निकाल कर रूस को सामान्य साम्यवादी व्यवस्था के अंतर्गत लाने की बात की जाने लगी तो उसका सुझाव था कि यौद्धिक साम्यवाद का विकल्प होना चाहिएi उत्पादन, आर्थिक नियोजन, श्रमिक संगठन आदि चाहे सेना के अधिकार में ना रखे जाएं फिर भी इन्हें युद्ध स्तर पर अवश्य लाया जाएi ट्राटस्की ने ट्रेड यूनियनों के सैन्यीकरण का सुझाव दिया जिसके अनुसार "प्रत्येक श्रमिक श्रम-सैनिक है"i **ट्राटस्की** का कहना था कि प्रत्येक श्रमिक से अनिवार्य रूप से श्रम लिया जाना चाहिएi "जीवित मनुष्य को श्रम करना चाहिए ताकि रह सकेi" ट्राटस्की का यह नारा थाi उसने ट्रेड यूनियनों की स्वायत्तता का विरोध किया और दल के अंतर्गत लोकतंत्र का कभी समर्थन नहीं किया i

लेनिन के बाद ट्राटस्की साम्यवादी सिद्धांतों का अग्रणी टीकाकार माना जाता है और लेनिन के उत्तराधिकारी के रूप में उसका नाम लिखा जाता थाi पर स्टालिन के साथ सैद्धांतिक और सत्ता संबंधी संघर्ष में असफल रहाi दोनों के बीच मतभेद इस बात पर था कि स्टालिन राज्य के अंतर्गत समाजवाद स्थापित करने की बात करता था जबकि ट्राटस्की इसे मार्क्सवाद लेनिनवाद के प्रति धोखा मानता था और विश्वव्यापी क्रांति और उसके फलस्वरुप समाजवाद की स्थापना का प्रतिपादन करता थाi

3.3.8. जोसेफ स्टालिन

जोसेफ स्टालिन का जन्म सन 1879 में रूस के जॉर्जिया नामक प्रांत में हुआ था i एक मोची का पुत्र होते हुए भी वह अपनी असाधारण योग्यताओं के बल पर एक दिन रूस जैसे महान राष्ट्र का सर्वेसर्वा बन गयाi उसके माता पिता निर्धन थेi स्टालिन गिरजाघर के स्कूल में पढ़ने की अपेक्षा अपने सहपाठियों के साथ लड़ने और घूमने में अधिक रुचि रखता थाi जब जॉर्जिया में नए प्रकार के जूते बनने लगे तो स्टालिन का पिता तिफ्लिस चला गयाi यहाँ स्टालिन को संगीत और साहित्य में अभिरुचि हो गईi इस समय तिफ्लिस में बहुत सा क्रांतिकारी साहित्य चोरी से बाँटा जाता थाi स्टालिन इन पुस्तकों को बड़े चाव से पढ़ने लगाi 19 वर्ष की अवस्था में वह मार्क्स के सिद्धांतों पर आधारित एक गुप्त संस्था का सदस्य बनाi 1899 ई. में इसके दल से प्रेरणा प्राप्त कर काकेशिया के मजदूरों ने हड़ताल कीi सरकार ने इन मज़दूरों का दमन कियाi 1900 ई. में तिफ्लिस के दल ने फिर क्रांति का आयोजन कियाi इसके फलस्वरूप स्टालिन तिफ्लिस छोड़कर बातूम भाग जाना पड़ाi 1902 ई. में स्टालिन को बंदीगृह में डाल

दिया गयाi 1903 से 1913 के बीच उसे छह बार साइबेरिया भेजा गयाi मार्च 1917 में सब क्रांतिकारियों को मुक्त कर दिया गयाi स्टालिन ने जर्मन सेनाओं को हराकर दो बार खार्कोव को स्वतंत्र किया और उन्हें लेनिनग्रेड से खदेड़ दियाi

1922 में सोवियत समाजवादी गणराज्यों का संघ बनाया गया और स्टालिन उसकी केंद्रीय उपसमिति में सम्मिलित किया गयाi लेनिन और ट्रॉट्स्की विश्वक्रांति के समर्थक थेi स्टालिन उनसे सहमत न थाi जब उसी वर्ष लेनिन को लकवा मार गया तो सत्ता के लिए ट्रॉट्स्की और स्टालिन में संघर्ष प्रारंभ हो गयाi 1924 में लेनिन की मृत्यु के पश्चात् स्टालिन ने अपने को उसका शिष्य बतलायाi चार वर्ष के संघर्ष के पश्चात् ट्रॉट्स्की को पराजित करके वह रूस का नेता बन बैठाi

स्टालिन अपनी युवावस्था से ही क्रांतिवादी था और सन 1917 के कई वर्ष पूर्व से वह बोल्शेविकों का नेता थाi जनवरी 1924 में लेनिन की मृत्यु के बाद दल और शासन के नेतृत्व के प्रश्न पर स्टालिन द्वारा ट्राटस्की को रूस से निष्कासित कर दिया गयाi इस समय तक स्टालिन ने दल में अपनी सर्वोच्चता स्थापित कर ली थीi

अपने जीवन काल में स्टालिन एक ऐसी शक्ति बन गया जिससे विश्व के राष्ट्र भयभीत रहते थे और जिसकी प्रत्येक चाल को विश्व के राजनीतिज्ञ बड़ी बारीकी से देखते थेi स्टालिन ने शासन और दल दोनों पर अपना कठोर नियंत्रण स्थापित कर लियाi सोवियत रूस की संपूर्ण सत्ता एक प्रकार से उसके हाथों में केंद्रित हो गईi उसने एक तरह का स्टालिन संप्रदाय रच लिया और उसकी पूजा देवता के तरह होने लगीi संसार के किसी सार्वजनिक नेता ने शायद ही कभी इतनी शक्ति अर्जित की हो जितनी स्टालिन ने की होi 1953 में स्टालिन की मृत्यु हो गईi

3.3.9. स्टालिनवाद

लेनिनवाद में मार्क्सवाद को विकृत करके भी स्वयं को मार्क्स का सच्चा अनुनायी और मार्क्सवाद का सच्चा प्रवक्ता सिद्ध करने की प्रयास कीi स्टॉलिन ने भी कुछ ऐसा ही कियाi मार्क्सवाद लेनिनवाद से बहुत कुछ भिन्न रुख अपनाते हुए भी उसने स्वयं को उनका अनुनायी बताया और अपनी इससे भिन्न नीतियों की रक्षा, यह कहकर की कि परिस्थितियां इन नीतियों की मांग करती हैi

मार्क्सवाद लेनिनवाद को स्टालिन ने एक नवीन दिशा दीi उसे दो भागों में बांटा जा सकता है –

- एक देशीय समाजवाद का सिद्धांत
- स्टालिन का क्रांति सिद्धांत

3.3.9.1. स्टालिन का एक देशीय समाजवाद का सिद्धांत

मार्क्सवाद लेनिनवाद के विकास में स्टालिन का प्रमुख योगदान है कि सन 1924 में उसने अचानक ही घोषणा की कि, समाजवाद एक देश में ही संभव हैi मार्क्स ने साम्यवादी संघ के समक्ष अपने एक भाषण में कहा था कि, "पूंजीपति वर्ग सदैव ही शीघ्र अतिशीघ्र क्रांति का अंत करना चाहेगा , अतः श्रमिक वर्ग का हित क्रांति को स्थायी बनाने में है अर्थात क्रांति तब तक जारी रहनी चाहिए जब तक सारे संसार के प्रमुख देशों में शासन तंत्र श्रमजीवी वर्ग के हाथों में ना आ जाएi अप्रैल 1924 तक स्टालिन ने भी स्वीकार किया था कि समाजवाद की अंतिम विजय हेतु समाजवादी आंदोलन के संगठन के लिए एक देश के विशेषकर रूस जैसे निर्धन देश के प्रयत्न अ पर्याप्त हैi" लेकिन त्रोत्सकी के साथ शक्ति परीक्षण में

स्टालिन ने अकस्मात ही रंग बदल दियाi ट्राटस्की ने स्थाई क्रांति के सिद्धांत की वकालत की ,जबकि स्टालिन ने अपना पक्ष सुदृढ़ करने के लिए इस सिद्धांत पर सामयिक प्रहार करना उचित समझा i
स्टालिन ने तर्क दिया कि परिवर्तित परिस्थितियों में ,जबकि उसके चारों और पूंजीवादी घेरा विद्यमान है ,विश्व क्रांति के कार्यक्रम को अस्थायी रूप से छोड़ देना चाहिए और उसमें समाजवाद को सुदृढ़ करने पर ही सारी शक्ति केंद्रित की जानी चाहिएi अब वह प्रत्येक देश में स्वतंत्र रूप से समाजवाद की स्थापना होने के पक्ष में थाi बशर्ते कि संबंधित देश का आकार बड़ा हो, उस की जनसंख्या भी बड़ी हो और उसके प्राकृतिक साधन विशाल होंi ट्राटस्की पर स्टालीन की विजय के फल स्वरुप साम्यवादी दल ने भी एक देशीय समाजवाद के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया जिसके अनुसार पहले सोवियत संघ में समाजवाद को सुदृढ़ किया जाना थाi
सन 1924 में प्रॉब्लम ऑफ़ लेनिनिज्म पुस्तक प्रकाशित कर स्टालिन ने स्पष्ट रूप से व्यक्त किया कि शेष संसार में पूंजीवाद के रहते हुए भी एक देश में समाजवाद की स्थापना हो सकती हैi रूस अपनी क्षमता के बल पर पूंजीवादी विश्व में भी अपना समाजवादी रूप कायम रख सकता है और अपनी बहुमुखी उन्नति भी कर सकता हैi रूस को विश्व के समाजवादी बनने की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है ,लेकिन लेनिन ने यह नहीं कहा था कि एक देश में भी समाजवाद की स्थापना हो सकती है जबकि शेष विश्व पूंजीवादी हो i ट्राटस्की का आरोप था कि स्टालिन का नीति परिवर्तन अर्थात यह कहना कि एक देशीय समाजवाद संभव है लेनिन की नीति का परित्याग है और यह क्रांति विरोधी प्रतिक्रिया का आरंभ हैi लेकिन स्टालिन ने स्थाई क्रांति के सिद्धांत का लेनिनवाद के विरुद्ध घोषित करते हुए अपने विचार को लेनिनवादी बताया और स्वयं को लेनिनवाद का सच्चा प्रवक्ता सिद्ध करने की चेष्टा कीi लेनिन ने अपने साम्राज्यवाद के सिद्धांत का जिस ढंग से विकास किया था ,उसे देखते हुए यह निश्चित मालूम पड़ता था कि वह इस विचार को कभी पसंद नहीं करता कि साम्यवाद स्वयं को अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था से पृथक कर देi लेकिन पूंजीवादी घेरे की स्थिति में स्टालिन की एक देशीय समाजवादी सिद्धांतों ने आर्थिक संबंधों की अपेक्षा राजनीतिक संबंधों पर अधिक जोर दियाi इस सिद्धांत का अभिप्राय था कि रूस की समाजवादी अर्थव्यवस्था परिस्थितियों के अनुसार ही कभी सहयोग और कभी हस्तक्षेप का मार्ग ग्रहण कर सकती थी और साथ ही इस बात की प्रतीक्षा कर सकती थी कि पूंजीवाद का विनाश होi इस तरह की नीति रूसी राष्ट्रवाद या साम्राज्यवाद से बिल्कुल भिन्न थी और उसका मार्क्सवाद से कोई युक्तियुक्त संबंध नहीं थाi वास्तव में ट्राटस्की और स्टालिन में कोई मौलिक अंतर नहीं थाi दोनों ही यह मानते थे कि पूंजीवाद रूसी क्रांति के लिए विनाशकारी है और यदि विश्व क्रांति हो तो उनके संकट ग्रस्त देश को सहायता मिल सकती हैi स्टॉलिन विश्व क्रांति की आवश्यकता में विश्वास प्रदर्शित करता रहा ,केवल तात्कालिक परिस्थितियों की आड़ में विश्व क्रांति कार्यक्रम को कुछ समय के लिए टालने की बात पर उसने बल दियाi ट्राटस्की ने भी इस बात पर कभी आपत्ति नहीं की कि समाजवादी पुनर्निर्माण का कार्य चालू रखना चाहिएi विश्व क्रांति पर उसका बल इसलिए था क्योंकि इससे रूस में समाजवाद की स्थापना दृढ़ होगी i अतः यही कहना होगा कि नीति संबंधी बुनियादी प्रश्न पर मतभेद ना होकर ट्राटस्की और स्टालिन के मध्य वास्तविक संघर्ष सत्ता स्थापित करने का थाi स्टालिन ने रूस को महत्व देने वाले विचारों के आधार पर ट्राटस्की को परास्त कर दल में अपना नेतृत्व स्थापित कर लियाi उसने स्थाई क्रांति के सिद्धांत को तोड़ मरोड़ कर इस ढंग से प्रस्तुत किया कि उसका अर्थ रूस के मजदूरों के स्वावलंबन और राज्य की रक्षा करने की शक्ति में अविश्वास हो गया साथ ही उसने यह विचार भी जोड़ दिया कि जब तक अन्य देशों में क्रांति की संभावना ना हो, तब तक किसी एक देश में क्रांति लाने का

प्रयत्न करना अपनी शक्ति को छोड़ना है जो व्यर्थ हैi उनका यह विचार वास्तव में ट्राटस्की के विचार की अपेक्षा अधिक सजीव था और रुस के अधिकांश साम्य वादियों के मन को अधिक आकर्षित करता था ,क्योंकि इस विचार का स्वाभाविक अर्थ था कि स्टालिन रूसी जनता की शक्ति पर आस्था रखता था तथा उसकी सामर्थ्य के प्रति आशावान थाi स्टॅलिन के इस विचार ने रुसी जनता को राष्ट्रीय आकांक्षा को सांत्वना प्रदान की और उनमें संतोष की लहर भी पैदा की कि विश्व क्रांति के ना होने पर भी उन्हें गृह युद्ध में नहीं फंसना पड़ेगाi स्टालिन के इस नवीन सिद्धांत ने ना केवल राष्ट्रीय लोकप्रियता अर्जित की बल्कि अंतरराष्ट्रीय तनाव को भी कम किया, क्योंकि विदेशी राष्ट्र यह अनुभव करने लगे थे कि स्टालिन क्रांति के व्यापक प्रचार के लिए आतुर नहीं हैi इन सब का परिणाम यह हुआ कि स्टालिन ने साम्यवादी दल का अपने पक्ष में इतना समर्थन प्राप्त कर लिया कि बाद में ट्राटस्की का रूस से निष्कासन भी करवा दियाi

स्टोलिन के एक देशीय समाजवाद के सिद्धांत ने मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धांत को अनेक दृष्टियो से प्रभावित किया-

3.3.9.1.1. विश्व क्रांति के विचार में शिथिलता

स्टालिन ने अपने एक देशीय समाजवाद के सिद्धांत से विश्व क्रांति के विचार के प्रभाव को कम कर उसमें शिथिलता ला दीi स्टालिन सत्ता हथियाने से लगभग 5 वर्ष तक विश्व क्रांति एवं स्थायी क्रांति के पोषक नेताओं को समाप्त करने या प्रभाव शुन्य करने में लगा रहाi उसने ट्राटस्की ,कीजिनोविएव ,कोमेनेव, बुखारिन आदि प्रमुख व्यक्तियों को अपने मार्ग से हटा दियाi स्टालिन के इस कार्य से विश्व क्रांति के विचार को निश्चित रूप से आघात पहुंचाi स्टालिन के कारण ही सन 1929 के बाद से कामिंटन की निति का निर्धारण भी रूस के हितों को ध्यान में रख कर ही किया जाने लगाi यह निति अपनायी गयी कि अन्य देशों के क्रांतिकारी आंदोलनों को रूस के हितो की तराजू में तोला जाये और उसी दृष्टि से उनके प्रति व्यवहार किया जायेi

3.3.9.1.2. एक व्यक्ति की तानाशाही स्थापित

स्टालिन की नीति का दूसरा महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि रूस में सर्वहारा राज्य का विकास हुआ जिसमें एक व्यक्ति के अधिनायक तत्व को बल मिलाi एक व्यक्ति की अर्थात स्टालिन की ऐसी तानाशाही स्थापित हुई जो एक विशाल नौकरशाही द्वारा संचालित होती थी और जिसका प्रमुख आधार पाशविक बल थाi

स्टालिन ने लेनिन के अधिकांश पुराने साथियों को अपने स्वार्थ की बलि वेदी पर चढ़ा दियाi

आर्थिक नियोजन और नौकरशाही तंत्र का विकास

एक देशीय समाजवाद के सिद्धांत का यह अंतर्निहित परिणाम था कि समाजवादी देश आर्थिक रूप से पूर्ण आत्मनिर्भर होने की दिशा में अग्रसर होi वह अपने साधनों को इतना विकसित अथवा उन्नत कर ले कि आर्थिक दृष्टि से दूसरे देशों पर अपनी निर्भरता समाप्त कर विश्व क्रांति का निर्देशन करने के लिए सक्षम हो जाएंi इसके लिए प्रभावशाली औद्योगिकीकरण की नीति अपनाकर दीर्घकालीन योजनाओं द्वारा अपने साधनों को समृद्ध बनाना आवश्यक थाi स्टालिन के नेतृत्व में सोवियत रूस गृह नीति में आर्थिक विकास के पथ पर अग्रसर हुआ और विशेष रूप से सारा ध्यान पंचवर्षीय योजनाओं को सफल बना कर देश में आर्थिक समृद्धि लाने की ओर प्रेरित किया गया

केंद्रीकृत नौकरशाही का विकास

स्टालिन ने अधिक से अधिक शक्ति हस्तगत करने के लिए ऐसी नीति अपनाई कि दल कम श्रमजीवी और कम लोकतंत्र होता चला गयाi उसने एक केंद्रीय नौकरशाही का रूप धारण कर लियाi लेनिन के जीवन काल में वाद-विवाद की पर्याप्त स्वतंत्रता थी लेकिन स्टालिन ना सहयोगवादी था और ना समझौतावादी थाi 1925 में उसने शिखरोंमुखी अनुशासन का सिद्धांत अपनाया जिसके अंतर्गत एक स्तर के दल का अपने से नीचे के अंगों को आदेश दे सकता थाi इस नीति के फलस्वरुप दल के सदस्यों का महत्व कम होने लगा और दल केंद्रीयभूत सरकार के हाथों का खिलौना बन गयाi स्टालिन ने दल से परामर्श लेने की आवश्यकता की भी उपेक्षा कीi 1925 के बाद तो दल के वार्षिक अधिवेशन भी अनियमित तथा अधिक कालांतर से होने लगेi अधिवेशन की सदस्यता के स्वरूप में भी धीरे-धीरे परिवर्तन होता गयाi स्टालिन की नीति का क्रांतिकारी परिणाम यह हुआ कि शक्ति दल के हाथों से निकलकर केंद्रीय समिति के विभिन्न अंगों में केंद्रित हो गईi जिनमें पॉलिट ब्यूरो सर्वाधिक महत्वपूर्ण थाi कालांतर में इस नीति के कारण दल कम श्रमजीवी और कम लोकतंत्रीय होता चला गयाi स्टालिन ने दल को संकुचित बनाए रखने का प्रयत्न किया और दल को खुला रखने के प्रयास को सफलतापूर्वक दबायाi दल के नामकरण में भी परिवर्तन कर दिया गयाi 1950 में जो 19 वां अधिवेशन हुआ उसमें दल का नाम **अखिल संघीय साम्यवादी दल** से बदलकर सोवियत संघ का **साम्यवादी दल** कर दिया गयाi इसके अतिरिक्त दल को मजदूर वर्ग का संगठन अग्रवाहक तथा उनके वर्ग संगठन का श्रेष्ठतम रूप के बजाय सह- विचार साम्यवादियों का एक समुदाय कहा जाने लगाi इस एच्छिक समुदाय में श्रमिक, कृषक और बुद्धिजीवी वर्ग सम्मिलित थेi रूस में कुछ अन्य बातों ने भी सर्वहारावाद की वृद्धि में सहायता पहुंचाई, श्रमिक संघों की कार्य स्वतंत्रता का अपहरण एवं स्टालिन का देवीकरणi स्टालिन ने, जो आत्म प्रशंशा , और सत्ता का भूखा था , अपने चारों ओर एक स्टालिन संप्रदाय कायम कर लिया थाi उसने पाश्विक शक्ति का इतना अधिक प्रयोग किया कि वह लेनिन को लांघ कर मार्क्स की इस धारणा से और भी अधिक दूर हो गया कि समाजवाद की स्थापना में या पूंजीवादी समाज के आबंटन में शक्ति का प्रयोग सामाजिक एवं आर्थिक प्रक्रियाओं की तुलना में अपेक्षाकृत कम होगाi

3.3.9.1.3. स्टालिन द्वारा राज्य सिद्धांत में परिवर्तन

स्टालिन का **एकदेशीय समाजवाद** का सिद्धांत मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धांत से स्पष्टतः इस रूप में भिन्न था कि वह राज्य के संबंध में एक संशोधित विचारधारा थीi एकदेशीय समाजवाद के सिद्धांत को अपनाने के कारण स्टालिन को मार्क्स के राज्य सिद्धांत का व्यवहार का परित्याग करना पड़ाi कठोर मार्क्सवादियों के दृष्टिकोण से राज्य वर्ग संघर्ष की उपज है और राज्य का अस्तित्व तभी तक रहता है जब तक समाज में वर्ग विद्यमान हैi ज्यों ही उत्पादन के साधनों पर से व्यक्तिगत स्वामित्व हट जाता है , त्यों ही यह वर्ग भेद समाप्त हो जाता है और वर्ग भेद समाप्त होते ही राज भी समाप्त होने लगता है i लेकिन स्टालिन ने इस मार्क्सवादी लेनिनवादी धारणा में संशोधन कियाi वह राज्य के विरोध के सिद्धांत को शब्दों में तो स्वीकार करता रहा पर साथ ही राज्य के अस्तित्व कायम रखने के कारणों पर जोर देता रहाi

3.3.9.1.4. रूस में राष्ट्रवाद का उदय

स्टालिन की एकदेशीय समाजवाद के परिणाम स्वरुप राष्ट्रीय साम्यवाद का उदय हुआi स्टालिन ने जिस राष्ट्रीय भावना को प्रोत्साहन दिया और जिस नवीन कृषि नीति को अपनाया वह लेनिन की शिक्षाओं की विपरीत थीi एकदेशीय समाजवाद के विचार ने रूस की क्रांति को विश्व-क्रांति के लिए साधन ना बना कर स्वयं में एक साध्य बना दियाi राष्ट्रवाद और साम्यवाद के सहयोग से रूस एक राष्ट्रवादी देश बन

गयाi रूस की यह राष्ट्र-भावना मार्क्स एंजिल्स और लेनिन की अवहेलना थी, क्योंकि उनका समाजवाद संबंधी दृष्टिकोण अंतरराष्ट्रीय थाi सन 1934 तक स्टालिन ने राष्ट्रवाद का स्पष्ट पक्ष पोषण नहीं किया लेकिन जब सन 1935 के बाद उसे विश्वास हो गया कि हिटलर रूस पर आक्रमण करेगा तो उसने अपनी नीति में परिवर्तन कर दिया और वह राष्ट्रवाद की ओर झुक गयाi अब रूस के बाहर के देशों में स्थानीय साम्यवादी दलों को भी राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में राष्ट्रीय तत्वों से मिलने के लिए प्रोत्साहन दिया गयाi

3.3.9.1.5. आय की समानता के विचार का त्याग

स्टालिन ने आय के संबंध में भी मार्क्स और लेनिन के सिद्धांतों का अनुसरण नहीं कियाi लेनिन ने कहा था कि राज्य कर्मचारियों को कुशल मजदूरों से अधिक वेतन नहीं देना चाहिए ,किंतु स्टालिन ने घोषित किया कि समानता के मार्क्सवादी सिद्धांत का उद्देश्य आय की समानता ना होकर वर्ग विशेष के विशेष के विशेषाधिकारों का उल्लंघन हैi समाजवादी व्यवस्था में मनुष्य को कार्यनुसार वेतन मिलेगाi केवल साम्यवाद में ही व्यक्ति की आवश्यकतानुसार वस्तुओं का वितरण होगाi स्टालिन ने कहा कि व्यक्ति को योग्यता के अनुसार पारिश्रमिक देना तथा राज्य की यथाशक्ति सेवा करने के लिए प्रेरणा देने हेतु धन का आकर्षण आवश्यक हैi

3.3.9.2. स्टालिन की क्रांति संबंधी धारणा

स्टालिन के **एकदेशीय समाजवाद** के सिद्धांत में विश्वास रखने का आशय यह नहीं था कि विश्व क्रांति की धारणा में उसे विश्वास नहीं थाi स्टालिन ने जीवन-पर्यंत क्रांति में विश्वास रखा और विश्व क्रांति के विचार का परित्याग नहीं कियाi अपनी पुस्तक की **लेनिनिज्म** में उसने लिखा कि जब तक अनेकों देशों में सफल क्रांति नहीं होती तब तक कोई भी देश प्रतिक्रियावादी क्रांति को संभावना से सुरक्षित नहीं रह सकताi

अपनी शक्तिशाली प्रतिद्वंदी ट्राटस्की से स्टालिन का मुख्य मतभेद इस बात पर था कि जहां ट्राटस्की यूरोप को क्रांति के लिए परिपक्व मानता था वहां स्टालिन इस बात से सहमत नहीं थाi स्टालिन की यह अवधारणा थी कि पूंजीवादी व्यवस्था की प्रतिरोधक शक्ति उससे कहीं अधिक थी जितनी ट्राटस्की ने आंकी थीi

क्रांति में पूर्ण विश्वास रखते हुए भी स्टालिन इस बात से इंकार नहीं करता था कि समाजवाद का आवर्तन शांतिपूर्ण ढंग से हो ही नहीं सकताi स्टालिन का यह मत मार्क्स के निकट था, लेकिन लेनिन के विपरीत, शांतिमय आवर्तन का उसका विचार मार्क्स के निकट होते हुए भी उसे बहुत भिन्न था i स्टालिन के शांतिपूर्ण आवर्तन के रूप का उदाहरण हमें उस ढंग में मिल जाता है जिसके द्वारा पोलैंड ,हंगरी ,रूमानिया,बल्गेरिया, चेकोस्ल्वाकिया आदि देशों में समाजवाद की स्थापना की गईi वास्तव में ये देश एक प्रकार पूर्णतः समाजवादी घेरे के अधीन हो गएi इन देशों में साम्यवादी सरकार की स्थापना के लिए विभिन्न हथकण्डो का प्रयोग किया गयाi इन सभी हथकंडो की एक सामान्य विशेषता रूस की सैनिक शक्ति पर निर्भरता थीi रूस की सहायता से ही इन देशों में साम्यवादी शासन स्थापित हुआ और रुस के संकेत इन देशों में साम्यवादी सरकारें आती रहती हैi केवल युगोस्लाविया इसका अपवाद है i इस तरह कहा जा सकता है कि मार्क्स के विपरीत स्टालिन क्रांति को सामाजिक और आर्थिक स्थितियों का स्वभाविक परिणाम नहीं मानता थाi वह लेनिन और ट्राटस्की के इस सिद्धांत में विश्वास नहीं रखता था कि रुसी पद्धति का अनुसरण द्वारा यूरोपीय देशों में क्रांति आएगी i स्टालिन का तो यह विश्वास था कि

क्रांति का आगमन रूस की शक्ति द्वारा होगाi स्टालिन की विश्व क्रांति एक प्रकार से रूसी विश्व क्रांति थीi वह रुसी साम्राज्यवाद के प्रसारण का आकांक्षी थाi वेपर ने स्टालिन के शांतिपूर्ण साधनों का अर्थ भी उसकी शक्ति में आस्था से लगाया है जिसमें केवल मात्रा का अंतर थाi

3.3.10. स्टालिन के कार्य

3.3.10.1. पंचवर्षीय योजनाओ का निर्माण

स्टालिन ने रूसी प्रगति के लिए नियोजन की प्रक्रिया पर बल दिया और इसके तहत 1925 ई. में उसने योजना आयोग की स्थापना की और द्वितीय विश्वयुद्ध तक तीन पंचवर्षीय योजनाएं लागू कीi प्रथम पंचवर्षीय योजना 1928 से 1932 ई. तक लागू रही जिसका उद्देश्य था, पूंजीवाद के अवशेषों का समाप्त करना, सोवियत रूस का औद्योगिकरण करना, कृषि का समूहीकरण एवं मशीनीकरण करनाi

1932 ई. में दूसरी पंचवर्षीय योजना लागू हुईi इसमें उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन पर जोर दिया गयाi फलतः रूसी जनता के रहन-सहन में सुधार होने लगाi साथ ही यातायात के साधनों और निवास स्थान के निर्माण की तरफ विशेष ध्यान दिया गयाi चूंकि इसी समय जर्मनी में हिटलर का उदय हुआ तथा उसने रूस पर आक्रमण की नीति अपनाईi अतः स्टालिन को उपभोक्ता वस्तुओं के निर्माण की बजाय अस्त्र-शस्त्र निर्माण पर ध्यान देना पड़ाi इस काल में रूस में लोहे-इस्पात तथा कोयले का उत्पादन कई गुना बढ़ गयाi ट्रैक्टर, रेल इंजन के निर्माण में वह अग्रणी देश बनाi यही वजह है कि नाजी आक्रमण के दौरान रूस ने उसका सफलतापूर्वक सामना कियाi इसी तरह 1938 ई.में द्वितीय विश्व युद्ध प्रारंभ हो जाने के कारण इसे स्थागित करना पड़ाi

3.3.10.2. कृषि क्षेत्र में सुधार

स्टालिन ने सभी निजी कार्यों विशेषकर कृषकों के फार्मों का पूर्ण रूप से उन्मूलन कर सरकारी फार्म खोलने का आदेश जारी कियाi उसने कृषि का राष्ट्रीयकरण कर व्यक्तिगत खेतों के स्थान पर सरकार तथा सामूहिक फर्मों का निर्माण कियाi सामूहिक फार्मों की स्थापना बहुत से किसानों की जमीनों को सम्मिलित कर एक फार्म बनाकर किया गया, जिसमें समस्त किसान सामूहिक रूप से काम कर सकेंi छोटे बड़े सभी किसानो ने इस समूहीकरण का विरोध किया किन्तु स्टालिन ने सख्ती से उनका सामना कियाi विद्रोही कुलकों एवं कृषकों को लाखों की संख्या में बंदी बनाया गया तथा हजारों को गोली से उड़ा दिया गयाi

3.3.10.3. शिक्षा के क्षेत्र में कार्य

स्टालिन ने निरक्षरता को समाप्त करने पर बल दियाi उसने एक बार कहा था कि बौद्धिक क्रांति के बिना साम्यवादी आर्थिक व्यवस्था की सफलता संभव नहीं हैi सरकार ने प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क तथा अनिवार्य कर दियाi रूसी भाषा के अलावे अन्य भाषा में भी पुस्तकों को प्रकाशित करने की व्यवस्था की गईi वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा की तरफ विशेष ध्यान दिया गयाi इन सबको सम्मिलित परिणाम यह हुआ कि 1941 ई. में रूस के 90 प्रतिशत लोग शिक्षित हो गए और रूस की वैज्ञानिक तथा तकनीकी क्षेत्र में काफी प्रगति हुईi

3.3.10.4. सन 1936 का नया संविधान

1918 में लेनिन के काल में जिस संविधान का निर्माण हुआ था उसे स्टालिन ने 1936 ई. में संशोधित कर नए संविधान के रूप में लागू कियाi इसके तहत इनकी संसद का नाम **"सुप्रीम सोवियत ऑफ द यूएसएसआर "** रखा गयाi इसमें दो सदन होते थे जिनका कार्यकाल चार वर्ष निर्धारित थाi 18 वर्षकी आयु वालों को मताधिकार दिया गयाi नागरिको को काम पाने का अधिकार भी दिया गयाi

इस प्रकार स्टालिन ने रूस को प्रगति के पथ पर अग्रसरित कर द्वितीय विश्वयुद्ध में नाजी जर्मनी का मुकाबला करने हेतु तैयार कियाi यह बात ठीक है कि उसने जोर दुश्मनों के समक्ष पेश कियाi लेकिन यह भी सत्य है कि यदि वह ऐसा नहीं करता तो विश्व की एक मात्र मजदूरों की सरकार नाजियों के हाथ नष्ट हो जातीi

3.3.11. स्टालिन और हिटलर

जर्मनी के लगातार हमलों से सोवियत संघ का बुरा हाल थाi देश तबाही के कगार पर खड़ा थाi लेकिन, स्टालिन नाज़ी सेना पर जीत के लिए अपने देश के लाखों लोगों को क़ुर्बान करने के लिए तैयार थेi दिसंबर 1941 में जर्मन सेनाएं रूस की राजधानी मॉस्को के बेहद क़रीब पहुंच गईं सलाहकारों ने स्टालिन को मॉस्को छोड़ने की सलाह दीi मगर स्टालिन ने इससे साफ़ इनकार कर दियाi उन्होंने अपने कमांडरों को फ़रमान जारी किया कि उन्हें नाज़ी सेनाओं को किसी भी क़ीमत पर हराना होगाi

जर्मनी और रूस के बीच जंग में स्टालिनग्राड की लड़ाई से निर्णायक मोड़ आयाi हिटलर ने इस शहर पर इसलिए हमला किया क्योंकि इसका नाम स्टालिन के नाम पर थाi वो स्टालिनग्राड को जीतकर स्टालिन को शर्मिंदा करना चाहता थाi लेकिन स्टालिन ने अपनी सेनाओं से कहा कि वो एक भी क़दम पीछे नहीं हटेंगीi स्टालिनग्राड के युद्ध में रूसी सेना के दस लाख से ज़्यादा सैनिक मारे गएi लेकिन आख़िर में सोवियत सेनाओं ने जर्मनी को मात दे दीi इसके बाद तो सोवियत संघ ने हिटलर की सेनाओं को वापस जर्मनी की तरफ़ लौटने को मजबूर कर दियाi सोवियत सेनाएं, जर्मनी को खदेड़ते हुए राजधानी बर्लिन तक जा पहुंचींi

दूसरे विश्व युद्ध में जर्मनी को हराने में स्टालिन ने बहुत अहम भूमिका निभाई थीi युद्ध के बाद पूर्वी यूरोप के एक बड़े हिस्से पर सोवियत सेनाओं ने क़ब्ज़ा कर लियाi उन्होंने जर्मनी की राजधानी बर्लिन के पूर्वी हिस्से पर भी क़ब्ज़ा कर लियाi

स्टालिन ने कहा कि ये सभी देश सोवियत संघ के अंगूठे तले रहेंगेi दूसरे विश्व युद्ध के दौरान अमरीका और ब्रिटेन, स्टालिन के साथ थेi मगर युद्ध के बाद स्टालिन की नीतियों के चलते वो उसके दुश्मन बन गएi ब्रिटेन के प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल ने कहा कि स्टालिन यूरोप के एक बड़े हिस्से को लोहे के पर्दे से बंद कर रहे हैंi

बर्लिन को लेकर ब्रिटेन-अमरीका और सोवियत संघ के बीच तनातनी इस क़दर बढ़ गई कि स्टालिन ने पूर्वी बर्लिन में अमरीकी और ब्रिटिश सेनाओं के घुसने पर रोक लगा दीi अमरीका ने पूर्वी बर्लिन में फंसे लोगों को 11 महीने तक हवाई रूट से मदद पहुंचाईi

शीत युद्ध का आग़ाज़ हो चुका थाi सोवियत संघ ने 29 अगस्त 1949 को अपने पहले एटम बम का परीक्षण कियाi

3.3.11. स्टालिन का मूल्यांकन

संपूर्ण सैद्धांतिक दृष्टि से स्टालिन ने मार्क्स और लेनिन के मौलिक विचारों में महत्वपूर्ण परिवर्तन किएi उसने मार्क्स के राज्य के लुप्त होने के विचार का परित्याग कर दिया और लोकतंत्र तथा समानता के सिद्धांत को तिलांजलि दे दी लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से उसने रूस को, जिसका संसार के प्रथम साम्यवादी देश के रूप में उदय हुआ था, औद्योगिक और सैनिक दृष्टि से सुंदर तथा शक्तिशाली बनायाi स्टालिन ने अपने उद्देश्य की पूर्ति में किसी भी विरोध को सहन नहीं कियाi संभवतः संसार के किसी अन्य शासक ने स्टालिन से अधिक प्रजा का खून नहीं बहाया होगाi

इसमें कोई संदेह नहीं कि स्टालिन के निर्मम निरंकुशता ,कठोरता और दमन का परिचय दिया, लेकिन यदि वह ऐसा ना करता तो शायद शक्तिशाली रूस का निर्माण ना हो पाताi समाजवाद के संस्थापकों में सैद्धांतिक दृष्टि से स्टालिन का स्थान गौड़ है फिर भी व्यावहारिक दृष्टि से उसका स्थान मुख्य हैi वास्तव में लेनिन और स्टालिन दोनों ने ही रूस में समाजवादी राज्य को स्थापित करने और सशक्त बनाने हेतु मार्क्स के सिद्धांत में आवश्यकता अनुसार संशोधन किए i शक्तिशाली साम्यवादी देश के निर्माण के लिए और रूस में हुई बोल्शेविक क्रांति को सफल बनाने के लिए लेनिन द्वारा मार्क्सवाद ने परिवर्तन किए गएi स्टालिन ने भी लेनिन के पद चिन्हों का अनुसरण किया उसने भी लेनिन द्वारा स्थापित राज्य को सुदृढ़ और शक्तिशाली बनाने के लिए मार्क्स और लेनिन के सिद्धांतों में परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तन किए i स्टालिन रूस को और रूस में साम्यवादी क्रांति को अल्प अवधि में ही अत्यंत प्रबल और अजेय बना देना चाहता थाi उसके मार्ग में दो बड़ी बाधाएं थीi पूंजीपति राज्यो के विरोध में अपनी सत्ता सुदृढ़ करना तथा किसानों को साम्यवादी क्रांति के अनुकूल बनानाi दोनों समस्याओं के समाधान के लिए उसे कुछ सुविधाएं देने पड़े लेकिन उसने साम्यवादी दल के अधिनायकत्व के स्थान पर अपना व्यक्तिगत अधिनायकत्व स्थापित कियाi उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए क्रूर दमन और शोषण अत्याचार का आश्रय लियाi उसे निश्चित रूप से सफलता प्राप्त हुई,लेकिन यह सफलता साम्यवादी सिद्धांतो में महत्वपूर्ण संशोधन तथा रूसी प्रजाजन में भय,आतंक ,हिंसा और कष्ट के द्वारा ही प्राप्त हुइ

स्टालिन व्यक्तित्व एक व्यक्ति के नेतृत्व का युग थाi उसकी मृत्यु के बाद सामूहिक नेतृत्व का विकास हुआ जो ख्रुशचेव के समय से ठोकरें खाता हुआ अभी तक किसी न किसी रूप में विद्यमान है i ख्रुशचेव के साथ ही रूस में उदारवादी साम्यवाद का धीरे धीरे विकास होने लगाi ख्रुश्चेव ने स्टालिन की नीतियों का बहिष्कार किया और उसकी कब्र को पूरी तरह खो डाला और व्यक्ति पूजा का दृढ़ता से विरोध कियाi

स्टालिन साम्यवादी नेता ही न था, वह राष्ट्रीय तानाशाह भी थाi 1936 में 13 रूसी नेताओं पर स्टालिन को मारने का षड्यंत्र रचने का आरोप लगाया गया और उन्हें प्राणदंड दिया गयाi इस प्रकार स्टालिन ने अपना मार्ग निष्कंटक कर लियाi 1937 तक मजदूर संघ, सोवियत और सरकार के सभी विभाग पूर्णतया उसके अधीन हो गएi कला और साहित्य के विकास पर भी स्टालिन का पूर्ण नियंत्रण थाi

3.3.12. सारांश

1924 में ब्रिटेन के प्रधानमंत्री ने रूस की सरकार को मान्यता दे दीi 1926 में सोवियत सरकार ने टर्की और जर्मनी आदि देशों से संधि कीi 1934 ई. में रूस राष्ट्रसंघ का सदस्य बनाi जब जर्मनी ने अपनी सैनिक शक्ति बढ़ा ली तो स्टालिन ने ब्रिटेन और फ्रांस से संधि करके रूस की सुरक्षा का प्रबंध

कियाi किंतु ब्रिटेन ने जब म्यूनिक समझौते से जर्मनी को मागें मान ली तो उसने 1939 में जर्मनी के साथ तटस्थता की संधि कर लीi द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारंभ में रूस ने जर्मनी का पक्ष लियाi जब जर्मनी ने रूस पर आक्रमण किया तो ब्रिटेन और अमरीका ने रूस की सहायता कीi 1942 में रूस ने जर्मनी को आगे बढ़ने से रोक दिया और 1943-44 में उसने जर्मनी की सेनाओं को पराजित कियाi 1945 में स्टालिन ने अपने आपको जेनरलिसिमो (generalissimo) घोषित कियाi

फरवरी, 1945 में याल्टा सम्मेलन में रूस को सुरक्षा परिषद में निषेधाधिकार (वीटो पॉवर) दिया गयाi चेकोस्लोवाकिया से चीन तक रूस के नेतृत्व में साम्यवादी सरकारें स्थापित हो गईi फ्रांस और ब्रिटेन की शक्ति अपेक्षाकृत कम हो गईi 1947 से ही रूस और अमरीका में शीत युद्ध प्रारंभ हो गयाi साम्यवाद का प्रसार रोकने के लिए अमरीका ने यूरोपीय देशों की आर्थिक सहायता देने का निश्चय कियाi उसी वर्ष रूस ने अंतरराष्ट्रीय साम्यवाद संस्था को पुनर्जीवित कियाi स्टालिन के नेतृत्व में सोवियत रूस ने सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त कीi वस्तुओं का उत्पादन बहुत बढ़ गया और साधारण नागरिक को शिक्षा, मकान, मजदूरी आदि जीवन की सभी आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध हो गईi अपने आख़िरी दिनों में स्टालिन बहुत शक्की हो गए थेi वो पार्टी में कई लोगों को अपना दुश्मन मानने लगे थेi ऐसे हर शख़्स को वो मरवा दिया करते थेi
5 मार्च 1953 को दिल का दौरा पड़ने से स्टालिन का निधन हो गयाi सोवियत संघ में बहुत से लोगों ने उनकी मौत पर मातम मनायाi उन्हें महान नेता बताया, जिसने देश को एक नई ऊंचाई पर पहुंचाया थाi जिसने हिटलर को हराने में अहम भूमिका निभाईi स्टालिन की बाद रुसी नीतियाँ पश्चिमी राष्ट्रों और पडोसी राज्यों के प्रति अपेक्षाकृत शक्ति व्यवहार कम करने लगी हैi

3.3 .13. अभ्यास /बोधात्मक प्रश्न

3.13.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

- ट्राटस्की के स्थायी क्रांति के सिद्धांत पर निबन्ध लिखिएi
- स्टालिनवाद क्या है ?
- स्टालिन के एकदेशीय समाजवाद का सिद्धांत पर प्रकाश डालिएi
- ट्राटस्की को स्टालिन अपना विरोधी क्यों मानता था ?
- स्टालिन का मूल्याङ्कन कीजियेi

3.13.2 लघु उत्तरीय प्रश्न

- ट्राटस्की की रचनाओं पर प्रकाश डालिएi
- स्टालिन के द्वारा राज्य सिद्धांत में क्या परिवर्तन किये गए ?
- स्टालिन और हिटलर के सम्बन्ध पर टिप्पड़ी लिखिएi
- स्टालिन के कार्यो पर प्रकाश डालिएi
- स्टॅलिन के क्रांति सम्बन्धी धारणा संक्षेप में लिखिएi

3.13.3 बहुविकल्पीय प्रश्न

1. ट्राटस्की का जन्म हुआ था-

(अ) 1905

(ब) 1879

(स) 1910

(द) 1900

2. "जीवित मनुष्य को श्रम करना चाहिए ताकि रह सकें" किसका कथन है -

(अ) लेनिन

(ब) माओ

(स) स्टालिन

(द) ट्राटस्की

3. **लेनिनिज्म** किसकी पुस्तक है ?

(अ) मार्क्स

(ब) लेनिन

(स) माओ

(द) स्टालिन

4. स्टालिन का शक्तिशाली प्रतिद्वंदी कौन था ?

(अ) ट्राटस्की

(ब) लेनिन

(स) माओ

(द) मार्क्स

5. सामूहिक नेतृत्व का विकास किसकी मृत्यु के पश्चात हुआ ?

(अ) लेनिन

(ब) स्टालिन

(स) माओ

(द) मार्क्स

3 .13 .4 बहुविकल्पीय प्रश्नो के उत्तर

1. (ब) 1879
2. (द) ट्राटस्की
3. (द) स्टालिन
4. (अ) ट्राटस्की
5. (ब) स्टालिन

3.3.14. कठिन शब्द

फॉर्मूला- सूत्र

रैडिकल- मौलिक

प्रसारण- फैलाव

3.3.16. संदर्भ ग्रंथ सूची

- डा. बी. एल. फड़िया , पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन ,साहित्य भवन पब्लिकेशन ,आगरा ,1992 , आईएसबीएन-978-93-5173-312-6
- प्रो. मेहता एवं खन्ना,राजनीति विज्ञान,एस बी पी डी पब्लिशिंग हॉउस, 2015
- डा. आर.के.आनंद,डा. जीवन महता, डा. एन. डी.अरोड़ा,राजनीति विज्ञान के सिद्धांत , साहित्य भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.)लि.,2007
- जीवन महता, राजनीतिक चिंतन का इतिहास, साहित्य भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.)लि.,2008 , आईएसबीएन-978-93-5073-409-9
- डा. पुखराज जैन,राजनीतिक चिंतन का इतिहास,2006, साहित्य भवन पब्लिकेशन,आगरा, आईएसबीएन-81-7288-031-6
- डा. सुरेश चन्द्र सिंहल, प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा
- डा. जे.सी. जौहरी,राजनीति विज्ञान,एस बी पी डी पब्लिकेशन,आगरा आईएसबीएन-978-93-5167-451-1
- डा जे. सी. जौहरी ,राजनीतिक संकल्पनाएं एवं विचारधाराएँ एसबीपीडी पब्लिकेशन,आगरा,आईएसबीएन- 978-93-5167-300-2
- डा बी.एल.फड़िया,अवधाराणाए एवं विचारधाराए,साहित्य भवन पब्लिकेसन्स,आगरा ,आईएसबीएन-978-93-5173-054-5
- एडी आशीर्वादम,कृष्णकांत मिश्र,राजनीति विज्ञान 2016, एस. चन्द एंड कंपनी (प्रा.) लिमिटेड, रामनगर, नई दिल्ली, आईएसबीएन-978 -81-219-0896-2

इकाई-4 माओ-त्से–तुंग के राजनीतिक विचार

इकाई की रूपरेखा

3.4.1. उद्देश्य कथन
3.4.2. प्रस्तावना
3.4.3. जीवन- परिचय
3.4.4. कृतियाँ
3.4.5. माओत्से तुंग के वैचारिकी आधार
3.4.6. माओत्से तुंग और मार्क्सवाद-लेनिनवाद
3.4.7. मार्क्सवाद-लेनिनवाद का चीनीकरण
3.4.8. महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति
3.4.8.1. गुरिल्ला युद्ध
3.4.9. क्रांति के साधन
3.4.10. स्थाई क्रांति का सिद्धांत
3.4.11. क्रांति मे जनसाधारण का योगदान
3.4.12. युद्ध की अनिवार्यता का सिद्धांत
3.4.16. माओ, सोवियत रूस और अमेरिका
3.4.17. सारांश
3.4.18. अभ्यास / बोधात्मक प्रश्न
3.4.18.1. दीर्घ उतरीय प्रश्न
3.4.18.2. लघु उत्तरीय प्रश्न
3.4.18.3. बहु विकल्पीय प्रश्न
3.4.18.4. बहु विकल्पीय प्रश्नों के उत्तर
3.4.19. कठिन शब्द
3.4.20. संदर्भ ग्रंथ सूची

3.4.1. उद्देश्य कथन

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप-

1. माओत्से तुंग से परिचित हो जाएंगेi
2. माओ के व्यक्तित्व पर किन विचारको का प्रभाव था,जान जायेंगेi
3. महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति के बारे में जान जायेंगेi
4. माओ के राजनीतिक विचारो को समझ सकेंगेi

3.4.2. प्रस्तावना

बीसवीं सदी के आरम्भ में भूख,बेकारी,भ्रष्टाचार और अव्यवस्था से बिखराव के कगार पर खड़े चीन और बीसवीं सदी के अंत में साम्यवाद का लाल परचम थामे,विकसित,एकीकृत और आत्मनिर्भर गणराज्य के रूप में मौजूद चीन के बीच में यदि कोई एक सफल व्यक्ति खड़ा रहा तो वह था माओत्से-

तुंगi माओत्से-तुंग का जन्म जब हुआ तब चीन पर दो हजार वर्षो से भी अधिक पुराने सामंती राजतन्त्र का शासन थाiइस अध्याय में हम माओ के व्यक्तितव,कृतियों,विचारो और उसके द्वारा किये गये क्रांति के बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगेi

3.4.3. जीवन- परिचय

चीनी क्रांति के पुरोधा, बीसवीं सदी के चीन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति ,मार्क्सवाद के चीनी संस्करण के प्रणेता, क्रांतिकारी राजनीतिक रणनीतिकार,कवि,दार्शनिक तथा दूरदर्शी और साथ ही सैनिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं तकनीकी दृष्टि से आधुनिक चीन के संस्थापक माओत्से-तुंग जिसे चीन में लिपि परिवर्तन के बाद अब माओ जेदांग के नाम से जाना जाता हैiमाओ का जन्म चीन की हुनान प्रांत के शाओशान गांव में एक निर्धन किसान के घर में 26 दिसंबर 1893 को हुआ थाi माओ की माता का नाम वेन की मेई थाi वह अनपढ़ लेकिन गंभीर महिला थीi उनके पिता माओ इचांग थे जिन्हें माओ शुनशेंग एवं माओ जेन-शेंग नाम से भी जाना जाता हैi आरम्भ में माओ शुनशेंग की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी लेकिन कालांतर में पिता की स्थिति उच्च मध्यम वर्गीय की हो गईi पिता के साथ माओ के संबंध अच्छे नहीं थेi उनके ऊपर माता के व्यक्तित्व का व्यापक प्रभाव पड़ाi
उसकी शिक्षा-दीक्षा चांगशा में हुई थीi चांगशा के नार्मल स्कूल में पढ़ते हुए उस पर अपने एक शिक्षक यांग का बहुत प्रभाव पड़ाi 1918 में चांगशा के स्कूल से डिप्लोमा प्राप्त करने के बाद माओ पेकिंग चला गया जहाँ उसने पेकिंग विश्विद्यालय के पुस्तकालय में नौकरी कर
लीi यहाँ माओ को नवीन किताबें पढ़ने का अवसर मिलाi

माओ एक कवि,राज दर्शनिक और विचारक होने के साथ-साथ 6000 मील लंबे चौड़े भू-भाग तथा विश्व की एक चौथाई जनसंख्या का एकछत्र शासक भी रहाi 1 अक्टूबर 1949 को चीन में कम्युनिस्ट पार्टी का शासन स्थापित हुआ था तब से लेकर आजीवन 1976 तक व चीन के जनवादी गणराज्य का अध्यक्ष बना रहाi लेनिन ने जिस तरह सोवियत संघ की स्थापना की थी ,माओ ने चीन की जनवादी गणराज्य का निर्माण किया i चीन इस समय विश्व की सबसे तेज गति की तरक्की करने वाली अर्थव्यवस्था के रूप में जाना जाता हैi विश्व के कुल उत्पादन में चीन की भागीदारी 6.5 प्रतिशत है और उसे इस समय विश्व की तीसरी बड़ी अर्थव्यवस्था वाला देश माना जा सकता हैi इस समय चीन हांगकांग और मकाउ में "एक देश दो व्यवस्था" के सिद्धांत पर कार्य कर रहा हैi नेपोलियन एक बार कहा था , "चीन एक सोया हुआ अजगर है उसे सोने दो वरना यदि वह जाग गया तो संसार को पश्चाताप करना पड़ेगाi" अब यह भविष्यवाणी लगभग सत्य सिद्ध हो चुकी हैi माओत्से-तुंग की प्रेरणा से आधुनिक चीन स्वतः और सतत जागने वाला देश बन गया हैi उसके द्वारा मार्क्सवाद-लेनिनवाद का चीनी संस्करण प्रस्तुत करने एवं सोते हुए चीन को एक जाग्रत विश्व शक्ति के रूप में परिणित करने के कारण से ही उसे आधुनिक चीन का निर्माता कहा जाता हैi

माओ आरंभ से ही अपने धुन का पक्के थे और प्रत्येक कार्य पूर्ण सोच विचार कर करते थेi 5 वर्ष की आयु से खेती के कामकाज में पिता का हाथ बटाने लगे थेi 7 वर्ष की अवस्था से उन्होंने लिखना पढ़ना आरंभ कियाi **द रोमांस ऑफ द मंकी वाटर मार्जिन** और **द रोमांस आफ द थ्री किंग्डम** जैसे लोकप्रिय उपन्यासों को उन्होंने पढ़ लिया थाi 1911 में वह इंटरेन्स परीक्षा में सफल हुए थेi 16 वर्ष की आयु में उन्हें एक अच्छे विद्यालय में आगे की पढ़ाई के लिए प्रवेश मिलाi 14 वर्ष की आयु में सन 1907 में माओ का अपने से 4 वर्ष बड़ी लड़की लूओ इझियु जो शाओशान की रहने वाली थी, से

विवाह हुआi माओ ने स्वयं स्वीकार किया कि अपनी पहली पत्नी से उनकी कभी नहीं पटी और उन्होंने उससे 1910 में विवाह विच्छेद कर लियाi तत्पश्चात उन्होंने निश्चित समय अंतराल पर तीन और विवाह और कियाi

स्कूली शिक्षा ग्रहण करते समय माओ के व्यक्तित्व पर नेपोलियन का बहुत प्रभाव पड़ाi इसके अलावा पीटर महान जैसे वीर पुरुषों की जीवनी का भी व्यापक प्रभाव पड़ाi 1936 में वह भी राष्ट्रीयता के प्रभाव में बह कर चीन के सैनिक शक्ति बढ़ाने तथा उग्र राष्ट्रीयता पर जोर देने लगेi अपने गुरु यांग से पश्चिमी विचार ग्रहण करते हुए भी उसकी विचारधारा मूलतः चीनी ही बनी रहीi
पीकिंग विश्विद्यालय के पुस्तकालय में नौकरी के दौरान उस पर लोकतंत्र,विज्ञान तथा बोल्शेविक क्रांति संबंधी विचारों का प्रभाव पड़ाi उसका यह दृष्टिकोण था कि रूस पिछड़ा हुआ देश था इसलिए उसके पास बहुत बड़ी मात्रा में अतिरिक्त ऊर्जा एकत्रित हो गई थीi इसी कारण वहां क्रांति सफल हुईi चीन भी इसी प्रकार पिछड़ा हुआ देश है और वहां भी काम की सफल हो सकती हैi 18 वर्ष की आयु में उन्होंने इस शताब्दी को चीन की पहली क्रांति देखी और उस में भाग लियाi

सुन यात सेन के नेतृत्व में सन 1911 में हुई इस क्रांति ने 267 वर्ष पुराने मांचू साम्राज्य को उखाड़ फेंकाi सुन के राष्ट्रपति बनने के बाद माओ ने सेना छोड़ दीi उसके बाद उसका जीवन कुछ समय के लिए अव्यवस्थित रहा और अंत में उसने हुनान स्टेट कॉलेज में प्रवेश ले कर डिग्री प्राप्त कीi सन 1918 में पीकिंग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में नौकरी कर लीi यही वे चीन के बुद्धिजीवियों और राजनीतिक कार्यकर्ताओं के निकट संपर्क में आएi सन 1920 में उन्होंने हुनान में एक साम्यवादी संगठन की स्थापना कीi अगले वर्ष उन्होंने चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की शंघाई में हुई प्रथम कांग्रेस में भाग लिया जहां वह पार्टी की हुनान शाखा के सचिव चुने गएi इस बीच चीन में सत्ता-संघर्ष अनवरत चलता रहाi 1922 से 1927 तक माओ और च्यांग काई शेक में घनिष्ठ संबंध बना रहा लेकिन साम्यवादियों और राष्ट्रवादियों के बीच में यह सहयोग अधिक समय तक नहीं रहाi जब च्यांग काई शेक ने साम्यवादियों का दमन आरंभ किया तो वे माओं के नेतृत्व में दुर्गम गांव में चले गएi माओ ने किसानों की सोवियतें बनाकर अपने क्रांतिकारी संगठन को सुदृढ़ बना लियाi उनका निधन 9 सितंबर 1976 को हुआi

3.4.4. कृतियाँ

चीन की विशेष परिस्थितियों के संदर्भ माओ ने मार्क्स-लेनिनवाद के सिद्धांतों का विकास किया हैi उसके विचारों एवं व्याख्याओं को **माओवाद** कहा जाता हैi माओ के विचार उनके द्वारा लिखी गई पुस्तकों,उनके भाषणों एवं व्याख्यानों में मिलती है उनकी प्रमुख किताबें निम्नलिखित है-

- ऑन न्यू डेमोक्रेसी,1940
- ऑन कोलिशन गवर्नमेंट,1945
- डिटेक्टरशिप ऑफ द डेमोक्रेटिक पीपुल,1949
- एंथोलोजी ऑफ हिज राइटिंग्स,1962
- फोर ऐसे इन फिलासफी,1966
- माओ ऑन पीपुल्स वार,1967
- माओत्से-तुंग अनरीहरज्ड,1974

- चेयरमैन माओ टॉक्स टू द पीपुल,1975

इसके अतिरिक्त उसके विचार भी इन संकलनो में मिलते है –

- सेलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ माओत्से तुंग
- सेलेक्टेड रीडिंग्स ऑफ़ माओत्से तुंग

वस्स्तुतः चीन और माओ का वही स्थान हो गया है जो पहले रूस और स्टालिन का थाi चीन और माओ विश्व-समाजवादी क्रांति के केंद्र बन गएi रूस की संसोधनवाद का विरोध करने तथा अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए माओ ने अमेरिकी गठबंधन को भी स्वीकार कर लियाi

3.4.5. माओत्से तुंग के वैचारिकी आधार

माओ एक दार्शनिक नहीं लेकिन क्रांतिकारी योद्धा था फिर भी उसने चीनी कम्युनिस्ट पार्टी को एक दार्शनिक आधार देने का प्रयास कियाi 1937 में उसने येनान में पार्टी के सैनिक विद्यालय में दो भाषण दिए थे - एक व्यवहार के बारे में दूसरा विरोध के बारे मेंi उसके यह दोनों भाषण सामान्य तौर पर उसकी दार्शनिक कृतियों के रूप में स्वीकार किए जाते हैंi चीनी सिद्धान्त शास्त्रियों ने व्यवहार के संबंध में माओ के विचारों को मार्क्स के सत्य के सिद्धांत में एक अनूठा योगदान माना हैi

माओ ने अपनी पहली किताब में कहा है कि मार्क्सवादी दृष्टि से मनुष्य की समस्त गतिविधियों में सबसे प्रमुख है उत्पादन की गतिविधि और इसी गतिविधि से उसकी अन्य गतिविधियों का निर्धारण होता हैi उत्पादन की पद्धति और सामाजिक संघर्ष से मनुष्य को ज्ञान प्राप्त होता हैi विशेषकर वर्ग संघर्ष अपने सभी स्वरूपों में मनुष्य के ज्ञान की विकास प्रक्रिया को प्रभावित करता हैi एक वर्गीय समाज में प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी वर्ग के सदस्य के रूप में ही जीवन व्यतीत करता है ,तथा प्रत्येक प्रकार के विचार पर बिना किसी अपवाद के किसी वर्ग की छाप होती हैi वह यहां पर लुकाच ,ग्राम्सी और बाद में लेनिन के विचारों को ही आगे बढ़ा रहा थाi सिद्धान्त व्यवहार पर आधारित होता हैi सिद्धांत व्यवहार का सेवक हैi मार्क्स के चिंतन में सिद्धांत एवं व्यवहार की जो एकता स्वीकार की गई है वहीं माओं भी स्वीकार करता है ,लेकिन व्यवहार को वरीयता देते हुएi मार्क्सवादी चिंतन में सिद्धांत का महत्व जैसा कि माओ ने कहा है, इसी कारण से है कि वह व्यवहार का निर्देशन कर सकता हैi मार्क्सवादियों को बदलती हुई परिस्थितियों के साथ अपने ज्ञान का बराबर तालमेल करते रहना चाहिए नहीं तो वे या तो दक्षिणपंथी अवसरवाद के शिकार हो जाएंगे या फिर भी वामपंथी मुहावरों के जाल में फंस जाएंगेi

3.4.6. माओत्से तुंग और मार्क्सवाद-लेनिनवाद

मार्क्सवाद और लेनिनवाद के मूल सिद्धांतों को स्वीकार करते हुए और समय-समय पर उनमे अपनी गहरी आस्था प्रकट करते हुए माओत्से-तुंग ने उस में कुछ परिवर्तन को लाने का प्रयास कियाi मार्क्स और एंजेल के विचारों में और माओ के विचारों में एक बड़ा अंतर यह है कि मार्क्स का विश्वास था कि वह सर्वहारा की तानाशाही कुछ ही दिनों की बात होगी और उसके बाद शीघ्र ही राज्य का अंत हो जाएगा, जबकि माओ का विश्वास था कि "सर्वहारा के द्वारा शक्ति अपने हाथ में लेने के बहुत समय बाद तक भी वर्ग संघर्ष किसी एक वर्ग की इच्छा पर निर्भर ना होकर, सृष्टि के एक चिरंतन नियम के समान चलता रहता है, केवल उसका रूप वह नहीं रहता जो सर्वहारा के साथ में शक्ति आने के समय थाi"

इसका कारण स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि केवल आर्थिक स्तर पर लाई गई समाजवादी क्रांति, जिसकी परिणति उत्पादन के साधनों पर सर्वहारा का स्वामित्व स्थापित करने में होती है ,अपने आप में अपर्याप्त हैi "इसके साथ ही साथ राजनीतिक और विचारधाराओं के मोर्चे पर भी समाजवादी क्रांति को लाना आवश्यक है,और इसके लिए बहुत समय की आवश्यकता होगी, यह काम ऐसा नहीं है जो कुछ दशकों में पूरा हो सके..इस काम में एक से लेकर अनेक शताब्दियाँ लग सकती हैंi" माओ के इस समस्त तर्क का सारांश यह है कि सर्वहारा की तानाशाही एक लंबे अनिश्चित समय तक चलती रहेगी और सर्वहारा के अग्रिम दस्ते के रूप में, साम्यवादी दल का तब तक बने रहना अनिवार्य होगा जब तक कि सर्वहारा की तानाशाही का अस्तित्व हैi

माओ ने 1956 में लिखा "मानवता अभी अपनी तरुण अवस्था में हैi कोई नहीं जानता कि वह मार्ग अभी उसे पार करना है उस मार्ग की तुलना में जिस पर से वह गुजर चुकी है कितना अधिक गुना लंबा हैi एक अंतर्विरोध दूसरे अंतर्विरोध को जन्म देगा और जब पुराने अंतर्विरोध सुलझा लिए जाएंगे तो उनके स्थान पर नये अंतर्विरोध खड़े होंगेi

3.4.7. मार्क्सवाद-लेनिनवाद का चीनीकरण

माओ ने मार्क्सवाद-लेनिनवाद को चीनी परिस्थितियों के अनुसार ढालने के उद्देश्य से उसमें कुछ परिवर्तन करने के साथ ही आगे बढ़कर बिल्कुल ही नए सिद्धांत की जिसका वास्तव में मार्क्सवाद-लेनिनवाद से बहुत कम संबंध है,की स्थापना की हैi 1938 में ही माओ ने "मार्क्सवाद के चीनी संस्करण" की बात कही थीi उस समय उसने कहा था ,"प्रत्येक साम्यवादी मार्क्सवादी अंतरराष्ट्रीयतावाद में विश्वास रखता है, लेकिन मार्क्सवाद को चीन में प्रयोग में लाने से पहले उसे राष्ट्रीय स्वरूप देना होगाi" उसने तभी यह भी लिखा था, "मार्क्सवाद का कोई रूप नहीं है, वह तो एक स्कूल तथ्य हैi" चीन के प्रयोग में लाए गए इस स्थूल मार्क्सवाद की व्याख्या करते उसने लिखा है कि "यह वह मार्क्सवाद है जिसने एक राष्ट्रीय स्वरूप ले लिया हैi अपनी इस व्याख्या पर अधिक प्रकाश डालते हुए माओ ने लिखा है कि "यदि कोई चीनी साम्यवादी,चीन की महान जनता का एक अंग होते हुए भी उस जनता का जिसके साथ उसका हाड़ मांस और रक्त का संबंध है ,यदि चीन की विशेष परिस्थितियों से अलग हटकर मार्क्सवाद की चर्चा करता है तो उसका यह मार्क्सवाद वास्तविक मार्क्सवाद ना होते हुए एक खुली कल्पना मात्र हैi"

1942 से 1949 के वर्षो के बीच में एक सिद्धांतवादी के रूप में माओ की उपलब्धियों का अतिश्योक्ति पूर्ण विवरण दृष्टिगत होता है i 1965 तक यह कहा जा सकता है कि ,मूल सिद्धांत में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया थाi माओ के विचारों को "चीनी क्रांति के विशेष संदर्भ में मार्क्सवाद लेनिनवाद के विश्वव्यापी सत्यों का व्यवहारिक पक्ष माना जाता था और यह वही स्थिति थी जो 1958 में थीi जनवरी 1958 में माओत्से तुंग ने 'छलांग मार कर आगे बढ़ने' की नीति के नाम से द्वितीय पंचवर्षीय योजना का शुभारंभ कियाi इसके लक्ष्य आर्थिक विकास हेतु साम्यवादी पार्टी के अन्य सदस्यों द्वारा समर्थित भारी उद्योगों के सोवियत मॉडल का एक विकल्प प्रस्तुत करना थाi जहां सोवियत मॉडल के अंतर्गत निजी क्षेत्रों में उत्पादन प्रतिबंधित थाi व्यापक आधारभूत संरचना के अंतर्गत छोटे-छोटे उद्योग एवं कृषि कार्य समाहित थे, वही उसके विपरीत नए वैकल्पिक मॉडल में नए कम्युनो द्वारा अवैज्ञानिक लेकिन नूतन कृषि तकनीक एवं श्रम समायोजन से वांछित लक्ष्य त्वरित गति से प्राप्त करने पर बल थाi

लेकिन 1965 में अगस्त से माओ के विचारों को ही लेनिनवाद की आधिकारिक व्याख्या माल लेने की प्रवृत्ति बढ़ती दिखाई देती हैi

3.4.8. महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति

माओत्से तुंग क्रांति दृष्टा के थेiचीनी भाषा में क्रांति शब्द का लोक व्यवहार में प्रचलित मानकों से अलग अर्थ हैi चीनी भाषा में क्रांति के लिए उपयुक्त शब्द य-मिंग का अर्थ है शासक वर्ग को शासन करने की देवी अधिकार से वंचित कर देनाi लेकिन यह राजनीति का अर्थ है जो अंग्रेजी या हिंदी में रिवॉल्यूशन या क्रांति शब्द के अर्थ से अलग हैi उन्होंने क्रांति के दो अर्थ दिए -**पहला** क्रांति शासक वर्ग को शासनाधिकार से वंचित करती है **दूसरा** क्रांति शासक के विचारों और मूल्यों को भी अमान्य करती हैi माओ इस बात के लिए बहुत उत्सुक था कि चीनी क्रांति का दूसरा विच्छेद पुराने विचारों,पुरानी आदतों पुरानी रीतियों और पुरानी संस्कृति के साथ संबंध भंग करेi माओ का प्रमुख योगदान अधिरचना के मार्क्सवादी सिद्धांत को पहली बार ठीक-ठाक समझकर व्यवहार में परिणित करना थाi वह पहला कम्युनिस्ट था जिसने ऐसा कियाi उसकी जीवन के अंतिम वर्ष पुराने ढांचे के खिलाफ क्रांतिकारी संघर्ष का संगठन करने में बीतेi उसके निरंतर क्रांति के प्रयोग, उसके जन-अभियान रचना पर आक्रमण जारी रखने के लिए उसके पार्टी के परे जाने के प्रयत्न उसी दूसरे विच्छेद के उद्देश्य थेi उन्होंने बहुत स्पष्ट रूप से देखा था कि दूसरा विच्छेद कायम रह सकता हैi

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के भीतर चलने वाला सत्ता संघर्ष की सबसे भायावह अभिव्यक्ति सांस्कृतिक क्रांति में हुईi अपने आपको पार्टी के ऊपर स्थापित करने की माओं के प्रयास ने पार्टी के अन्य नेताओं में भय की स्थिति उत्पन्न कर दिया थाi इस सांस्कृतिक क्रांति के माध्यम से मानने वास्तव में साम्यवादी दल के महत्व और क्रांति के उस संगठनात्मक ढांचे को जिस की व्याख्या मार्क्सवाद के संदर्भ में की गई थी ,चुनौती दीi माओ ने इस आंदोलन के द्वारा 'साम्यवाद दल बनाम जनता' का प्रश्न खड़ा किया और दल के महत्व को कम करने और जनता के महत्व को बढ़ाने का प्रयत्न किया ,यह एक ऐसा प्रयत्न था जैसा साम्यवादी आंदोलन के समस्त इतिहास में पहले कभी नहीं किया गया थाi

स्टालिन ने अपने को सर्वशक्तिशाली बनाने की दृष्टि से दल की महत्ता कम कर दी थी,लेकिन उसने माओं के समान,दल की खुली भर्त्सना कभी नहीं कीi वह दल की सामूहिक इच्छा का प्रतिनिधि होने का दावा करता थाi माओ ने चीन में दल को कभी भी सर्वोपरि स्थान लेने की अनुमति नही दीi उस पर अंकुश रखने के लिए उसने बार-बार या तो ऐसे आंदोलन चलाये जिनमें दल के सदस्यों को जनसाधारण को कंधे से कंधा मिलाकर काम करना पड़ा या जनता की इच्छा के सर्वोपरि होने के सिद्धांत के आधार पर दलीय संगठन को जनता के निरीक्षण में काम करने के लिए बाध्य कियाi

1965-1966 की सांस्कृतिक क्रांति में माओ ने दल के संगठन को कमजोर बनाने के लिए **लाल स्वयं सेवकों** को अपना साधन बनायाi यह संभव नहीं था कि सांस्कृतिक क्रांति के वर्षों में उठ खड़ी होने वाली अराजक स्थितियां चीन में अधिक समय तक चल पातीi चीन की राष्ट्रीय सेना, नये क्रांतिकारी नवयुवको और राज्य के पुराने कार्यकर्ताओं को मिलाकर विभिन्न नगरों और जिलों में क्रांतिकारी समितियां स्थापित कर दी गई और इन क्रांतिकारी समितियों को अपने अपने क्षेत्रों में राज्य और दल के समस्त शक्तियों को अपने हाथ में लेने का आदेश दिया गयाi सांस्कृतिक क्रांति के बाद चीन में साम्यवादी दल उस प्रकार का सशक्त दल नहीं रह गया जैसा रूस का साम्यवादी दल था जो स्वयं अपने-अपने अधिकार से देश का शासन चला सकता थाi उसे जनता के प्रति उत्तरदायी जिसका अर्थ था

वास्तव माओत्से-तुंग के प्रति उत्तरदायी बना दिया गया थाi माओ के संबंध में अब यह दावा किया जाने लगा कि वह केवल साम्यवादी दल का प्रतिनिधि नहीं थाi साम्यवादी दल के प्रतिनिधित्व का दावा तो स्टालिन ने भी किया था,लेकिन वह संपूर्ण चीनी जनता का प्रतिनिधि थाi

माओ की सांस्कृतिक क्रांति के संबंध में स्टुअर्ट स्कैम ने लिखा है कि "उसका उद्देश्य वर्तमान नौकरशाही और तकनीकी विशेषज्ञों को अपमानित करने से आगे बढ़कर दल के सदस्यों या विशेषज्ञों की विशेष ज्ञान के प्रति समस्त आदर की भावना को मिटा देना थाi सांस्कृतिक क्रांति के बाद इस सिद्धांत की स्थापना करने का प्रयास किया गया कि मांओं के नेतृत्व में संगठित जनता ही समस्त राजनीतिक अधिकारों का मुख्य आधार थी जो चीन को प्रतिक्रियावादी या बुर्जुवा बुद्धिजीवियों एवं विदेशी ज्ञान और विदेशी सिद्धांतों में डूबे हुए विशेषज्ञों पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति से मुक्त करके उसे आर्थिक और तकनीकी विकास की ओर तेजी से ली जा सकेगीi"

माओ अपने जीवन के अंतिम वर्षों में चीन में काम में लगे हुए लोगों के नेतृत्व की आवश्यकता पर काफी जोर दिया लेकिन चीन के संदर्भ में काम में लगे हुए लोगों का अर्थ ज्ञान या संगठन शक्ति से संपन्न व्यक्तियों से नहीं था बल्कि जनसाधारण से था जिन्हें माओ ने "गरीब और मस्तिष्कविहीन" की संज्ञा दीi इन वर्षों में माओ ने एक बहुत बड़ा प्रयत्न पढ़े-लिखे नवयुवकों को गांवों में भेजने का भी किया -इस कारण नहीं कि वे ग्रामीणों को नये ज्ञान की शिक्षा दे बल्कि इस कारण कि वे गरीब और निम्न श्रेणी के किसानों से स्वयं शिक्षा प्राप्त करेंi माओं के अनुसार इस प्रकार का अभियान **संशोधनवाद** के प्रयत्नों के विरुद्ध था और शहरो और गांवों का अंतर धीरे-धीरे मिटाने का माओं की दृष्टि से यही एक रास्ता थाi गांवों के किसान शहरों से आने वाले इन युवकों को ना केवल यही सिखाते थे की जमीन कैसे जोती जाती है बल्कि उन्हें एक विशद वर्ग-शिक्षा भी देते थेi

माओ का राजनीतिक शक्ति के प्रभाव और प्रयोग में अपूर्व विश्वास हैi उसके अनुसार राजनीतिक शक्ति के द्वारा मनुष्य के मन को बदल कर सामाजिक शक्तियों का नियंत्रण किया जा सकता हैi इससे अपने प्राकृतिक, सामाजिक और आर्थिक पर्यावरण पर प्रभुत्व स्थापित किया जा सकता हैi राजनीतिक शक्ति केवल संगठन प्रचार या दल बनाने तक ही सीमित नहीं हैi उसने उसे एक शस्त्र सज्जित सेना से लड़ने योग्य भी बनाया हैi इसीलिए माओं की दृष्टि से राजनीतिक शक्ति और सैनिक शक्ति अभिन्न हैi माओ शक्ति राजनीति में विश्वास करता थाi उसकी यह प्रसिद्ध उक्ति है कि "**राजनीतिक शक्ति बंदूक की नाल से उत्पन्न होती है, इसलिए उसे सैनिक शक्ति से अलग नहीं किया जा सकताi**" इसके अनुसार साम्यवाद की उपलब्धि और सर्वहारा वर्ग की मुक्ति के लिए सैनिक शक्ति आवश्यक हैi श्रमिक क्रांति से इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकतीi माओ ने चीनी साम्यवादी क्रांति का संचालन करने में क्रांतिकारियों की सशक्त सेना का संगठन किया था और उन्हें **गुरिल्ला युद्ध** का प्रशिक्षण दिया थाi

3.4.8.1. गुरिल्ला युद्ध

सुन त्जयु की युद्ध कला से प्रेरित होकर माओ ने सोचा कि छापामार युद्ध का सहारा ले कर ही सैनिक दृष्टि से कमजोर कोई संगठन एक शक्तिशाली सेना की चुनौतियों का सामना कर सकता है और धीरे धीरे अपनी शक्ति बढा सकता हैi माओ के अनुसार , "छापामार युद्ध" एक ऐसा हथियार है जिससे अस्त्र-शस्त्रों और सैनिक साज-सामानों की दृष्टि से कमजोर राष्ट्र अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली हमलावर देश के खिलाफ संघर्ष कर सकता हैi

माओ ने छापामार या गुरिल्ला युद्ध तकनीक द्वारा चीन जैसे अविकसित देश में समाजवाद स्थापित करने का प्रयत्न कियाi माओ के अनुसार , लाल सेना का उद्देश्य केवल लड़ना न होकर जनता में आन्दोलन करना,उसे सुसंगठित और शस्त्र-सज्जित करना तथा राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने में सहायता देना भी हैi उसने गुरिल्ला युद्ध प्रणाली को मूलतः जनसंगठन की प्रक्रिया बना दिया हैiउसने अपनी सेना को सीधे शत्रु युद्ध करने में सक्षम मानने के बजाय उसे शत्रु को गाँवो में उलझाने का साधन बना लियाi माओ के शब्दों में,"शत्रु आगे बढ़ता है,हम पीछे हटते है , शत्रु खाई खोदता है, हम उसे परेशान करते है, वह चूकता है,हम उस पर हमला करते है, वह पीछे हटता है, हम उसका पीछा करते हैi"

छापामार युद्ध के सञ्चालन के लिए क्रांतिकारी आधार क्षेत्रो का होना बहुत जरुरी हैi ये ऐसे चुने हुए आधार है जिन पर दुश्मन आसानी से आक्रमण न कर सकेi उस क्षेत्र की जनता के समर्थन से क्रन्तिकारी सेना रसद सप्लाई ,सैनिको की भर्ती और उनके प्रशिक्षण के कार्य को पूरा करती है तथा युद्ध के दौरान जरूरत पड़ने पर पीछे हटने के लिए इन क्षेत्रो का इस्तेमाल करती हैi

माओ ने यह भी लिखा है कि , "किसी घटना या विकास की प्रक्रिया का अनिवार्य अंग इस प्रकार की बातें है- हमला करने के लिए रक्षा करना, आगे बढ़ने के लिए पीछे हटना , सामने की स्थिति लाने के लिए घेरा डालने की स्थिति ग्रहण करना , सीधा जाने के लिए टेढ़ा-मेढ़ा चलनाi"

उसके ऐसे विचार ही चीन से क्यूबा,अल्जीरिया तथा वियतनाम जैसे देशों में गएi इन विचारों में अस्त्र-शस्त्र की अपेक्षा राजनीति की प्रमुखता और मानवीय तत्वों की सर्वोच्चता मानी गई हैi क्रांति की सफलता के बाद जब देश का राजनीतिक नेतृत्व भी माओ के हाथ में आ गया तो उसने देश में विशाल सेना का निर्माण कर लिया थाi सेना को पूर्ण निष्ठावान बनाने के लिए और समाज के रूढ़िवादी दक्षिणपंथी एवं क्रांतिकारी तत्वों का दमन करने के लिए उसने अनेक अभियान चलाएi इनमें से **सैकड़ों पुष्पों को खिलने दो** तथा **मस्तिष्क की शुद्धि एवं आत्म-आलोचना** के अभियान एवं माओ-संहिता द्वारा सेना, छात्रों तथा जनसाधारण को सामाजिक जीवन के विविध क्षेत्रों में माओ के उपदेशों पर अंधश्रद्धा रखने की प्रेरणा देना प्रमुख हैi **सौ फूल खिलने दो और सौ विचार-शाखाओं में वोट होड़ होने दो** की नीति को माओ त्से तुंग कला और विज्ञान की प्रगति को प्रोत्साहित करने तथा समाजवादी संस्कृति को समृद्ध को बढ़ाने की नीति मानता हैi

माओ द्वारा तथाकथित सांस्कृतिक क्रांति के लिए प्रयुक्त तकनीकों का मुख्य उद्देश साम्यवाद की विरोधियों का दमन करना तथा शक्ति के आधार पर जनता को साम्यवादी नीतियों का अंधानुकरण करने को विवश करना हैi 1966 में माओ के संकेत पर ऐसी क्रांति का आह्वान किया गया थाi माओ की व्यक्ति-पूजा की द्योतक शिक्षाओं का सेवा, छात्रों तथा जिन अन्य तत्वों ने विरोध करना आरंभ किया ,उनका पता लगाकर उन्हें कुचल देने के लिए ही यह क्रांति थीi जब विरोधी तत्व प्रकट होने लगे तो दोनों पक्षों के मध्य भारी मात्रा में आरोपों -प्रत्यारोपों का आदान-प्रदान होने लगाi माओ की विरोधियों को एक-एक करके पकड़ा गया और शतक तक भीषण रक्तपात होता रहाi माओ के अनुनायियों द्वारा सांस्कृतिक क्रांति के अभियान के माध्यम से विरोधियों को पूर्ण रूपेण दमन कर दिया गयाi शक्ति की राजनीति की यह माओवादी तकनीक थीi

सांस्कृतिक क्रांति की समाप्ति के पश्चात सन 1969 में पार्टी की नवी कांग्रेस बुलाई गई और इसके बाद से पुनः प्रशासन पर पार्टी का वर्चस्व स्थापित हुआi 279 सदस्यों वाली एक केंद्रीय समिति का गठन किया गया जिसमें 53 ऐसे सदस्य थे जो पहले की केंद्रीय समितियों में काम कर चुके थेi इस नई केंद्रीय समिति के 40% सदस्य सेना से थे ,और उसमें लाल रक्षकों का प्रतिनिधित्व बहुत कम थाi पार्टी

ने लिन पियावो को माओ के उत्तराधिकारी के रूप में स्वीकार कर लिया था, लेकिन पार्टी को माओ के मन की बात पता नहीं थीi सांस्कृतिक क्रांति के प्रारंभिक दिनों में ही मैंने लिन को सत्ता से हटाने का निर्णय ले लिया थाi अपने को माओ का उत्तराधिकारी बनाने की उतावलेपन में लिन ने माओ से बिना पूछे कुछ ऐसे कदम उठा लिए थे जिनसे माओं के मन में संदेह उत्पन्न हो गया थाi सन 1971 में लिन की मृत्यु आज भी एक रहस्य हैi माओ ने 1969 में ही सांस्कृतिक क्रांति के समापन की घोषणा कर दी थी लेकिन जनवादी चीन की सरकारी इतिहास के अनुसार 1976 में माओं की मृत्यु के साथ सांस्कृतिक क्रांति का समापन हुआi

3.4.9. क्रांति के साधन

चीन में साम्यवादी क्रांति की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि माओ ने उसका आधार मजदूरों से अधिक किसानों के राजनीतिक संगठन को बनायाi यद्यपि समस्त मार्क्सवादियो ने किसानों को एक महत्वपूर्ण क्रांतिकारी शक्ति माना है, लेकिन माओ से पहले किसी ने यह कहने का साहस नहीं किया था कि किसान साम्यवादी क्रांति के प्रमुख उन्नायक बन सकते हैंi मार्क्स का व्यक्तिगत मततो यह था कि संपत्ति के स्वामी होने के कारण, किसान तुलनात्मक दृष्टि से प्रतिक्रियावादी वर्ग के सदस्य हैं और उसने और एंजिल्स ने समाजवादी क्रांतियों की कल्पना केवल ऐसे ही परिपक्व पूंजीवादी देशों में की थी जहां उत्पादन की शक्तियां इतना अधिकतम विकास कर चुकी हो जितना पूंजीवादी व्यवस्था में संभव हो सकता थाi लेनिन ने इससे बढ़कर यह कल्पना की थी कि प्रमुखतः कृषि प्रधान एशियाई समाजों में साम्यवादी क्रांतियां संभव थी ,लेकिन उसका यह दृढ़ विश्वास था कि उनका सफल होना स्थानीय मजदूर वर्ग की, यदि इस प्रकार का वर्ग देश में विद्यमान हो या अंतरराष्ट्रीय साम्यवादी आंदोलन की सहायता पर निर्भर थाi लेनिन मजदूर दल के नेतृत्व में संगठित साम्यवादी दल में किसानों की बहुत बड़ी संख्या में प्रवेश की बात तो सोच सकता था, लेकिन उसने यह कभी नहीं सोचा था कि केवल किसानों को संगठित करके ही कोई साम्यवादी दल बनाया जा सकता थाi माओ पहला महत्वपूर्ण साम्यवादी नेता था ,जिसने यह घोषणा की कि किसानों में क्रांतिकारी कार्रवाई करने के लिए क्षमता स्वतंत्र रूप से थी और इस प्रकार वह लेनिन के सिद्धांतों से और किसानों को दिए गए उस स्थान से जो उस समय तक स्टालिन देने को तैयार था ,बहुत आगे बढ़ गयाi 1926 में क्यांगसी और सिकियांग प्रांतों के किसानों को जो भयंकर कष्ट सहने पड़े, उनके परिणाम स्वरुप वह स्वयं मंचू विरोधी सेना में भी रहाi

उसके लिए चिन- शिह- हुआंग-ति , जिसने चीन का एकीकरण किया तथा हान वू- ति जो हूड़ो से लड़ा और चीन का विस्तार कियाi इतिहास के आदर्श पुरुष थे वह सैन्य भावना, व्यक्तिगत उपक्रम ,अनुशासन और साहसिक चेतना का प्रारंभ से ही पुजारी रहा हैi उसके आरंभिक विचार पश्चिमी या क्रांतिकारी होने के बजाय रूढ़ीवादी थेi अपने दर्शन शास्त्र के अध्यापक तथा भावी ससुर से उसने व्यैक्तिक कारकों के महत्व को समझा और सीखाi इसी आधार पर उसने कंफ्यूशियस नैतिकता के तीन बंधनों ,राजा-प्रजा, पिता-पुत्र और पति-पत्नी की अवधारणा को अस्वीकार कर दियाi

शक्ति प्राप्त करने के लिए माओ ने सर्वहारा वर्ग का संगठन किया हैi इस सर्वहारा वर्ग में उसने गरीबो , किसानों को सर्वप्रमुख स्थान दिया गया हैi इनको ही संगठित करके उसने कृषक क्रांति की हैi अपनी हुनान रिपोर्ट में उसने बताया है कि यह क्रांति में लड़े संगठित हुए क्रांतिकारी कार्य कर सकेi इनसे क्रांति को केवल राजनीतिक शक्ति ही प्राप्त नहीं हुई जो किसी सेना को प्रभावशाली चोट पहुंचाने में सक्षम थीi इसे संपूर्ण जनता का समर्थन प्राप्त था और जो बहुत संख्या में होने के साथ-साथ एक लंबी अवधि के

लिए लड़ सकते थेi सरकार, नौकरशाही और भू-स्वामी सामंतों से पीड़ित होने के कारण वे सर्वस्व उत्सर्ग करने के लिए तत्पर थेi राजनीतिक शक्ति को महत्व प्रदान करने का दृष्टिकोण उसके व्यक्तित्व के साथ जुड़ा हुआ हैi इसी कारण वह सैनिक शक्ति को सर्वोच्च स्थान देता हैi सैनिक और राजनीतिक शक्तियों के मध्य घनिष्ठ संबंध होता हैi

युद्ध और शक्ति का प्रयोग अनिवार्य हैi माओ मत है कि प्रारंभ से ही वर्गों , राष्ट्रों , राज्यों और राजनैतिक समूहों में वर्तमान विरोधों के समाधान के लिए युद्ध संघर्ष का सर्वोत्कृष्ट साधन रहा हैi इतिहास में दो प्रकार के युद्ध पाए जाते हैं -क्रांति विरोधी और क्रांतिकारीi क्रांतिकारी युद्ध सदैव पवित्र और न्याय-संगत होता हैi उसने उसे राष्ट्रीय क्रांतिकारी तथा वर्ग विनाशक युद्ध का समर्थन किया हैi माओ के अनुसार, नया विश्व युद्ध साम्राज्यवाद शिविर का तथा समूचे पूंजीवाद का समूलोन्मूलन करने वाला होगाi माओ विश्व के राष्ट्र को 2 वर्गों में विभाजित करता है : एक वर्ग में साम्राज्यवादी राज्य आते हैं और दूसरे वर्ग में साम्राज्यवाद विरोधी देश आते हैंi दूसरे वर्ग के आरम्भ में चीन ने सोवियत संघ , पूर्वी यूरोप के देशो तथा स्वयं को रखा थाi अब इसमें से सोवियत रूस को निकाल दिया गया हैi इस वर्ग में तटस्थ राष्ट्रों का कोई स्थान नहीं हैi

माओत्से-तुंग द्वारा समाजवादी क्रांति की सफलता के लिए विकसित पद्धति को **टुन,टुन टा,टा,टा,टा** कहते हैंi इसका तात्पर्य है कि सर्वप्रथम विरोधी पर आक्रमण कर उसे इतना निर्बल बना देना चाहिए कि वह लड़ने के बात छोड़कर मेज पर बातचीत के लिए तैयार हो जाएi कुछ दिनों तक समझौता वार्ता चलानी चाहिए, लेकिन समझौते की शर्तें ऐसी रखी जानी चाहिए कि शत्रु उन्हें स्वीकार करने को तत्पर ना होi उसके ऐसा करने पर उस पर शांति-भंग का आरोप लगाना चाहिए ,और फिर इस आरोप का जबरदस्त प्रचार करना चाहिएi लगभग इसी समय शत्रु पर पुनः भयंकर आक्रमण कर उसके प्रदेशों पर अधिकार कर लेना चाहिएi संक्षेप में,पहले लड़ों,फिर निर्बल बनाकर बातचीत करो , तब वार्ता भंग करके पुनः लड़ो और अधिकार जमा लोi इसी निति के माध्यम से वांछित लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता हैi

3.4.10. स्थाई क्रांति का सिद्धांत

माओ का विश्वास मूलतः एक ऐसी क्रांति में है जो ग्रामीण क्षेत्रों में, ग्रामीण जनता द्वारा लाई जाएi क्रांति को स्थाई रूप देने का उसकी दृष्टि में यही एक मात्र साधन हैi इसी पर चलकर समाज के विभिन्न वर्गों के बीच अंतर विरोधियों प्रशासन और समाज के बीच के अंतर्विरोध और नेता और जनता के बीच अंतर्विरोधों , प्रशासन और समाज के बीच के अंतरविरोधो और नेताओं और जनता के बीच अंतर्विरोधों को मिटाया जा सकता हैi संभवतः स्थायी क्रांति का सर्वप्रथम प्रयोग **लिपु शओची** ने 5 मई 1958 के पार्टी कांग्रेस के अपने भाषण में कियाi बाद में सांस्कृतिक क्रांति की घटनाओं से स्पष्ट हो गया कि यह माओं का अपना सिद्धांत था और इसके द्वारा एक ऐसे व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है जिसका विश्वास प्रकृति और मनुष्य दोनों में ही मूल परिवर्तन लाने में हैi माओ का यह दृढ विश्वास था कि चीन और दूसरी एशियाई देशों में वहां का कृषक वर्ग क्रांति लाने में समर्थ हैi 1958 में माओ ने दावा किया कि चीन में संपूर्ण साम्यवाद की स्थापना रूस से पहले संभव हो सकेगी और उसके द्वारा जन-कम्युनो की स्थापना का आधार भी यही था कि , क्रांति के वास्तविक अग्रदूत, मजदूर नहीं कृषक होते हैi इस सिद्धांत की जड़ में माओ का यह मूल दर्शन था कि, ज्ञान की तुलना में इच्छाशक्ति का और

सिद्धांतों की तुलना में कर्म का अधिक महत्व थाi वास्तव में ,चीन की क्रांति में सदा ही तकनीकी ज्ञान से अधिक महत्व जनसमुदाय को जागृत और संगठित करने पर दिया जाता हैi

"नवम्बर 1965 में प्रारंभ होने वाली उस महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति का आधार, जो समस्त चीन में एक अप्रत्याशित तूफान की गति से फैल गई ,1958 के 'छलांग मार कर आगे बढ़ने' के आंदोलन की सफलता की प्रति माओं की व्यक्तिगत प्रतिक्रिया में थाi" उस समय चीन के साम्यवादी दल ने, माओं को कड़े व्यक्तिगत प्रतिरोध के बावजूद प्रतिरोध के जिन आंदोलनों का उन्होंने पूर्ण संचालन किया उनका माओ पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा थाi इन सब कारणों से माओ का यह दृढ़ विश्वास था कि कृषक भी क्रांति का आधार बन सकते हैं और इसी कारण उसने 1949 से पहले नवीन लोकतांत्रिक क्रांति और साम्यवादी जनतंत्र की स्थापना के बाद जनता की लोकतांत्रिक तानाशाही की बात की (ना कि सर्वहारा की तानाशाही)i

माओ का विश्वास था कि देहातों को आधार बनाकर एक क्रांतिकारी संघर्ष का संगठन खड़ा किया जा सकता था और वह यह भी मानता था कि देहातो का संगठन कर लेने के बाद उनका उपयोग शहरों को घेरने और उन पर कब्जा करने में किया जा सकता हैi अपनी राजनीतिक शक्ति को मजबूत बनाने के लिए प्रारंभ में क्यांग्सी में और बाद में हुनान में माओ ने जिस तकनीकी को अपनाया हुआ वह इस प्रकार था-

- एक प्रदेश विशेष में साम्यवादी दल की राजनितिक, सैनिक और प्रशासनिक नियंत्रण की स्थापनाi
- उसमे प्रारंभिक भूमि सुधारों को कार्य रुप देनाi
- वहां की जनता की दिन प्रतिदिन के जीवन में लाभ पहुंचाने वाले कल्याण कार्यों को एक-एक करके हाथ में लेनाi
- उसे साम्यवाद के सिद्धांतों में दिक्षित करनाi
- आबादी के अधिक से अधिक लोगों को सैनिक प्रशिक्षण देनाi

अंततः इन समस्त कार्यवाहियों के द्वारा जनता ,साम्यवादी दल व सैनिक शक्तियों के बीच एक भावनात्मक तादात्म्य स्थापित कर लेना

पता इन समस्त कार्रवाई हो कि द्वारा जनता साम्यवादी दल व सैनिक शक्तियों के बीच एक भावनात्मक तादात्म्य स्थापित कर लेनाi

3.4.11. क्रांति मे जनसाधारण का योगदान

क्रांति में जनसाधारण की योगदान के महत्व पर और उसकी सफलता का प्रमुख आधार जनसाधारण की सहयोग पर निर्भर होने के संदर्भ में ,मार्क्स और लेनिन ने जितना जोर दिया था माओत्से-तुंग उसकी तुलना में कहीं अधिक जोर देते हुए पाए जाते हैंi सामाजिक बदलाव लाने के संबंध में लेनिन की मान्यता यह थी कि साम्यवादी दल के सदस्यों में संगठन की क्षमता और उनका तकनीकी ज्ञान सबसे अधिक उपयोगी होता हैi लेकिन माओं का जनसाधारण के उत्साह और उसकी सृजनशीलता में अगाध विश्वास थाi उसका कहना था कि जनसाधारण का सच्चा नेतृत्व जनसाधारण के द्वारा ही हो सकता हैi इस सिद्धांत की व्याख्या करते हुए उसने लिखा जनसाधारण के विचारों को भी चाहे कितने ही (वे चाहे कितने ही बिखरे हुए और हैं और अवस्थित क्यों ना हो) समझो, (अपने अध्ययन के द्वारा) उन्हें एक व्यवस्थित रुप में ढालो , उन पर अपना ध्यान केंद्रित करो ,तब उन विचारों को (जिनका उदगम उन्ही में

से हुआ है) लेकर जनसाधारण के पास जाओ और तब तक उनका प्रचार करते रहो जब तक कि जनसाधारण उन्हें स्वयं अपना विचार मानकर स्वीकार ना कर ले ,उसके बाद उन पर दृढ़ता से जमे रहो और उन्हें कार्य रुप में परिणित करो ...तब फिर जनता के विचारों को लेकर उन्हें समझो और एक व्यवस्थित रूप दो, जिनसे वे विचार सदा के लिए सुरक्षित रह सके और उन पर अमल किया जा सके, और इस अंतहीन प्रक्रिया का परिणाम यह होगा कि, यह विचार प्रत्येक बार अधिक से अधिक सही, अधिक शक्तिशाली और अधिक महत्वपूर्ण होकर
निकलेंगेi"

साम्यवादी चीन में केवल गांवों के स्तर पर ही नहीं शहरों के स्तर पर भी आर्थिक पुनर्निर्माण का समस्त कार्य जनसाधारण पर चलाए गए आंदोलनों का परिणाम हैi भूमि सुधार हो या कृषि संगठन और लघु उद्योग का विकास इन सभी क्षेत्रों में सुधार का काम साम्यवादी दल के उन हजारों क्रियाशील सदस्यों द्वारा किया गया है जिन्होंने जनता में फैलकर जनसाधारण का संगठन किया हैi इस दिशा में पहला बड़ा प्रयत्न 1942 में किया गया जबकि सारे देश में एक आंदोलन इस लक्ष्य को लेकर चलाया गया कि सभी वर्गों के अधिक से अधिक लोगों को मार्क्सवाद- लेनिनवाद की विचारधारा में ,अर्थात मार्क्सवाद के माओ द्वारा प्रतिपादित रूप में विकसित किया जाएi वह जानता था कि सर्वहारा वर्ग की तानाशाही और एक दलीय व्यवस्था से चीन की आवश्यकताएं पूरी नहीं होंगी i 1945 में उसने लिखा "रूस में जिस व्यवस्था की स्थापना की गई उसका जन्म उसके इतिहास से हुआ, चीन की व्यवस्था का निर्माण चीन का इतिहास करेगाi यदि साम्यवादी दल के बाहर का कोई दल , कोई सामाजिक समूह अथवा कोई व्यक्ति साम्यवादी दल के प्रति सहयोगात्मक और मित्रतापूर्ण दृष्टिकोण रखता है तो कोई कारण नहीं है कि हम उसके साथ सहयोग क्यों ना करें ?"

माओ की दृष्टि में राज्य एक विशेष वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग पर शासन करने का एक साधन है i अतः राज्य का कर्तव्य है कि वह श्रमिक वर्ग के हितों की विरोधी तत्वों को निर्ममता पूर्वक कुचल देi माओ के अनुसार साम्यवादी दल शक्ति प्राप्त करने के बाद राज्य की शक्ति का प्रयोग पूंजीपतियों का नाश करने के लिए करेगाi सम्य्वादियों को ही अधिकार प्राप्त होंगे, गैर साम्यवादियों को नहींi माओ ने एक ऐसे राज्य व प्रशासन की कल्पना की जिसे उसने नए लोकतंत्र का नाम दिया और जिसमे अनेक लोकतान्त्रिक वर्गों के मिलजुल कर काम करने की व्यवस्था थीi उसने मजदूरों , किसानो और लघु बुर्जुआ और राष्ट्रीय इन वर्गों को चीन की नयी शक्ति व्यवस्था का आधार बनायाi देश में एक संयुक्त मोर्चा बनाने के साथ ही माओ ने यह भी प्रयत्न किया कि समाज के आन्तरिक मतभेदों को अपेक्षाकृत निर्विरोध ढंग से सुलझा लिया जायेi

3.4.12. युद्ध की अनिवार्यता का सिद्धांत

लेनिन के अनुसार जब तक साम्राज्यवाद है तब तक युद्ध अनिवार्य हैi आगे चलकर ख्रुश्चेव शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व में विश्वास करने लग गए थे और उनका मानना था कि आणविक युग में होने वाले युद्धों से ना केवल साम्राज्यवादी बल्कि साम्यवादी भी समाप्त हो जाएंगे, लेकिन माओ सैद्धांतिक आधार पर युद्ध की अनिवार्यता में विश्वास करता हैi उसके अनुसार साम्राज्यवाद में अंतर्विरोध है और यह अपने अंतर्विरोधों के कारण विस्फोट करेगा और एक वर्ग विहीन विश्व का निर्माण करेगाi युद्ध अंतर्विरोधों को हल करने के लिए किए जाने वाले संघर्ष का सर्वोच्च रूप है और जब राष्ट्रों या राजनीतिक समूहों के बीच अंतर्विरोध विकसित होकर एक निश्चित मंजिल पर पहुंच जाते हैं , युद्ध प्रारंभ

होता हैi माओं की शब्दों में, "वर्गयुक्त समाज में प्रारंभ से ही विकास की एक निश्चित दशा में वर्गों ,राष्ट्रों, राज्यों या राजनीतिक समूहों में विरोधों के समाधान के लिए युद्ध संघर्ष का सर्वोपरि रूप हैi इतिहास में दो ही प्रकार के युद्ध है- क्रांतिकारी और क्रांतिविरोधीi हम पहले के समर्थक हैं और दूसरे के विरोधी हैi केवल क्रांतिकारी युद्ध ही पवित्र हैi" संक्षेप में अंतरराष्ट्रीय जगत में माओ सहयोग , सहअस्तित्व का विरोधी हैi उसके अनुसार जब तक शोषण है तब तक युद्ध रहेंगेi माओ के अनुसार तीसरा विश्व युद्ध साम्राज्यवादी शिविर तथा समूचे पूंजीवाद का समूल उन्मूलन करने वाला होगाi

3.4.13. शक्ति का दर्शन

माओ शक्ति का पुजारी हैi उसकी शक्ति संबंधी विचार 1917 में लिए गए, "भौतिक संस्कृति का अध्ययन" निबंध में मिलते हैंi इसमें उसने चीनी राष्ट्र के लिए शक्ति, सैनिक भावना, शारीरिक शिक्षा तथा इन्हें प्राप्त करने के लिए नवीन प्रेरणा की आवश्यकता पर बल दियाi राजनीतिक शक्ति के वर्चस्व और प्रयोग में उसका अटूट विश्वास हैi उसके अनुसार राजनीतिक शक्ति के द्वारा मनुष्य के मन को बदल कर सामाजिक शक्तियों का नियंत्रण किया जा सकता हैi राजनीतिक शक्ति में विचारों का प्रमुख स्थान हैi विचारों के बाद वह सैनिक शक्ति को महत्व देता हैi वह सैनिक और राजनीतिक शक्ति में अभिन्न संबंध मानता हैi उसके अनुसार "राजनीतिक शक्ति बंदूक की नोक से पैदा होती है ..मजदूर वर्ग और श्रमिक जनता बंदूक की शक्ति के बिना सशस्त्र पूंजीपतियों और जमीदारों को पराजित नहीं कर सकती... केवल बंदूक की शक्ति के द्वारा ही विश्व को एक नए सांचे में ढाला जा सकता हैi" उसका स्पष्ट मत है कि केवल हिंसा के द्वारा ही एक वर्ग दूसरे वर्ग के अधिकारों को समाप्त कर सकता हैi" स्वयं माओ ने शक्ति के आधार पर ही सत्ता प्राप्त की थीi वह सेना को राजसत्ता का प्रमुख अंग मानता थाi जो कोई भी राजसत्ता पर कब्जा करना चाहता है उसके पास एक शक्तिशाली सेना का होना आवश्यक हैi साम्राज्यवादी युग के वर्ग संघर्ष में सेना की बंदूकें सर्वहारा को सफलता देती हैi

3.4.14. लोकयुद्ध का सिद्धांत

चीन में च्यांग काई शेक की विफलता और माओ की सफलता का विशेष कारण यह था कि माओ ने क्रांति के उन दो पक्षों को ,जो देश में अलग-अलग धाराओं में बह रहे थे, एक में मिला दिया थाi इनमें से एक राष्ट्रवादी क्रांति थी जिसका विरोध साम्राज्यवादी शक्तियों से था और दूसरी माओ की शब्दों में 'लोकतांत्रिक क्रांति' थी, जिसका विरोध सामंतवादी जमीदारों से थाi माओ की मान्यता थी कि यह दोनों क्रांतियां एक दूसरे से संबंद्ध थी -"एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी एक दूसरे पर निर्भरi" उसने एक स्थान पर लिखा, "साम्राज्यवाद को जब तक उखाड़ कर फेंक नहीं दिया जाता, सामंतवादी जमीदारों के अत्याचारों का अंत भी संभव नहीं होगा.. इसके साथ यह भी सत्य है कि साम्राज्यवादी शासन को हटाने के लिए शक्तिशाली सैनिक टुकड़ियों का गठन तब तक नहीं किया जा सकता जब तक किसानों को सामंतवादी जमीदार वर्ग से संघर्ष के लिए तैयार नहीं कर लिया जाता हैi

इस संबंध में माओ के विचार बड़े स्पष्ट थेi वह मानता था कि जबकि युद्ध विदेशी और घरेलू दोनों प्रकार के शत्रुओं के विरुद्ध एक साथ लड़ा जा रहा है तो इसके लिए आवश्यक है कि वह राजनीतिक दृष्टि से संगठित जनता के द्वारा एक राष्ट्रीय क्रांतिकारी युद्ध के रूप में लड़ा जाए ना कि उसकी ओर से एक संगठित सेना के द्वाराi वास्तव में लोक युद्ध की संकल्पना मार्क्सवादी लेनिनवादी दर्शन में एक नई संकल्पना है, और इसके विकास का श्रेय माओ को ही जाता हैi चीन में शत्रु की संगठित

सेनाओं की तुलना में क्रांतिकारी शक्तियां कमजोर थीi लेकिन माओ ने हथियारों को अपना अधिक महत्व जनता को दियाi उसने लिखा "युद्ध में हथियारों का अपना महत्व है पर वे निर्णायक तत्व नहीं है ,निर्णय मनुष्यों के द्वारा ही किया जाता है ,जड़ वस्तुओं के द्वारा नहींi"
इसी कारण माओ में अधिक से अधिक व्यापक जनाधार पर लोकयुद्ध की कल्पना कीi माओ ने सदा इस बात का प्रयत्न किया कि उसके सभी आंदोलनों में देश के अधिक से अधिक लोगों का हाथ होi इसी कारण माओ ने अधिक से अधिक व्यापक जनाधार पर लोकयुद्ध की कल्पना कीi माओ ने सदा ही इस बात का प्रयत्न किया कि उसके सभी आंदोलनों में देश के अधिक से अधिक लोगों का हाथ होi इसी कारण चीन में प्रशासन के जिस रुप की उसने स्थापना की वह से भिन्न थाi

3.4.15. जनमार्ग या जनदशा

साम्यवादी दल और जनसंख्या के मध्य वांछनीय संबंधों को माओ ने जनमार्ग या जनसंचार कहा हैi उसके अनुसार सही नेतृत्व सदैव जनता से ही उभरता हैi जनता से उसके बिखरे और सुव्यवस्थित विचारों को ग्रहण किया जाए और फिर उन्हें क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित बनाया जाएi पुनः इस क्रमबद्ध और सुव्यवस्थित विचारों को लेकर जनता को उस समय तक बताया और समझाया जाए जब तक कि वह उन्हें अपना नहीं बना लेती और उन्हें कार्य रूप में परिणत करने के लिए तैयार नहीं हो जातीi उनकी क्रियान्वित के समय में इन विचारों का परीक्षण किया जाए कि वह कहां तक खरे उतरते हैंi अपने इस अनुभव के संदर्भ में विचारों का पुनः संशोधन किया जाए और फिर जनता के पास लेकर उन्हें सुरक्षित बनाया जाए तथा आगे पहुंचाया जाएi इस प्रकार इन जनवादी विचारों को बार-बार सही किया जाए, समृद्ध और शक्तिशाली बनाए जाएi इसे माओ ने जनमार्ग कहा है, और इसे उसका अपना मौलिक विचार माना जा सकता हैi

"माओ ने इसी जनमार्गीय धारणा का अवलम्बन करके अपनी सेना और साम्यवादी दल का बार-बार विचार परिष्कार करने का प्रयास किया हैi 1938 में माओ ने 'मार्क्सवाद की चीनीकरण' का अभियान चलायाi" 1942 के 'संशोधन आंदोलन' का भी यही उद्देश्य थाi उसमें उसने सभी प्रकार के वर्गों और स्तरों से संबंधित व्यक्तियों को मार्क्स लेनिनवादी विचारधारा से अनुप्राणित करने का प्रयत्न किया थाi इस प्रशिक्षण अभियान में लेनिन के साथ साथ ल्युशाओ ची जैसे चीनी नेताओं की विचारों का अध्ययन भी समाहित किया गया थाi बाद में उसने अपने द्वारा 1929 में लिखित विचारों का अध्ययन दल और सेना के लिए पाठ्यपुस्तक की तरह अनिवार्य बना दिया थाi 1945 में चीनी साम्यवादी दल की सातवीं कांग्रेस में माओ के विचारों को ही दल का एकमात्र आधिकारिक मार्गदर्शन मान लियाi इस प्रकार चीनी भाषा , मनोवृत्ति और परिस्थितियों के साथ समायोजित होकर मार्क्सवाद ने क्रमशः आगे बढ़ते हुए स्वयं माओवाद का रूप धारण कर लियाi

3.4.16. माओ , सोवियत रूस और अमेरिका

माओ का संबंध सोवियत रूस से आरोह-अवरोहपूर्ण रहाi सोवियत रूस की कम्युनिस्ट पार्टी पूरे विश्व में अकेली पार्टी थी जिसने क्रांति को सफलतापूर्वक संपन्न किया थाi ऐसी दशा में चीन के लिए सोवियत मॉडल को आदर्श के रूप में अपनाना स्वभाविक थाi लेकिन इसके साथ ही सोवियत क्रांति का स्वरूप चीनी परिस्थितियों के साथ मेल नहीं खाता थाi इसलिए माओ निरंतर इस बात का प्रयास करता रहा कि कोमिनटर्न के विरुद्ध अपनी स्वतंत्रता को सुरक्षित रखेंi सन 1920 और 1930 के दशकों

में कोमिनटर्न ने कई निर्देश चीनी क्रांति के लिए घातक सिद्ध हुए थे ,और माओ इनका भुक्तभोगी थाi कोमिनटर्न माओ की अपेक्षा दूसरे चीनी नेताओं पर अधिक भरोसा करता थाi लेकिन इन सब के बावजूद रूस में स्टालिन के शासन काल तक माओ और सोवियत रूस का संबंध सौहार्दपूर्ण थाi बहुत से बिंदुओं पर मतभेद होते हुए भी स्टालिन ने सदैव माओ को एक समर्पित एवं कार्यकुशल नेता के रूप में स्वीकार किया थाi वह माओ और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी पर अपनी निगरानी तो रखता था लेकिन ऐसी निगरानी सोवियत रूस द्वारा सभी देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों पर रखी जाती थीi स्टालिन ने माओ को सत्ता प्राप्त करने में सहायता की और क्रांति के पश्चात चीन के पुनर्निर्माण में पूरा सहयोग कियाi दूसरी ओर माओ ने भी सदैव स्टालिन की प्रशंसा की और जब कभी कोई विषय सोवियत रूस के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण होता था तब सोवियत रूस द्वारा निर्देशित लाइन को स्वीकार करता थाi कई बार माओ ने मास्को से आने वाले निर्देशों को अस्वीकार तो किया लेकिन स्टालिन का खुला विरोध उसने कभी नहीं कियाi स्टालिन की व्यक्ति पूजा की परंपरा का विकास करने में उसने पूरा सहयोग कियाi

चीन की दृष्टि में अमेरिका सबसे प्रमुख साम्राज्यवादी देश थाi ताइवान को अमेरिका द्वारा दी जाने वाली सामरिक एवं आर्थिक सहायता के कारण माओ का सबसे बड़ा शत्रु थाi एक बार उसने सैन्य बल के प्रयोग से ताइवान पर कब्जा करने का प्रयास किया लेकिन अमेरिकी हस्तक्षेप के कारण और सफल नहीं हो सकाi माओ ने कई अवसरों पर अमेरिकी साम्राज्य की कटु आलोचना की थीi 8 सितंबर 1958 को अपने भाषण में उन्होंने कहा कि , "अमेरिका दुनिया भर के अनेक देशों में सैकड़ों फौजी अड्डे स्थापित कर चुका हैi यह सब अमेरिकी साम्राज्यवाद के गले में पड़े हुए अनेक फंदों की तरह हैi ये किसी और ने नहीं बल्कि खुद अमेरिकियों ने हीं बनाए हैंi अमेरिकी हमलावर जितने अधिक समय तक इन जगहों पर रहेंगे उनके गले में फंसते जाएंगेi"

12 जनवरी 1964 को पनामा की जनता के संघर्ष को अपना समर्थन देते हुए माओ ने कहा कि हर जगह मनमाने ढंग से जुल्म ढाने के कारण अमेरिकी साम्राज्यवाद समूची दुनिया की जनता का दुश्मन बना लिया है और अपने को अधिकाधिक अलगाव की स्थिति में डाल लिया हैi उन लोगों को जो गुलाम नहीं बनना चाहते अमेरिकी साम्राज्यवादियों के परमाणु बमों एवं प्रक्षेपास्त्र से कदापि नहीं डराया जा सकता हैi अमेरिकी हमलावरों के खिलाफ समूची दुनिया की जनता का प्रचण्ड ज्वार एक अदम्य शक्ति हैi अमेरिकी साम्राज्यवाद और उसके विरुद्ध समूची दुनिया की जनता के संघर्षों में निःसंदेह और अधिक महान विजय प्राप्त होगीi अमेरिका के पास परमाणु हथियार होने के बावजूद माओ के लिए वह भी प्रतिक्रियावादियों एवं साम्राज्यवादियों की भाति केवल एक कागजी बाघ था i यह बाघ देखने में तो डरावने लगते हैं लेकिन वास्तव में डरपोक और कायर होते हैंi जिस प्रकार जर्मनी में नाजियों का और रूस में जारशाही का पतन हो गया उसी प्रकार अमेरिकी साम्राज्यवादियों का भी पतन अनिवार्य रूप से हो जाएगाi

3.4.17. सारांश

माओ ने मर्क्सवाद-लेनिनवाद की चीनी परिस्थितियों के अनुसार ढालने के उद्देश्य से उसमें आवश्यक परिवर्तन किए हैं i 1938 में स्वयं माओ ने मार्क्सवाद के चीनी संस्करण की बात कही थीi उसने असंगति का सिद्धांत, जनयुद्ध का सिद्धांत, नवीन लोकतंत्र, क्रांति के साधन- कृषक, आदि विचारों को चीन की विशिष्ट परिस्थितियों के संदर्भ में मौलिक रूप में प्रस्तुत किया थाi

माओ की गणना महान विचारकों में की जाती है उसने अपने विचारों के परिप्रेक्ष्य में चीन में सामाजिक क्रांति का मार्ग प्रशस्त कियाi माओं के विचारों के कारण ही चीन का तीव्र गति से आर्थिक विकास हुआ और महाशक्ति के रूप में उदय हुआi वस्तुतः रूस के लिए जो कुछ लेनिन और स्टालिन ने किया ,उन्होंने वहीं चीन के लिए कियाi अब माओवाद को एक स्वतंत्र विचारधारा के रूप में स्वीकार किया जाता हैi माओ ने ठीक ही कहा था कि , "यदि हम चीन की परिस्थिति के अनुकूल एक सिद्धांत का निर्माण नहीं करेंगे, एक ऐसे सिद्धांत का जो हमारी आवश्यकता और निश्चित प्रकृति के अनुरूप नहीं होगा तो हमें अपने आप को मार्क्सवादी विचारक कहना एक उत्तरदायित्वहीनता होगीi

3.4.18. अभ्यास /बोधात्मक प्रश्न

3.4.18.1. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

- माओत्से-तुंग के राजनीतिक विचारो का परिक्षण कीजियेi
- माओवाद की मार्क्सवाद-लेनिनवाद से तुलना कीजियेi
- माओ के व्यक्तित्व और रचनाओं पर लेख लिखिएi
- माओ के महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति पर निबंध लिखिएi
- माओ के अनुसार क्रांति में जनसाधारण के योगदान का उल्लेख कीजियेi

3.4.18.2. लघु उत्तरीय प्रश्न

- माओ के ऊपर किन किन क्रांतियो का प्रभाव पड़ा ?
- गुरिल्ला युद्ध क्या है ?
- अपनी राजनीतिक शक्ति को मजबूत बनाने के लिए क्या तकनीक अपनाया ?
- लोकयुद्ध का सिद्धांत क्या है ?
- माओ की नवीन लोकतंत्र की अवधारणा क्या है ?

3.4.18.3. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. माओ का जन्म चीन के किस प्रान्त में हुआ था?

(अ) हुनान

(ब) संघाई

(स) बीजिंग

(द) शान्तु

2. माओ किस वर्ष में इन्टरेन्स परीक्षा में सफल हुए थे-

(अ) 1920

(ब) 1915

(स) 1911

(द) 1912

3. माओ ने किस वर्ष में साम्यवादी संगठन की स्थापना की थी-

(अ) 1920

(ब) 1912

(स) 1915
(द) 1911

4. माओ क्रांति में सबसे अधिक किसका योगदान जरूरी समझता था-
   (अ) छात्रो का
   (ब) किसानो का
   (स) मजदूरों का
   (द) सैनिकों का
5. "सत्ता बंदूक की नली से ही निकलती है" ,किसका कथन है-
   (अ) लेनिन
   (ब) स्टालिन
   (स) नेपोलियन
   (द) माओ

3.4.18.4. बहुविकल्पीय प्रश्नो के उत्तर

1. (अ) हुनान
2. (स) 1911
3. (अ) 1920
4. (ब) किसानो का
5. (द) माओ

3.4.19. कठिन शब्द

समाहित -व्यवस्थित रूप में एकत्रित किया हुआ
वैकल्पिक – ऐच्छिक
भर्त्सना – निंदा
रसद - खाने पिने का सामान

3.4.20. संदर्भ ग्रंथ सूची

- डा. बी. एल. फड़िया , पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन ,साहित्य भवन पब्लिकेशन ,आगरा ,1992 , आईएसबीएन-978-93-5173-312-6
- प्रो. मेहता एवं खन्ना,राजनीति विज्ञान,एस बी पी डी पब्लिशिंग हॉउस, 2015
- डा.आर.के.आनंद,डा. जीवन महता, डा. एन. डी.अरोड़ा,राजनीति विज्ञान के सिद्धांत , साहित्य भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.)लि.,2007
- जीवन महता, राजनीतिक चिंतन का इतिहास, साहित्य भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.)लि.,2008 , आईएसबीएन-978-93-5073-409-9
- डा. पुखराज जैन,राजनीतिक चिंतन का इतिहास,2006, साहित्य भवन पब्लिकेशन,आगरा, आईएसबीएन-81-7288-031-6

- डा जे. सी. जौहरी ,राजनीतिक संकल्पनाएं एवं विचारधाराएँ एसबीपीडी पब्लिकेशन,आगरा,आईएसबीएन-978-93-5167-300-2
- डा बी.एल.फड़िया,अवधाराणाए एवं विचारधाराए,साहित्य भवन पब्लिकेसन्स,आगरा ,आईएसबीएन-978-93-5173-054-5
- डा. जे.सी. जौहरी,राजनीति विज्ञान,एस बी पी डी पब्लिकेशन,आगरा आईएसबीएन-978-93-5167-451-1
- एडी आशीर्वादम,कृष्णकांत मिश्र,राजनीति विज्ञान 2016, एस. चन्द एंड कंपनी (प्रा.) लिमिटेड, रामनगर ,नई दिल्ली , आईएसबीएन-978 -81-219-0896-2

खंड – 4 : समाजवादी चिन्तन
इकाई-1 समाजवाद का अर्थ परिभाषा एवं वर्गीकरण

इकाई की रूपरेखा

4.1.1. उद्देश्य कथन
4.1.2. प्रस्तावना
4.1.3. समाजवाद का अर्थ
    4.1.3.1. पूँजीवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया
    4.1.3.2. समाजवाद का अभिप्राय
4.1.4. समाजवाद की परिभाषा
4.1.5. समाजवाद के सिद्धान्त
    4.1.5.1. समाजवाद का उद्देश्य पूँजीवाद का उन्मूलन हैi
    4.1.5.2. एक प्रजातांत्रिक विचारधाराi
    4.1.5.3. समाज की आंगिक एकता पर बल देता हैi
    4.1.5.4. समाजवाद का ध्येय समता हैi
    4.1.5.5. व्यक्ति की अपेक्षा समाज महत्वूपर्ण हैi
    4.1.5.6. राज्य एक सकारात्मक अच्छाई
    4.1.5.7. उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व
    4.1.5.8. समाजवादी राज्य को अधिकारिक कार्य देते हैंi
4.1.6. समाजवाद का वर्गीकरण
4.1.7. कल्पनावादी समाजवाद
4.1.8. वैज्ञानिक समाजवाद
4.1.9. विकासवादी समाजवाद
    4.1.9.1. संशोधनवाद
    4.1.9.2. फेबियन समाजवाद
    4.1.9.3. समष्टिवाद
    4.1.9.4. श्रम-संघवाद
    4.1.9.5. श्रेणी-समाजवाद
    4.1.9.6. लोकतंत्रीय समाजवाद
4.1.10. पाठ सार/सारांश
4.1.11. अभ्यास-प्रश्न
4.1.12. कठिन शब्दावली
    4.1.12.1. भौतिकवाद
    4.1.12.2. श्रेणी-समाजवाद
    4.1.12.3. राज्य का वर्ग-सिद्धान्त
4.1.13. संदर्भ-ग्रन्थ-सूची

4.1.1. उद्देश्य कथन

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात छात्र-

1. समाजवादी विचारधारा से परिचित हो सकेंगेi
2. समाजवाद का अर्थ समझ सकेंगेi
3. समाजवादी विचारधारा से सम्बन्धित विभिन्न सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगेi
4. समाजवाद की विभिन्न परिभाषाओं से परिचित हो सकेंगेi
5. विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गयी अवधारणाओं का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगेi
6. समाजवादी विचारधारा की वर्तमान समय में उपयोगिता को समझ सकेंगेi

4.1.2.प्रस्तावना

समाजवाद आज के युग की सर्वाधिक लोकप्रिय विचारधारा है और समाजवाद की इस अत्यधिक लोकप्रियता ने इसे बहुत अधिक अनिश्चितता का रूप प्रदान किया हैi समाजवाद की इस अनिश्चितता के कारण ही प्रो. सी.ई.एम. जोड ने कहा है कि 'संक्षेप में, समाजवाद एक ऐसे टोप की तरह है जिसकी आकृति भंग हो गयी है, क्योंकि प्रत्येक ने इसे धारण करने का प्रयत्न किया हैi' समाजवाद की अनिश्चितता के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं-

4.1.2.1. समाजवाद एक अत्यन्त व्यापक तथा विभिन्नताओं वाली विचारधारा है जिसने विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों में विभिन्न रूप धारण कर लिए हैंi लाभ-हानि को परस्पर बॉटने की सामान्य बात से लेकर राज्य को अधिकतम कार्य सौंपने की सभी बातें समाजवाद के अन्तर्गत आ जाती हैंi

4.1.2.2. समाजवाद एक राजनैतिक विचारधारा होने के साथ-साथ आर्थिक विचारधारा भी हैi जोड के अनुसार समाजवादी दर्शन को मात्र एक राजनीतिक दर्शन समझ लेना त्रुटि होगीi समाजवादी दर्शन में आर्थिक और राजनीतिक तत्व इस प्रकार गुंथे हुए हैं कि इस विचारधारा का स्पष्टता अध्ययन करना अत्यन्त कठिन हो जाता हैi कुछ विचारकों के द्वारा इसकी विवेचना आर्थिक दृष्टि से की गयी है और कुछ के द्वारा राजनैतिक दृष्टि से और इसी कारण प्रो. बार्कर इसे एक ऐसा सिद्धान्त मानते हैं, जो अपने लक्ष्य और उद्देश्यों में बहुत अधिक अनिश्चित और भ्रामक हैi

4.1.2.3. समाजवादी दर्शन से अब तक इतनी अधिक धाराएँ एवं उपधाराएँ निकल चुकी हैं और अभी भी अनिश्चितता बनी हुई है कि इसका एक समेकित रूप निर्धारित करना लगभग असम्भव हैi इसके अतिरिक्त ये विभिन्न समाजवादी उपधाराएँ अपने उद्देश्यों और प्रणालियों में एक-दूसरे से इतनी भिन्न हैं कि इनके आधार पर समाजवाद को समझना एक विफल प्रयत्न बनकर रह जाता हैi

4.1.2.4. समाजवाद मात्र एक राजनीतिक विचारधारा और दर्शन नहीं है, वरन् एक आन्दोलन भी हैi परन्तु इस आन्दोलन की भी कोई एक निश्चित दिशा होने के स्थान पर विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में यह विविध रूपों में दिखाई पड़ती हैi कहीं पर यह शान्तिपूर्ण आन्दोलन के रूप में है तो कहीं पर हिंसक आन्दोलन के रूप मेंi कहीं पर यह प्रजातान्त्रिक पद्धति द्वारा संचालित है तो कहीं पर यह क्रान्तिकारी प्रक्रिया के रूप में हैi एक ही देश में अनेक प्रकार के समाजवादी विचार और आन्दोलन भी देखे जा सकते हैंi भारत इसका उदाहरण हैi

4.1.2.5. समाजवाद एक प्रगतिशील और परिवर्तनशील दर्शन तथा कार्यक्रम है जिसका स्वाभाविक गुण

बदलती हुई आर्थिक तथा राजनीतिक आवश्यकताओं के साथ-साथ अपने स्वरूप में परिवर्तन करना हैi समाज के इस परिवर्तनशील वातावरण में समाजवाद के सन्दर्भ में आज निश्चित की गयी धारणा कल अनुपयुक्त हो सकती हैi ऐसी स्थिति में अनिश्चितता समाजवाद का एक स्वाभाविक लक्षण हो गया हैi वस्तुत: समाजवाद एक क्रियात्मक व व्यावहारिक दर्शन हैi इस कारण इसकी कोई बनी-बनाई योजना तथा निश्चित पद्धति हो ही नहीं सकतीi समाजवाद के इस निरन्तर परिवर्तनशील स्वरूप को दृष्टि में रखते हुए रैम्जे म्योर ने कहा था- "समाजवाद परिस्थितियों के अनुसार रंग बदलने वाला गिरगिट का सा धर्म हैi बाजार के एक कोने पर अथवा क्लब में भीड़ जमा करके व्याख्यान देने वाला व्यक्ति इसे वर्ग-संघर्ष के भड़कीले लाल रंग में प्रस्तुत करता है, बुद्धिजीवियों के लिए यह कोमल गुलाबी फूल की भॉति है तथा पादरी वर्ग में यह श्वेत वस्त्रधारी और उदारवादी आकांक्षाओं का प्रेरक बन जाता हैi"

4.1.2.6. समाजवाद के सम्बन्ध में अनिश्चितता का एक अन्य कारण यह भी है कि व्यवहार में एक बड़े वर्ग द्वारा समाजवाद और साम्यवाद को एक ही समझ लिया जाता है जबकि वस्तुत: इन दोनों में बहुत अधिक अन्तर हैi

4.1.3. समाजवाद का अर्थ

समाजवाद, जो कि वर्तमान समय का सबसे लोकप्रिय शब्द है का प्रयोग 1827 ई. में राबर्ट ओवन के विचारों का प्रचार करने के लिए स्थापित पत्रिका 'ओ नाइट कोआपरेटिव' (O-Night-Co-operative) में व्यक्तिवादी और उदारवादी विचारों के विरुद्ध भावों को प्रदर्शित करने के लिए किया गयाi उसके बाद 1835 में रॉबर्ट ओवन की अध्यक्षता में स्थापित 'सब राष्ट्रों के सब वर्गों के समुदाय' (Association of all classes of all Nations) ने 'समाजवाद' और 'समाजवादी' शब्दों का प्रयोग कियाi तत्पश्चात् फ्रांसीसी लेखक रेबांद (Reyband) ने अपनी रचना 'Reformation Moderner' में इन शब्दों का खूब प्रयोग करते हुए इन्हें व्यापक रूप से प्रचारित कर दियाi

4.1.3.1. पूँजीवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया

समाजवादी विचारधारा की उत्पत्ति पूँजीवाद का घोर विरोध करने के फलस्वरूप हुई हैi पूँजीवादी विचारधारा को पूँजीवादी देशों ने विकसित भी किया इसके साथ-साथ मजबूत भी कियाi 20वीं सदी के प्रारम्भ में समाजवादी विचारधारा का समर्थन व्यापक तरीके से किया जाने लगाi समाजवाद कल्याण और समानता के आधार पर समाजवाद स्थापित करना चाहता हैi

समाजवाद एक ऐसी विचारधारा है जिसमें सार्वजनिक हित, कल्याण, उदारता, समानता के सिद्धान्त समाहित हैंi यह पूँजीवादी व्यवस्था की असमानताओं, विषमताओं, शोषण, वर्ग-संघर्ष, गरीबी का निराकरण करने के लिए अपनायी गयी थीi यह पूँजीवाद के विरुद्ध विकसित हुई प्रथम राजनीतिक विचारधारा हैi

4.1.3.2. समाजवाद का अभिप्राय

समाजवाद पूँजीवादी विचारधारा के स्थान पर व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाते हुए सामाजिक, आर्थिक समानता की स्थापना का वह सिद्धान्त है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने विकास, जीवन-निर्वाह करने एवं आवश्यकतानुसार धन-प्राप्ति के समान अवसर उपलब्ध कराये जाने का प्रयास शामिल हैi यह समाजवाद जनसाधारण व आम नागरिकों के हितों की रक्षा का प्रतीक हैi इसमें उत्पादन व वितरण की सुविधा सभी में समान रूप से स्थापित करने का कृत-संकल्प लिया गया थाi यह विशेषकर भूमि पर एवं उत्पादन कार्य करने वाले श्रमिकों की हितों का संरक्षक हैi यह मानव संसाधनों के समान

वितरण का पक्षपाती हैi समाजवाद व्यक्तिगत सम्पत्ति की समाप्ति तथा उत्पादन के साधनों के सामाजिक स्वामित्व की स्थापना का समर्थक हैi ऐसा करने का इसका उद्देश्य यह है कि समाज के शोषक वर्ग का उन्मूलन हो जाए, राष्ट्रीय सम्पत्ति का सब व्यक्तियों के बीच न्याय-संगत वितरण सम्भव हो सके तथा आर्थिक असमानता, जिसके कारण समाज के विविध वर्गों में विषमता और वैमनस्य की उत्पत्ति होती है समाज से दूर हो सकेi दूसरे शब्दों में, समाजवाद वह सिद्धान्त है जिसका उद्देश्य आर्थिक जीवन के नियमन द्वारा उस व्यक्तिगत असमानता को दूर कर देना है, जो अधिकतर सामाजिक बुराइयों की जड़ है तथा जिसकी समाप्ति से समाज का सामूहिक कल्याण हो सकता हैi किर्कुप का कहना है : 'समाजवादी समाज वह है जो उत्पादन के भौतिक उपकरणों पर सार्वजनिक अथवा सामूहिक स्वामित्व, उद्योगों के प्रजातांत्रिक, प्रशासन तथा सहकारितापूर्ण श्रम की व्यवस्था पर आधारित होi' समाजवाद के अर्थ को प्रो. एफ.जे.सी. हर्नशा के 'ई' (E) से प्रारम्भ होने वाले छ: कार्यक्रमों के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

1. व्यक्ति की अपेक्षा समाज का उत्थान (Exaltation of Community above theindividual)
2. मानवीय दशाओं का समानीकरण (Equalisation of human conditions)
3. पूँजीवाद का उन्मूलन (Elimination of Capitalism)
4. सामन्तवाद की समाप्ति (Expropriation of Landlordism)
5. निजी पूँजी का अन्त (Expropriation of Landlordism)
6. प्रतियोगिता का निराकरण (Eradiction of Competition)

संक्षेप में, समाजवाद 'वह नीति अथवा सिद्धान्त है जिसका लक्ष्य एक केन्द्रीय प्रजातान्त्रिक सत्ता की कार्यवाही से बेहतर वितरण की उपलब्धि तथा उसके अधीन वर्तमान की अपेक्षा पूँजी का बेहतर उत्पादन प्राप्त करना हैi

4.1.4. समाजवाद की परिभाषा

समाजवाद आंग्ल भाषा के 'सोशलिज्म' (Socialism) शब्द का हिन्दी पर्यायवाची हैi 'सोशलिज्म' शब्द की उत्पत्ति 'सोशियस' (Socious) शब्द से हुई है जिसका अर्थ 'समाज' होता हैi इस प्रकार समाजवाद का सम्बन्ध समाज और उसके सुधार से हैi समाजवाद ऐसा शब्द है जो आधुनिक काल में सबसे अधिक लोकप्रिय हो गया है और साथ ही इसका सबसे अधिक दुरुपयोग भी किया गया हैi अत: इसकी सुनिश्चित व स्वीकार्य परिभाषा प्रस्तुत करना बहुत कठिनाई की बात हैi 'समाजवाद' की इतनी शाखाएँ और इतनी परिभाषाएं हैं कि उसकी कोई सही-सही या सर्वसम्मत परिभाषा देना कठिन हैi डॉन ग्रिफिथ्स ने अपनी रचना 'समाजवाद क्या है?' में समाजवाद की लगभग 263 परिभाषाएं संग्रहीत की थींi प्रो. ऐली ने अपनी एक पुस्तक में समाजवाद की 400 से अधिक परिभाषाओं का संकलन किया हैi 1892 में पेरिस के एक पत्र ली फिगारो ने विभिन्न लोगों द्वारा विभिन्न समयों पर दी गयी समाजवाद की लगभग 600 परिभाषाएं उद्धृत की थींi कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नवत हैं-

1. बेल्जियन समाजवादी इमाइल के शब्दों में- 'समाजवाद का अर्थ है, श्रमिकों की एक ऐसी व्यवस्था, जो पूँजीवादी सम्पत्ति को सामाजिक सम्पत्ति में बदलने के उद्देश्य से राजनीतिक सत्ता को प्राप्त करेगीi'

2. कोकर के मतानुसार- 'समाजवाद का अभिप्राय सम्पत्ति के सभी आधारभूत साधनों पर नियन्त्रण से हैi यह नियन्त्रण समाजवाद के किसी एक वर्ग द्वारा न होकर स्वयं समाज के द्वारा होगा और धीरे-धीरे व्यवस्थित ढंग से स्थापित किया जायेगाi'

3. हूगन (Hughan) के अनुसार- 'समाजवाद श्रमिक वर्ग द्वारा की जाने वाली ऐसी राजनीतिक क्रान्ति है जिसका उद्देश्य उत्पादन तथा वितरण के साधनों की प्रजातान्त्रिक व्यवस्था तथा सामूहिक स्वामित्व द्वारा शोषण का उन्मूलन करना है**i**'

4. **सेलर्स के अनुसार-** 'समाजवाद एक ऐसी प्रजातान्त्रिक विचारधारा है जिसका उद्देश्य समाज में एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था लाना है जो किसी भी समय व्यक्ति को अधिकतम सम्भव न्याय और स्वाधीनता प्रदान कर सके**i**'

5. रैम्जे मैक्डानल्ड के अनुसार- 'साधारण रूप से समाजवाद की इससे अधिक अच्छी परिभाषा नहीं दी जा सकती कि वह समाज की भौतिक और आर्थिक शक्तियों की एक ऐसी व्यवस्था चाहता है जिस पर मानवीय शक्ति का नियन्त्रण हो**i**'

6. बट्रेण्ड रसेल के अनुसार- 'समाजवाद का अर्थ यह है कि भूमि एवं पूँजी के व्यक्तिगत स्वामित्व के स्थान पर सामूहिक स्वामित्व का प्रतिपादन करना**i**'

7. हेराल्ड जे. लास्की के शब्दों में- 'समाजवाद एक साधन भी है और एक लक्ष्य भी है**i** समाजवाद का आदर्श ऐसे समाज की रचना करना है जिसमें उत्पादन एवं वितरण नियन्त्रण में लेकर अन्य सभी वर्गों का अन्त कर दिया जायेगा**i**'

उपरोक्त विद्वानों की तुलना में भारत के समाजवादी नेता जय प्रकाश नारायण की परिभाषा अधिक स्पष्ट है**i** उनके शब्दों में 'समाजवादी समाज एक ऐसा वर्गहीन समाज होगा जिसमें सब श्रमजीवी होंगे**i** इस समाज में वैयक्तिक सम्पत्ति के हित के लिए मनुष्य के श्रम का शोषण नहीं होगा**i** इस समाज की सारी सम्पत्ति सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय अथवा सार्वजनिक सम्पत्ति होगी तथा अनार्जित आय और आय सम्बन्धी भीषण असमानताएँ सदैव के लिए समाप्त हो जाएंगी**i** ऐसे समाज में मानव-जीवन तथा उसकी प्रगति योजनाबद्ध होगी और सब लोग सबके हित के लिए जियेंगे**i**'

यद्यपि समाजवादियों के विचारों में एवं उनके द्वारा दी गयी परिभाषाओं में पर्याप्त भिन्नता है तथापि कुछ ऐसे साध्य अवश्य हैं जिन्हें अधिकांश समाजवादी वांछनीय समझते हैं, चाहे उनकी सिद्धि के लिए वे कितने ही भिन्न साधन अपनाते हों**i** जी.डी.एच. कोल ने समाजवाद की संक्षिप्त परिभाषा देने का जो प्रयत्न किया है, उससे समाजवाद के सामान्य स्वरूप का यथेष्ट परिचय मिल जाता है**i** कोल के अनुसार, 'समाजवाद एक आन्दोलन भी है, विचार भी**i** उनके अनुसार, समाज के कार्यों का संचालन इस ढंग से होना चाहिए कि उनसे जनसाधारण के सामान्य हितों को बढ़ावा मिले**i** इसके लिए प्रत्येक स्त्री-पुरूष का सुख-संतोष का जीवन बिताने के लिए यथासंभव समान अवसर मिलने चाहिए**i** इसके साथ यह विश्वास भी जुड़ा है कि ऐसा अवसर तब तक सम्भव नहीं जब तक उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व रहेगा और यह स्वामित्व मूलत: विषमतापूर्ण होगा**i** अत: इसकी मांग यह है कि इन साधनों का उपयोग सामूहिक नियन्त्रण में रहना चाहिए तथा उन पर सामूहिक स्वामित्व भी स्थापित होना चाहिए और उनका संचालन तटस्थ भाव से सर्वहित को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए**i** समाजवाद न केवल व्यापक से व्यापक अर्थ में उत्पादन के सारभूत साधनों के समाजीकरण की मांग करता है बल्कि वह उन लोगों की निजी आय का भी अन्त कर देना चाहता है जो समाज की कोई उपयोगी सेवा नहीं करते**i** वह शिक्षा के क्षेत्र में भी वरीयता और एकाधिकार जैसी प्रथाओं को मिटा देना चाहता है जो मनुष्यों को भिन्न-भिन्न सामाजिक वर्गों में बांटती है**i** परिणामत: वह ऐसा सब कुछ करना चाहता है जो 'वर्गहीन' समाज की स्थापना के लिए आवश्यक हो**i** समाजवाद उत्पादन और वितरण के तंत्र के व्यापक राष्ट्रीयकरण की मांग करता है ताकि उनका उपयोग सर्व-हित में किया जा सके**i**

4.1.5. समाजवाद के सिद्धान्त

समाजवाद व्यक्तिवादी विचारधारा और पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध एक सशक्त विचारधारा और आन्दोलन है। यह समानता को अपना आदर्श मानकर चलता है और राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में अधिकाधिक समानता स्थापित करना चाहता है। इसके प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

4.1.5.1. समाजवाद का उद्देश्य पूँजीवाद का उन्मूलन है- समाजवाद व्यक्तिवादी विचारधारा तथा पूँजीवादी व्यवस्था के विरोध पर आधारित है। समाजवाद के अनुसार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में कुछ लोग बहुत अधिक अमीर और कुछ लोग बहुत अधिक गरीब होते जाते हैं और इस प्रकार की गम्भीर आर्थिक विषमता के परिणामस्वरूप अनेक सामाजिक भेदभाव उत्पन्न हो जाते हैं। इस आर्थिक विषमता के कारण ही राष्ट्र की सामूहिक उन्नति नहीं हो पाती।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन का ढंग भी दोषपूर्ण है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत मानवीय आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर योजनाबद्ध रूप में उत्पादन नहीं होता। कभी तो जरूरत से बहुत अधिक और कभी जरूरत से बहुत कम उत्पादन होने के कारण आर्थिक क्षेत्र में बहुत अधिक अव्यवस्था फैल जाती है। यह अव्यवस्था उपभोक्ताओं के लिए भी बहुत अधिक हानिकारक होती है क्योंकि विज्ञापन आदि पर बहुत अधिक धन व्यय कर दिया जाता है जिसे उपभोक्ताओं से ही वसूल किया जाता है। पूँजीवाद के अमानवीय प्रभावों का उल्लेख करते हुए एरिक फ्रॉम ने लिखा है- 'व्यक्ति और भी एकांगी और अकेला पड़ गया है, वह अपने अधिकार के बाहर की अतिशय सबल शक्तियों के हाथों का साधन बन गया है, वह एक व्यक्ति बन गया किन्तु एक असमर्थ और असुरक्षित व्यक्ति।' इन सबके अतिरिक्त पूँजीवादी अर्थव्यवस्था अशान्ति को जन्म देने वाली होती है। आन्तरिक क्षेत्र में इसका परिणाम वर्ग-संघर्ष और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में युद्ध व साम्राज्यवाद होता है।

इस प्रकार समाजवाद के अनुसार वर्तमान समय की पूँजीवादी व्यवस्था दोषपूर्ण जर्जर, अन्यायी व शोषक है और सम्पूर्ण समाज के हित में इस अर्थव्यवस्था का अन्त कर दिया जाना ही श्रेयस्कर है।

4.1.5.2. समाजवाद एक प्रजातान्त्रिक विचारधारा है- समाजवाद के सम्बन्ध में प्रमुख बात यह है कि यह प्रजातान्त्रिक विचारधारा है। अनेक बार समाजवाद को साम्यवाद का पर्यायवाची मान लिया जाता है जो नितान्त भ्रमपूर्ण है। पूँजीवाद के विरोध में परस्पर सहमत होते हुए भी समाजवाद और साम्यवाद परस्पर नितान्त विरोधी विचारधाराएं है। इबन्सटीन के शब्दों में – 'समाजवाद और साम्यवाद, विचार और जीवन के दो नितान्त विरोधी ढंग हैं, उतने ही विरोधी जितने कि उदारवाद और सर्वाधिकारवाद।' इन दोनों विचारधाराओं में प्रमुख भेद साधनों के रूप में देखा जा सकता है। साम्यवाद पूँजीवाद के अन्त हेतु हिंसक साधनों को अपनाने के पक्ष में है किन्तु समाजवाद वांछित परिवर्तन प्रजातान्त्रिक और संवैधानिक साधनों से ही लाने का इच्छुक है। समाजवाद प्रजातंत्रवादी विचारधारा है, साम्यवाद सर्वाधिकारवादी।

4.1.5.3. समाजवाद समाज की आंगिक एकता पर बल देता है – समाजवाद का आधारभूत विचार यह है कि व्यक्ति कोई अकेला प्राणी नहीं है वरन् वह समाज के दूसरे व्यक्तियों से उसी प्रकार सम्बन्धित है जिस प्रकार शरीर के अंग-प्रत्यंग परस्पर सम्बन्धित होते हैं। इसलिए समाजवाद का सिद्धान्त है कि समाज को एक भीड़ या समूह मात्र न मानकर उसे एक इकाई माना जाए और व्यक्ति को समाज का एक अंग मानते हुए ही उस पर विचार किया जाए।

4.1.5.4. समाजवाद का ध्येय समता है – समाजवाद वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में विद्यमान असमानता का अत्यन्त विरोधी है और वह नवीन समाज का निर्माण ऐसे सिद्धान्तों के आधार पर करना

चाहता है कि उसमें वर्तमान समय में पायी जाने वाली गम्भीर असमानता कम से कम हो जाएi योग्यता के अन्तर को तो समाजवादी भी स्वीकार करते हैं और वे भी यह मानते हैं कि पूर्ण समानता अनुचित, अनावश्यक और असम्भव है किन्तु साथ ही उनका लक्ष्य एक ऐसे वातावरण का निर्माण करना है जिसमें प्रत्येक को उन्नति के समान अवसर प्राप्त हो सके और जहॉं कि सम्भव हो सके, मनुष्य- मनुष्य के बीच ऐसी अवस्थाएं न रहें कि कुछ लोग बिना काम किए ही जीवित रहें और कुछ लोग काम करने पर भी न जी सकेंi'

4.1.5.5. व्यक्ति की उपेक्षा समाज महत्वपूर्ण – एक समष्टिमूलक दर्शन होने के नाते समाजवाद का विचार है कि सम्पूर्ण समाज का सामूहिक हित अकेले व्यक्ति के हित से कहीं अधिक मूल्यवान है और आवश्यकता पड़ने पर समष्टि के हित में व्यक्ति के हित का बलिदान किया जा सकता हैi इस सम्बन्ध में समाजवादियों का विचार है कि सामूहिक हित में व्यक्तिगत हित निहित होता है और सामूहिक हित की साधना से व्यक्तिगत हित की साधना स्वयमेव ही हो जाती हैi

4.1.5.6. राज्य एक सकारात्मक अच्छाई है – समाजवाद व्यक्तिवाद के इस कथन को अस्वीकार करता है कि 'राज्य एक आवयश्क दुर्गुण है' और इसके विपरीत राज्य को ऐसी कल्याणकारी संस्था मानता है जिसका जन्म ही नागरिकों के जीवन को सभ्य और सुखी बनाने के लिए होता हैi अधिकांश समाजवादी इतिहास से उदाहरण देते हुए कहते हैं कि राज्य संस्था चिरकाल से मानव जाति की सेवा करती चली आ रही है और यदि इसमें कहीं बल का प्रयोग भी किया गया है तो सामूहिक हित के लिए हीi इस प्रकार साधारणतया समाजवादी राज्य को एक जनहितकारी सकारात्मक अच्छाई मानते हैंi

4.1.5.7. उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व – पूँजीवादी व्यवस्था का घोर विरोधी होने के कारण समाजवाद भूमि और उद्योग पर वैयक्तिक स्वामित्व के अन्त की बात करता है और उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व स्थापित करना चाहता हैi समाजवादियों के अनुसार- 'वैयक्तिक उद्योग एक वैयक्तिक लूटमार हैi और व्यक्तिगत सम्पत्ति को सामाजिक अथवा सामूहिक सम्पत्ति का राय देना ही श्रेयस्कर हैi'

4.1.5.8. समाजवादी राज्य को अधिकाधिक कार्य समर्पित करना चाहते हैं – समाजवादी राज्य को एक कल्याणकारी संस्था मानते हैं और व्यक्ति को अधिकाधिक स्वतन्त्रता प्रदान करने के लिए राज्य के कार्यक्षेत्र को व्यापक करना चाहते हैंi समाजवाद के अनुसार व्यक्तिवादी पुलिस राज्य समाज की पूरी-पूरी भलाई नहीं कर सकता और इस पुलिस राज्य में 90 प्रतिशत जनता पूँजीवादी शोषण से पिसकर अपने प्राण दे देगीi ऐसी स्थिति में गरीबों और मजदूरों के हित में राज्य के द्वारा आर्थिक क्षेत्र में हस्तक्षेप किया जाना चाहिएi

इस प्रकार समाजवाद व्यक्तिवाद के विरुद्ध एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा वैयक्तिक हित के स्थान पर सामूहिक और प्रतिस्पर्द्धा के स्थान पर सहयोग को प्रतिष्ठित करके, उत्पादन के साधनों पर सामाजिक नियन्त्रण की पद्धति से आर्थिक समानता स्थापित करने का प्रयत्न किया जाता हैi

4.1.6. समाजवाद का वर्गीकरण

समाजवाद को चिन्तन पद्धति के आधार पर निम्नलिखित तरीके से वर्गीकृत किया जा सकता है-

समाजवाद

कल्पनावादी समाजवाद	**वैज्ञानिक समाजवाद**	**विकासवादी समाजवाद**
(Utopian Socialism)	(Scientific Socialism)	(Evolutionary socialism)

1. संशोधनवाद (Revisionism)	2. फेबियन समाजवाद (Fabian Socialism)	3. समष्टिवाद (Collectivism)
4. श्रम संघवाद (Syndicalism)	5. श्रेणी समाजवाद (Guild Socialism)	6. लोकतंत्रीय समाजवाद (Democratic Socialism)

4.**1.7**. **कल्पनावादी समाजवाद**

समाजवादी विचार बहुत पुराना है**i** हम इसके चिह्न धार्मिक ग्रन्थों में ढूँढ़ सकते हैं**i** जहां सामाजिक न्याय के आदर्श निर्धारित किये गये हैं**i** इस प्रकार के विचारों का विस्तृत उल्लेख प्लेटो के 'रिपब्लिक' में देखा जा सकता है**i** जहां उसने आदर्श राज्य के संरक्षकों के लिए जीवन के समुदायवादी ढंग को मान्यता दी है**i** 'ओल्ड टेस्टामेण्ट' तथा 'न्यू टेस्टामेंट' में भी समाजवादी विचारों को देखा जा सकता है**i** इसी प्रकार के विचार मोर की 'यूटोपिया', बेकन की 'न्यू एटलांटिस' तथा कैमपानेला की 'सिटी ऑफ दि सन' में देखे जा सकते हैं**i** तथापि, अट्ठारहवीं शताब्दी में फ्रांस में बड़ी संख्या में समाजवादी रचनाएं प्रकट हुई और क्योंकि ऐसे समाजवादियों ने सभी के लिए समानता व सामाजिक न्याय की प्रत्याभूति देने वाले समाज का सुन्दर चित्र परिकल्पित किया, अत: इसको काल्पनिक समाजवाद के उपनाम से जाना गया**i** इस महत्वपूर्ण सन्दर्भ में बेव्यूफ, केबे, सेण्ट साइमन, फोरियर और रॉबर्ट ओवेन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है**i**

कल्पनावादी समाजवादियों का मानना था कि स्वप्नलोकीय समाज में धनवान और निर्धन का भेद मिट जाएगा, सम्पत्ति सबकी साझा होगी और अन्याय का कहीं नामोनिशान नहीं होगा**i**

1789 में फ्रांस में महान क्रान्ति हई जिसका नारा था 'स्वतंत्रता, समानता तथा भाईचारा'**i** उसके बाद 1793 का संविधान बना जिसने इस बात को दोहराया कि प्रकृति तथा कानून के आधार पर सभी लोग समान हैं**i** इन कल्पनावादी समाजवादियों ने सामाजिक अन्याय के यथार्थ पर प्रकाश डाला**i** यद्यपि वे एक-दूसरे से असहमत थे फिर भी उन्होंने ऐसे भावी समाज का चित्र बनाया जिसमें राज्य व्यक्तिगत गतिविधि तथा औद्योगिक व्यवहार दोनों को व्यापक रूप में विनियमित करेगा**i** इसकी मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

4.**1.7.1**. इन विचारकों ने इस आधार सूत्र को माना कि सभी लोग अपनी मानवता के कारण समान प्रतिष्ठा रखते हैं तथा उनके बीच स्वाभाविक अन्तर कुछ भी हो, जहॉ तक उनके अधिकारों व कर्तव्यों का सम्बन्ध है, वे समान हैं**i** स्वप्नलोकीय समाजवाद के सम्पूर्ण साहित्य में यह अनुमान किया गया है कि सभी लोग समानता तथा पारस्परिक प्रेम की स्थिति में रहना चाहते हैं और शोषण, दमन व सभी प्रकार के संघर्ष प्रकृति के कानून के विरुद्ध हैं**i**

4.1.7.2. कल्पनावादी समाजवादियों ने एक ऐसे औद्योगिक समाज की परिकल्पना करने का प्रयास किया जिसमें आर्थिक अवसर की समानता होगी तथा जिसमें कोई व्यक्ति अपने साथियों के परिश्रम पर जीने के योग्य नहीं होगा**i**

4.**1.7.3**. उन्होंने निर्धनता को समाज की सभी बुराइयों का प्रमुख स्रोत तथा निजी सम्पत्ति को निर्धनता का मुख्य कारण माना**i** उन्होंने लोगों की भावात्मक तथा राष्ट्रीय विशेषताओं का व्यापक विश्लेषण किया तथा उन विधियों का यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत किया जिनके द्वारा ये विशेषताएं समाज के वास्तविक जीवन में स्वयं प्रकट होती हैं**i** उनका विश्वास था कि वे जैसा परिवर्तन चाहते हैं उन्हें समाज

के प्रभावशाली सदस्यों के विवेक तथा न्याय की भावना का आवाहन करके प्राप्त किया जा सकता है।

4.1.7.4. कल्पनावादी समाजवादियों ने क्रान्तिकारी आन्दोलन अथवा समाज के क्रान्तिकारी पुनर्निर्माण और प्राथमिक रूप में इन परिवर्तनों को लाने के लिए राजनीतिक कार्यवाही को कोई महत्व नहीं दिया। इसकी उपेक्षा उन्होंने चुनिंदा समितियॉ स्थापित करने का प्रयास किया जिनमें न्याय, दया, तथा बुद्धिमत्ता के सिद्धान्तों का प्रचलन होगा।

4.1.8. वैज्ञानिक समाजवाद

कार्ल मार्क्स व ऐंजिल्स द्वारा जिस समाजवादी विचारधारा का प्रतिपादन किया गया उसे वैज्ञानिक समाजवाद के नाम से जाना जाता है। उन्होंने अपने विचारों में तत्कालीन अर्थव्यवस्था की आलोचना और उसके दोषों का वर्णन ही नहीं किया अपितु उन्होंने अपने 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' (Dialectical Materialism) तथा 'इतिहास की आर्थिक व्याख्या' (Economicinterpretation of History) के सिद्धान्त द्वारा समाज के अब तक के विकास का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया। इसके पश्चात् उन्होंने 'वर्ग संघर्ष' के बाद 'सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतंत्र' और उसके बाद 'वर्गविहीन समाज की स्थापना' के आदर्श का प्रतिपादन किया।

कार्ल मार्क्स ने 'कम्युनिस्ट मैनीफेस्टो' तथा 'दास कैपिटल' में अपनी समाजवादी विचारधारा को वैज्ञानिक रूप ही प्रदान नहीं किया, वरन् समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के उद्देश्य से उसने 'विश्व के मजदूरों एक हो जाओ, का नारा लगाकर श्रमिक वर्ग की क्रान्ति का आह्वान किया।' उन्होंने सन् 1834 में श्रमिक वर्ग को संगठित करने की दृष्टि से 'प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय' की स्थापना में भी अपना योग दिया। समाजवादी समाज की स्थापना के साधन के रूप में मार्क्स ने श्रमिक क्रान्ति का प्रतिपादन किया इसलिए उसके दर्शन को क्रान्तिकारी समाजवाद (Revolutionary Socialism) भी कहा जाता है।

4.**1.9**. **विकासवादी समाजवाद**

कार्ल मार्क्स ने पूँजीवादी व्यवस्था में परिवर्तन करके समाजवाद लाने के साधन के रूप में मुख्यत: क्रान्ति का ही प्रतिपादन किया है यद्यपि उसने इस सम्भावना से बिल्कुल इन्कार नहीं किया है कि यह परिवर्तन किन्हीं परिस्थितियों में देशों में लोकतान्त्रिक पद्धति से भी हो सकता है। मार्क्स की विचारधारा ने विश्व के अनेक देशों को अपनी ओर आकर्षित किया तथा कुछ देश इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए क्रान्ति के मार्ग पर भी अग्रसर हुए। परन्तु इंग्लैण्ड व अमेरिका जैसे देश जिनकी आस्था लोकतांत्रिक व्यवस्था में पूरी तरह से थी, उन्होंने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए क्रमिक विकास का मार्ग अपनाया। अत: इन देशों में समाजवाद के जिस रूप को अपनाया गया, उसे विकासवादी समाजवाद कहा जाता है। यद्यपि इस प्रकार के समाजवाद के – समष्टिवाद, फेबियनवाद, संशोधनवाद तथा लोकतान्त्रिक समाजवाद आदि अनेक रूप हैं। इस प्रकार के समाजवाद के प्रतिपादनों में इंग्लैण्ड के सिडनी व वेट्रिस वेब, जार्ज बर्नार्ड शॉ, प्रो. ग्राहम वालास, ऐनी बेसेन्ट, आर.एच. टॉनी, रैम्जे मैकडानल्ड, लार्ड एटली, हेराल्ड लास्की, जी.डी.एच. कोल, अमेरिका के नार्मन थॉमस तथा भारत में आचार्य नरेन्द्रदेव, जयप्रकाश नारायण एवं जवाहरलाल नेहरू आदि हुए हैं।

4.1.9.1. **संशोधनवाद-** कार्ल मार्क्स द्वारा वर्ग-संघर्ष व हिंसक क्रान्ति पर आधारित साम्यवादी विचारधारा अपने अत्यन्त उग्र रूप के कारण अनेक देशों में उपयुक्त सिद्ध नहीं हुई। अत: अनेक देशों के विचारकों द्वारा उसमें संशोधन किये गये। मार्क्सवाद में संशोधन करने के लिए जर्मनी में जिस विचारधारा का प्रतिपादन किया गया, उसे संशोधनवाद की संज्ञा दी जाती है। इसका सर्वश्रेष्ठ व्याख्याकार जर्मनी का

एडवर्ड बर्नस्टीन है**i** जिसकी पुस्तक 'Evolutionary Socialism' ने इसे विकासवादी समाजवाद का अन्य नाम भी प्रदान किया**i** इस प्रवृत्ति का प्रारम्भ फर्डिनेंड लासाल, बेवल, लायबनेश्ट तथा जर्मनी के सामाजिक प्रजातान्त्रिक आन्दोलन की अन्य विभूतियों के विचारों में देखा जा सकता है**i**

यद्यपि संशोधनवादी तथा कट्टर मार्क्सवादी दोनों ने समाजवाद को मुख्य रूप से एक सिद्धान्त तथा श्रमिक वर्ग के लिए एक कार्यक्रम माना और ऐसी नीति खोजने का प्रयास किया जो श्रमिकों के भौतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक आधार लाने में उनका सर्वोत्तम हित साधन करेगी तथा उनकी राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ बनाएगी**i** परन्तु दोनों के बीच मुख्य रूप से मजदूरों की वर्तमान आर्थिक स्थिति, उनकी स्थिति में परिवर्तन की दिशा में उन्मुख प्रवृत्तियां तथा उसकी विधियों के सन्दर्भ में परस्पर विरोधी विचारों के कारण विवाद उत्पन्न हुआ**i**

बर्नस्टाइन ने दावा किया कि वह मार्क्सवाद के सार-तत्व को अस्वीकार किये बिना उसके उन अंशों में संशोधन करना चाहता है जो पुराने पड़ चुके हैं, अवैज्ञानिक हैं तथा जिनका अभिप्राय स्पष्ट नहीं है**i** बर्नस्टाइन ने यह तर्क दिया कि चिरसम्मत मार्क्सवाद के अनुसार पूँजीवाद के विकास के साथ-साथ समाज परस्पर दो विरोधी वर्गों में बँट जाता है- एक ओर निर्धन सर्वहारा और भी निर्धन हो जाते हैं और उनकी संख्या बढती चली जाती है, दूसरी ओर धनवान पूँजीपति और भी धनवान हो जाते हैं और उनकी संख्या कम होती जाती है परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में बर्नस्टाइन ने विस्तृत आंकड़े प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि जहॉ तक आय और सम्पत्ति के वितरण का सम्बन्ध है, समाज में विभेदीकरण बढ़ता जा रहा है, ध्रुवीकरण का कोई संकेत नहीं है अर्थात् समाज इस दृष्टि से बहुत सारी श्रेणियों में बँटता जा रहा है**i** बर्नस्टाइन ने विशेष रूप से तीन परिवर्तनों की ओर ध्यान दिलाया-

(क) बहुत सारे क्षेत्र बड़े-बड़े उद्योगों में केन्द्रित नहीं हुए, बल्कि छोटे-छोटे उत्पादन केन्द्रों में फैले हुए हैं**i** सेवा व्यवसायों, व्यापार और कृषि के क्षेत्र में संकेन्द्रण की प्रवृत्ति दिखायी नहीं देती**i**

(ख) वर्ग-संघर्ष अब उतना तीव्र नहीं रहा है क्योंकि श्रमिक वर्ग की हालत बिगड़ी नहीं अपितु पहले से सुधर गयी है**i**

(ग) मध्य-वर्ग का आकार संकुचित नहीं हुआ बल्कि और भी विस्तृत हो गया है**i** मध्य वर्ग का उदय बड़े व्यापार की ताकत को रोकने की भूमिका निभा रहा है**i**

बर्नस्टाइन ने तर्क दिया कि ऐसी हालत में श्रमिक वर्ग को डटकर कदम बढ़ाने का रास्ता अपनाना चाहिए, 'एकदम टूट पड़ने' का नहीं**i** राजनीतिक शक्ति पर श्रमिक वर्ग की विजय का अर्थ होगा, उसके राजनीतिक और आर्थिक आधारों का विस्तार, जो राज्य को धीरे-धीरे लोकतंत्र की दिशा में रूपान्तरित कर देगा**i** इस प्रकार बर्नस्टाइन ने 'बलपूर्वक क्रान्ति' और 'सर्वहारा के अधिनायकतंत्र' से सम्बन्धित विचारों का खंडन करते हुए सामाजिक लोकतंत्र के सिद्धान्त का समर्थन किया**i**

4.**1.9.2**. **फेबियन समाजवाद-** विश्व के अनेक देशों में मार्क्सवादी विचारधारा लोकप्रिय हुई**i** मार्क्स ने अपने जीवन का बड़ा भाग इंग्लैण्ड में ही बिताया था**i** परन्तु मार्क्सवादी विचारधारा कभी भी वहॉ लोकप्रिय न हो सकी**i** इसका मुख्य कारण मार्क्स की विचारधारा में वर्ग-संघर्ष को प्रमुखता और साधन के रूप में हिंसात्मक क्रान्ति का प्रतिपादन था, जिसे इंग्लैण्डवासियों द्वारा अपने संविधानवादी स्वभाव के कारण कभी स्वीकार नहीं किया जा सका**i** मार्क्सवाद वस्तुत: एक क्रान्तिकारी विचारधारा है जबकि इंग्लैण्डवासी स्वभावत: हिंसात्मक क्रान्ति की अपेक्षा संवैधानिक विकास की पद्धति में विश्वास करते हैं**i** फेबियनवाद वस्तुत: समाजवाद का वह रूप है जो इंग्लैण्डवासियों के स्वभाव की विकासवादी और क्रमिक सुधारवादी पद्धति के अनुरूप विकसित हुआ है**i**

फेबियनवाद के जन्म का इतिहास 'फेबियन सोसायटी' के साथ जुड़ा है। मूलत: यह इंग्लैण्ड के दस-बारह व्यक्तियों का एक दल था जो अमेरिकी प्रोफेसर टॉमस डेविडसन की छत्रछाया में नीतिशास्त्र का अध्ययन करने के लिए एकत्र हुए थे। कुछ समय बाद इन लोगों ने अनुभव किया कि विधि-निर्माण के द्वारा समाज-सुधार सकारात्मक रूप से किया जा सकता है। अत: उन्होंने डेविडसन का शिष्यत्व छोड़कर 1884 ई. में 'फेबियन सोसायटी' का गठन किया। इसका मूल-मंत्र यह था कि 'उपयुक्त क्षण' के लिए धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करनी चाहिए। परन्तु वह क्षण उपस्थित होने पर एकदम पूरे वेग के साथ प्रहार करना चाहिए अन्यथा सारी प्रतीक्षा व्यर्थ हो जाएगी।

फेबियनवाद मुख्यत: मध्यवर्गीय आन्दोलन था जिसमें बुद्धिजीवियों का बोलबाला था। फेबियनवाद की परम्परा में सिडनी वेब तथा ब्रीट्रिस वेब के अलावा बर्नाड शॉ, सिडनी ओलीवियर और ग्राहम वैलास के नाम उल्लेखनीय हैं।

फेबियनवादियों ने पूँजीपतियों के स्थान पर जमींदारों को अपने प्रहार का लक्ष्य बनाया जो इंग्लैण्ड की विशिष्ट आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप था। टी.एच. ग्रीन (1836-82) ने भी ब्रिटिश भूमि व्यवस्था की कड़ी आलोचना की थी। हर्बर्ट स्पेन्सर (1820-1903) ने भी 'सोशल स्टेटिक्स' के अन्तर्गत भूमि के निजी स्वामित्व की निन्दा की थी। ब्रिटिश विचारकों ने सामाजिक अन्याय की जड़ें भूमि के स्वामित्व में देखी थीं, पूँजीवाद में नहीं। इसी से फेबियनवाद ने प्रेरणा प्राप्त की। फेबियनवाद ने पूँजी की जगह भूमि को सारे विवाद की जड़ माना। उसकी प्रेरणा का स्रोत मार्क्स नहीं बल्कि जॉन स्टुअर्ट मिल हैं। उन्होंने क्रान्ति की राह नहीं अपनाई अपितु क्रमिक विकास की राह अपनाई ताकि वर्ग-संघर्ष का रास्ता अपनाए बगैर समाजवाद की स्थापना की जा सके।

4.1.9.3. समष्टिवाद- फेबियनवाद ने भूमि और उद्योग दोनों क्षेत्रों में समाज-जन्य मूल्यों के दर्शन किये। इसी आधार पर समष्टिवाद का प्रतिपादन किया गया। चूँकि समस्त मूल्य का जन्मदाता समाज है, इसलिए उस पर समाज का ही नियन्त्रण होना चाहिए। दूसरे शब्दों में- उत्पादन के साधनों पर समुदाय का स्वामित्व होना चाहिए और सार्वजनिक सेवाओं का प्रशासन समुदाय के हाथ में रहना चाहिए। रेलमार्ग, खानें, सड़कें और नहरें समुदाय के अधीन रहना चाहिए, जमींदारों या पूँजीपतियों के हाथों में नहीं।

परन्तु समुदाय इस विशाल कार्य को अपने आप सँभालने में समर्थ नहीं, इसलिए उसका कोई ऐसा प्रतिनिधि संगठन होना चाहिए जिसमें सबकी इच्छा को अभिव्यक्ति मिले जो इसी इच्छा के निर्देशों के अनुसार काम करें। समष्टिवादी समाजवाद की दृष्टि में यह संगठन 'राज्य' के अलावा कोई नहीं हो सकता। समष्टिवादी चिन्तन का आदर्श लोकतंत्रीय राज्य है जिसमें सत्ता पूरे समुदाय के प्रतिनिधियों के हाथों में रहेगी और उनकी सहायता के लिए विशेषज्ञ प्रशासक नियुक्त किये जायेंगे। ऐसा राज्य समाज के सारे संसाधनों का उपयोग समाज के सर्वोत्तम हित में करेगा। समुदाय में मजदूरों का बहुमत रहेगा। इसलिए राज्य स्वयं मजदूरों का प्रतिनिधित्व करेगा। ऐसी व्यवस्था मजदूर को पूँजीपतियों की मनमानी से मुक्त कराके ऐसी हालत में ला देगी कि जिस अतिरिक्त मूल्य को अब तक पूँजीपति हड़प जाता था, वह फिर से मजदूर के हाथों में पहँच जाएगा और उसे पूरे समाज के हित में लगाया जा सकेगा। अत: जहाँ व्यक्तिवाद राज्य को सामाजिक प्रगति में बाधक मानता था, वहाँ समष्टिवाद ने उसे सामाजिक प्रगति का साधन स्वीकार किया।

4.1.9.4. श्रम संघवाद- फ्रांस में समाजवादी आन्दोलन श्रम संघवाद के रूप में विकसित हुआ। मूलत: यह फ्रांसीसी श्रम-आन्दोलन की एक धारा थी जिसके अनुसार श्रम-संगठन और उनके संघ भावी समाज-व्यवस्था के केन्द्र होंगे। इसकी यह मांग थी कि श्रम संगठनों को राजनीतिक दलों से सर्वथा स्वतन्त्र रहना

चाहिए**i** संक्षेप में (1) श्रमसंघवाद ने मार्क्स के वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए यह तर्क दिया कि पूँजीवाद के विरुद्ध वर्ग-संघर्ष का संचालन औद्योगिक कार्यवाई के क्षेत्र में होना चाहिए, राजनीति के क्षेत्र में नहीं**i** (2) इसके अनुसार, समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के लिए उत्पादन के साधनों तथा उद्योगों पर कामगारों व उनके संगठनों का नियन्त्रण स्थापित करना चाहिए जिसके लिए 'आम हड़ताल' का तरीका उपयुक्त होगा**i** जॉर्ज सॉरेल (1847-1922) ने इसे हिंसा का तरीका बताया**i** उसने तर्क दिया कि वर्तमान संस्थाएं जितनी क्रूरता से बल का प्रयोग करती हैं सर्वहारा की हिंसा उतनी क्रूर नहीं हो सकती क्योंकि वे राज्य-शक्ति का प्रयोग स्वार्थपूर्ति के लिए नहीं करेंगे**i** (3) इसने राज्य–संस्था या राजनीतिक संगठन के उन्मूलन का प्रचार किया जिससे यह अराजकतावाद के साथ जुड़ गया और (4) इसने ऐसी समाज-व्यवस्था का चित्र खींचा जिसमें सम्पूर्ण शक्ति उत्पादनकर्ता को प्राप्त होगी, इसमें श्रमिक और औद्योगिक संगठन समाज के आर्थिक ढॉचे की भूमिका को सँभालेंगे**i**

4.1.9.5. श्रेणी-समाजवाद

ब्रिटेन में बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दशकों में समाजवादी आन्दोलन की एक और धारा श्रेणी समाजवाद के रूप में सामने आयी**i** इसकी उत्पत्ति ब्रिटिश श्रम-आन्दोलन की एक प्रवृत्ति के रूप में हुई थी जिसे 1916 से 1926 तक बहुत बड़ी विचारधारात्मक सफलता मिली**i** इसने समाजवाद के उत्तम गुणों को पुरानी श्रेणी व्यवस्था के साथ मिलाने की कोशिश की**i** पुरानी श्रेणियॉ औद्योगीकरण से पहले के दौर में मुख्यत: निपुण कामगारों और शिल्पियों के स्थायी स्वैच्छिक संघ थे जो सामाजिक आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक क्षेत्रों में अपने-अपने सदस्यों के सामान्य हितों की देख-रेख करते थे**i** संक्षेप में- (1) श्रेणी समाजवाद ने वर्ग-संघर्ष के मार्क्सवादी विचार को स्वीकार कर लिया**i** (2) इसने मजदूरी व्यवस्था के उन्मूलन की मांग करते हुए उद्योगों पर कामगार श्रेणियों के नियन्त्रण की वकालत की**i** (3) इसने कामगार के साथ-साथ उपभोक्ता के महत्व को रेखांकित करते हुए फ्रांसीसी श्रम संघवाद में संशोधन की प्रेरणा दी और (4) इसने पुरानी राज्य-व्यवस्था को शोषण का साधन मानते हुए राज्य शक्ति का अन्त करना चाहा**i** नागरिक प्रशासन को चलाने के लिए इसने नए संगठन के निर्माण का सुझाव दिया**i**

श्रेणी समाजवाद ने न केवल साम्यवाद का विरोध किया अपितु समष्टिवाद के सभी रूपों की आलोचना की**i** उसने फ्रांसीसी श्रमसंघवाद की उस शाखा का साथ दिया जिसमें कामगारों और उपभोक्ताओं के स्वतन्त्र आर्थिक संगठन बनाकर राज्य की शक्ति को सन्तुलित करने पर बल दिया जाता था**i**

4.**1.9.6**. **लोकतन्त्रीय समाजवाद** – लोकतंत्रीय समाजवाद की उत्पत्ति समाजवाद से हुई है**i** प्रारम्भिक अवस्था में फेबियनवाद से इसकी उत्पत्ति हुई**i** इसमें सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्तर पर समानता, स्वतन्त्रता, न्याय की स्थापना करते हुए राजनीतिक सत्ता के केन्द्रीयकरण के स्थान पर विकेन्द्रित व्यवस्था पर बल दिया जाता है**i** प्रजातान्त्रिक समाजवाद में आर्थिक समाजवाद की स्थापना का प्रयास किया जाता है**i** इसमें पूँजीवादी व्यवस्था को अस्वीकार करके उसके स्थान पर आर्थिक मामलों में लघु कुटीर उद्योगों के माध्यम से संयुक्त पूँजी का समन्वयकारी दृष्टिकोण अपनाया गया है**i** यह लोकतंत्र और समाजवाद दोनों का मिश्रण है**i** राज्य को अधिक से अधिक जनता का कल्याण करना चाहिए, इसीलिए लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं की स्थापना व्यक्ति के विकास, कल्याण, स्वतन्त्रता के लिए ही होनी चाहिए**i** आर्थिक समानता स्थापित करते हुए राजनीतिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण इसका मुख्य लक्षण है**i**

4.1.10. पाठसार/सारांश

समाजवाद का विचार बहुत पुराना है परन्तु एक व्यवस्थित विचारधारा और आन्दोलन के रूप में इसका उदय, औद्योगिक क्रान्ति के बाद पूँजीवाद के बढ़ते हुए अत्याचार का सामना करने के उद्देश्य से हुआi मार्क्स ने अपने पूर्ववर्ती समाजवाद को स्वप्नदर्शी मानते हुए स्वयं इसे वैज्ञानिक आधार पर स्थापित करने का दावा कियाi परन्तु मार्क्सवाद के अन्दर समाजवाद का एक विशेष अर्थ है : यह ऐसी व्यवस्था है जब मजदूर वर्ग क्रान्ति करके पूँजीवाद को धराशायी कर देता है और उत्पादन के प्रमुख साधनों पर सर्वहारा का स्वामित्व और नियन्त्रण स्थापित करके पूँजीवाद के अन्तिम अवशेषों को मिटाया जाता है, प्रतिक्रान्ति को कुचला जाता है और उत्पादन की शक्तियों का विकास किया जाता है ताकि साम्यवाद अर्थात् वर्गहीन और राज्यहीन समाज-व्यवस्था के उदय का रास्ता तैयार किया जा सकेi इस दृष्टिकोण के अनुसार समाजवाद, पूँजीवाद के पतन के बाद और साम्यवाद के उदय से पहले की अस्थायी अवस्था हैi

समाजवाद की अनेक शाखाएं और उपशाखाएं इसके लक्ष्य की परिभाषा अपने-अपने ढंग से देती हैंi मुख्यत: समाजवाद समानता का समर्थन करता है- विशेषत: यह सब मनुष्यों के लिए अवसर की समानता की मॉंग करता है और ऐसे तर्कशून्य विशेषाधिकार को समाप्त कर देना चाहता है जो व्यक्ति की अपनी योग्यता और परिश्रम पर आधारित न होi चूँकि औद्योगिक युग में व्यक्ति को प्राप्त होने वाले अवसर, उत्पादन के प्रमुख साधनों के स्वामित्व की प्रणाली पर आश्रित हैं, इसलिए समाजवाद इन साधनों के निजी स्वामित्व को समाप्त करके उन पर सामान्य स्वामित्व स्थापित करना चाहता हैi समाजवाद का ध्येय आय, सम्पदा और सम्मान के क्षेत्र में अक्षरश: समानता स्थापित कर देना नहीं है क्योंकि उससे सारे प्रोत्साहन (incentives) नष्ट हो जायेंगे और प्रोत्साहन के अभाव में लोग समाज को अपना सर्वोत्तम योगदान देने को तत्पर नहीं होंगेi

4.1.11. अभ्यास प्रश्न

4.1.11.1. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. किसने कहा था कि 'समाजवाद उस टोप के समान है, जिसका आकार बिगड़ चुका है क्योंकि हर कोई उसे धारण करना चाहता हैi'
   (क) कार्ल मार्क्स (ख) सी.ई.एम. जोड
   (ग) बर्नस्टाइन (घ) लेनिन
2. 'दास कैपिटल' किसकी रचना है?
   (क) लेनिन (ख) स्टालिन
   (ग) कार्ल मार्क्स (घ) माओ
3. इनमें से कौन कल्पनावादी समाजवादी नहीं है?
   (क) सर टॉमस मूर (ख) सेण्ट साइमन
   (ग) चार्ल्स फूरियर (घ) कार्ल मार्क्स
4. फेबियनवाद विकसित हुआ?
   (क) इंग्लैण्ड में (ख) जर्मनी में
   (ग) फ्रांस में (घ) अमेरिका में

5. प्रमुख जर्मन संशोधनवादी विचारक हैं-
(क) साइमन (ख) फ्रांसिस बेकन
(ग) एडवर्ड बर्नस्टाईन (घ) एंगेल्स

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. साम्यवाद तथा समष्टिवाद की तुलना कीजिए
2. बर्नस्टाईन द्वारा मार्क्सवाद में किये गये संशोधनों पर प्रकाश डालिए
3. फेबियनवाद व मार्क्सवाद के अन्तर पर प्रकाश डालिए
4. समाजवाद का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसकी कोई पॉच परिभाषाएं दीजिए
5. समाजवाद के प्रमुख सिद्धान्त क्या है?

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न-

1. 'समाजवाद एक ऐसा आर्थिक और राजनीतिक दर्शन है जिसका जन्म पूँजीवाद के विरोध में हुआ है' व्याख्या सहित समझाइये और क्रान्तिकारी तथा विकासवादी समाज की धाराओं का अन्तर स्पष्ट कीजिए
2. समाजवाद क्या है? समाजवाद के पक्ष तथा विपक्ष में दी जाने वाली युक्तियों का उल्लेख कीजिए
3. उद्देश्य, साधनों व राज्य की स्वतन्त्रता की दृष्टि से व्यक्तिवाद व समाजवाद की तुलना कीजिए
4. मार्क्सवाद असामाजिक हो गया है, इस कथन से आप कहॉ तक सहमत हैं? आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए
5. श्रेणी समाजवाद के आधारभूत सिद्धान्तों की विवेचना कीजिए

4.1.12. कठिन शब्दावली

4.1.12.1. **भौतिकवाद/ जड़वाद (Materialism)**– वह दार्शनिक सिद्धान्त जो भौतिक जगत या पदार्थ को सृष्टि का मूल-तत्व मानता है और विचार-तत्व या चेतना को गौण मानते हुए इसे भौतिक तत्व की प्रतिच्छाया की श्रेणी में रखता है दूसरे शब्दों में, 'इस सिद्धान्त के अनुसार स्थूल जगत ही यथार्थ जगत है यह दृष्टिकोण प्रत्ययवाद या चेतनवाद का विपरीत रूप प्रस्तुत करता है'

4.1.12.2. **श्रेणी समाजवाद (Grild Socialism)** – समाजवाद का एक रूप जिसमें सहकारिता के सिद्धान्त का विशेष महत्व है इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन के प्रमुख साधनों पर राज्य का स्वामित्व रहता है पर साथ ही उनका प्रशासन विभिन्न श्रेणियों अर्थात् कामगार संगठनों के हाथों में रहता है इस व्यस्था का उद्भव इंग्लैण्ड में 1900 के आस-पास हुआ इसका प्रमुख उन्नायक जी.डी.एच. कोल (1889-1959) था

4.1.12.3. **राज्य का वर्ग-सिद्धान्त (Class Theory of the State)**– किसी भी राज्य की शक्ति वहॉ के प्रभुत्वशाली वर्ग (Dominant Class) की शक्ति को व्यक्त करती है राज्य की उत्पत्ति, स्वरूप और कार्यों के बारे में मार्क्सवादी सिद्धान्त इसी मान्यता पर आधारित हैं इसके अनुसार राज्य की उत्पत्ति निजी सम्पत्ति के उद्भव का परिणाम थी क्योंकि उसने समाज को धनवान और निर्धन वर्गों में बॉट दिया था राज्य सदैव धनवान वर्ग के हाथों की कठपुतली रहा है और इसकी शक्ति का प्रयोग निर्धन वर्ग के शोषण के लिए किया गया है समाजवादी क्रान्ति के बाद यह क्रम उलट जायेगा क्योंकि तब राज्य की शक्ति का प्रयोग धनवान वर्ग के दमन के

लिए किया जाएगाi इसके परिणामस्वरूप वर्ग-भेद मिट जाएगा और वर्गहीन समाज में राज्य भी लुप्त हो जाएगाi

4.1.13 सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. जौहरी, जगदीशचन्द्र (1992) - आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त, नई दिल्ली, स्टर्लिंग पब्लिशर्स,iSBN 81-2071-362, पृ.सं. 568
2. गाबा, ओ.पी. (2001), राजनीति चिन्तन की रूपरेखा, नई दिल्ली, के.एल. मलिक एण्ड संस, आई.एस.बी.एन. 81-7198-156-9, पृ. सं. 52
3. कोली, सी.एम. (2001) – आधुनिक राजनीतिक विचारधाराएं, जयपुर, साहित्यागार, पृ.सं. 60
4. नारायण इकबाल (2001), आधुनिक राजनीतिक विचारधाराएं, जयपुर, ग्रन्थ विकास
5. आशीर्वादम एडी (2002) – पाश्चात्य विज्ञान, नई दिल्ली, एस चन्द एण्ड कम्पनी, आई.एस.बी.एन. 81-219-0896-5, पृ.सं. 771
6. वर्मा विश्वनाथ प्रसाद (2000) – पाश्चात्य राजनीतिक विचारधारा का इतिहास, जयपुर, कॉलेज बुक डिपो, आई.एस.बी.एन. 81-85788-715, पृ.सं. 450
7. सिंघल एस.सी (2006)- राजनीतिक विचारधाराएं, आगरा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पब्लिकेशन, आई.एस.बी.एन. 81-89770-12-8, पृ.सं. 60
8. Ray B.N. (2006)- Political Theory, Delhi, Authors Press,iSBN 81-7273-2937 Page No. 510
9. Mills, C.W. (1956), The Power Elite, Oxford University Press, Oxford.
10. Marx, K. (1975), The Communist Manifesto, Progress Publications Moscow.
11. Mosca, G. (1939), The Ruling Class, McGraw Hill, New York
12. Reimer, N. (1962), The Revival of Democratic Theory, Appleton Century Cropts, New York.
13. https:L//www.merrian-webster.com>
14. https://www.thebalance.com>socialism
15. https://www.foxnews.com>gutf

इकाई-2 सेन्ट साइमन के राजनीतिक विचार

इकाई की रूपरेखा

4.2.1. उद्देश्य कथन
4.2.2. प्रस्तावना/सेन्ट साइमन का परिचय
4.2.3. ऐतिहासिक विकास की यात्रा
4.2.4. समाज-व्यवस्था का पुनर्गठन
4.2.5. मानव-श्रम के सम्बन्ध में विचार
4.2.6. आरम्भिक समाजवाद की रूपरेखा
4.2.7. सम्पत्ति सम्बन्धी विचार
4.2.8. धर्म सम्बन्धी विचार
4.2.9. परिवार सम्बन्धी विचार
4.2.10. मूल्यांकन/राजनीतिक चिन्तन को साइमन की देन
4.2.11. प्रश्नोत्तर
4.2.12. संदर्भ-ग्रन्थ-सूची

4.2.1. उद्देश्य कथन

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

1. समाजवाद की कल्पनावादी विचारधारा से परिचित हो सकेंगेi
2. सेण्ट साइमन का परिचय प्राप्त कर सकेंगेi
3. तत्कालीन समाजवाद के स्वरूप से परिचित हो सकेंगेi
4. सेण्ट साइमन द्वारा प्रतिपादित वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगेi
5. सेण्ट साइमन की निजी सम्पत्ति सम्बन्धी अवधारणा को समझ सकेंगेi
6. सेण्ट साइमन द्वारा प्रतिपादित आदर्श समाज की संकल्पना की आज के सन्दर्भ में व्याख्या कर सकेंगेi

4.2.2. प्रस्तावना/परिचय

4.2.2.1. समाजवादी विचार अत्यन्त प्राचीन हैi सर्वप्रथम समाजवादी विचारों का विस्तृत उल्लेख प्लेटो के 'रिपब्लिक' में मिलता है, जहॉं उसने आदर्श राज्य के संरक्षकों के लिए जीवन के समुदायवादी ढंग को मान्यता दी हैi इस प्रकार के कुछ विचार मोर की 'यूटोपिया' बेकन की 'न्यू एटलांटिस' तथा कैम्पानेला के 'सिटी ऑफ दी सन' में देखे जा सकते हैंi अट्ठारहवीं शताब्दी में फ्रांस में बड़ी संख्या में समाजवादी रचनाएं प्रकट हुईi ऐसे सभी समाजवादियों ने सभी के लिए समानता व सामाजिक न्याय की प्रत्याभूति देने वाले समाज का सुन्दर चित्र परिकल्पित कियाi अत: इसको 'काल्पनिक समाजवाद' (Utopian Socialism) के उपनाम से जाना गयाi कार्ल मार्क्स (1818-1883) ने अपने पूर्ववर्ती समाजवाद को स्वप्नदर्शी समाजवाद की संज्ञा दी है क्योंकि यह यथार्थ से एकदम कटा हुआ थाi मार्क्स के पूर्ववर्ती सिद्धान्तकारों ने समाज की तत्कालीन दशा से ऊबकर एक ऐसे स्वप्नलोक की कल्पना की थी जिसमें

धनवान और निर्धन का भेद मिट जाएगा, सम्पत्ति सबकी साझी होगी और अन्याय का कहीं नामोनिशान नहीं होगाi इस दृष्टि से प्लेटो के आदर्श राज्य (ideal State) को समाजवादी राज्य मान सकते हैंi

1789 में फ्रांस में महान क्रान्ति हुई जिसका नारा था- 'स्वतन्त्रता, समानता तथा भाईचारा'i उसके बाद 1793 का संविधान बना, जिसने इस बात को दोहराया कि 'प्रकृति तथा कानून के आधार पर सभी लोग समान हैंi' लेकिन फिर भी असमानता फैली रहीi इन समाजवादी विचारकों ने समाजवादी अन्याय के यथार्थ पर प्रकाश डालाi यद्यपि वे एक-दूसरे से असहमत थे, फिर भी उन्होंने ऐसे भावी समाज का चित्र बनाया जिसमें राज्य 'व्यक्तिगत गतिविधि' तथा 'औद्योगिक व्यवहार' दोनों को वस्तुत: व्यापक रूप में विनियमित करेगाi

4.**2.2.2**. **सेण्ट साइमन का परिचय-**

सेण्ट साइमन (1760-1825) उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ का फ्रांसीसी समाज-दार्शनिक और सुधारक थाi उसके विचार उसके द्वारा लिखे निबन्धों के आधार पर जाने जा सकते हैंi

एक सम्पन्न परिवार में जन्मे सन्त साइमन ने आगे चलकर फ्रांस के सामाजिक बदलाव का न केवल सपना देखा, बल्कि उसके लिए सक्रिय रूप से कार्य भी कियाi अपना धन, पैतृक सम्पत्ति एवं अपना सारा उद्यम उसने अपने उद्देश्य के लिए समर्पित कर दियाi सन्त साइमन का पूरा नाम क्लाउड हेनरी दि रिवेरो, काम्टे दि संत-साइमन (Claude Henri de Rouvroy, Comte de Saint Simon) थाi वह मौलिक विचारक तो नहीं था किन्तु अपनी निष्ठा एवं समर्पण के कारण उसने फ्रांसीसी क्रान्ति को सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया थाi एडम स्मिथ, बेंथम, जेम्स मिल, डेविड रिकार्डो की भॉति वह भी उपयोगितावाद का समर्थक था तथा सुख की प्राप्ति को अपने जीवन का लक्ष्य मानता थाi साइमन का मानना था कि जीवन में अनुशासन और नैतिकता आवश्यक है, उन्हीं से मनुष्यता की पहचान बनती हैi

अपने समय के पूँजीवादी व्यवस्था के विरोधी एवं सक्रिय विचारकों में सन्त-साइमन सर्वाधिक मुखर थाi उसने समाजवादी विचारधारा को आगे बढ़ाने का महत्वपूर्ण कार्य कियाi अपने विचारों पर वह आजीवन अडिग भी रहाi कार्ल मार्क्स तक ने अपने लेखों में फ्रांसीसी समाज की पुनर्रचना के लिए मुक्त भाव से सन्त साइमन के सहयोग की सराहना की हैi अपना समस्त धन उसने अपने विचारों को मान्यता दिलाने तथा उन्हें कार्यरूप देने में खर्च कर दियाi सन्त साइमन के प्रयासों से ही आगे चलकर सहकारी आन्दोलन की नींव रखी जा सकीi

साइमन का प्रारम्भिक लेखन राजनीति एवं विज्ञान से शुरू हुआ था, मगर उसको प्रतिष्ठा मिली उसकी दो पुस्तकों 'ला इंडस्ट्री' तथा 'ला आर्गेनाइजर' में प्रकाशित उसके समाजवादी विचारों के प्रचार के बादi उसका मानना था कि 'राजनीति उत्पादन का विज्ञान हैi' इसकी पूर्ण सफलता इसी में है कि बगैर किसी भेदभाव के, व्यक्ति को उसकी कार्यक्षमता के अनुसार कार्य मिले तथा किये गये कार्य की गुणवत्ता के अनुसार उसका वेतनi उसके विचारों को विद्वानों का समर्थन मिलने लगा जिससे उसकी प्रतिष्ठा तेजी से बढ़ने लगीi

साइमन ने अनेक ग्रन्थों की रचना की, जिनमें 'न्यू क्रिश्चिएनिटी' सबसे प्रसिद्ध हैi समाज विज्ञान के क्षेत्र में वह पहला ऐसा विचार कथा जिसने परम्परागत संस्थाओं और नैतिकता के सन्दर्भ में औद्योगीकरण के क्रान्तिकारी प्रभाव को स्पष्ट अनुभव कियाi उसने समाज के अध्ययन के लिए, प्राकृतिक विज्ञान जैसे विज्ञान (Natural Science) का समर्थन किया जो सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए

तर्कसंगत मार्गदर्शक की भूमिका निभा सकेi साथ ही साइमन ने ऐतिहासिक विकास की यात्रा को सूत्रबद्ध करने का प्रयत्न किया जिसे परवर्ती विकासवादियों ने अपने-अपने ढंग से विकसित कियाi

4.2.3. ऐतिहासिक विकास की यात्रा-

सेण्ट साइमन का विचार था कि प्रत्येक समाज किसी एक संगठन प्रणाली के अन्तर्गत एकता के सूत्र में बँधा रहता हैi इस व्यवस्था (order) को भंग किये बिना समाज प्रगति के पथ पर आगे बढ़ता हैi प्रत्येक प्रणाली अपने निर्माण के समय के लिए उपयुक्त समझी जाती है परन्तु विकास के ऊँचे स्तर पर पहुँचते ही वह पुरानी पड़ जाती हैi प्रत्येक समाज व्यवस्था का निर्माण किसी विशेष विश्वास-प्रणाली की नींव पर होता हैi जब ये विश्वास अपनी साख खो बैठते हैं, तब समाज-व्यवस्था के छिन्न-भिन्न होने का खतरा उत्पन्न हो जाता हैi ऐसी हालत में समाज-व्यवस्था को बनाए रखने के लिए एक नयी वैकल्पिक विश्वास-प्रणाली जरूरी हो जाती हैi इस सिद्धान्त के आधार पर सेण्ट साइमन ने पश्चिमी सभ्यता के इतिहास की विभिन्न अवस्थाओं की पहचान की हैi

पहली अवस्था प्राचीन यूनान और रोम की सभ्यताओं में देखने को मिलती हैi उनकी विशेषताएँ थी- बहुदेववादी विचारधारा (Polythesticideology), दास-अर्थव्यवस्था (Slave-Economy) और अखंड राजनीतिक शासन (Monolithic Political Rule)i ग्यारहवीं शताब्दी तक आते-आते ये सब बातें पुरानी पड़ गयींi तत्पश्चात् ऐतिहासिक विकास की दूसरी अवस्था शुरू हुईi इसकी विशेषताएँ थी- सामंतवाद (Fadalism) और कैथोलिक धर्म की प्रधानता (Catholicism)i यह मध्ययुगीन सभ्यता थी जो प्राचीन सभ्यता की तुलना में कई तरह से श्रेष्ठ थीi इसने तर्कसंगत धर्मशास्त्र (Rational Theology) को बढ़ावा दिया; दासता की कुप्रथा का मानवीयकरण किया, लौकिक शक्ति को आध्यात्मिक शक्ति से पृथक किया और उत्पादन के उन्नत तरीके विकसित कियेi

परन्तु पन्द्रहवीं शताब्दी से यूरोप में फिर संक्रान्ति कालीन संकट (Transitional Crisis) की शुरूआत हुई क्योंकि तब एक नई प्रणाली अस्तित्व में आ गई जो उद्योग और विज्ञान की नींव पर खड़ी की गयी थीi सेण्ट साइमन ने तर्क दिया कि 'आधुनिक प्रत्यक्षवादी विज्ञान' (Modern Positive Science) ही सामंतवाद के बाद की औद्योगिक व्यवस्था के लिए उपयुक्त 'विश्वास प्रणाली' जुटा सकता हैi सेण्ट साइमन ने दावा किया कि यह 'परिवर्तन अनिवार्य और अवश्यम्भावी है : हमारा उद्देश्य केवल इस अनिवार्य परिवर्तन को बढ़ावा देना और उसकी व्याख्या करना हैi' यह बात महत्वपूर्ण है कि सेण्ट साइमन के बाद ऑगस्ट कॉम्टे और कार्ल मार्क्स दोनों ने सामाजिक परिवर्तन के बारे में यही दृष्टिकोण अपनायाi

4.2.4. समाज-व्यवस्था का पुनर्गठन-

सेण्ट साइमन ने तर्क दिया कि नया प्रत्यक्षवादी दर्शन (Positive Philosophy) समस्त विज्ञानों की आधारशिला पर नई समाज व्यवस्था का निर्माण करेगाi इसके लिए वर्तमान प्राकृतिक विज्ञानों के अलावा एक नए सामाजिक विज्ञान का सूत्रपात जरूरी होगा जिसे साइमन ने 'सामाजिक जीव विज्ञान' की संज्ञा दीi उनका मानना था कि सामाजिक जीवन को मनुष्य के प्राकृतिक जीवन के विकास की अवस्था मानकर चलना चाहिएi उसने दावा किया कि यह नया सामाजिक विज्ञान भावी समाज के लिए नैतिक नियमों और नीतियों के निर्माण में मार्गदर्शन प्रदान करेगाi

साइमन ने समाज-व्यवस्था के पुनर्गठन की भी अत्यन्त रोचक योजना का प्रतिपादन किया था,

जिसमें उसने वैज्ञानिकों व कलाकारों को सर्वोच्च महत्व प्रदान किये जाने का समर्थन किया था**i** इस प्रसंग में उसका सुझाव एक तीन सदनों की संसद की स्थापना का था, जिसमें उसने वैज्ञानिकों व कलाकारों को सर्वोच्च महत्व प्रदान किये जाने का समर्थन किया था**i**

इस संकल्पना में पहला सदन 'आविष्कारक सदन' था जिसके सदस्य अभियन्ता, कवि, चित्रकार, मूर्तिकार व संगीतज्ञ होंगे**i** दूसरा सदन 'परीक्षा सदन' होगा जिसके सदस्य भौतिकशास्त्री व गणितज्ञ होंगे तथा तीसरा सदन 'शासन सदन' होगा जिसके सदस्य उद्योगपति होंगे**i**

4.**2.5**. **मानव श्रम के सन्दर्भ में विचार**

सन्त साइमन ने श्रम को विकास का एक महत्वपूर्ण उपकरण माना है**i** उसके अनुसार जीवन में श्रम विकास की अनिवार्यता है**i** उसका मानना था कि हरेक व्यक्ति कम से कम इतना कार्य करे जिससे वह अपनी जीविका का निर्वाह कर सके**i** श्रम के प्रति साइमन की निष्ठा केवल उपदेश मात्र नहीं थी**i** अपितु उसने स्वयं भी अपनी आजीविका के लिए श्रम को अपनाया था**i** साठ वर्ष से ऊपर की अवस्था में भी नियमित लेखन और प्रतिदिन आठ-नौ घण्टे परिश्रम करना, यह साइमन की अपने विचारों के प्रति सच्ची प्रतिबद्धता को दर्शाता है**i** सामाजिक समानता के समर्थक के रूप में उसकी कामना थी कि समाज के सभी सदस्य ऊँच-नीच की भावना से परे, परस्पर समानता का आचरण करें**i** सभी को अपने विकास के समुचित अवसर प्राप्त होने चाहिए**i** सन्त साइमन का मानना था कि समाज का मुख्य वर्ग उत्पादक वर्ग है जो श्रम करता है, धन अर्जित करता है परन्तु उसके पास कोई विशेष सम्पत्ति नहीं है, न ही उसे समाज में कोई उच्च सम्मानजनक स्थान प्राप्त है**i** दूसरा वर्ग पहले के श्रम पर पलने वाला परजीवी सम्प्रदाय है**i** विडम्बना यह है कि समस्त उत्पादन के संसाधनों पर इसी परजीवी वर्ग का अधिकार है**i**

4.2.6. **आरम्भिक समाजवाद की रूपरेखा-**

सेण्ट साइमन ने 1816-22 तक प्रकाशित लेखों के अन्तर्गत एक नये तरह के समाजवाद का सूत्रपात किया**i** उसने एक तरह के वर्ग-संघर्ष (Class-conflict) का सिद्धान्त रखा, परन्तु यह हिंसात्मक संघर्ष नहीं था**i** उसने जिन दो प्रमुख वर्गों की पहचान की, वे थे : उत्पादक वर्ग (Producers) और परजीवी वर्ग (Parasites)**i** सिर्फ पूँजी के दम पर, बिना कोई श्रम किये व्यवसाय के मुनाफे का अधिकतम हिस्सा हड़प जाने वाले पूँजीपतियों को उसने परजीवी वर्ग माना**i** इसी वर्ग को वह समाज में गरीबी का मूल कारण मानता था**i** 1802 में जिनेवा में हुए एक सम्मेलन के दौरान उसने जोर देकर कहा था कि 'हर व्यक्ति को काम करना चाहिए' (All men ought to work)**i** उसने कहा कि क्या हो अगर फ्रांस में केवल कामरेड ही रहने लग जाएं? फिर खुद ही उत्तर देते हुए उसने आगे कहा था कि तब फ्रांस में अकाल का साम्राज्य होगा**i**

फ्रांसीसी क्रान्ति के दौरान क्रान्तिकारियों का साथ देते हुए साइमन ने कहा कि श्रमिक वर्ग का संघर्ष केवल सम्भ्रान्त वर्ग और पूँजीपतियों के पिट्ठू बुर्जुआ वर्ग से नहीं है, बल्कि उनकी लड़ाई उस परजीवी वर्ग के भी विरुद्ध थी जो दूसरों के श्रम पर मजे उड़ाता है**i** साइमन राजनीतिशास्त्र को उत्पादकता का विज्ञान मानता था**i** उसने तर्क दिया कि कोई क्रान्तिकारी या सुधारात्मक गतिविधि तक तक व्यर्थ होगी जब तक वह सामाजिक परिवर्तन न लाये**i** उसने भावी समाज की कल्पना वर्गहीन समाज (Classless Society) के रूप में नहीं की बल्कि यह विचार रखा कि मध्य वर्ग, वैज्ञानिक और सर्वहारा समान रूप से उत्पादक वर्ग के सदस्य होंगे**i** ये सब सामन्तवाद विरोधी संघर्ष में स्वाभाविक सहयोगी हैं

और भावी औद्योगिक प्रणाली से बराबर लाभान्वित होंगेi उसका विचार था कि साहूकार, इंजीनियर और माल-निर्माता अपनी प्रबन्धकीय कुशलता और बुद्धिमता के बल पर कामगार वर्ग के गठजोड़ के लिए सबसे योग्य क्रान्तिकारी नेता सिद्ध होंगेi उनकी सूझ-बूझ और प्रयत्नों से भावी समाज में वर्ग-संघर्ष लुप्त हो जाएगाi सेण्ट साइमन के इन विचारों से सपष्ट है कि उसके प्रहार का लक्ष्य सामंतवाद था, पूँजीवाद नहींi

सेण्ट साइमन ने लिखा कि अब समय आ गया है कि जब उद्योगपतियों को समाज का नियन्त्रण सँभाल लेना चाहिए और उसके सदस्यों की वास्तविक आवश्यकताओं के अनुरूप उसका संगठन करना चाहिएi यह संगठन सार्वजनिक हित से प्रेरित होगाi इसमें सामाजिक न्याय के लक्ष्य की सिद्धि के लिए उत्पादन और वितरण के साधनों पर साझा स्वामित्व स्थापित किया जाएगाi इस व्यवस्था के अन्तर्गत सुनियोजित वैज्ञानिक मार्ग-दर्शन के अधीन बड़े पैमाने पर उद्योगीकरण होगा जिससे उत्पादन बढ़ाकर 'निर्धनता' और 'युद्ध' का अन्त कर दिया जाएगाi यह एक खुली वर्ग-व्यवस्था (Open Class-system) होगी जिसमें जन्म पर आधारित विशेषाधिकारों की कोई गुंजाइश नहीं होगी; सबको काम मिलेगा और अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार पुरस्कार मिलेगाi इसमें राज्य ऐसी सरकार के रूप में नहीं रहेगा जो वर्ग प्रभुत्व (Class domination) और राष्ट्रीय प्रतिद्वंद्विताओं पर आधारित हो, बल्कि वह ऐसी कल्याणकारी व्यवस्था में बदल जाएगा जिसका वैज्ञानिक प्रबन्ध निपुण सार्वजनिक सेवकों के हाथों में रहेगाi

4.2.7. सम्पत्ति सम्बन्धी विचार

साइमन शोषण का कट्टर विरोधी थाi उसके विचार से समाज में प्रत्येक व्यक्ति को कार्य करना चाहिए और उसे अपने कार्य के अनुसार पारिश्रमिक मिलना चाहिएi वह जन्म और धन पर आधारित विशेषाधिकारों को ठुकराता है तथा धनी व्यक्तियों के बिना कार्य किये जीवन व्यतीत करने के अधिकार से इन्कार करता हैi वह श्रम को ही महत्व प्रदान करता है और इस बात पर बल देता है कि प्रत्येक व्यक्ति को समाज में सम्मान, उसकी समाज के प्रति सेवा के अनुपात में ही मिलना चाहिएi साइमन निजी सम्पत्ति (Private Property) के विचार में परिवर्तन चाहता है किन्तु वह सम्पत्ति के सामाजीकरण का अनुमोदन नहीं करताi वह सम्पत्ति की अनुमति केवल सार्वजनिक उपयोगिता के आधार पर ही देता हैi उसका यह विचार है कि जो लोग भी उत्पादन में योग देते हैं, उन सबको अपने परिश्रम के अनुसार उस धन में भाग मिलना चाहिएi साइमन ने समाज में राजनीतिक तत्व की अपेक्षा आर्थिक तत्व को प्रधानता दी हैi वह समाज का नेतृत्व औद्योगिक वर्ग तथा वैज्ञानिकों को देना चाहता हैi

4.2.8. धर्म सम्बन्धी विचार-

अपने लेखन के प्रारम्भिक दिनों में सन्त साइमन की धार्मिक मान्यताओं में पूरी आस्था थीi लेकिन विज्ञान में रुचि बढ़ने के साथ ही धर्म के प्रति उसका मन शंकालु होता चला गयाi विज्ञान के प्रति अपनी आस्था के कारण वह किसी भी प्रकार की जड़ता के विरुद्ध थाi उसका मानना था कि धर्म को किसी भी प्रकार से दुराग्रह और जड़ता से परे, व्यावहारिक होना चाहिए ताकि उसके आधार पर लिये गये निर्णयों में स्वाभाविकता बनी रहेi परन्तु यह विडम्बना ही है कि सामाजिक मुद्दों पर अन्तिम निर्णय का अधिकार शासकों, सामन्तों एवं पूँजीपतियों के पास सुरक्षित रहता है, जो किसी न किसी प्रकार स्थितियों को अपने पक्ष में मोड़ने में सफल रहते हैंi साइमन वर्तमान व्यवस्था से बुरी तरह खिन्न थाi यहाँ तक कि ईसाइयत

की कमजोरियॉ भी उनसे छिपी न थी**i** उसका मानना था कि इंजीनियर, वैज्ञानिक, डॉक्टर तथा अन्य बुद्धिजीवी लोग, संगठित होकर समाज के नवनिर्माण के लिए कार्य करें, ताकि नये सिरे से वैज्ञानिक मान्यताओं के अनुरूप समाज का पुनर्गठन सम्भव हो सके**i** इसका आशय यह नहीं है कि समाज के पुनर्निर्माण में आम आदमी की भूमिका नगण्य है**i** साइमन जोर देकर परिवर्तन में जनसामान्य की भूमिका को रेखांकित करता है**i** आमजन की भागीदारी के प्रति उसका विश्वास इतना गहरा है कि वे उसके समक्ष समाज के बाकी सभी वर्ग को उपेक्षित और नगण्य मानते चले जाते हैं**i** उसका यह भी मानना था कि दार्शनिकों, इंजीनियरों, वैज्ञानिकों आदि समाज के कथित सम्भ्रान्त वर्ग के नेतृत्व में समाज शान्तिपूर्वक औद्योगिकीकरण की ओर बढ़ सकता है**i** पारम्परिक धर्मों के आधार पर एक अपेक्षाकृत अधिक उदारवादी एवं मानवीय व्यवस्था का विकास भी सम्भव है**i** परन्तु समाज में स्थायित्व और परम्पराओं की निरन्तरता के लिए आम आदमी ही जिम्मेदार है**i** अत: समाज में उसकी भूमिका समाज के किसी भी अन्य वर्ग जितनी ही है**i** इस तरह साइमन ने समाज के उत्पादक एवं अनुत्पादक वर्ग की उपयोगिता के बीच एक स्पष्ट सीमांकन किया था**i** साइमन का मानना था कि सरकार का कर्तव्य अनुत्पादक वर्ग की वर्चस्वकारी नीतियों से उत्पादक वर्ग के हितों की रक्षा करना है**i**

सन्त साइमन को विश्वास था कि विज्ञान और उद्योग, अपनी धार्मिक एवं नैतिक प्रतिबद्धताओं के आधार पर संगठित होकर नई धार्मिक-आर्थिक संरचनाओं को जन्म देंगे तथा उन धार्मिक नैतिकताओं की पुन:स्थापना करेंगे जो इस दौरान किसी कारणवश लुप्त हो चुकी हैं**i** उसका विचार था कि समाज की संचालक शक्तियों, जिनमें उत्पादनकर्ता, व्यवसायी, बैंकर आदि बुर्जुआ शामिल हैं, को लोकसेवक के रूप में कार्य करना होगा, तथा स्वयं को सामाजिक सम्पत्ति का केवल ट्रस्टी समझना होगा**i** फ्रांसीसी क्रान्ति के बारे में साइमन का विचार था कि वह केवल अभिजात्य और बुर्जुआ वर्ग के बीच का संघर्ष नहीं था, बल्कि यह अभिजात्यवर्ग, बुर्जुआओं एवं सर्वहारा के बीच का संघर्ष था**i** सन् 1816 में उसने घोषणा की थी कि राजनीति उत्पादन का विज्ञान है और अर्थशास्त्र राजनीति को सदैव आत्मसात करता रहा हैं यह एकदम नई स्थापना थी, जिसका आधार व्यावहारिक था**i**

4.**2.9**. **परिवार सम्बन्धी विचार-**

साइमन का विचार था कि सभी लोग अपनी मानवता के कारण समान प्रतिष्ठा रखते हैं तथा उनके बीच स्वाभाविक अन्तर कुछ भी हो, जहॉ तक उनके अधिकारों व कर्तव्यों का सम्बन्ध है, वे समान हैं**i** उसकी प्रतिबद्धताएँ समाज के जिस वर्ग के प्रति थीं, वह सदैव उपेक्षित एवं तिरस्कृत रहा है**i** परिवार और लैंगिक सम्बन्धों को लेकर भी उसके विचार उदारता से भरपूर, आधुनिक और किसी भी प्रकार की जड़ता, पूर्वाग्रह आदि से मुक्त थे**i** पारिवारिक और लैंगिक सम्बन्धों के मामले में सन्त साइमन ने स्त्री के लिए सम्पूर्ण अधिकारिता तथा पुरुष के साथ उसकी पूर्ण समानता का पक्ष लिया है**i** उसने स्त्री-पुरुष में से प्रत्येक को सामाजिक इकाई स्वीकार किया है, जो समाज, परिवार और राज्य द्वारा निर्देशित कर्तव्यों के सम्पादन के लिए परस्पर एकजुट होते हैं**i**' उसने वैयक्तिक समानता पर अत्यधिक बल दिया है**i** इस सम्बन्ध में साइमन की एक प्रसिद्ध बोधकथा है जिसने तत्कालीन समस्त समाजवादी विचारकों को अत्यधिक प्रभावित किया- "कल्पना कीजिए कि फ्रांस में इस समय पचास प्रथम श्रेणी के चिकित्सक, पचास मूर्धन्य रयायनज्ञ, भौतिक-विज्ञानी, उतने ही नौकर, दो सौ कुशल व्यापारी, छह सौ बड़े किसान, पॉच सौ योग्य लुहार, बढ़ई, मोची इत्यादि समाप्त हो जाते हैं, ऐसा होते ही पूरा देश धराशायी हो जाएगा**i** उसका प्रभुत्व और समृद्धि तत्काल समाप्त हो जाएगी किन्तु इसके विपरीत यह मान लीजिए कि यह सब

तो सुरक्षित रहता है- परन्तु राज परिवार के सभी सदस्य, दरबारी, समस्त अधिकारीगण, मंत्री, पुरोहित, न्यायाधीश, भूमि-स्वामी आदि नष्ट हो जाएं तब देश को दु:ख तो होगा, शोक भी होगा, क्योंकि फ्रांस एक भावुक देश है, परन्तु इससे देश का कोई वास्तविक अहित नहीं होगा"

इस बोधकथा ने कार्ल मार्क्स जैसे साम्यवादियों को भी प्रभावित किया था इस बोधकथा के माध्यम से साइमन यह समझाने में सफल रहे थे कि किसी भी राष्ट्र की वास्तविक शक्ति राजपरिवार तथा उसके विभिन्न ओहदेदारों तक ही सीमित नहीं होती; अपितु उसकी शक्ति के सच्चे स्रोत सामान्यजन, वैज्ञानिक, इंजीनियर, डॉक्टर, अध्यापक और अन्य कर्मचारीगण होते हैं; जो उत्पादन या किसी ऐसे ही उत्पादक कर्म से किसी न किसी प्रकार सम्बद्ध हों इस प्रकार साइमन ने समाज के उत्पादक एवं अनुत्पादक वर्ग की उपयोगिता के बीच एक स्पष्ट सीमांकन किया था साइमन का मानना था कि सरकार का कर्तव्य अनुत्पादक वर्ग की वर्चस्वकारी नीतियों से उत्पादक वर्ग के हितों की रक्षा करना है

4.2.10. मूल्यांकन/ राजनीतिक चिन्तन को साइमन की देन

साइमन के विचारों ने फ्रांस में समाजवादी विचारधारा को मजबूत करने का कार्य कियां उसकी प्रेरणा से ही उसके सचिव समाजविज्ञानी ऑगस्ट काम्टे ने सोशियोलोजी (Sociology) जैसा शब्द ईजाद किया, जिससे समाज के विधिवत अध्ययन की प्रेरणा मिली

साइमन के विचारों के सम्बन्ध में यह विचारणीय है कि राजनीति के आर्थिक स्वरूप के प्रतिपादन के सम्बन्ध में उसके विचारों को कार्ल मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialsim) की पृष्ठभूमि माना जा सकता है मार्क्स ने जहॉं अपने विचारों को कार्य रूप दिये जाने की योजना को प्रस्तुत करके अपने विचारों को वैज्ञानिक रूप प्रदान किया, वहीं साइमन इतने उच्च स्तरीय व आदर्शवादी विचारों का प्रतिपादन करके भी उनको व्यावहारिक रूप प्रदान करने का उपाय प्रस्तुत नहीं कर सका था कार्ल मार्क्स के सहयोगी फ्रैड्रिक एंगेल्स ने भी सन्त साइमन के लम्बे योगदान की सराहना करते हुए एक आलेख में लिखा है कि-

'सन्त साइमन महान फ्रांसीसी क्रान्ति की देन था, जबकि उस समय वह पूरे तीस साल का भी नहीं था वह क्रान्ति वस्तुत: तीसरे राज्यों की पारम्परिक सामन्तवादी, निकम्मे प्रशासकों, अभिजात्यवर्ग तथा पुजारियों पर, ऐसे राष्ट्र की, उसकी जनता की जीत थी जिसका अधिकांश भाग औद्योगिक उत्पादन में संलग्न था किन्तु बहुत जल्दी यह दिखने लगा कि तीसरे राज्य की विजय बहुत शीघ्र उस राज्य के एक छोटे से हिस्से की विजय में बदल गयी अपनी सीमाओं और समय को देखते हुए साइमन ने जो स्थापनाऍं कीं, वही आगे चलकर एक बड़े आन्दोलन की नींव बनी, जिन्होंने परम्परा से चले आ रहे समाज को बदलने का कार्य किया' उसने कुलीनतावाद एवं सैनिक शासन का भी विरोध किया आमजन के प्रति अपनी सच्ची निष्ठा को दर्शाते हुए उसने कहा कि पूँजी का विकेन्द्रीकृत स्वरूप हमारी अनेक समस्याओं का हल है लोक के प्रति अपनी इसी निष्ठा के कारण उसने फ्रांसीसी क्रान्ति में सक्रिय हिस्सेदारी की थी जीड एवं राइट के अनुसार-

'उन्हें (साइमन को) न केवल समाजवाद का जनक होने का गौरव मिला बल्कि दर्शन में विधेयात्मकवाद का प्रथम उपयोगकर्ता होने का श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त है'

साइमन ने समाज में बढ़ रही निषेधात्मकता एवं आत्मघाती स्वच्छन्दता (Destructive Liberalism) से विरोध जताते हुए उसके स्थान पर समाज में सकारात्मक जीवन-मूल्यों की स्थापना पर जोर दिया था उसका मानना था कि समाज की स्थापना का उद्देश्य गरीब और उत्पीड़ित वर्ग की सहायता

करना है। उसकी प्रतिबद्धताएँ समाज के जिस वर्ग के प्रति थीं, वह सदेव उपेक्षित एवं तिरस्कृत रहा है। साइमन ने उस वर्ग के पक्ष में न केवल अपनी आवाज बुलन्द रखी, साथ ही वह उसके लिए आजीवन संघर्ष भी करता रहा। यहाँ तक कि अपनी समस्त पूँजी अपने प्रयोगों और विचारों को कार्यरूप देने के नाम पर खर्च कर दी। उसकी महानता का अनुमान मात्र इसी से लगाया जा सकता है कि जिन दिनों उसका अपना अभिजात्य वर्ग, जिसमें वह जन्मा था, लोगों का तरह-तरह से शोषण कर रहा था, साइमन ने बिना किसी वर्गीय पूर्वाग्रह के न्याय, समानता और विवेक के आधार पर नए समाज की रचना का सपना देखा था।

सन्त साइमन ने धर्म, राजनीति और अर्थव्यवस्था को समाज के वंचित और सर्वहारा वर्ग के कल्याण के लिए उत्तरदायी ठहराकर एक तरह से उस परम्परा को ठोस समर्थन दिया था, जो उससे लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष पहले मार्टिन लूथर द्वारा प्रारम्भ की गयी थी। वह थी समाज को परम्पराओं और रूढ़ियों से निकालकर युगीन चेतना से जोड़ना, समाज और सत्ता के साथ व्यक्तिमात्र को भी अहमियत देना, उसकी अस्मिता का सम्मान करना, औद्योगिक प्रगति तथा नवीनतम तकनीक का लाभ जन-जन तक पहुँचाते हुए विकास के अवसरों में जनसाधारण की साझीदारी सुनिश्चित करना। साइमन की विशेषता यह है कि उसने अभिजात्य वर्ग में जन्म लेकर भी जनसाधारण के आत्मसम्मान के संघर्ष को समर्थन दिया और उसके लिए सक्रिय संघर्ष में भी हिस्सेदारी भी की। उससे पहले यह प्रयास केवल सामाजिक एवं वैचारिक स्तर पर ही सम्पन्न हुए थे।

समाज के उपेक्षित एवं वंचित वर्ग के सम्मान एवं प्रतिष्ठा के लिए साइमन ने न केवल सीधे संघर्ष में हिस्सा लिया, बल्कि वैचारिक स्तर पर भी उसके लिए निरन्तर आवाज उठाता रहा। इसी कारण आगे चलकर उसे सन्त की गरिमा से विभूषित किया गया। उसके विचारों से प्रेरणा लेकर आगस्ट काम्टे (Auguste Comte), ओलिंडे रोड्रिग्स (Olinde Roderigues), एमंड बेजार्ड (Amand Bazard), पीयरे लेरोक्स (Pierre Leroux), इन्फेंटिन (Barthelemy Prosper Enfantin), थॉमस कार्ले, माइकल केविलियर आदि ने फ्रांसीसी समाजवाद की धारा को और अधिक समृद्ध बनाने का कार्य किया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जॉन स्टुअर्ट मिल आदि व्यक्ति-स्वातन्त्रय के पक्षधर विद्वानों ने जिस वैचारिक क्रान्ति का उद्घोष किया, उसके बीजतत्व मुख्यत: सन्त साइमन के लेखन में मौजूद हैं। यहां तक कि मार्क्स और फ्रैडरिक एंग्लस की विचारधारा भी कहीं-कहीं सन्त साइमन से प्रेरणा लेती नजर आती है।

4.2.11. अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. इनमें से कौन सेंट साइमन का शिष्य सचिव था?
   (क) बेंथम (ख) मिल
   (ग) प्रूधों (घ) आगस्ट काम्टे
2. सेंट साइमन का जन्म हुआ-
   (क) जर्मनी में (ख) फ्रांस में
   (ग) इंग्लैण्ड में (घ) अमेरिका में
3. निम्नलिखित में से कौन कल्पनावादी समाजवादी विचारक है-
   (क) सेंट साइमन (ख) कार्ल मार्क्स
   (ग) ऐंगेल्स (घ) मिल

4. 'राजनीति उत्पादन का विज्ञान हैi' यह विचार दिया है-
   (क) आगस्ट काम्टे (ख) बेंथम
   (ग) जी.डी.एच. कोल (घ) साइमन
5. वैज्ञानिक समाजवाद का जनक है-
   (क) कार्ल मार्क्स (ख) सेण्ट साइमन
   (ग) लासवेल (घ) बर्नस्टीन

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. किन्हीं तीन कल्पनावादी समाजवादी विचारकों का परिचय दीजिएi
2. सेण्ट साइमन के धर्म सम्बन्धी विचारों को स्पष्ट कीजिएi
3. सेण्ट साइमन द्वारा प्रतिपादित ऐतिहासिक विकासवादी विचारधारा की समीक्षा कीजिएi
4. सेण्ट साइमन की सम्पत्ति सम्बन्धी अवधारणा को स्पष्ट कीजिएi
5. सेण्ट साइमन द्वारा दी गयी समाजवाद की योजना का विवेचन कीजिएi

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न-

1. कल्पनावादी समाजवादी विचारधारा की व्याख्या कीजिएi
2. 'सेण्ट साइमन प्रथम समाजवादी विचारक थाi' समीक्षा कीजिएi
3. फ्रांसीसी क्रान्ति ने सेण्ट साइमन की विचारधारा को किस प्रकार प्रभावित किया? स्पष्ट कीजिएi
4. सेण्ट साइमन के राजनीतिक विचारों की व्याख्या कीजिएi
5. समाजवादी चिन्तन में सेण्ट साइमन के योगदान की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिएi

4.2.12. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. गाबा, ओ.पी. (2007), विवेचनात्मक राजनीति विज्ञान कोश, दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, पृ. 80
2. वर्मा, एस.पी. (1980), 'आधुनिक राजनीति सिद्धान्त', गाजियाबाद, विकास पब्लिशिंग हाउस, पृ. 315
3. जौहरी, जगदीशचन्द्र (1992) - आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त, नई दिल्ली, स्टर्लिंग पब्लिशर्स,iSBN 81-2071-362, पृ.सं. 568
4. नारायण इकबाल (2001), आधुनिक राजनीतिक विचारधाराएं, जयपुर, ग्रन्थ विकास, पृ. 102
5. सिंघल एस.सी (2006)- राजनीतिक विचारधाराएं, आगरा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पब्लिकेशन, आई.एस.बी.एन. 81-89770-12-8, पृ.सं. 102
6. गाबा, ओ.पी. (1996), 'राजनीति चिन्तन की रूपरेखा', दिल्ली, मयूर पेपरबैक्स, आई.एस.बी.एन. 81-7198-156-9, पृ.सं. 270
7. दधीच, नरेश (2015), 'समसामयिक राजनीतिक सिद्धान्त', नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशन्स, आई.एस.बी.एन. 978-81-316-0679-7, पृ.सं. 226
8. Ray B.N. (2006)- Politi**c**al Theory, Delhi, Authors Press,iSBN 81-7273-2937 Page No. 499
9. Laidler, H.W. , Social Economic Movements, Page-45

10. Burns Emile- Anintroduction to Marxism,international Publications, New York, 1977.
11. https://en.m.wikipedia.org>wiki>Henri....
12. https://www.marxists.org.people.a.htm
13. https://www.collinsdictionary.com

इकाई–3 राबर्ट ओवेन के राजनीतिक विचार

इकाई की रूपरेखा

4.3.1 उद्देश्य कथन
4.3.2. प्रस्तावना
4.3.3. समाजवादीप्रणाली की रूपरेखा
4.3.4. सहकारिता सिद्धान्त
4.3.5. चरित्र निर्माण का साधन : शिक्षा
4.3.6. मूल्यांकन
4.3.7. पाठसार/सारांश
4.3.8. अभ्यास/बोधप्रश्न
4.3.9. कठिन शब्दावली
4.3.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.3.1. उद्देश्य कथन

इस इकाई के अध्ययन केपाश्चात् आप समझपाएंगे :

1. समाजवादीप्रणाली की रूपरेखा
2. सहकारिता आन्दोलन तथा इसका व्यवहारिक स्वरूपा
3. चरित्र निर्माण के साधन के रूपा में शिक्षा की भूमिका

4.3.2. प्रस्तावना

प्रारम्भिक समाजवादी, सहकारिता–आन्दोलन के अग्रदूत समाज सुधारक एवं उद्यमी रॉबर्ट ओवेन (14 मई, 1771– 17 नवम्बर 1858) का जन्म ब्रिटेन के सेंट्रल वैल्स के एक साधारण से कस्बे न्यूटाउन में हुआ था। उसके पिता साधारण व्यापारी थे और ओवेन का बचपन अत्यधिक अभावों में बीता। नौ वर्ष की अवस्था में ही उसे स्कूल छोड़कर नौकरी करनीपड़ी। काम की तलाश में वह अपने भाई विलियम के साथ लंदन गया जहाँपहली नौकरी उसे दर्जी के रूपा में मिली। धीरे–धीरे वह काम सीख गया और कुछपैसे इक्ट्ठा कर लिए। उसकी महत्वकांक्षाए, जो धन के अभाव के कारण दब गई थीं,पुनः जागृत हो उठी। मैनचेस्टर के कपड़ा उद्योग का उन दिनों काफी नाम था। ओवेन ने अपने बड़े भाई विलियम से सौपौंड की रकम उधार ली और मैनचेस्टरपहुँचा जहॉ उसने जोन के साथ मिलकर एक धागे की जूतियां बुनने के छोटे से कारखाने की शुरूआत की।परन्तु वह बड़ी कम्पनियों कीप्रतिस्पर्धा के सामने टिक नहीं सकी। उसने मैनचेस्टर के एक बड़े कारखाने मेंप्रबन्धक की नौकरी कर ली। अपनीप्रतिभा, मेहनत व लगन के बलपर शीघ्र ही मिल मालिक का प्रिय बन गया और उस कारखाने को कुछ ही वर्षो के सर्वश्रेष्ठ कारखानों की श्रेणी में ला दिया। सन् 1795 में ओवेन मैनचेस्टर की एक और बड़ी कपड़ा मिल 'काल्टन ट्विस्ट कम्पनी काप्रबन्धक और हिस्सेदार बन गया तथा वहाँ के सर्वाधिक सफल उद्यमियों की श्रेणी में आ गया। उन्ही दिनों उसे अपनी फैक्ट्री के काम से स्कॉटलैण्ड के न्यू लेनॉर्क शहर जानापड़ा जहाँप्रसिद्ध कपड़ा व्यवसायी डेविड डेल के साथ उसने कपड़ा मिल का सौदा किया तथा उससेप्रभावित होकर सितम्बर

1799 में ही डेविड डेल ने अपनी बेटी कॉरोलिना का विवाह ओवेन के साथ कर दिया। ओवेन न्यू लेनॉर्क में ही रहने लगा जहाँ उसके जीवन का एक नया अध्याय आरम्भ हुआ। वह एक दूरदृष्टा उद्यमी, शोषण मुक्त समाज का समर्थक, सहकारिता के सिद्धान्त को विकसित करने वाले आरम्भिक समाजवादी के रूपा में जाना गया जिसने अमेरिका में सहकार बस्तियों की स्थापना काप्रयास किया।

ओवेन ने सन् 1799 में स्कॉटलैण्ड के न्यू लॉनार्क शहर में एक आदर्श सूती मिल स्थापित करके यह सिद्ध करने काप्रयास किया कि मजदूरों के लिए अच्छी मजदूरी और काम की अच्छीपरिस्थितियाँप्रदान करके भी व्यावसायिक सफलताप्रापत की जा सकती है। यह मिलप्रबुद्धप्रबंध व्यवस्था का एक नमूना बन गई जिससे ओवेन एक मानवप्रेमी के रूपा मेंपूरे यूरोप में विख्यात हो गया। वह शुद्ध व्यवसायी नहीं था, बल्कि उसकेपास सुन्दर और संवेदनशील हृद्य भी था जो दूसरों को कष्ट में देखकर विचलित हो जाता था। वह स्वयं गरीबपरिवार से था इसलिए गरीबी की विवशताओं और कष्टों से भली–भाँति अवगत था इसलिए जब उसने न्यू लेनार्क के बड़े–बड़े कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की छोटी–छोटी और गन्दी बस्तियों के नारकीय जीवन को देखा तो उसका हृदय द्रवित हो उठा और उसे लगा की उत्पादकता में अपेक्षित वृद्धि कारीगरों और मजदूरों का रहन–सहन की स्थिति में सुधार किये बिना सम्भव नहीं है। इसलिए उसने अपना जीवन मजदूरों की हालत सुधारने में लगा दिया।

ओवेन न केवल कुशल व्यवसायी, स्वपनदृष्टा विचारक और कर्मठ व्यक्ति था बल्कि सिद्धहस्त लेखक भी था। उसने अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की जिनमेंप्रमुख हैं– 'ए न्यू व्यू ऑफ सोसाइटीः एस्से आन फारमेशन ऑफ ह्यूमन कैरेक्टर' 1813, 'आवजर्वेशन आन दि इफेक्ट ऑफ दि मैन्यूफैक्चरिंग सिस्टम' 1815, रिपोर्ट टू दि काउंटी आफ लेनार्क आफ एपलान फॉर रिलीविंगपब्लिक डिस्ट्रेस' 1821, 'एन एड्रेस टू ऑल क्लासिस इन स्टेट'–1832, 'दि बुक ऑफ दि न्यू मॉडल वर्ल्ड'–1848, 'दि रिवोन्यूशन इन दि माइंड एंडप्रैक्टिस ऑफ दि ह्यूमन रेस'–1849 इत्यादि।

4.3.3. समाजवादीप्रणाली की रूपरेखा

इंग्लैण्ड में 18वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूपा अनेकपरिवर्तन हुए। सामाजिक क्षेत्र में शोषक और शोषित वर्गों के बीच अन्तर और भी बढ़ गया।पूँजीपति धनवान होते गए और श्रमिक तथा किसान मजदूर वर्ग की दशा निरन्तर गिरती गई। यह दुर्दशा बहुत से विचारकों से देखी नहीं गई और उन्होने निजी सम्पत्ति को सभी बुराइयों की जड़ मानते हुए विद्यमान व्यवस्थापरप्रहार किया तथा एक समाजवादी व्यवस्था की कल्पना की। इन विचारकों में रॉबर्ट ओवनप्रमुख थे। उन्हें ब्रिटिश समाजवाद का जन्मदाता कहा जा सकता है। यद्यपि उनकेपूर्ववर्ती विचारकों–विलियम गॉडविन, चार्ल्स हॉल इत्यादि ने कुछ सीमा तक साम्यवादीप्रस्तावों का समर्थन किया,परन्तु किसी में रॉबर्ट ओवन जैसीप्रतिभा एवं व्यावहारिकता नहीं थी।

रॉबर्ट ओवन का विश्वास था कि मानव समाज का उद्देश्य अधिकतम व्यक्तियों के लिए अधिकतम सुख कीप्रापित करना है,परन्तु इस उद्देश्य कीप्रापित में तीन बाधाएं हैंप्रथम, निजी सम्पत्ति, द्वितीय धर्म तथा तृतीय विवाह हुआ। उसकी

आदर्श योजना में इन तीनों के लिए कोई स्थान नहीं है। उसका यह भी विचार था कि मनुष्य का चरित्र मूलतः अच्छा होता है और शिक्षा द्वारा उसे और विकसित किया जा सकता है,परन्तु निर्धनता, स्वार्थपरता, निरक्षरता, अज्ञान, युद्ध, वैमनस्य इत्यादि सच्चरित्रता के विरोधी है। अतः चरित्र को इनसे विमुक्त करने काप्रबन्ध किया जाना चाहिए। शिक्षा इस दिशा में काफी सहायक हो सकती है।परन्तु सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि कोई भी व्यक्ति बेरोजगार न रहे और सबको काम दिलाने के लिए एक श्रम कार्यालय (Labour Bureau) की स्थापना की जाए। सन् 1815 से 1818 तक ओवेन श्रमिकों के हित के लिए कानून बनाये जाने के लिए संघर्ष करता रहा। उसकेप्रस्ताव थे–पार्लियामेन्ट को कानून द्वारा 12 घण्टेप्रत्येक व्यक्ति के लिए अधिकतम कार्य कर देना चाहिए और 10 वर्ष से कम आयु के बच्चों का मिल तथा कारखानों में काम करना निषिद्ध कर देना चाहिए। इससे बहुतपहले सन् 1800 में ही ओवेन ने स्वयं न्यू लैनार्क नामक नगर में व्यावहारिकप्रयोग किए थे। वह जिस फैक्ट्री का मालिक व संचालक था, उसमें अपने समाजवादी विचार लागू किए। मजदूरों के लिए अच्छे वपक्के मकान बनवायें, उनके बच्चों के लिए स्कूल खोले, उनके वेतन में वृद्धि की, काम के लिए मानवोचितपरिस्थितियॉ निर्मित कीं, उनके काम के घण्टे निश्चित व सीमित कर दिए, मनोरंजन के अवसरप्रदान किये तथा इसप्रकार की यथासंभव अनेक सुविधाएं श्रमिकों को उपलब्ध करवाई जिससे न्यू लैनार्क नगर विश्व मेंप्रसिद्ध हो गया। चारों ओर से लोग इसको देखने के लिए आने लगे। लगभग 21 वर्षो तक वह इसप्रयोग को चलाता रहा और उल्लेखनीय यह है कि मिल के लाभ में कमी न होकर वृद्धि होती गई।

परन्तु धीरे–धीरे ओवेन के यह समाजवादी विचार स्वपनलोकीय (Utopian) होने लगे। उसने छोटे–छोटे गांव बसाए जाने काप्रस्ताव रखा जिसमें भूमि का क्षेत्रफल लगभग एक हजार सेपन्द्रह सौ एकड़ होगा तथापांच सौ से लेकर दो हजार तक जनसंख्या होगी। खेती तथा उद्योग दोनों की व्यवस्था होगी, लोगों के रहने के लिए चौकोर मकान होंगे, जिसमें सामान्य सोने, ,खाने औरपढ़ने के कमरे होगें। यहाँ तक कि बच्चों की देखभाल का कार्य भी समाज का होगा। ये समुदाय हर तरह से आत्मनिर्भर होगें तथा इसमें व्यक्तिगत सम्पत्ति एवं शोषण का कोई स्थान नहीं होगा।

परन्तु रॉवर्ट ओवेन के इनप्रस्तावों को कोई समर्थनप्रापत नहीं हुआ। सन् 1824 में उसने इन्डियाना में तीस हजारपौंड में एक उपनिवेश भी खरीदा जिसका नाम उसने 'न्यू हारमोनी' (New Harmony) रखा।परन्तु उसके साम्यवादीप्रयोग सफल न हो सके। उसने श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए अनेकप्रस्ताव रखे जिसमें लेबर एक्सचेंज (Labour Exchange) की स्थापना काप्रस्ताव सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। इस लेबर एक्सचेंज में उत्पादक अपना सामान ले जायेंगे जिसके बदले उन्हें लेबर नोट्स (Labour Notes)प्रापत होंगे जिनके द्वारा वह लेबर नोटों के मूल्य के बराबर की वस्तुएँ खरीद सकेगें। उसने श्रमिक संघों तथा सहकारी समुदायों (Co-operative societies) को मिलाने का भीप्रस्ताव रखा।

4.3.4. सहकारिता का सिद्धान्त –

यद्यपि रॉबर्ट ओवन सहकारिता के सिद्धांत का मौलिक विचारक नहीं था, उसकेपूर्व भी आर्थिक संसाधनों के विकेन्द्रीकरण केपक्ष में अनेक अर्थशास्त्री

अपनापक्ष रख चुके थे, तथापि रॉबर्ट ओवन की महत्ता इस बात में है कि उसने सहकार को व्यावहारिकता के धरातलपर साकार करने काप्रयास किया। यद्यपि अंततः उसे असफलता हासिल हुईपरन्तु उसकेप्रयासों के फलस्वरूपा दुनियाँ सहकार की महत्ता से अवगत हुई। उसने अपनीप्रसिद्धपुस्तक 'ए न्यू व्यू ऑफ सोसाइटी' (A New View of Society) के अन्तर्गतप्रतिस्पर्धात्मक व्यापारप्रणाली का खण्डन करते हुए 'सहकारिता'प्रणाली का समर्थन किया है जिसमें 'एक व्यक्ति का लाभ दूसरे व्यक्ति की हानि नहीं बनेगा,' जिसमें एक स्वस्थ और सुखमय वातावरण व्यक्ति के चरित्र को उत्तम समाज की आवश्यकताओं के अनुरूपा ढ़ालेगा। बेरोजगार लोगों की समस्या के समाधान के लिए रॉबर्ट ओवन ने 'सहकारिता ग्राम' (Villages of Co-operation) स्थापित करने का सुझाव दिया जहाँ सारा काम मिल–जुलकर किया जाएगा। यह व्यवस्था न केवल बेरोजगारी दूर करेगी, बल्कि सामाजिकपुनरूत्थान में भी सहायता देगी। यह समाज को एक नए रूपा में ढालने में मदद करेगी जिसमें लाभ की इच्छा (Profit Motive) को कोई महत्व नहीं दिया जाएगा। ओवेन ने श्रम को एक सृजनात्मक मानवीय कृत्य मानते हुए यह तर्क दिया कि मशीन मनुष्य को गुलाम बना देगी, आजाद नहीं करेगी। उत्पादन केप्रमुख साधनोंपर सामुदायिक स्वामित्व और नियंत्रण स्थापित करके और मुद्रा को विनिमय का माध्यम न बनाकर आवश्यक वस्तुओं को आवश्यकता के अनुसार वितरित करके मनुष्य को सच्ची स्वतंत्रता दिलाई जा सकती है।

सन् 1825 से 1829 तक सहकारिता सिद्धान्त के आधारपर रॉबर्ट ओवन ने कुल सोलह बस्तियाँ बसाई, जिनमें वह शोषण मुक्त, वर्ग–विहिन समाज की स्थापना करना चाहता था। लेकिन क्षेत्रीयपरिस्थितियों के कारण बस्तियों को चलाने में समस्यायें आने लगी। ओवेन द्वारा बसाई गई बस्तियों की विशेषता यह थी कि वहाँ का जीवन सामूहिक सहयोगपर आधारित था।पूरी बस्ती एक वृहदपरिवार के समान थी जिसके सदस्यों के सुख–दुख साझे थे। महत्वाकांक्षाओं में समानता थी और उनके सपनों और संकल्पोंपर भी सामूहिकता काप्रभाव था। ओवेन की स्पष्ट धारणा थी कि आदर्शोन्मुखी समाज में सामाजिक सम्बन्धों का आधार लाभ के स्थानपर सेवा होना चाहिए। वहाँ के कार्य व्यापार मेंपारदर्शिता एवं सम–सहभागिता हो, तभी शोषण से मुक्ति संभव है। ओवेन समर्थक समाजवादियों के समूहगान में सहजीवन के आदर्शो की झलक सहज ही देखी जा सकती है। यह गीत ओवेन द्वारा स्थापित बस्तियों में बड़े ही मनोयोग से गाया जाता था –

"भाइयों उठो! अतुलनीयप्रेम से सराबोर और
परमसत्य से आभासित दिन के दर्शन करो।
उठकर देखो, मनुष्यताप्रतिस्पर्धा के स्थानपर,
सामुदायिक जीवन का आनन्द व आशीर्वाद लेने को उत्सुक है।
अब न्याय की जीत होगी। सर्वत्र आनन्द ही आनन्द होगा।"

परन्तु सहकारितापर आधारित बस्तियों को सफलतापूर्वक संचालित करने में रॉबर्ट ओवन असफल इसलिए रहा क्योकि उसे लोगों का सहयोग नहीं मिला। उसके अधिकांश लोग अपराधी मनोवृत्ति तथा नकारा एवं कामचोर स्वभाव के थे जो अपने लिए सुरक्षित ठिकानों की खोज में उन बस्तियों तकपहुँचे थे। दूसरे, समर्पित कार्यकर्त्ताओं का भी अभाव था। उन बस्तियों के कुशल संचालन के लिए जिसप्रकार के स्वयंसेवकों की आवश्यकता थी, उनका वहाँ सरासर अभाव था। तीसरे, इन

बस्तियों में अधिकांश लोग केवल शौकिया, समय बिताने के लिएपहुँचे थे। कुछ लोग लोकतांत्रिकपरम्परा से निकलकर आए थे और व्यवस्था में खुलापन चाहते थे। उन्हें ओवेन का एकाधिकार स्वीकार नहीं था, क्योकि उन बस्तियों में ओवेन की स्थितिपरिवार के मुखिया जैसी थी।

न्यू हॉरमनी काप्रयोग असफल होने के बाद ओवेन ने मैक्सिकों में नए सिरे से कोशिश की।परन्तु वहॉ उसका सामनापरंपरावादी चर्च से हुआ, जिसका वहाँ की गरीब जनतापर अत्यधिकप्रभाव था।परिणामस्वरूपा, ओवेन वहाँ से भी निराश होकर सन् 1828 में इंग्लैण्ड के लिए रवाना हुआ। लेकिन तब तक वहाँ कीपरिस्थितियाँ भी बदल चुकी थीं, समाजवादी विचारधारा तेजी से अपनीपकड़ बना रही थी, विलियम थामसन जैसे बुद्धिजीवी लोकतांत्रिक समाजवाद की नई व्याख्याएं गढ़ रहे थे। सहकारितापर नएप्रयोगों का सिलसिलाप्रारंभ हो चुका था। मजदूरों के संगठन बनने लगे थे। समाजवादी विचारधारा को आधार मानकर नए–नए उभरे चार्टिस्ट आन्दोलनकारी संघर्ष के रास्ते सत्ता की सीढ़ियाँ चढ़ने का मन बना चुके थे। उन्होनें एक के बाद एक तीन बड़ी हड़तालें करके सरकार के सामने मुश्किले खड़ी कर दी थी जिससे उन्हें लग रहा था कि वे शीघ्र ही सत्तापर सवार होकर बड़ी आसानी से बदलाव के लक्ष्य कोप्रापत कर सकेगें। ओवेन द्वारा बसाई गई बस्तियों का लगातार अवसान होता गया।

4.3.5. शिक्षा : चरित्र निर्माण का साधन

रॉबर्ट ओवेनपर सुधारवादियों काप्रभाव था। वह मेनचेस्टर की 'लिटरेली एण्ड फिलासफिकल सोसाइटी' का सम्मानित सदस्य था। स्कॉटिश नवजागरण आन्दोलन सेप्रभावित था तथा उसका मानना था कि मनुष्य का व्यक्तित्व उसके वातावरण सेप्रभावित एवं विनिर्मित होता है इसलिए वातावरण में सुधार द्वारा व्यक्तित्व कापरिष्कार किया जा सकता है। शिक्षा के महत्व को स्वीकार करते हुए ओवेन ने व्यक्तित्व निर्माण के लिए शिक्षा को अनिवार्य माना है। उसने कहा था कि ''विवेकवान एवं मानवीय भावनाओं से ओत–प्रोत व्यक्तित्व के निर्माण के लिए शिक्षा का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसलिए शिक्षक कापहला कर्तव्य है कि बालक के मानसिक एवं शारीरिक विकास के लिएपूर्णतः अनुकूल वातावरण की संरचना करें।''

रॉबर्ट ओवेन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान कारखानों में काम करने वाले मजदूरों के बच्चों की शिक्षा काप्रबन्ध करना था। उसने शिशुपाठशालाओं की स्थापना की और सहकार का जन्मदाता होने के साथ–साथ वह शिशु शिक्षा कार्यक्रम काप्रर्वतक भी बन गया।पांच साल के बच्चों के लिए शिक्षा अनिवार्य करते हुए उसने एक क्रान्ति का शुभारम्भ किया। यह सब ओवेन ने अपनी आन्तरिकप्रेरणा के आधारपर किया जिसका मजदूर वर्ग की ओर से जोरदार स्वागत किया गया। मजदूरों के लिए आवास बस्तियों के निर्माण, अस्पताल, विश्रामालय, मनोरंजन गृहों तथा शिशुपाठशालाओं के निर्माण में ओवेन ने जितना धन खर्च किया, उससेपहले किसी ने भी इन कार्यक्रमोंपर इतना निवेश नहीं किया।

4.3.6. मूल्यांकन

रॉबर्ट ओवेन द्वाराप्रस्तुत आदर्शोन्मुखी सहकारी समाज की संकल्पना नई नहीं थी और न ही जैसा सपना देखने वाला वह अकेला बुद्धिजीवी विचारक था। बल्कि ऐसी ही आदर्शोन्मुखी समाज की कल्पना उससे लगभग बाइस सौ वर्षोपहलेपलेटो कर चुका था। जॉन काल्विन, थॉमस मूर, रूसो आदि ने भी आदर्श समाज को लेकर ऐसी कल्पनाएँ की थी।परन्तु रॉबर्ट ओवेन इस सभी विद्धानों से हटकर और बढ़कर था क्योंकि वह केवल सिद्धांतकार नहीं था, बल्कि विचारों को मूर्त रूपा देने वाला सच्चा संकल्पधर्मी व्यक्ति था। उसने न केवल वर्गहीन और समानतापर आधारित समाज का सपना देखा, अपितु अपने लक्ष्य कीप्रापित के लिए अनेक सफलप्रयोग भी किये। यह बात अलग है कि सुधार कार्यक्रमों में उसे जो आरम्भिक सफलता मिली, बाद में वह लगातार घटती गई। इसका कारण यह था कि जिस समाज का सपना ओवेन ने देखा था, तत्कालीनपरिस्थितियाँ उसके विपरीत थी। वहपूंजीवादी अर्थ व्यवस्था का विरोधी थापरन्तु उसने सहकारिता सिद्धान्त के आधारपर जिन बस्तियों को बसाने काप्रयास किया, उसके उसप्रयोग का उपहास किया गया। उसे अर्द्धविक्षिपत और सनकी कहा गया। मार्क्सवादी विचारकों ने ओवेन के सारे अभियान को सन्देह की दृष्टि से देखा। फ्रेडरिक एंगेल्स ने ओवेन की नीयतपर संदेह करते हुए उसे एक तरह से छदम् समाजवादी स्वीकार किया है। एंगेल्स के अनुसार, ''मजदूरों केप्रति ओवेन कापयार ऊपरी, यानि केवल दिखावा था जो मानवीय संवेदनाओं से कोसों दूर था।''

रॉबर्ट ओवेन स्वपनदृष्टा होने के साथ ही साथ संकल्पवान भी था। उसने अपनी आलोचना कीपरवाह किये बिना अपनी योजनाओंपर काम किया। मजदूर कल्याण कार्यक्रमों के साथ ही साथ वह बाल शिक्षा संस्थाओं का आदिप्रर्वतक भी बन गया। समाज की बेहतरी के लिए उसने और भी अनेकप्रयोग किये जिनमेंपूंजी के साथ–साथ बहुमूल्य समय भी लगा, हालांकि विरोधियों के कारण उसे अपेक्षित सफलता नहीं मिलीपरन्तु उसे असफल भी नहीं कहा जा सकता। उसका हृदय निःसंदेह मानवप्रेम,परोपकार एवंज न सेवा की भावनाओं से ओत–प्रोत था,परन्तु अपनी योजनाएँप्रस्तुत करते समय उसने मानवप्रकृतिक के यथार्थ को समझने की कोशिश नहीं की इसलिए मार्क्स–एंगेल्स तथा अन्य विद्धानों ने उसे 'स्वपनलोकीय समाजवादी' की संज्ञा दी। फिर भी उसके विचारों में समाजवाद की ऊँची कल्पना थी। उसकेप्रयोगों को देखने के लिए रूस का जार निकोलस भी स्वयं गया। संयुक्त राज्य अमेरिका में बुद्धिजीवियों औरप्रशासकों ने उसके भाषणों को ध्यान से सुना। उसके बहुत सेप्रयोग असफल रहे,परन्तु समाजवाद के इतिहास में उसका महत्वपूर्ण स्थान है। उसने विशेषकर सहकारिता आन्दोलन, फैक्ट्री कानूनों, कारावास सुधार, श्रमिक संघ आंन्दोलन, इत्यादि को बहुतप्रभावित किया।

4.3.7. पाठ सार/सारांश

सेंट साइमन तथा चार्ल्स फूरियर की भाँति रॉवर्ट ओवन का उद्देश्य भावी आदर्श समाज का चित्र खींचना था। वह कुशल उद्योगपति था,परन्तु तत्कालीनपूंजीवादी व्यवस्था के दोषों केप्रति संवेदनशील होने के कारण उसका ध्यान सुधार की ओर गया। उसने स्वयं अपने मेनचेस्टर तथा स्कॉटलैण्ड के न्यू लेनार्क के कारखानों में श्रमिकों के हित के लिए अनेक सुधार किये तथा

अपनीपुस्तक "New View of Society" में भावी आदर्श समाज की रूपरेखाप्रस्तुत की तथा उसे व्यवहार में लागू करने के लिए स्कॉटलैण्ड तथा अमेरिका में नई बस्तियाँ बसाई, सहकारिता का सिद्धान्तप्रस्तुत किया। ओवेन का मत है कि मानव जीवन का ध्येय आनन्द है। उन्नत समाज वही है जिसमें भौतिक सुख कीप्रचुरता होती है। इसलिए हमें अधिक से अधिक लोगों के जीवन को सुखी बनाने काप्रयास करना चाहिए। मनुष्य की मूलप्रवृत्तियां न बहुत दूषित हैं, न अत्यन्त मानवोचित। चरित्र तथा आचरण तोपरिवेश के द्वाराप्रभावित होते हैं। अतः चरित्र निर्माण के लिए दो बातें आवश्यक हैं–प्रथम, निर्धनता को समापत करना चाहिए, तथा द्वितीय समाज में उचित शिक्षा काप्रबन्ध होना चाहिए। ओवेन का विश्वास था कि मालिक का मजदूरों को अपने लाभ के लिए साधन मात्र समझना गलत है और उनको समुचित मजदूरी देना, उनसे उनके सामर्थ्य से अधिक काम न लेना, उनके रहने के लिए स्वच्छपरिवेश काप्रबन्ध करना तथा उनके बच्चों के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना उसका कर्तव्य है। इसी को ध्यान में रखकर ओवेन नेपूरे गांव की सफाई करवायी, नालियों को खुदवाया, मजदूरों के लिए आरामदायक मकानों का तथा बच्चों के लिए आदर्श विद्यालय का निर्माण कराया। उसने शराब की बिक्री बन्द करवा दी और ऐसे स्टोर खुलवाए जहाँ से मजदूर लागत भाव से अपनी आवश्यकताओं का सामान खरीद सकते थे। उसने मजदूरी की दरे बढ़ाई, काम करने के घण्टों को कम किया और दस वर्ष से कम के बच्चों को कामपर लगानेपर रोक लगाई। आश्चर्य यह है कि हरप्रकार के सुधार के कामपर व्यय करने के बावजूद उसके कारखानों में लाभ होता गया। ओवेन की नीति इस बात काप्रमाण है कि मजदूरों को अधिक वेतन देने और कार्य करने केपरिवेश को अच्छा बनाने से स्वयं मालिक को भी लाभ रहता है। उसने तर्क दिया किप्रगति के मार्ग में तीन बहुत बड़ी बाधाएं है, धर्म, विवाह और निजी सम्पत्ति।

धर्म तभी बाधक बनता है जब वह ज्ञान से विमुख होकर अलौकिक विश्वासों (Supernatural Beliefs) और समय केप्रतिकूल नैतिक मूल्यों (Outnoded Moral Values) को बढ़ावा देता है। निजी सम्पत्ति इसलिए बुरी है कि वह विषमता (inequality) और निर्धनता (Poverty) को बढ़ावा देता है। इन सभी बुराइयों केप्रतिकार के लिए समाजवाद काप्रचार एक दिव्य संदेश की तरह करना चाहिए। समाजवादी (Socialist) शब्द काप्रयोग सर्वप्रथम ओवेन द्वारा ही किया गया था तथा अपने विचारों को जनमानस तकपहुँचाने के लिए उसने "Co-operative Magazine" शीर्षक से एकपत्रिका भी निकाली। उसका विश्वास था किपूंजीवाद का मुकाबला संगठित मजदूर आन्दोलनों के माध्यम से किया जा सकता है। इसके लिए ओवेन ने 'राष्ट्रीय समेकित मजदूर महासभा' (The Grand National Consolidated Trade Union) का गठन किया। उसका मत था कि राज्य की सम्पत्तिपर व्यक्ति या राज्य की बजाय समाज का अधिकार होना चाहिए।परन्तु इसके लिए आवश्यक है कि व्यक्ति समिति अथवा संगठन के माध्यम से एकजुट हों ताकि समाज की ऊर्जा एकजुट हो और उपलब्ध संसाधनों का समाज के हित में अधिकतम उपयोग किया जा सके। इस तरह रॉबर्ट ओवेन ने समाजवाद की एक अलग धारा का अन्वेषण किया जिसे विद्वानों ने 'साहचर्य समाजवाद' की संज्ञा दी है।

4.3.8.अभ्यास / बोधप्रश्न

बहुविकल्पीयप्रश्न–

1. निम्नलिखित में से कौन स्वपनलोकीय समाजवादी हैं?
   (क) सेंट साइमन
   (ख) चार्ल्स फोरियर
   (ग) रॉबर्ट ओवन
   (घ) उपरोक्त सभी
2. रॉबर्ट ओवन किस देश का निवासी था?
   (क) फ्रॉस
   (ख) जर्मनी
   (ग) ब्रिटेन
   (घ) अमेरिका
3. 'न्यू हारमोनी' की स्थापना किसने की?
   (क) रॉबर्ट ओवेन
   (ख) कार्लमार्क्स
   (ग) चार्ल्स फोरियर
   (घ) कोई नहीं

4. 'ए न्यू व्यू ऑफ सोसाइटी' के लेखक कौन थे?
   (क) क्रॉपॉटकिन
   (ख) रॉबर्ट ओवन
   (ग) सेंट साइमन
   (घ)प्रूधाँ
5. 'सहकारिता ग्राम' स्थापित करने का सुझाव किसने दिया?
   (क) एंगिल्स
   (ख) काल्विन
   (ग) रॉबर्ट ओवेन
   (घ) कोई नहीं।

लघुउत्तरीयप्रश्न–

1. स्वपनलोकीय समाजवाद' से क्या तात्पर्य है?
2. आरम्भिक समाजवाद एवं संशोधनवाद में क्या अन्तर हैं?
3. रॉबर्ट ओवेन ने श्रम को एक मानवीय कृत्य मानते हुए क्या तर्क दिया?
4. रॉबर्ट ओवेन नेप्रतिस्पर्धात्मक व्यापारप्रणाली का खण्डन क्यों किया?
5. समाजवादी चिंतनधारा की कौन–कौन सी शाखाएं हैं?

दीर्घ उत्तरीयप्रश्न–

1. रॉबर्ट ओवेन ने 'न्यू लेनार्क' में श्रमिकों की स्थिति को सुधारने के लिए क्या प्रयास किया, स्पष्ट कीजिए।
2. रॉबर्ट ओवेन द्वाराप्रस्तुत समाजवादीप्रणाली क्या थी? व्याख्या कीजिए।
3. रॉबर्ट ओवेन द्वाराप्रस्तुत सहकारिता सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।

4. शिक्षा को रॉबर्ट ओवेन ने किसप्रकार आवश्यक माना हैं?
5. समाजवादी चिंतन के क्षेत्र में रॉबर्ट ओवेन के योगदान की व्याख्या कीजिए।

4.3.9. कठिन शब्दावली –

साधनों का समाजीकरण	–	उत्पादन के साधनोंपर समाज का स्वामित्व।
स्वपनलोकीय समाजवाद	–	समाजवाद काप्रारम्भिक रूप।
वैज्ञानिक समाजवाद	–	कार्लमार्क्स एवं एंगिल्स द्वाराप्रस्तुत विचारधारा अर्थात् मार्क्सवाद।
संशोधनवाद	–	कार्लमार्क्स के विचारों में किया गया संशोधन।
फेबियनवाद	–	मार्क्सवाद की भाँति एक समाजवादी विचाराधारा, जिसका विश्वास था कि सामाजिकपरिवर्तन हिंसात्मक साधनों अथवा क्रान्ति के द्वारा नहीं, अपितु संवैधानिक साधनों द्वारा होना चाहिए।
श्रमिक संघवाद	–	वह फ्राँसीसी समाजवादी विचारधारा जिसमें यह कल्पना की गई है कि सामाजिक क्रान्ति वर्गीय युद्ध केपरिणाम स्परूपा सम्पन्न होगी। यह श्रमिक संघों द्वारा चलाया जाएगा और जब क्रान्ति द्वारा राज्य तथा सरकार का अन्त कर दिया जाएगा तब श्रमिक संघ ही समाज का संचालन करेंगे।
श्रेणी समाजवाद	–	अंग्रेजी समाजवादी विचारधारा जो श्रमिक संघवाद की भाँति भावी समाज का संगठन श्रमिक संघों के आधारपर करने की कल्पना करता है,परन्तु इसमें 'सिंडीकेट' के स्थानपर 'श्रेणी' शब्द काप्रयोग किया गया है।
चार्टिस्ट आन्दोलन	–	ब्रिटेन में सन् 1838 से 1848 के बीच राजनीतिक सुधारों के लिए श्रमिक वर्ग द्वारा चलाया गया आन्दोलन जो विश्व के श्रमिक वर्ग कापहला विशाल आन्दोलन था।

4.4.10. संदर्भ ग्रन्थ सूची –

1. पंत, अम्बादत, जैन, हरी मोहन, गुपता, मदन गोपालः राजनीति शास्त्र के आधार, 1996, सेंट्रलपब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद,पृ0 652–653
2. गाबा, ओमप्रकाश, राजनीतिक चिंतन की रूपरेखा 1996 मयूरपेपरबैक्स, नोएडापSBN 81-7198-156-9,¸j0 273–274
3. https.//hi.m. Wikipedia.org
4. mprakashkashyap. Wordpress.com
5. फड़िया, बी0एल0, आधुनिक राजनीतिक चिंतन का इतिहास, 1999, साहित्य भवनपब्लिकेशन, आगरा,पSBN 81-7288-055-5,¸j0 170–171
6. https: // hi.unionpedia.org
7. https://sanajvad.workpress.con>tag

इकाई–4 एडवर्ट बर्नस्टीन के राजनीतिक विचार

इकाई की रूपरेखा

4.4.1. उद्देश्य कथन
4.4.2. प्रस्तावना
4.4.3. मार्क्सवाद की आलोचना/संशोधनवाद
4.4.4. मूल्यांकन
4.4.5. पाठ सार/सारांश
4.4.6. अभ्यास/बोधप्रश्न
4.4.7. कठिन शब्दावली
4.4.8. संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.4.1. उद्देश्य कथन

इस इकाई के अध्ययन केपाश्चात् आप समझपाएंगे :

1. संशोधनवादी विचारधारा
2. मार्क्सवाद की नई व्याख्या
3. सामाजिकपरिवर्तन का संशोधनवादी स्वरूपा

4.4.2 प्रस्तावना

कार्लमार्क्स की मृत्यु केपाश्चात् उसके अनुयायी कई भागों में विभाजित हो गए और उन्होने अपने अपने देश की सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिकपरिस्थितियों के अनुरूपा कार्ल मार्क्स के विचारों को ढ़ालने काप्रयास किया। एडवर्ड बर्नस्टीन ने जर्मनी में, जीन जोरेस ने फ्रॉस में, अंसीले ने बेल्जियम में, बिस्सॉलाटी ने इटली में तथा टुगन बेरोनोस्की ने रूस में मार्क्सवाद में 'संशोधनवाद' की नई धाराप्रवाहित की। इन विचारकों ने मार्क्सवाद में अनेक दुर्बलताओं को स्वीकार किया और उसमे संशोधन के उपाय सुझाए। इनमें बर्नस्टीन सर्वाधिक महत्वूपर्ण विचारक था, जिसके विचारों से उपरोक्त सभी विचारकों नेप्रेरणा ग्रहण की। उसने श्रम संघों, वयस्क मताधिकार, व्यवस्थापन आदि को महत्वप्रदान करते हुए विकासशील समाजवाद का मार्गप्रशस्त किया।

सन् 1850 में जर्मनी के एक लोकोमोटिव इन्जीनियर जैकब बर्नस्टीन केपुत्र के रूपा में जन्म लेने वाले एडवर्ड बर्नस्टीन का सामाजिक जीवन सन् 1872 में उसके द्वारा जर्मन समाजवादीप्रजातांत्रिक दल की सदस्यता ग्रहण करने से आरम्भ हुआ। सन् 1878 में जब जर्मनी में समाजवाद विरोधी कानूनपास हुआ तो समाजवादीप्रजातांत्रिक दल के सभी सदस्य या तो जर्मनी से निष्कासित कर दिए गए या स्वयं भूमिगत हो गए। बर्नस्टीन ने जर्मनी से निर्वासन के बीस वर्ष इंग्लैण्ड तथा स्विट्जरलैण्ड में बिताए। इंग्लैण्ड मेंप्रवास के दौरान वह वहाँ के समाजवादी आन्दोलन के सम्पर्क में आया। फेबियन सोसाइटी के नेताओं के विचारों काप्रभाव बर्नस्टीन के लेखोंपर दिखाई देता है।

लगभग 20 वर्षों बाद सन् 1900 में जब वह जर्मनी वापस लौटा तो वहाँ काउट्स्की के नेतृत्व में संशोधनवाद अथवापुनर्विचारवाद विरोधी आन्दोलन चल रहा था। इसके बावजूद उसने जर्मनी में संशोधनवाद का नेतृत्व किया जिससे वहाँ के

नवयुवक काफीप्रभावित हुए। सन् 1902 में वह जर्मन संसद (रिचस्टैग) का सदस्य निर्वाचित हुआ औरपुनः निर्वाचित होकर सन् 1928 तक सदस्य बना रहा। फलतः संशोधनवाद सामाजिक जनतांत्रिक विचारधारा बन गया। 18 दिसम्बर 1932 को इस महान संशोधनवादी नेता की मृत्यु हो गई।

समकालीन सामाजिकपरिवर्तनों को ध्यान में रखकर कार्लमार्क्स के विचारों को आधुनिक रूपा देने के उद्देश्य से बर्नस्टीन ने सन् 1896 से 1898 तक जर्मन भाषा में 'समाजवाद की समस्यायें' (Problems of Socialism) नामक एक लेखमालाप्रकाशित की जिसका संक्षिपत अंग्रेजी अनुवाद 'विकासवादी समाजवाद' (Evolutionary Socialism) के नाम सेप्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त उसकी अन्यपुस्तके 'द प्रिरिक्विजिट्स फॉर सोशलिज्म एण्ड द टारक्स ऑफ सोशल डेमोक्रेसी' (The Prerequisites for socialism and the Tasks of Social Democracy) सन् 1899 में तथा 'हिस्ट्री ऑफ द बर्लिन वर्कर्स मूवमेण्ट' (History of the Berlin Workers Movement) (3 Volumes) सन् 1907 मेंप्रकाशित हुई।

4.4.3. मार्क्सवाद की आलोचना/संशोधनवाद

बर्नस्टीन चिरसम्मत अथवा शास्त्रीय मार्क्सवाद की एक नई व्याख्याप्रस्तुत करता है तथा मार्क्सवाद के सार तत्व को अस्वीकार किये बिना ही उसकेपुरानेपड़ चुके, अस्पष्ट, अवैज्ञानिक और मताग्रह (Dogma) का रूपा धारण कर चुके अंशों में संशोधन करना चाहता है ताकि उसेपरिवर्तितपरिस्थितियों के अनुकूल ढाला जा सके। उल्लेखनीय है कि कार्लमार्क्स ने अपनेपूर्ववर्ती विचारकों को 'स्वपनलोकीय' कहा था, जबकि बर्नस्टीन ने कार्लमार्क्सपर स्वपनलोकीय होने का आरोप लगाया। चिरसम्मत मार्क्सवाद में बर्नस्टीन ने निम्नलिखित संशोधन किए–

1. कार्ल मार्क्स द्वारा की गई 'इतिहास की आर्थिक व्याख्या' को भ्रामक बताते हुए अपने ग्रन्थ 'Evolutionary Socialism' में बर्नस्टीन ने लिखा है– ''आधुनिक समाजप्रारम्भिक समाजों के आदर्शों से कही अधिक उन्नत है। ये आदर्श केवल आर्थिक तत्वों तक सीमित नहीं है, बल्कि इनमें विज्ञान, कला तथा अन्य सामाजिक सम्बन्धों का भी समावेश है।'' अर्थात् केवल आर्थिक शक्तियॉ ही सामाजिक विकासक्रम को नियंत्रित नहीं करती, बल्कि इसमें अनेक अभौतिक कारकों, नैतिक विचारों का भी योगदान होता है। इसलिए अभीष्टपरिवर्तन केवल क्रान्ति द्वारा आर्थिकप्रणालियों मेंपरिवर्तन द्वारा हीप्रापत नहीं किया जा सकता, जैसा कि मार्क्स ने कहा। बल्कि यहप्रजातंत्र के माध्यम से क्रमिक सुधारों द्वारा ही सम्भव है।
2. बर्नस्टीन का मानना है कि आधुनिक समाजों में व्यक्तिगत हित के विरूद्ध सामान्य हित अधिकप्रबल होता जा रहा है जिसके फलस्वरूपा कार्लमार्क्स द्वारा बताया गया 'आर्थिक शक्तियों काप्रारम्भिक नियम' खण्डित होता जा रहा है। सभ्यता के विकास के साथ ही साथ मनुष्य की आर्थिक शक्तियों के निर्देशन की शक्ति बढ़ती जा रही है। फलतः मनुष्य आर्थिक शक्तियों का नहीं, वरन् आर्थिक शक्तियों मनुष्य की दास बनती जा रही है।
3. शास्त्रीय मार्क्सवाद (Classical Marxism) यह मानता है किपूंजीवाद के विकास के साथ ही समाज दोपरस्पर विरोधी वर्गों– बुर्जुआ (Borgious) तथा सर्वहारा (Prolitariat) में बँट जाता है। जैसे–जैसेपूँजीवाद का विकास होता जाता है, गरीब और अमीर के बीच अन्तर बढ़ता जाता है, समाज कीपूंजी

थोड़े से हाथों में केन्द्रित होती जाती है। वर्ग–संघर्ष बढ़ता जाता है और क्रान्ति सन्निकट होती जाती है। बर्नस्टाइन इसमें संशोधन करते हुए कहता है कि 19वीं शताब्दी के अन्त तक आते–आतेपरिस्थितियाँ भिन्न हो चुकी हैं, वर्ग–संघर्ष तीव्र होने के स्थानपर कम होता जा रहा था। समाज केवल दोपरस्पर विरोधी वर्गों में नहीं बँटा था, मजदूरों का कोई एकताबद्ध वर्ग नहीं था, बल्कि उनमें भी कुशल अकुशल की कई श्रेणियाँ थीं। बर्नस्टीन ने वर्ग–संघर्ष के स्थानपर वर्ग–सहयोग में निष्ठा व्यक्त की है।

4. बर्नस्टीन कहता है कि हर युग में समाज में एक सशक्त मध्यम वर्ग होता है जो समाज को संतुलित रखता है जबकि मार्क्स ने केवल दो वर्ग बताए हैं– सम्पत्तिशाली तथा सम्पत्तिहीन, मध्यम वर्ग की उसने कोई चर्चा नहीं की है। बर्नस्टीन कहता है किपूंजीवादी व्यवस्था में भी मध्यम वर्ग का लोप नहीं होता, बल्कि केवल उसके स्वरूपा में थोड़ा सापरिवर्तन हो जाता है।
5. कार्लमार्क्स की भविष्यवाणी के विपरीत छोटे किसान और शोषित वर्ग श्रमिक वर्ग में सम्मिलित होकर उसका आकार नहीं बढ़ा रहे थे। सामाजिक धन में वृद्धि केपरिणामस्वरूपा बड़ेपूंजीपतियों की संख्या कम नहीं हो रही थी, बल्कि सभीप्रकार केपूंजीपतियों की संख्या बढ़ रही थी। दूसरी ओर श्रमिकों की दशा दिनप्रतिदिन खराब होने की बजाय सुधरती जा रही थी। राज्य का लोकतांत्रिक स्वरूपा जैसे–जैसे विकसित होता जा रहा था, मजदूर वर्ग की क्रान्ति के द्वारा समाजवाद आने की संभावना क्षीण होती जा रही थी। ऐसीपरिवर्तितपरिस्थितियों में बर्नस्टीन इस निष्कर्षपरपहुँचा कि, समाजवाद का कार्य श्रमिक वर्ग को राजनीतिक रूपा से संगठित करना तथा उन्हें एक लोकतंत्र में विकसित करना है। उन्हें राज्य में उन समस्त सुधारों के लिए लड़ना है जो श्रमिक वर्ग को ऊँचा उठा सकते हैं और राज्य को लोकतंत्र की दिशा में मोड़ सकते हैं। अतःपूंजीवाद से समाजवाद का संक्रमण शनैः–शनैः ही हो सकता है। यही विचार फेबियनवादियों का भी था।
6. मार्क्स का मानना था कि इतिहास एक युग से दूसरे युगपर द्वन्द्ववाद के नियम के अनुसार आगे बढ़ता है,परन्तु बर्नस्टीन ने इसमें एक विकासवादीप्रक्रिया देखी, जिसमें आकस्मिक छलॉगें अपवाद स्वरूपा थीं और सामान्य नियम क्रमिक तथा संचयशीलपरिवर्तन का था।परिवर्तन इसलिए होता है क्योंकि जीवन की मूलभूत स्थितियाँ बदल जाती हैं और ये स्थितियाँ मनुष्य को स्वयं को तथा अपनी संस्थाओं को नई आवश्यकताओं के अनुकूल ढ़ालने के लिएप्रेरित करती है। वर्ग भी एक कारक हो सकता है, किन्तु यह आधारभूत कारक नहीं है।
7. बर्नस्टाइन नेप्रजातंत्र और समाजवाद कोपरस्पर विरोधी न मानकरपरस्परपूरक माना है। उसके अनुसार, ''बिना कुछप्रजातांत्रिकपरम्पराओं और संस्थाओं के आज का समाजवादी सिद्धान्त सम्भव नहीं है।प्रजातंत्र समाजवाद की शर्त है, वह समाजवाद का केवल साधन ही नहीं, उसका सार भी है।'' इसलिए बर्नस्टाइनप्रजातंत्र को न केवल राजनीतिक क्षेत्र में, बल्कि आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में क्रियाशील देखना चाहता है। अतएव, वह चाहता है कि श्रमिकों कोप्रत्याशित क्रान्ति कीप्रतीक्षा में बैठे न रहकर

उन सुधारों के लिएप्रयत्नशील होना चाहिए जोपूँजीवादी राज्य मेंपूंजीवादी ढ़ॉचे के अन्तर्गत किये जा सकते हैं।

8. बर्नस्टीन की दृष्टि में राज्य एक कृत्रिम तथा विनाशकारी संख्या नहीं है और न ही राज्य का स्वरूपा अस्थायी तथा अस्वाभाविक है। बल्कि राज्य एक ऐसी संस्था है जिसकाप्रयोग श्रमिकों के हितों को बढ़ाने के लिए किया जा सकता है। राज्य के उस स्परूपा तथा कार्य के लिए, जिसकी चर्चा मार्क्स ने की थी, राज्य स्वयं नही, बल्कि उसके ऊपर नियन्त्रणकारी शक्ति उत्तरदायी है। इसलिए समाजवाद का उद्देश्य राज्य का विनाश नहीं, बल्कि उसकीप्रकृति मेंपरिवर्तन लाना होना चाहिए। इसपरिवर्तन का सर्वाधिक सशक्त माध्यमप्रजातंत्र है। राज्य को त्यागने अथवा क्रान्ति के द्वारा इसे क्षतिपहुँचाने के किसी भीप्रयास का अर्थ होगा मानव समाज के विकास कीप्रक्रिया में अवरोध उत्पन्न करना।
9. कार्लमार्क्स द्वारा 'दास कैपिटल' मेंप्रतिपादित 'मूल्य के श्रम सिद्धान्त' का भी बर्नस्टाइन खण्डन करता है। उसका मत है कि 'मूल्य' तथा 'अतिरिक्त मूल्य' की धारणाएँपूर्णतः अमूर्त हैं और वे जीवन की वास्तविकताओं से बहुत दूर हैं। श्रम निर्मित मूल्य के किसी भी सिद्धान्त के आधारपर हम वितरण के लिए कोई उपयुक्तप्रणाली स्थापित नहीं कर सकते। आज जिन उद्योगों में अतिरिक्त मूल्य की दर बहुत ऊँची है उनमें हमें श्रेष्ठतम अवस्था वाले मजदूर मिलते हैं और जिन उद्योगों में अतिरिक्त मूल्य की दर बहुत नीची है उनमें मजदूर हीन अवस्था में मिलते हैं। इसलिए शोषण के तथ्य को समझाने के लिए अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त आवश्यक नहीं है।
10. कार्लमार्क्स का विचार था किपूँजीवाद जब अपने विकास के चरम बिन्दुपरपहुँच जाएगा तो वस्तुओं का उत्पादन बढ़ेगा। समाज का एक बड़ा वर्ग निर्धन होने के कारण क्रय शक्ति के अभाव में इन वस्तुओं को खरीद नहींपाएगा। जिससे उत्पादन अतिरिक्त (Surplus) होकर नष्ट (Distroy) होने लगेगा। इससे आर्थिक संकट गम्भीर होता जाएगा औरपूँजीवाद का अन्त सन्निकट होगा। इसका खण्डन करते हुए बर्नस्टाइन कहता है कि ''सत्य केवल इतना ही है कि वर्तमान समाज में उत्पादन क्षमता वास्तविक मांगों की अपेक्षा कम है। करोड़ों मनुष्यों कोपार्यापत मात्रा में भोजन, वस्त्र और आवास उपलब्ध नहीं होता, यद्यपि इन समस्त वस्तुओं के लिए बहुत से साधन उपलब्ध हैं। इन कारणों से विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ा हुआ मालूम होता है। इसकापरिणाम यह होता है कि कुछ वस्तुएँ उपभोग की आवश्यकता से अधिक नहीं होती,परन्तु क्रय शक्ति की मात्रा से अधिक अवश्य होती हैं। इस कारण श्रमिकों के रोजगार में बहुत अनिश्चितता रहती है और उनकी स्थिति बहुत असुरक्षित हो जाती है। श्रमिकों को केवल मिल मालिकों की दयापर निर्भर रहनापड़ता है। अतः इन संकटों को केवल नारों से नहीं टाला जा सकता, बल्कि हमें उन आर्थिक स्थितियोंपर विचार करके उसे समाज में लागू करना चाहिए जिससे संकट कम हो सके।''
11. कार्लमार्क्स का मत था कि साम्यवादी क्रान्ति केपाश्चात् समाजवाद के माध्यम से साम्यवाद तकपहुँचा जाएगा। साम्यवाद की स्थापना केपूर्व की अवस्था को मार्क्स ने 'सर्वहारा के अधिनायकवाद' की अवस्था कहा है

जिसकाप्रयोगपूँजीवाद के अवशेषों को नष्ट करने के लिए किया जाएगा। बर्नस्टीन कहता है कि ''अधिनायकवाद'' चाहे अल्पसंख्यकपूँजीपतियों का श्रमिकोंपर हो या बहुसंख्यक सर्वहारा कापूंजीपतियोंपर हो, मानव समाज की दृष्टि से एकप्रतिगामी अवस्था है जिसे अपनाने का अर्थ होगा मानव समाज के विकास क्रम को उल्टी दिशा में मोड़ना। इस व्यवस्था में अधिकारों के दमन कीप्रबल संभावनाएँ होगी जो न तो श्रमिकों के हित में होगा, न हीपूँजीपतियों के हित में। मजदूर वर्ग कापूँजीपति वर्ग को नष्ट कर देना भी उतना ही गलत होगा, जितनापूँजीपति वर्ग द्वारा मजदूर वर्ग का शोषण होना। अतः हिंसात्मक क्रान्ति के स्थानपर वयस्क मताधिकार के द्वारा भी सामाजिकपरिवर्तन लाया जा सकता है।

12. बर्नस्टाइन ने कार्लमार्क्स की इस धारणा का भी खण्डन किया है कि ''श्रमिकों का कोई देश नहीं होता''। उसके अनुसार सन् 1840 के लगभग जब मार्क्स ने यह विचार दिया था, उस समय यह कुछ सीमा तक सही हो सकता था क्योंकि उस समय श्रमिक मताधिकार से वंचित थे और राजनीति में सक्रिय भागीदारी नहीं निभाते थे।परन्तु अब, जबकि उन्हें अपने देश में समस्त राजनैतिक तथा नागरिक अधिकारप्रापत हैं, यह धारणा असत्य सिद्ध हो चुकी है।

4.4.4. मूल्यांकन

एडवर्ड बर्नस्टाइन ने शास्त्रीय मार्क्सवाद के लगभगप्रत्येक सिद्धान्त में संशोधन किया है और इसप्रयास में वह इतना आगे निकल जाता है कि मार्क्सवाद के मूल सिद्धान्तों को ही समापत कर देता है। उसका कहना था कि मार्क्स के एक बुनियादी शिष्य को अपने गुरू कीप्रत्येक बातें आंखे बन्द करके स्वीकार नहीं कर लेनी चाहिए, बल्कि उसमें जो सत्य है उसे ग्रहण करना चाहिए और जो असत्य है उसकापरित्याग कर देना चाहिए। इसप्रकार उसके विचार बुनियादी रूपा से मार्क्सवादी मान्यताओंपर आधारित होकर भी उसके मौलिक सिद्धान्तों से भिन्न व्याख्याप्रस्तुत करते हैं। वर्गहीन, शोषणहीन समाजवादी समाज की स्थापना को मार्क्स के ही समान आवश्यक मानते हुए भी वह मार्क्स केप्रायः सभी सिद्धान्तों से दूर जाता दिखाई देता है। उसके संशोधनवाद ने मार्क्सवाद का इस हद तक संशोधन कर दिया कि यहपहचानपाना कठिन हो गया कि उसमें कितना मार्क्सवाद शेष है। यथार्थ में संशोधनवाद की मान्यताएं मार्क्सवाद के विरूद्ध आधुनिकपूँजीवाद और उदारवाद के समर्थकों से बहुत मिलती–जुलती हैं, भले ही यूरोप में इन मान्यताओं का समर्थन करने वाले साम्यवादी दलों ने मार्क्सवाद के सिद्धान्त को अपने सिद्धान्त के रूपा में मान्यता दी हो। वास्तव में मार्क्सवादी वाद–विवाद में 'संशोधनवाद'पर मार्क्सवाद को विकृत करने का आरोप लगाया जाता है।

यद्यपि बर्नस्टाइन ने मार्क्सवाद की समीक्षा करते हुए उसमें संशोधन का सुझाव दिया है, तथापि उसके स्वयं के विचार भी सर्वथा दोषरहित नहीं हैं, बल्कि उसमें अनेक विसंगतियाँ दिखाईपड़ती है। उदाहरणस्वरूपा, वह वर्गों तथा उनके हित केपारस्परिक विरोध को स्वीकार करते हुए भी वर्ग सहयोग के तथ्यपर बल देता है। सामाजिकपरिवर्तन हेतुप्रस्तावित मार्क्सवादीप्रक्रिया थी जिस अनिश्चितता तथा लम्बीप्रतीक्षा के तथ्य की ओर वह संकेत करता है, स्वयं उसके द्वाराप्रस्तावित

मार्ग भी इससे कम अनिश्चित एवंप्रतीक्षापूर्ण नहीं है। अपने अध्ययन के आधारपर उसने उन तथ्यों का ही खण्डन कर दिया जो मार्क्सवाद के आधार थे। फिर भी बर्नस्टाइन का महत्व इस बात के कारण अधिक है कि उसने विकासात्मक समाजवाद के सिद्धान्त को विकसित करके क्रान्तिकारी समाजवाद का विकल्पप्रस्तुत किया तथा मार्क्सवाद कोपरिवर्तितपरिस्थितियों के अनुकूल ढ़ालने कीप्रेरणा दी।

4.4.5. पाठसार सारांश

एडवर्ड बर्नस्टाइन गुणात्मक रूपा से मार्क्सवाद की दक्षिणापंथी संशोधनवादी धारा काप्रतिनिधित्व करता है। उसके विचारों ने सामाजिकप्रजातंत्रवादियों (Social Democrates) तथाप्रजातांत्रिक समाजवादी विचारधारा (Democratic Socialism) के विकासक्रमपर व्यापकप्रभाव डाला। मार्क्सवाद के आदर्शों से व्यापक सीमा तक सहमत होने के बावजूद वह मार्क्सवादी व्याख्याओं का अनुसरण नहीं करता। यद्यपि कार्लमार्क्स की भॉति वर्गविहीन, शोषण–विहिन समतामूलक समाज की स्थापना को वह न केवल आदर्श मानता है, अपितु अवश्यभावी भी मानता है। तथापि इसके लिए वह किसी भी रूपा में क्रान्ति और हिंसा का मार्ग अपनाने के लिए तैयार नहीं है। बर्नस्टीन की शंकाओं, अविश्वासों तथा मार्क्सवादी आलोचनाओं का मुख्य तर्क यह था कि मार्क्स ने समाज का जो विश्लेषणप्रस्तुत किया था, वह गलतप्रमाणित हो चुका है और सामाजिकपरिवर्तन मार्क्सवादी भविष्यवाणियों के अनुरूपा नहीं है। अतः यह उचित है कि मार्क्स के सिद्धान्त में संशोधन करके उन बातों को हटा दिया जाय, जो गलत सिद्ध हो चुकी है। बर्नस्टाइन ने विस्तृत आंकड़ेप्रस्तुत करके यह सिद्ध करने काप्रयत्न किया कि जहाँ तक आय और सम्पत्ति के वितरण काप्रश्न है, समाज में विभेदीकरण बढ़ता जा रहा हैं, ध्रुवीकरण का कोई संकेत नहीं है। अर्थात् समाज बहुत सारी श्रेणियों में बॅटता जा रहा है, केवल दो श्रेणियों में नहीं। उद्योग के बहुत सारे क्षेत्र बड़े–बड़े उद्योगों में केन्द्रित नहीं हुए, बल्कि छोटे–छोटे उत्पादन केन्द्रों में फैले हुए हैं? वर्ग संघर्ष उतना तीव्र नहीं हुआ है क्योकि श्रमिकों की स्थिति विगड़ी नहीं बल्किपहले से सुधर गई है। मध्य वर्ग का आकार संकुचित नहीं हुआ बल्कि और भी विस्तृत हो गया हैं? ऐसी स्थिति में श्रमिक वर्ग को 'डटकर कदम बढ़ाने' का रास्ता अपनाना चाहिए, न कि 'एकदम टूटपड़ने' का। इस तरह बर्नस्टीन ने 'बलपूर्वक क्रान्ति' तथा 'सर्वहारा के अधिनायकतंत्र' से सम्बन्धित विचारों का खण्डन करते हुए सामाजिक लोकतंत्र (Social Democracy) के सिद्धान्त का समर्थन किया है। बर्नस्टीन ने 'इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या' को भी अस्वीकार किया है जो समाजवाद की स्थापना के लिए वर्ग–संघर्ष को अनिवार्य मानती है। वर्ग संघर्ष और वर्ग–शासन की जगह बर्नस्टीन ऐसे लोकतंत्र का समर्थन करता है जिसके अन्तर्गत सभी व्यस्क नागरिक सीमित सरकार को अपना मिला–जुला उद्यम (Common Enterprise) मानते हैं। इसप्रकार समाजवादी चिंतन के क्षेत्र में बर्नस्टाइन ने मार्क्स के क्रान्तिकारी समाजवाद (Revolutionary Socialism) के एक विकल्प के रूपा में विकासात्मक समाजवाद (Evolutionary Socialism) के सिद्धान्त को बढ़ावा दिया है।

4.4.6 अभ्यास / बोधप्रश्न

बहुविकल्पीयप्रश्न –

1. एडवर्ड बर्नस्टीन किस देश से सम्बन्धित था?
   (क) ब्रिटेन
   (ख) फ्राँस
   (ग) जर्मनी
   (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं
2. जर्मनी में संशोधनवादी विचारधारा काप्रतिनिधित्व किसने किया?
   (क) एडवर्ड बर्नस्टीन
   (ख) जीन जोरेस
   (ग) अंसीले
   (घ) बेरोनोस्की
3. 'इवोल्यूशनरी सोशलिज्म' के लेखक कौन थे?
   (क) कार्लमार्क्स
   (ख) बर्नस्टाइन
   (ग) लेनिन
   (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं
4. शास्त्रीय मार्क्सवाद ने किसकोपूँजीवादी समाजों की विशेषता माना?
   (क) वर्ग–सहयोग
   (ख) वर्ग–संघर्ष
   (ग) मध्यम वर्ग
   (घ) उपरोक्त सभी
5. शास्त्रीय मार्क्सवाद द्वाराप्रस्तुत 'मूल्य का श्रम सिद्धान्त' का खण्डन किसने किया?
   (क) लेनिन
   (ख) बर्नस्टीन
   (ग) अंसीले
   (घ) जीन जोरेस

लघु उत्तरीयप्रश्न–

1. 'शास्त्रीय मार्क्सवाद' से क्या तात्पर्य हैं?
2. 'संशोधनवाद' से आप क्या समझते हैं?
3. 'फेबियनवाद' एवं 'संशोधनवाद' में क्या सम्बन्ध हैं?
4. बर्नस्टाइन ने कार्लमार्क्सपर 'स्वपनलोकीय' होने का आरोप क्यों लगाया?
5. बर्नस्टाइन ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या को किसप्रकार भ्रामक बताया।

दीर्घ उत्तरीयप्रश्न –

1. शास्त्रीय मार्क्सवाद द्वाराप्रस्तुत वर्ग–संघर्ष के सिद्धान्त का बर्नस्टाइन ने किसप्रकार संशोधन किया? व्याख्या कीजिए।
2. बर्नस्टाइन द्वाराप्रस्तुत राज्य के स्परूपा की विवेचना कीजिए।

3. बर्नस्टाइन नेप्रजातंत्र एवं समाजवाद को किसप्रकारपरस्परपूरक माना है? व्याख्या कीजिए।
4. 'सर्वहारा के अधिनायकवाद' का बर्नस्टीन ने किसप्रकार खण्डन किया हैं? विवेचना कीजिए।
5. कार्लमार्क्स द्वाराप्रस्तुतपूँजीवादी समाजों के स्वरूपा का बर्नस्टाइन ने किसप्रकार संशोधन किया है, व्याख्या कीजिए।

4.4.7. कठिन शब्दावली

संशोधनवाद	–	मार्क्सवादी आन्दोलन के अन्तर्गत संशोधनवाद उन विचारों व सिद्धान्तों को कहते हैं जो मार्क्सवाद की मूल अवधारणा में संशोधन करते हैं।
पुनर्विचारवाद	–	परिवर्तितपरिस्थितियों के अनुसार मार्क्सवाद में संशोधन।
सामाजिकप्रजातंत्रवाद	–	एक ऐसी राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक विचारधारा जोपूँजीवादी अर्थव्यवस्था के ढ़ाचे में सामाजिक न्याय के लिएप्रतिनिधिक लोकतंत्र का समर्थन करती है।
प्रजातांत्रिक समाजवाद	–	ऐसी राजनीतिक विचारधारा, जो राजनीतिक लोकतंत्र के साथ उत्पादन के साधनों के सामाजिक स्वामित्व का समर्थन करती है।
शास्त्रीय मार्क्सवाद	–	उत्पादन के साधनोंपर सामाजिक स्वामित्व द्वारा वर्गविहीन समाज की स्थापना के संकल्प की साम्यवादी विचारधारा जो रूढ़वादी मार्क्सवाद के नाम से जानी जाती है।
बुर्जुआ	–	पूँजीपति शोषक वर्ग
सर्वहारा	–	श्रमिक तथा शोषित वर्ग
अतिरिक्त मूल्य	–	उपयोग मूल्य (Use Value) एवं विनिमय मूल्य (Exchange Value) के बीच का अन्तर
सर्वहारा का अधिनायकवाद	–	साम्यवादी क्रान्ति केपाश्चात् वह अवस्था जिसमें सर्वहारा वर्ग के हाथों में शासन की सत्ता होगी।

4.4.8. संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हैरी, डब्लू0 लैडलर : ए हिस्ट्री ऑफ सोशलिस्ट थॉट, न्यूयार्क, थॉमस वाई0 क्रॉवेल कम्पनी, 1927,पृ0 296
2. हैरिंगटन, माइकल : सोशलिज्मःपास्ट एण्ड फ्यूचर (1989 मेंप्रकाशित मूलपुस्तक कापुनः मुद्रित संस्करण), आर्केडपब्लिशिंग, न्यूयार्क, अमेरिका, 2011,पृष्ठ 251
3. स्टीगर, मैनफ्रेड बी, 'द क्वेस्ट फॉर इवोल्यूशनरी सोशलिज्मः एडवर्ड बर्नस्टीन एंड सोशल डेमोक्रेसी, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटीप्रेस, 1997,पृष्ठ 236–237
4. त्रिपाठी, श्रीप्रकाश मणि, समकालीन राजनीतिक चिन्तन, (2016), राजपब्लिकेशन, नई दिल्लीपSBN 978-81-86208-77-2,पृष्ठ 273–284
5. गाबा, ओमप्रकाश (1996), राजनीतिक चिंतन की रूपरेखा, मयूरपेपर बैक्स, नोएडा,पSBN 81-7198-156-9,पृष्ठ 278–279
6. पंत, अम्बादत्त, गुपता, मदन गोपाल, जैन, हरिमोहन, राजनीतिक शास्त्र के आधार, 1996, सेन्ट्रलपब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद,पृ0 692–693
7. https : //hi.m. Wipipedia.ong
8. वर्मा, नवनीत कुमार, 'द फादर ऑफ रिविजनिज्म रीविजिटेडः एडवर्ड बर्नस्टीन', द जर्नल ऑफ माडर्न हिस्ट्री, अंक 51, संख्या–3
9. shodharthy.in